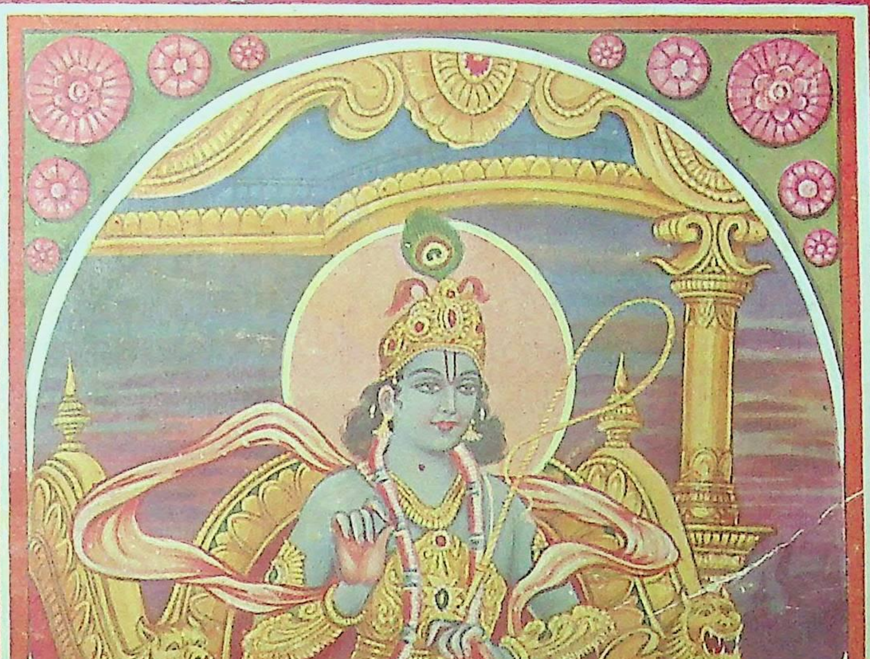
महाभारत

संस्कृत मूल

संस्कृत मूल



हिन्दी अनुवाद

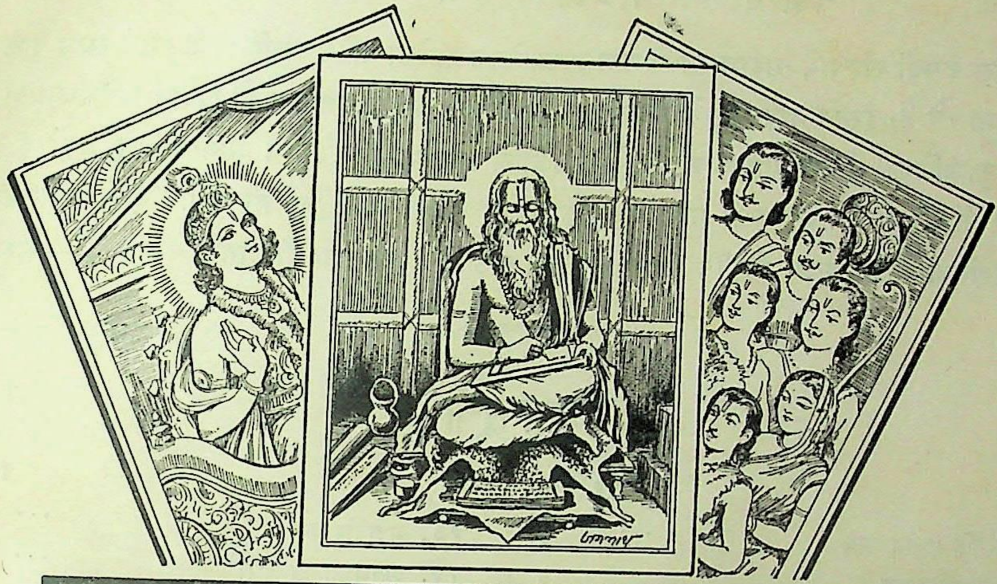
हिन्दी अनुवाद

वर्ष ३

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या १०

ॐ श्रीपरमात्मने नमः



▼ महाभारत ▼

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे । नमो वै ब्रह्महृदये वासिष्ठाय नमो नमः ॥

वर्ष ३ } गोरखपुर, श्रावण २०१५, अगस्त १९५८ { संख्या १० पूर्ण संख्या ३४

श्रीनन्दनन्दनकी शरण

सर्वेश्वरं सकलदुःखहरं रमेशं
वृन्दावनेशमखिलज्ञमुदारमूर्तिम् ।
श्रीनन्दनन्दनमखण्डसुखैकराशिं
सद्भक्तवत्सलमहं शरणं प्रपद्ये ॥

जो सबके सम्पूर्ण दुःखोंको हर लेनेवाले और भगवती लक्ष्मीके स्वामी हैं, वृन्दावनके अधीश्वर हैं, स्वरूपसे ही उदार हैं तथा अनन्त सुखकी एकमात्र राशि हैं, उन सर्वज्ञ, सर्वेश्वर तथा सद्भक्तवत्सल श्रीनन्दनन्दनकी मैं शरण लेता हूँ ।

श्रीहरिः

महाभारतके पाठकोंकी सेवामें नम्र निवेदन

इस दसवीं संख्यामें 'महाभारतकी नामानुक्रमणिका संक्षिप्त परिचयसहित' के साथ-साथ कुछ लेख भी दिये जा रहे हैं, इससे महाभारतके महत्त्वपूर्ण विषयों तथा पात्रोंका पाठकोंको विशेष परिचय प्राप्त होगा तथा 'अनुक्रमणिका' में रस प्राप्त न करनेवाले पाठकोंको संतोष भी रहेगा। आगामी दो अङ्कों (११ वीं तथा १२ वीं संख्या) में भी इसी प्रकार 'अनुक्रमणिका' तथा 'लेख' दोनों ही रहेंगे। दोनोंकी फार्मसंख्या तथा पृष्ठसंख्या अलग-अलग रहेगी। आशा है इससे पाठकोंको प्रसन्नता ही होगी। —सम्पादक

विषय-सूची

चित्र-सूची

वार्षिक मूल्य
भारतमें २०)
विदेशमें २६॥)
(४० शिलिंग)

सम्पादक, मुद्रक तथा प्रकाशक
हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर
टीकाकार—पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम'

एक प्रतिका
भारतमें २)
विदेशमें २॥)
(४ शिलिंग)



धर्मराज युधिष्ठिर

महाभारतके प्रधान पात्र

[महाभारतके सोलह प्रधान पात्रोंका संक्षिप्त परिचय इस लेखमें दिया गया है। भीष्मपितामह, धर्मराज युधिष्ठिर, कृष्णसखा अर्जुन, भगवान् वेदव्यास, महात्मा विदुर, दिव्यचक्षु संजय, पतिभक्ता गान्धारी, कुन्तीदेवी, देवी द्रौपदीका परिचय श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाका लिखा हुआ है और शेष सात पात्रोंका परिचय पं० श्रीगौरीशंकर-जी द्विवेदी महोदयने लिखा है।

—सम्पादक]

भीष्मपितामह

महात्मा भीष्म प्रसिद्ध कुरुवंशी महाराज शान्तनुके पुत्र थे। ये गङ्गादेवीसे उत्पन्न हुए थे। वसु नामक देवताओंमें 'द्यौ' नामके नवम वसु ही महर्षि वशिष्ठके शापसे भीष्मके रूपमें अवतीर्ण हुए थे। इन्होंने कुमारावस्थामें ही साङ्गोपाङ्ग वेदोंका अध्ययन तथा अस्त्रोंका अभ्यास कर लिया था। अस्त्रों-का अभ्यास करते हुए इन्होंने एक बार अपने बाणोंके प्रभावसे गङ्गाकी धाराको रोक ही दिया था। इन्हें बचपनमें लोग देव-व्रत कहते थे।

एक दिन राजर्षि शान्तनु वनमें विचर रहे थे। उनकी दृष्टि एक सुन्दरी कैवर्तराजकी कन्यापर पड़ी, जिसका नाम सत्यवती था और उसपर वे आसक्त हो गये। उन्होंने उससे विवाह करना चाहा। सत्यवती थी तो एक राजकन्या, परंतु वह कैवर्तराजके घर पली थी। उसके पिता कैवर्तराजने उसके विवाहके लिये राजाके सामने यह शर्त रक्खी कि उसके गर्भ-से जो पुत्र हो, वही राजका अधिकारी हो। राजाने उसकी यह शर्त मंजूर नहीं की; परंतु वे उस कन्याको भी न भुला सके। वे उसीको पानेकी चिन्तामें उदास रहने लगे। देव-व्रतको जब उनकी उदासीका कारण ज्ञात हुआ तो वे स्वयं कैवर्तराजके पास गये और उससे अपने पिताके लिये कन्या-की याचना की। उन्होंने उसकी शर्त मंजूर करते हुए सब-के सामने यह प्रतिज्ञा की कि 'इसके गर्भसे जो पुत्र होगा; वही हमारा राजा होगा।' परन्तु कैवर्तराजको इतनेपर भी संतोष नहीं हुआ। उसने सोचा कि देवव्रतका वचन तो कभी अन्यथा नहीं होनेका, परंतु इनका पुत्र राज्यका अधिकारी हो सकता है। बुद्धिमान् देवव्रत उसका अभिप्राय समझ गये। उन्होंने उसी समय यह दूसरी कठिन प्रतिज्ञा की कि 'मैं आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन करूँगा।' कुमार देवव्रतकी इस भीषण-प्रतिज्ञाको सुनकर देवताओंने पुष्पवर्षा की और तभीसे इन्हें लोग 'भीष्म' कहने लगे। भीष्मने सत्यवतीको ले जाकर अपने पिताको सौंप दिया। भीष्मका यह दुष्कर कार्य सुनकर राजा शान्तनु बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपने पुत्रको इच्छा-मृत्युका वरदान दिया। इस प्रकार भीष्मने जीवनके आरम्भमें ही पिताकी इच्छा पूर्ण करने-के लिये संसारके सामने अलौकिक त्यागका आदर्श स्थापित किया। जिस राज्यके लिये उनकी दो ही पीढ़ी बाद उन्हीं-के बेटों-पोतोंमें तथा उन्हींकी मौजूदगीमें भीषण संहारकारी महायुद्ध हुआ, उसी राज्यको उन्होंने बात-की-बातमें अपने पिताकी एक मामूली-सी इच्छापर न्यौछावर कर दिया। जिन कामिनी-काञ्चनके लिये संसारके इतिहासमें न जाने कितनी बार खून-खराबा हुआ है और राज्य-के-राज्य ध्वंस हो गये हैं, उनका सदाके लिये तृणवत् परित्याग कर उन्होंने एक विरक्त महात्माका-सा आचरण किया। धन्य पितृभक्ति!

सत्यवतीके गर्भसे महाराज शान्तनुके दो पुत्र हुए। बड़ेका नाम था चित्राङ्गद और छोटेका विचित्रवीर्य। अभी चित्राङ्गद जवान नहीं हो पाये थे कि राजा शान्तनु इस लोकसे चल बसे। चित्राङ्गद राजा हुए, परंतु वे कुछ ही दिन बाद गन्धर्वोंके साथ युद्धमें मारे गये। विचित्रवीर्य भी अभी बालक ही थे, अतः वे भीष्मकी देख-रेखमें राज्यका शासन करने लगे। कुछ दिन बाद भीष्मको विचित्रवीर्यके विवाहकी चिन्ता हुई। उन्हीं दिनों काशीनरेशकी तीन कन्याओं-का स्वयंवर होने जा रहा था। भीष्म अकेले ही रथपर सवार हो काशी पहुँचे। इन्होंने अपने भाईके लिये बलपूर्वक कन्याओंको हरकर अपने रथपर बिठा लिया और उन्हें हस्तिनापुर ले चले। इसपर स्वयंवरके लिये एकत्र हुए सभी राजालोग इनपर टूट पड़े, परंतु उनकी एक भी न चली। इन्होंने अकेले ही सबको परास्त कर दिया और कन्याओंको लाकर विचित्रवीर्यके सुपुर्द कर दिया। उस समय संसारको इनके अलौकिक पराक्रम तथा अस्त्रकौशलका प्रथम बार परिचय मिला।

भीष्म काशिराजकी तीन कन्याओंको हरकर ले आये थे। उनमें सबसे बड़ी कन्या अम्बा मन-ही-मन राजा शाल्वको वर चुकी थी। भीष्मको जब यह मालूम हुआ, तो उन्होंने अम्बाको वहाँसे विदा कर दिया और शेष दो कन्याओंका विचित्रवीर्यसे विवाह कर दिया। परंतु विचित्रवीर्य अधिक दिन जीवित न रहे। विवाहके कुछ ही वर्ष बाद वे क्षयरोगके शिकार हो इस संसारसे चल बसे। उनके कोई संतान न थी। फलतः कुरुवंशके उच्छेदका प्रसङ्ग उपस्थित हो गया। भीष्म चाहते तो वे आसानीसे राज्यपर अधिकार कर सकते थे। प्रजा उनके अनुकूल थी ही। वंशरक्षाके लिये विवाह करनेमें भी अब उनके सामने कोई अड़चन नहीं थी। परन्तु बड़े-से-बड़ा प्रलोभन तथा आवश्यकता भी भीष्मको अपने

वचनसे नहीं डिगा सकती थी। सत्यवतीके पितासे की हुई प्रतिज्ञाको दुहराते हुए एक समय उन्होंने कहा था—'मैं त्रिलोकीका राज्य, ब्रह्माका पद और इन दोनोंसे अधिक मोक्षका भी परित्याग कर सकता हूँ, पर सत्यका त्याग नहीं कर सकता। पाँचों भूत अपने-अपने गुणोंको त्याग दें, चन्द्रमा शीतलता छोड़ दे; और तो क्या, स्वयं धर्मराज भले ही अपना धर्म छोड़ दें; परंतु मैं अपनी सत्यप्रतिज्ञा छोड़नेका विचार भी नहीं कर सकता।' प्रतिज्ञाका पालन हो तो ऐसा हो।

इधर, अम्बाको शाल्वने स्वीकार नहीं किया। वह न इधरकी रही, न उधरकी। लज्जाके मारे वह पिताके घर भी न जा सकी। अपनी इस दुर्दशाका कारण भीष्मको समझकर वह उन्हें मन-ही-मन कोसने लगी और उनसे बदला लेनेका उपाय सोचने लगी। अपने नाना राजर्षि होत्रवाहनकी सलाहसे वह जमदग्निनन्दन परशुरामकी शरणमें गयी और उनसे अपने दुःखका कारण निवेदन किया। भीष्मने परशुरामसे अस्त्रविद्या सीखी थी। उन्होंने भीष्मको कुरुक्षेत्रमें बुलाकर कहा कि 'इस कन्याका बलपूर्वक स्पर्श करके तुमने इसे दूषित कर दिया है; इसीलिये शाल्वने इसे स्वीकार नहीं किया। अतः अब तुम्हींको इसका विधिपूर्वक पाणिग्रहण करना होगा।' भीष्मने उनकी बात स्वीकार नहीं की। उन्होंने कहा कि 'इस कन्याने ही मुझसे कहा था कि मैं शाल्वकी हो चुकी हूँ। ऐसी हालतमें मैं उसे कैसे रख सकता था। जिसका दूसरे पुरुषपर प्रेम है, उसे कोई धार्मिक पुरुष कैसे रख सकता है। अब तो परशुराम आगबबूला हो गये। उन्होंने कहा—'भीष्म! तुम जानते नहीं कि मैंने इक्कीस बार इस पृथ्वीको क्षत्रियोंसे हीन कर दिया था?' भीष्मने कहा—'गुरुजी! उस समय भीष्म पैदा नहीं हुए थे।' यह सुनकर उन्होंने भीष्मको युद्धके लिये ललकारा। भीष्मने उनकी चुनौती स्वीकार कर ली। फिर तो गुरु-शिष्यमें भयङ्कर युद्ध छिड़ गया। तेईस दिनतक लगातार युद्ध होता रहा। परंतु किसीने भी हार नहीं मानी। अन्तमें देवताओंने तथा मुनियोंने बीचमें पड़कर युद्ध बंद करा दिया। इस प्रकार भीष्मने परशुरामकी बात भी न मानकर अपने सत्यकी रक्षा की तथा अपने अद्भुत पराक्रमसे परशुराम-जैसे अद्वितीय धनुर्धरके भी छक्के छुड़ा दिये। सत्यप्रतिज्ञा और वीरताकी पराकाष्ठा हो गयी।

भगवान् वासुदेव जब कौरवसभामें सन्धिका प्रस्ताव लेकर गये और सभामें अपना वक्तव्य सुनाया तो भीष्मजीने दुर्योधनको समझाते हुए कहा था कि, 'श्रीकृष्ण हम सबके सुहृद् हैं, हमारा कल्याण चाहते हैं, अतएव अभिमान छोड़ कर इनकी बात माननी चाहिये। हे तात! यदि महापुरुष श्रीकृष्णकी बात नहीं मानोगे तो कदापि तुम्हारा कल्याण न होगा और न तुम सुख प्राप्त कर सकोगे।' * यही नहीं भीष्मने दुर्योधनको बारंबार सत्यका उपदेश दिया, बराबर पाण्डवोंसे मिल-जुलकर रहनेके लिये कहा; परन्तु दुर्योधनने उनकी एक न मानी और अन्तमें दुर्योधनकी हठधर्मीसे महाभारतका युद्ध आरम्भ हुआ।

महाभारत-युद्धमें कौरवपक्षके सर्वश्रेष्ठ योद्धा भीष्म ही थे। अतएव कौरवदलके प्रथम सेनानायक होनेका गौरव इन्हींको प्राप्त हुआ। पाण्डव एवं कौरव दोनोंके पितामह होनेके नाते इनका दोनोंसे ही समान प्रेम एवं सहानुभूति थी तथा ये दोनोंका ही समानरूपमें हित चाहते थे। फिर भी, यह जानकर कि धर्म एवं न्याय पाण्डवोंके ही पक्षमें है, ये पाण्डवोंके साथ विशेष सहानुभूति रखते थे और हृदयसे उनकी विजय चाहते थे; परन्तु हृदयसे पाण्डवोंके पक्षपाती होनेपर भी इन्होंने युद्धमें कभी पाण्डवोंके साथ रियायत नहीं की, और प्राणपणसे उन्हें जीतनेकी चेष्टा की।

भीष्मका यह ढंग महाभारतकारको नहीं रुचा। इसलिये भीष्मके मुखसे कहलाया—

> **अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।**
> **इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः॥**

---

* अकृत्वा वचनं तात केशवस्य महात्मनः।
श्रेयो न जातु न सुखं न कल्याणमवाप्स्यसि॥
(उद्योग० १२५। ३)

भगवान् श्रीकृष्णने जब सन्धिका प्रस्ताव किया, तो भीष्मने उसे स्वीकार करनेके लिये दुर्योधनको बहुतेरा समझाया, पर वह न माना। तब पितामह अत्यन्त खिन्न होकर बोले—

शुश्रूषमनसूयं च ब्रह्मण्यं सत्यवादिनम्।
प्रतियोत्स्यामहे पार्थमतो दुःखतरं नु किम्॥
(उद्योग० १३९। ३)

'सदा सेवा करनेवाले, किसीसे द्वेष न करनेवाले, सत्यवादी, धर्मात्मा युधिष्ठिरके विरुद्ध मुझे युद्ध करना पड़ेगा, इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या हो सकती है।'

भीष्म जानते थे कि वासुदेव श्रीकृष्ण स्वयं नारायण ही हैं, और वे सन्धिका प्रयास करने आये हैं। दुर्योधन उनकी बातोंकी उपेक्षा कर रहा है, अतः इसका सर्वनाश निश्चित है। उद्योगपर्वके ४९वें अध्यायमें पहले ही भीष्मने दुर्योधनको यह रहस्य बतलाया था कि अर्जुन और श्रीकृष्ण नर-नारायणके अवतार हैं। अतएव दुर्योधनका विपरीत हठ करके श्रीकृष्णके वचनकी अवज्ञा करना सर्वनाशका कारण था, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु दुर्योधनके सर्वनाशको सामने देखते हुए भीष्मको पाण्डवोंके विरुद्ध युद्ध करना बहुत दुःखदायी जान पड़ा।

'पुरुष अर्थका दास हैं, पर अर्थ किसीका दास नहीं है। हे महाराज! यह सत्य है। कौरवोंने मुझे अर्थसे बाँध लिया है।'

युद्धके अठारह दिनोंमेंसे दस दिनोंतक अकेले भीष्मने कौरवोंका सेनानायकत्व किया और इस बीचमें पाण्डव-पक्षकी बहुत-सी सेनाका संहार कर डाला। वृद्ध होते हुए भी युद्धमें इन्होंने ऐसा अद्भुत पराक्रम दिखाया कि दो बार स्वयं भगवान् श्रीकृष्णको अर्जुनकी रक्षाके लिये शस्त्र न लेनेकी प्रतिज्ञा होते हुए भी इनके मुकाबलेमें खड़ा होना पड़ा। अर्जुनका बल क्षीण होते देख एक बार तो वे चक्र लेकर इसके सामने दौड़े और दूसरी बार चाबुक लेकर उन्होंने भीष्मको ललकारा और इस प्रकार एक भक्तके प्राणोंकी रक्षा करते हुए दूसरे भक्तके गौरवको बढ़ाकर अपनी उभयतोमुखी भक्तवत्सलताका परिचय दिया। पश्चात् भीष्म रणकर्कश होकर पाण्डव सेनाका संहार करने लगे। उस समयका वर्णन करते हुए सञ्जय कहते हैं कि, 'अन्तमें पाण्डवोंने जब देखा कि भीष्मके रहते कौरवोंपर विजय पाना असम्भव-सा है, तब उन्होंने स्वयं पितामहसे उनकी मृत्युका उपाय पूछा और उन्होंने दया करके बताया कि 'द्रुपदकुमार शिखण्डी स्त्रीरूपमें जन्मा था; इसलिये यद्यपि वह अब पुरुषके रूपमें बदल गया है, फिर भी मेरी दृष्टिमें वह स्त्री ही है। ऐसी दशामें उसपर मैं शस्त्र नहीं उठा सकता। वह यदि मेरे सामने युद्ध करने आयेगा तो मैं शस्त्र नहीं चलाऊँगा। उस समय मुझे अर्जुन मार सकता है।' क्षत्रिय-धर्मके पालन और वीरताका उदाहरण इससे बढ़कर क्या होगा?

जिस समय युद्धमें मर्माहत होकर भीष्म धराशायी हुए, उस समय उनका रोम-रोम बाणोंसे बिंध गया था। उन्हीं बाणोंपर वे सो गये, धरतीसे उनका स्पर्श नहीं हुआ। उस समय सूर्य दक्षिणायनमें थे। दक्षिणायनको देहत्यागके लिये उपयुक्त काल न समझकर वे अयन-परिवर्तनके समयतक उसी शरशय्यापर पड़े रहे; क्योंकि पिताके वरदानसे मृत्यु उनके अधीन थी। भीष्मजीके गिरते ही उस दिन युद्ध बंद हो गया। कौरव तथा पाण्डव वीर भीष्मजीको घेरकर उनके चारों ओर खड़े हो गये। भीष्मजीका सारा शरीर बाणोंपर तुला हुआ था, केवल उनका सिर नीचे लटक रहा था। उसके लिये उन्होंने कोई सहारा माँगा। लोगोंने उत्तमोत्तम तकिये लाकर उनके सामने रख दिये, परंतु उन्हें वे पसंद नहीं आये। तब उन्होंने अर्जुनसे कहा—'बेटा! तुम क्षत्रियधर्मको जानते हो, तुम मेरे अनुरूप तकिया लाकर दो।' अर्जुन उन वीरशिरोमणिके अभिप्रायको समझ गये। वीरोंके इशारे वीर ही समझ सकते हैं। उन्होंने बाण मारकर भीष्मजीके मस्तकको ऊँचा कर दिया, उन बाणोंपर उनका मस्तक टिक गया। इधर दुर्योधनने बाण निकालनेमें कुशल वैद्योंको भीष्मजीकी चिकित्साके लिये बुलवाया, परन्तु पितामहने उन सबको सम्मानपूर्वक लौटा दिया। उस वीरगतिको पाकर उन्होंने चिकित्सा कराना अपना अपमान समझा। सब लोग उनकी असाधारण धर्मनिष्ठा और साहस देखकर दंग रह गये। उस समय भी युद्ध बंद कराने तथा दोनों पक्षोंमें शान्ति स्थापन करानेकी इन्होंने पूरी चेष्टा की; परंतु उसमें ये सफल नहीं हुए। दैवका ऐसा ही विधान था। उसे कौन टाल सकता था।'

बाणोंकी असह्य वेदनासे भीष्मजीका गला सूख रहा था, उनका सारा शरीर जल रहा था। उन्होंने पीनेके लिये पानी माँगा। लोगोंने झारियोंमें भरकर शीतल और सुगन्धित जल उनके सामने उपस्थित किया। भीष्मने उसे लौटा दिया। उन्होंने कहा कि 'पहले भोगे हुए मानवीय भोगोंको अब मैं स्वीकार नहीं कर सकता; क्योंकि इस समय मैं शरशय्यापर पड़ा हूँ।' तब उन्होंने अर्जुनको बुलाकर कहा—'बेटा! तुम्हीं मुझे विधिवत् जल पिला सकते हो।' अर्जुनने 'जो आज्ञा' कहकर अपने भाथेमेंसे एक दमकता हुआ बाण निकाला और उसे पर्जन्यास्त्रसे संयोजितकर भीष्मके बगल-वाली जमीनपर मारा। उसी समय सबके देखते-देखते पृथ्वीमेंसे दिव्य जलकी एक धारा निकली और वह ठीक भीष्मजीके मुखपर गिरने लगी। उस अमृतके समान जलको पीकर भीष्मजी तृप्त हो गये और अर्जुनके उस कर्मकी उन्होंने भूरि-भूरि प्रशंसा की। उसी समयसे भीष्मजीने अन्न-जलका त्याग कर दिया और फिर जितने दिन वे जीवित रहे, बाणोंकी मर्मान्तक पीड़ाके साथ-साथ भूख-प्यासकी असह्य वेदना भी सहते रहे। इस प्रकार उन्होंने वीरताके साथ-साथ धैर्य एवं सहन-शक्तिकी पराकाष्ठा दिखा दी।

महामना भीष्म अखण्ड ब्रह्मचारी, आदर्श पितृभक्त, आदर्श सत्यप्रतिज्ञ एवं आदर्श वीर ही नहीं थे, वे शास्त्रोंके महान् ज्ञाता, धर्म एवं ईश्वरके तत्त्वको जाननेवाले एवं महान् भगवद्भक्त भी थे। उनके अगाध ज्ञानकी स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने प्रशंसा की और यहाँतक कह दिया कि 'आपके इस लोकसे चले जानेपर सारे ज्ञान लुप्त हो जायँगे; संसारमें जो संदेहग्रस्त विषय हैं, उनका समाधान करनेवाला आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है' इत्यादि। भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणा एवं शक्तिसे इन्होंने युधिष्ठिरको लगातार कई दिनोंतक वर्णाश्रमधर्म, राजधर्म, आपद्धर्म, मोक्षधर्म, श्राद्धधर्म, दान-धर्म, स्त्रीधर्म आदि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंपर उपदेश दिया, जो महाभारतके शान्तिपर्व तथा अनुशासनपर्वमें संगृहीत है। साक्षात् धर्मके अंशसे उत्पन्न हुए तथा धर्मकी प्रत्यक्ष मूर्ति महाराज युधिष्ठिरकी धर्म-विषयक शङ्काओंका निवारण करना भीष्मका ही काम था। इनका उपदेश सुननेके लिये व्यास आदि महर्षि भी उपस्थित हुए थे।

भगवान् श्रीकृष्णके माहात्म्य एवं प्रभावका ज्ञान जैसा भीष्मको था, वैसा उस समय बहुत कम लोगोंको था। धृतराष्ट्र एवं दुर्योधनको इन्होंने कई बार श्रीकृष्णकी महिमा सुनायी थी। राजसूय यज्ञमें जब महाराज युधिष्ठिरने पितामहसे पूछा कि यहाँ सबसे पहले किसको अर्घ्य निवेदन करना चाहिये, तब भीष्मजीने उत्तर दिया—

एष ह्येषां समस्तानां तेजोबलपराक्रमैः।
मध्ये तपन्निवाभाति ज्योतिषामिव भास्करः॥
असूर्यमिव सूर्येण निर्वातमिव वायुना।
भासितं ह्लादितं चैव कृष्णेनेदं सदो हि नः॥
(सभा० ३६। २८, २९)

ये भगवान् श्रीकृष्ण इन सब राजाओंके बीचमें अपने तेज, बल और पराक्रमके द्वारा इस प्रकार देदीप्यमान हो रहे हैं, जैसे ग्रह-नक्षत्रोंमें सूर्यनारायण। जैसे अन्धकारपूर्ण स्थान सूर्यके उदयसे आभासित होता है, जैसे निर्वात स्थान पवनके झोंकेसे आह्लादित हो उठता है, उसी प्रकार श्रीकृष्णके द्वारा हमारी यह सभा आभासित और आह्लादित हो रही है।

भीष्मजीके इस कथनके उपरान्त श्रीकृष्णकी सर्वप्रथम पूजा की गयी। इसपर शिशुपाल बिगड़ गया, तब भीष्मजीने उसको फटकारते हुए कहा—

नास्मै देयो ह्यनुनयो नायमर्हति सान्त्वनम्।
लोकवृद्धतमे कृष्णे योऽर्हणां नाभिमन्यते॥
अस्यां हि समितौ राज्ञामेकमप्यजितं युधि।
न पश्यामि महीपालं सात्वतीपुत्रतेजसा॥
न हि केवलमस्माकमयमर्च्यतमोऽच्युतः।
त्रयाणामपि लोकानामर्चनीयो महाभुजः॥
तस्मात्सत्स्वपि वृद्धेषु कृष्णमर्चाम नेतरान्।
एवं वक्तुं न चार्हसि त्वं मा ते भूद्बुद्धिरीदृशी॥
(सभा० ३८। ६, ८, ९, ११)

'इस शिशुपालको सान्त्वना देना या समझाना-बुझाना ठीक नहीं है, जो सम्पूर्ण जगत्में सर्वश्रेष्ठ श्रीकृष्णकी अग्रपूजामें असम्मति प्रकट करता है। राजाओंकी इस सभामें एक भी राजा ऐसा नहीं दिखलायी देता जो युद्धमें देवकीनन्दन श्रीकृष्णके तेजसे परास्त न हुआ हो। महाबाहु श्रीकृष्ण केवल हमारे ही लिये परम पूजनीय नहीं हैं। ये तो तीनों लोकोंमें अभिवन्दनीय हैं। श्रीकृष्णने संग्राममें अनेक क्षत्रियशिरोमणि राजाओंको परास्त किया है। यह सम्पूर्ण जगत् पूर्णतः वासुदेव श्रीकृष्णमें प्रतिष्ठित है।' बाणशय्या पर पड़े-पड़े भीष्म भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते रहते थे। इन्होंने भरी सभामें श्रीकृष्णकी महिमा गायी और उन्हें साक्षात् ईश्वर बतलाया था।

श्रीकृष्ण जब अर्जुनकी ओरसे चक्र लेकर इनके सामने दौड़े तो इन्होंने उनके हाथसे मरनेमें अपना गौरव समझा। शस्त्रोंके द्वारा ही उनकी पूजा करनेके लिये उनका आवाहन किया। इन्होंने युधिष्ठिरको भगवान् विष्णुका जो सहस्रनाम स्तोत्र सुनाया, उससे इनकी भगवद्भक्ति तथा भगवत्तत्त्वका ज्ञान टपका पड़ता है।* इनकी भक्तिका ही यह फल था कि साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने अन्त समयमें इन्हें दर्शन देकर कृतार्थ किया। इस प्रकार भक्ति, ज्ञान, सदाचार—जिस ओरसे भी हम भीष्मके चरित्रपर दृष्टि डालते हैं, उसी ओर हम उसे आदर्श पाते हैं। भीष्मकी कोटिके महापुरुष संसारके इतिहासमें बिरले ही पाये जाते हैं। यद्यपि भीष्म अपुत्र ही मरे, फिर भी सारे त्रैवर्णिक हिंदू आजतक पितरोंका तर्पण करते समय इन्हें जल देते हैं। यह गौरव भारतके इतिहासमें और किसी भी मनुष्यको प्राप्त नहीं है। इसीलिये सारा जगत् आज भी इन्हें पितामहके नामसे पुकारता है। भीष्मकी-सी अपुत्रता बड़े-बड़े पुत्रवानोंके लिये भी ईर्ष्याकी वस्तु है।

धर्मराज युधिष्ठिर

महाराज युधिष्ठिर भी भीष्मकी ही भाँति अत्यन्त उच्च कोटिके महापुरुष थे। ये साक्षात् धर्मके अंशसे उत्पन्न हुए थे। ये धर्मके मूर्तिमान् स्वरूप थे। इसीसे लोग इन्हें धर्मराजके नामसे पुकारते थे। इनमें धैर्य, स्थिरता, सहिष्णुता, नम्रता, दयालुता और अविचल प्रेम आदि अनेकों लोकोत्तर गुण थे। ये अपने शील, सदाचार तथा विचारशीलताके कारण बचपनमें ही अत्यधिक लोकप्रिय हो गये थे। जब ये बहुत छोटे थे, तभी इनके पिता महात्मा पाण्डु स्वर्गवासी हो गये। तभीसे ये अपने ताऊ धृतराष्ट्रको ही पिताके तुल्य मानकर उनका बड़ा आदर करते थे और उनकी किसी भी आज्ञाको टालते न थे। परंतु धृतराष्ट्र अपने कुटिल स्वभावके कारण इनके गुणोंकी प्रशंसा सुन-सुनकर मन-ही-मन इनसे कुढ़ने लगे। उनका पुत्र दुर्योधन चाहता था कि किसी तरह पाण्डव कुछ दिनके लिये हस्तिनापुरसे हट जायँ तो उनकी अनुपस्थितिमें उनके पैतृक अधिकारको छीनकर स्वयं राजा बन बैठूँ। उसने अपने अंधे एवं प्रज्ञाहीन पिताको पट्टी पढ़ाकर इसके लिये राजी कर लिया। धृतराष्ट्रने पाण्डवोंको बुलाकर उन्हें मेला देखनेके बहाने वारणावत भेजनेका प्रस्ताव रक्खा। उन्होंने उनकी आज्ञा समझकर उसपर कोई आपत्ति नहीं की और चुपचाप अपनी माता कुन्तीके साथ पाँचों भाई वारणावत चले गये। इन्हें जला डालनेके लिये वहाँ दुर्योधनने

* आज भी उस विष्णुसहस्रनामका भक्तोंमें बड़ा आदर है। भगवान् शंकराचार्यने गीता, उपनिषद् एवं ब्रह्मसूत्रोंकी भाँति उसपर भी विस्तृत भाष्य लिखा है।

एक लाक्षाभवन तैयार कराया था। उसीमें इन्हें रहनेकी आज्ञा हुई। परंतु पाण्डवोंको इसका सुराग लग गया और—चाचा विदुरकी सहायतासे ये लोग वहाँसे किसी प्रकार अपने प्राण बचाकर भागे और जंगलकी शरण ली। पीछेसे धृतराष्ट्रके पुत्रोंने इन्हें मरा समझकर हस्तिनापुरके राज्यपर चुपचाप अधिकार कर लिया।

कुछ दिनोंके बाद द्रौपदीके स्वयंवरमें जब पाण्डवोंका रहस्य खुला,तब धृतराष्ट्रके पुत्रोंको यह पता लगा कि पाण्डव अभी जीवित हैं। तब तो धृतराष्ट्रने विदुरको भेजकर पाण्डवोंको हस्तिनापुर बुलवा लिया और अपने पुत्रोंके साथ उनका झगड़ा मिटा देनेके लिये आधा राज्य लेकर खाण्डवप्रस्थमें रहनेका प्रस्ताव उनके सामने रक्खा। युधिष्ठिरने उनकी यह आज्ञा भी स्वीकार कर ली और वे अपने भाइयोंके साथ खाण्डवप्रस्थमें रहने लगे। वहाँ इन्होंने अपनी एक अलग राजधानी बसा ली, जिसका नाम इन्द्रप्रस्थ रक्खा गया। वहाँ इन्होंने एक राजसूय यज्ञ किया, जिसमें बड़े-बड़े राजाओंने आकर इन्हें बहुमूल्य उपहार दिये और इन्हें अपना सम्राट् स्वीकार किया।

परंतु धृतराष्ट्रके पुत्रोंने वहाँ भी इन्हें नहीं रहने दिया। दुर्योधन इनके वैभवको देखकर जलने लगा। उसने एक विशाल सभाभवन तैयार कराके पाण्डवोंको जुएके लिये आमन्त्रित किया। जुएको बुरा समझते हुए भी धृतराष्ट्रकी आज्ञा मानकर युधिष्ठिरने उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया और वहाँ दुर्योधनके मामा शकुनिकी कपटभरी चालोंसे अपना सर्वस्व हार बैठे। यहाँतक कि भरी सभामें राजरानी द्रौपदीकी बड़ी भारी फजीहत की गयी। फिर भी धृतराष्ट्रके प्रति युधिष्ठिरका यही भाव बना रहा। धृतराष्ट्रने भी उन्हें उनका सारा धन और राज्य लौटा दिया और उन्हें वापस इन्द्रप्रस्थ भेज दिया। परंतु दुर्योधनको यह सहन नहीं हुआ। उसने धृतराष्ट्रको समझा-बुझाकर इस बातके लिये राजी कर लिया कि पाण्डवोंको दूत भेजकर फिरसे बुलाया जाय और उनसे वनवासकी शर्तपर पुनः जुआ खेला जाय। युधिष्ठिर जुएका दुष्परिणाम एक बार देख चुके थे तथा कौरवोंकी नीयतका भी पता उन्हें चल गया था। फिर भी अपने ताऊकी आज्ञाको वे टाल नहीं सके और बीचमेंसे ही लौट आये। अबकी बार भी युधिष्ठिर ही हारे और फलतः उन्हें सब कुछ छोड़कर अपने भाइयों तथा राजरानी द्रौपदीके साथ बारह वर्षके वनवास तथा एक वर्षके अज्ञातवासके लिये जाना पड़ा। ताऊके आज्ञापालनरूप धर्मके निर्वाहके लिये उन्होंने सब कुछ चुपचाप सह लिया!

महाराज युधिष्ठिर बड़े ही धर्मभीरु एवं सहनशील थे। वे सब प्रकारकी हानि सह सकते थे, परंतु धर्मकी हानि उन्हें सह्य नहीं थी। प्रथम बार जुएमें जब वे अपने चारों भाइयोंको तथा अपने-आपको एवं द्रौपदीतकको हार गये और कौरवलोग भरी सभामें द्रौपदीका तिरस्कार करने लगे, उस समय भी धर्मपाशसे बँधे रहनेके कारण उन्होंने चूँतक नहीं किया और चुपचाप सब कुछ सह लिया। कोई सामान्य मनुष्य भी अपनी आँखोंके सामने अपनी स्त्रीकी इस प्रकार दुर्दशा होते नहीं देख सकता। उन्हींके भयसे उनके भाई भी कुछ नहीं बोले और मन मसोसकर रह गये। ये लोग चाहते तो बलपूर्वक उस अमानुषी अत्याचारको रोक सकते थे। परंतु यही सोचकर कि धर्मराज द्रौपदीको स्वेच्छासे दाँवपर रखकर हार गये हैं, ये लोग चुप रहे। जिस द्रौपदीको इनके सामने कोई आँख उठाकर भी देख लेता तो उसे अपने प्राणोंसे हाथ धोने पड़ते, उसी द्रौपदीकी दुर्दशा इन्होंने अपनी आँखोंसे देखकर भी उसका प्रतिकार नहीं किया। युधिष्ठिर यह भी जानते थे कि शकुनिने उन्हें कपटपूर्वक जीता है, फिर भी उन्होंने अपनी ओरसे धर्मका त्याग करना उचित नहीं समझा। उन्होंने सब कुछ सहकर भी सत्य और धर्मकी रक्षा की। धर्मप्रेम और सहनशीलताका इससे बड़ा उदाहरण जगत्में शायद ही कहीं मिले।

जब पाण्डवलोग दूसरी बार भी जुएमें हार गये और वनमें जाने लगे, उस समय हस्तिनापुरकी प्रजाको बड़ा दुःख हुआ। सब लोग कौरवोंको कोसने लगे और नगरवासी बहुत बड़ी संख्यामें अपने घर-परिवारको छोड़कर इनके साथ चलनेके लिये इनके पीछे हो लिये। उस समय भी धर्मराजने कौरवोंके विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहा और सब लोगोंको किसी प्रकार समझा-बुझाकर लौटाया। फिर भी बहुत-से ब्राह्मण जबर्दस्ती इनके साथ हो लिये। उस समय धर्मराजको यह चिन्ता हुई कि 'इतने ब्राह्मण मेरे साथ चल रहे हैं, इनके भोजनकी क्या व्यवस्था होगी?' इन्हें अपने कष्टोंकी तनिक भी परवा नहीं थी, परंतु ये दूसरोंका कष्ट नहीं देख सकते थे। अन्तमें इन्होंने भगवान् सूर्यकी आराधना करके उनसे एक ऐसा पात्र प्राप्त किया, जिसमें पकाया हुआ थोड़ा-सा भी भोजन अक्षय हो जाता। उसीसे ये वनमें रहते हुए भी अतिथि-ब्राह्मणको भोजन कराकर पीछे स्वयं भोजन करते। वनवासके कष्ट भोगते हुए भी इन्होंने आतिथ्य-धर्मका यथोचित पालन किया। महाराज युधिष्ठिरके इसी धर्मप्रेमसे आकर्षित होकर बड़े-बड़े महर्षि इनके वनवासके समय इनके पास आकर रहते और यज्ञादि नाना प्रकारके धर्मानुष्ठान करते।

महाराज युधिष्ठिर अजातशत्रुके नामसे प्रसिद्ध थे। उनका वास्तवमें किसीके साथ वैर नहीं था। शत्रुओंके प्रति भी उनके हृदयमें सदा सद्भाव ही रहता था। शत्रु भी उनकी दृष्टिमें सेवा और सहानुभूतिके ही पात्र थे। अपकार

करनेवालेका भी उपकार करना—यही तो संतका सबसे बड़ा लक्षण है । 'उमा संत कइ इहइ बड़ाई । मंद करत जो करइ भलाई ॥'—गोस्वामी तुलसीदासजीकी यह उक्ति महाराज युधिष्ठिरमें पूरी तरह चरितार्थ होती थी। एक बारकी बात है—जब पाण्डव द्वैतवनमें थे, घोषयात्राके बहाने राजा दुर्योधन अपने मन्त्रियों, भाइयों, रनिवासकी स्त्रियों तथा बहुत बड़ी सेनाको साथ लेकर वनवासी पाण्डवोंको अपने वैभवसे जलानेके पापपूर्ण उद्देश्यसे उस वनमें पहुँचा, वहाँ जलक्रीडाके विचारसे वह उस सरोवरके तटपर पहुँचा, जहाँ महाराज युधिष्ठिर कुटी बनाकर रहते थे। सरोवरको गन्धर्वोंने पहलेसे ही घेर रक्खा था । उनके साथ दुर्योधनकी मुठभेड़ हो गयी । बस, दोनों ओरसे बड़ा भीषण और रोमाञ्चकारी युद्ध छिड़ गया । विजय गन्धर्वोंकी ओर रही । उन लोगोंने रानियोंसहित दुर्योधनको कैद कर लिया । जब महाराज युधिष्ठिरको यह समाचार मिला तो उन्होंने अपने भाइयोंको आज्ञा दी कि 'तुम सब लोग जाकर बलपूर्वक राजा दुर्योधनको छुड़ा लाओ । माना कि ये लोग हमारे शत्रु हैं, परंतु इस समय विपत्तिमें हैं । इस समय इनके अपराधोंको भुलाकर इनकी सहायता करना ही हमारा धर्म है । शत्रु हैं तो क्या आखिर हैं तो हमारे भाई ही । हमारे रहते दूसरे लोग इनकी दुर्दशा करें, यह हमलोग कैसे देख सकते हैं ।' भीमसेनको समझाते हुए उन्होंने कहा कि 'भाई-बन्धुओंमें मतभेद और झगड़े होते ही रहते हैं इससे आत्मीयता नहीं चली जाती ।' बस, फिर क्या था । अर्जुनने अपनी बाणवर्षासे गन्धर्वोंके छक्के छुड़ा दिये और दुर्योधनको भाइयों तथा रानियोंसहित उनके चंगुलसे छुड़ा लिया । दुर्योधनकी दुरभिसन्धिको जानकर देवराज इन्द्रने ही दुर्योधनको बाँध ले आनेके लिये गन्धर्वोंको भेजा था। महाराज युधिष्ठिरके विशाल हृदयको देखकर वे सब दंग रह गये । धन्य अजातशत्रुता !

एक समयकी बात है, द्रौपदीको आश्रममें अकेली छोड़कर पाण्डव वनमें चले गये थे। पीछेसे दुर्योधनका बहनोई सिन्धुराज जयद्रथ उधर आ निकला। द्रौपदीके अनुपम रूपलावण्यको देखकर उसका मन बिगड़ गया । उसने द्रौपदीके सामने अपना पापपूर्ण प्रस्ताव रक्खा, किंतु द्रौपदीने उसे तिरस्कारपूर्वक ठुकरा दिया । तब तो उसने द्रौपदीको खींचकर जबर्दस्ती अपने रथपर बिठा लिया और उन्हें ले भागा । पीछेसे पाण्डवोंको जब जयद्रथकी शैतानीका पता लगा तो उन्होंने उसका पीछा किया और थोड़ी ही देरमें उसे जा दबाया । पाण्डवोंने बात-की-बातमें उसकी सारी सेनाओंको तहस-नहस कर डाला । पापी जयद्रथने भयभीत होकर द्रौपदीको रथसे नीचे उतार दिया और स्वयं प्राण बचाकर भागा । भीमसेनने उसका पीछा किया और थोड़ी ही देरमें उसे पकड़कर धर्मराजके सामने ला उपस्थित किया । धर्मराजने उसे सम्बन्धी समझकर दयापूर्वक छोड़ दिया और इस प्रकार अपनी अद्भुत क्षमाशीलता एवं दयालुताका परिचय दिया ।

महाराज युधिष्ठिर बड़े भारी बुद्धिमान्, नीतिज्ञ और धर्मज्ञ तो थे ही; उनमें समता भी अद्भुत थी । एक समयकी बात है—जिस वनमें पाण्डवलोग रहते थे, वहाँ एक ब्राह्मणके अरणिसहित मन्थनकाष्ठसे, जो किसी वृक्षकी शाखापर टँगा हुआ था, एक हरिन अपना सींग खुजलाने लगा । वह काष्ठ उसके सींगमें फँस गया । हिरन उसे लेकर भागा । मन्थनकाष्ठके न रहनेसे अग्निहोत्रमें बाधा आती देख ब्राह्मण पाण्डवोंके पास आया और उनसे वह मन्थनकाष्ठ ला देनेकी प्रार्थना की । धर्मराज युधिष्ठिर अपने चारों भाइयोंको साथ लेकर मृगके पीछे भागे, परंतु वह देखते-देखते उनकी आँखोंसे ओझल हो गया । पाण्डव बहुत थक गये थे । प्यास उन्हें अलग सता रही थी । धर्मराजकी आज्ञा पाकर नकुल पानीकी तलाशमें गये । थोड़ी ही दूरपर उन्हें एक सुन्दर जलाशय मिला । उसके समीप जाकर ज्यों ही वे जल लेनेके लिये झुके कि उन्हें यह आकाशवाणी सुनायी दी—'पहले मेरे प्रश्नोंका उत्तर दे तब जल पीना ।' परंतु नकुलको बड़ी प्यास लगी थी । उन्होंने आकाशवाणीकी कोई परवा नहीं की । फलतः पानी पीते ही वे निर्जीव होकर जमीनपर लोट गये । पीछे धर्मराजने क्रमशः सहदेव, अर्जुन और भीमसेनको भेजा परंतु उन तीनोंकी भी वही दशा हुई । अन्तमें धर्मराज स्वयं उस तालाबपर पहुँचे । उन्होंने भी वही आवाज सुनी और साथ ही अपने चारों भाइयोंको निश्चेष्ट होकर जमीनपर पड़े देखा । इतनेमें ही उन्हें एक विशालकाय यक्ष दीख पड़ा । उसने युधिष्ठिरको बतलाया कि 'मेरे प्रश्नोंका उत्तर दिये बिना ही जल पीनेके कारण तुम्हारे भाइयोंकी यह दशा हुई है । यदि तुम भी ऐसी अनधिकार चेष्टा करोगे तो मारे जाओगे ।' युधिष्ठिर उसके प्रश्नोंका उत्तर देनेको तैयार हो गये । यक्षने जो-जो प्रश्न युधिष्ठिरसे किये, उन सबका समुचित उत्तर देकर युधिष्ठिरने यक्षका अच्छी तरह समाधान कर दिया । इनके उत्तरोंसे प्रसन्न होकर यक्ष बोला—'राजन् ! अपने भाइयोंमेंसे जिस-किसीको तुम जिलाना चाहो, उसे मैं जीवित कर दूँ ।' धर्मराजने नकुलको जीवित देखना चाहा । कारण पूछनेपर उन्होंने बताया कि 'मेरे पिताके दो भार्याएँ थीं—कुन्ती और माद्री। मेरी दृष्टिमें वे दोनों समान हैं । मैं चाहता हूँ कि वे दोनों पुत्रवती बनी रहें । कुन्तीका पुत्र तो मैं मौजूद हूँ ही मैं चाहता-हूँ कि माद्रीका भी एक पुत्र बना रहे । इसीलिये मैंने भीम और अर्जुनको छोड़कर उसे जिलानेकी प्रार्थना

की है।' युधिष्ठिरकी बुद्धिमत्ता तथा धर्मसत्ताकी परीक्षाके लिये स्वयं धर्मने ही यह लीला की थी। उनकी इस अद्भुत समताको देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अपना परिचय देकर चारों भाइयोंको जीवित कर दिया। धर्मने उन्हें यह भी कहा कि 'मैं ही मृग बनकर उस ब्राह्मणके मन्थनकाष्ठको ले गया था; लो, यह मन्थनकाष्ठ तुम्हारे सामने है।' युधिष्ठिरने वह मन्थनकाष्ठ उस ब्राह्मणको ले जाकर दे दिया।

युधिष्ठिरको भगवान् श्रीकृष्णमें बड़ी आस्था थी। श्रीकृष्ण उनके ममेरे भाई थे और उम्रमें छोटे थे। अतएव उनमें पारस्परिक आत्मीयता और प्रेमका होना स्वाभाविक था। परंतु युधिष्ठिर श्रीकृष्णपर बड़ा भरोसा रखते थे। जब भगवान् वासुदेव दूत बनकर कौरव-सभामें जा रहे थे, उस समय महाराज युधिष्ठिरने कहा था—

प्रियश्च प्रियकामश्च गतिज्ञः सर्वकर्मणाम्।
को हि कृष्णास्ति नस्त्वादृक् सर्वनिश्चयवित् सुहृत्॥
(उद्योग० ७२। ७८)

'श्रीकृष्ण! तुम्हारे समान हमारा प्रिय, हितचिन्तक, सब कर्मोंकी गतिको जाननेवाला तथा सब प्रकारके निश्चयका ज्ञाता दूसरा सुहृद् कौन है?'

अस्मान् वेत्थ परान् वेत्थ वेत्थार्थान् वेत्थ भाषितुम्।
यद् यदस्मद्धितं कृष्ण तत् तद् वाच्यः सुयोधनः॥
(उद्योग० ७२। ९२)

'श्रीकृष्ण! तुम हमको जानते हो, कौरवोंको जानते हो, हम दोनोंके स्वार्थको जानते हो, बातचीत करना भी जानते हो। अतएव जिस बातसे हमारा हित हो, वह दुर्योधनको समझाओ।'

यहाँ यह विशेष द्रष्टव्य है कि 'दुर्योधन' के स्थानमें 'सुयोधन' शब्दका प्रयोग करना सौजन्यको अभिव्यक्त करता है। 'अस्मत्' शब्द कौरव और पाण्डव दोनोंका बोधक है तथा इससे महाराज युधिष्ठिरकी सदाशयताका पता लगता है।

महाराज युधिष्ठिर दुर्गाके भक्त थे। विराटपर्वके छठे अध्यायमें उनके द्वारा की गयी दुर्गाकी स्तुति है। दुर्गाजीने प्रकट होकर उनको वरदान दिया था कि अज्ञातवासमें विराटनगरमें रहते हुए कोई उनको पहचान न सकेगा।

युधिष्ठिर जैसे सदाचारसम्पन्न थे वैसे ही विनयी भी थे। वे समयोचित व्यवहारमें बड़े कुशल थे, गुरुजनोंकी मान-मर्यादाका सदा ध्यान रखते थे। कठिन-से-कठिन समयमें भी वे शिष्टाचारकी मर्यादाको नहीं भूलते थे। महाभारत-युद्धके आरम्भमें जब दोनों ओरकी सेनाएँ युद्धके लिये संनद्ध खड़ी थीं, उस समय इन्होंने सबसे पहले शत्रुसेनाके बीचमें जाकर पितामह भीष्म, आचार्य द्रोण एवं कृप तथा मामा शल्यके चरणोंमें प्रणाम किया और आशीर्वाद माँगा। उनके इस विनयपूर्ण एवं शिष्टजनोचित व्यवहारसे वे सभी गुरुजन बड़े प्रसन्न हुए और उनकी हृदयसे विजय-कामना की। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने युधिष्ठिरके इस आदर्श व्यवहारका अनुमोदन किया।

युधिष्ठिरकी सत्यवादिता तो जगद्विख्यात थी। सब कोई जानते थे कि युधिष्ठिर भय अथवा लोभवश कभी असत्य नहीं बोलते। उनकी सत्यवादिताका ही फल था कि उनके रथके पहिये सदा पृथ्वीसे चार अंगुल ऊँचे रहा करते थे। जीवनमें केवल एक बार इन्होंने असत्य भाषण किया। इन्होंने द्रोणाचार्यके सामने अश्वत्थामा हाथीके मारे जानेके बहाने झूठ-मूठ यह कह दिया कि 'अश्वत्थामा मारा गया।' इसी एक बारकी सत्यच्युतिके फलस्वरूप इनके रथके पहिये पृथ्वीसे सटकर चलने लगे और इन्हें मुहूर्तभरके लिये कल्पित नरकका दृश्य भी देखना पड़ा।

युधिष्ठिरकी उदारता भी अलौकिक थी। जब कौरवोंने किसी प्रकार भी इनका राज्य लौटाना मंजूर नहीं किया तो इन्होंने केवल पाँच गाँव लेकर संतोष करना स्वीकार कर लिया और भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा दुर्योधनको यह कहला भेजा कि 'यदि वह हमें हमारे इच्छानुसार केवल पाँच गाँव देना मंजूर कर ले तो हम युद्ध नहीं करेंगे।' परंतु दुर्योधनने इन्हें सूईकी नोकके बराबर जमीन देना भी स्वीकार नहीं किया। तब इन्हें बाध्य होकर युद्ध छेड़ना पड़ा। इतना ही नहीं, जब दुर्योधनकी सारी सेना मर-खप गयी और वह स्वयं एक तालाबमें जाकर छिप रहा, उस समय इन्होंने उसके पास जाकर उसे अन्तिम बार युद्धके लिये ललकारते हुए यहाँतक कह दिया कि 'हममेंसे जिस-किसीके साथ तुम युद्ध कर सकते हो। हममेंसे किसी एकपर भी तुम द्वन्द्वयुद्धमें विजय पा लोगे तो सारा राज्य तुम्हारा हो जायगा।' भला, इस प्रकारकी शर्त कोई दूसरा कर सकता है। जिस दुर्योधनका गदायुद्धमें भीमसेन भी, जो पाण्डवोंमें सबसे अधिक बलवान् एवं गदायुद्धमें प्रवीण थे, मुकाबला करते हिचकते थे, उसके साथ यह शर्त कर लेना कि 'हममेंसे किसी एकको तुम हरा दोगे तो राज्य तुम्हारा हो जायगा' युधिष्ठिर-जैसे महानुभावका ही काम था। अन्तमें भीमसेनके साथ उसका युद्ध होना निश्चित हुआ और भीमसेनके द्वारा वह मारा गया।

इतना ही नहीं, युद्ध-समाप्तिके बाद जब युधिष्ठिरका राज्याभिषेक हो गया और धृतराष्ट्र-गान्धारी इन्हींके पास रहने लगे, उस समय इन्होंने उनके साथ ऐसा सुन्दर बर्ताव किया कि उन्हें अपने पुत्रोंकी मृत्युका दुःख भूल गया। इन्होंने दोनोंको इतना सुख पहुँचाया, जितना उन्हें अपने

पुत्रोंसे भी नहीं मिला था। ये सारा राज-काज उन्हींसे पूछ-पूछकर करते थे और राज-काज करते हुए भी इनकी सेवाके लिये बराबर समय निकाला करते थे। तथा इनकी माता कुन्ती सम्राज्ञी द्रौपदी तथा अपनी अन्य बहुओंके साथ देवी गान्धारी-की सेवा किया करती थीं। ये इस बातका सदा ध्यान रखते थे कि उनके सामने कभी कोई ऐसी बात न हो, जिससे उनका पुत्र-शोक उमड़ पड़े। अन्तमें जब धृतराष्ट्र और गान्धारीने अपनी शेष आयु वनमें बितानेका निश्चय किया, उस समय युधिष्ठिरको बड़ा दुःख हुआ और ये स्वयं उनके साथ वन जानेको तैयार हो गये। बड़ी कठिनतासे व्यासजी-ने आकर इन्हें समझाया, तब कहीं ये धृतराष्ट्र-गान्धारीको वन भेजनेपर राजी हुए। फिर भी कुन्तीदेवी तो अपनी जेठ-जेठानीके साथ ही गयीं और अन्त समयतक उनकी सेवा-में रहीं और उनके साथ ही प्राण-त्याग भी किया। वन जाने-से पहले धृतराष्ट्रने अपने मृत पुत्रों तथा अन्य सम्बन्धियोंका विधिपूर्वक अन्तिम बार श्राद्ध करना चाहा और उन्हींके कल्याणके लिये ब्राह्मणोंको अपरिमित दान देना चाहा। युधिष्ठिरको जब इनकी इच्छा मालूम हुई तो इन्होंने विदुर-जीके द्वारा यह कहलाया कि 'अर्जुनसहित मेरा प्राणपर्यन्त सर्वस्व आपके अर्पण है।' एवं उनकी इच्छासे भी अधिक खुले हाथों खर्च करनेका प्रबन्ध कर दिया। फिर तो धृतराष्ट्र-ने बड़े विधि-विधानसे अपने सम्बन्धियोंका श्राद्ध किया और ब्राह्मणोंको भरपूर दान दिया। उस समय महाराज युधिष्ठिर-ने धृतराष्ट्रके आज्ञानुसार धन और रत्नोंकी नदी-सी बहा दी। जिसके लिये सौकी आज्ञा हुई, उसे हजार दिया गया। जब धृतराष्ट्र-गान्धारी वनको जाने लगे, उस समय पाण्डवलोग अपनी रानियोंके साथ पैदल ही बड़ी दूरतक उन्हें पहुँचाने गये। जिन धृतराष्ट्रकी बदौलत पाण्डवोंको भारी-भारी विपत्तियोंका सामना करना पड़ा, जिनके कारण उन्हें अपने पैतृक अधिकारसे वञ्चित रहना पड़ा और कितनी बार वनवासके कष्ट उठाने पड़े, जिनकी उपस्थितिमें उनके पुत्रों-ने सती-शिरोमणि द्रौपदीका भरी सभामें घोर अपमान किया और जिन्होंने उन्हें दर-दरका भिखारी बना दिया और पाँच गाँवतक देना मंजूर नहीं किया—जिसके फलस्वरूप दोनों ओरसे इतना भीषण नरसंहार हुआ—उन्हीं धृतराष्ट्रके प्रति इतना निश्छल प्रेम-भाव रखना और अन्ततक उन्हें सुख पहुँचानेकी पूरी चेष्टा करना युधिष्ठिर-जैसी महान् आत्माका ही काम था। वैरीके प्रति ऐसा सद्व्यवहार जगत्‌के इतिहास-में कम ही देखनेको मिलेगा।

महाराज युधिष्ठिरकी शरणागतवत्सलता तथा प्रेम तो और भी विलक्षण था। भगवान् श्रीकृष्णके परमधामगमन तथा यादवोंके संहारकी बात जब इन्होंने सुनी तो इन्हें बड़ा दुःख हुआ। इन्होंने सोचा कि 'जब हमारे परम आत्मीय तथा हितू श्रीकृष्ण ही इस धरातलपर न रहे, जिनकी बदौलत हमने सब कुछ पाया था, तो फिर हमारे लिये यह राज्य-सुख किस कामका और इस जीवनको ही रखनेसे क्या प्रयोजन। श्रीकृष्णकी बात तो अलग रही, वे तो पाण्डवोंके जीवन-प्राण एवं सर्वस्व ही थे। उनके ऊपर तो उनका सब कुछ निर्भर था। कौरवोंके विनाशपर ही उन्हें इतना दुःख हुआ था कि विजय तथा राज्यप्राप्तिके उपलक्ष्यमें हर्ष मनानेके बदले वे सब कुछ छोड़कर वन जानेको तैयार हो गये थे। बड़ी कठिनतासे भगवान् श्रीकृष्ण तथा महर्षि व्यास आदिने उन्हें समझा-बुझाकर राज्याभिषेकके लिये तैयार किया था। भीष्मपितामहने भी धर्मका उपदेश देकर इनका शोक दूर करनेकी चेष्टा की, तथा भीष्मजीकी आज्ञा मानकर इन्होंने राज्य भी किया; परंतु स्वजनवधसे होनेवाली ग्लानि इनके चित्तसे सर्वथा दूर नहीं हुई। अब श्रीकृष्णके परमधाम-गमनकी बात सुनकर तो इन्होंने वन जानेका दृढ़ निश्चय कर लिया और अर्जुनके पौत्र कुमार परीक्षित्‌को राजगद्दीपर बिठाकर तथा कृपाचार्य एवं धृतराष्ट्रपुत्र युयुत्सुको उनकी देखभालमें नियुक्त कर वे अपने चारों भाई तथा द्रौपदीको साथ लेकर हस्तिनापुरसे चल पड़े। पृथ्वी-प्रदक्षिणाके उद्देश्यसे कई देशोंमें घूमते हुए वे हिमालयको पारकर मेरुपर्वतकी ओर बढ़ रहे थे। रास्तेमें देवी द्रौपदी तथा इनके चारों भाई एक-एक करके क्रमशः गिरते गये। इनके गिरनेकी भी परवा न कर युधिष्ठिर आगे बढ़ते ही गये। इतनेमें ही स्वयं देवराज इन्द्र रथपर चढ़कर इन्हें लेनेके लिये आये और इन्हें रथपर चढ़ जानेको कहा। युधिष्ठिरने अपने भाइयों तथा पतिप्राणा देवी द्रौपदीके बिना अकेले रथपर बैठना स्वीकार नहीं किया। इन्द्रके यह विश्वास दिलानेपर कि 'वे लोग तुमसे पहले ही स्वर्गमें पहुँच चुके हैं,' इन्होंने रथपर चढ़ना स्वीकार किया। परंतु इनके साथ एक कुत्ता भी था, जो शुरूसे ही इनके साथ चल रहा था। युधिष्ठिरने चाहा कि वह कुत्ता भी उनके साथ चले। इन्द्रके आपत्ति करनेपर इन्होंने उनसे साफ कह दिया कि 'इस स्वामिभक्त कुत्तेको छोड़कर मैं अकेला स्वर्ग जानेके लिये तैयार नहीं हूँ।' यह कुत्ता और कोई नहीं था, स्वयं धर्म ही युधिष्ठिरकी परीक्षाके लिये उनके साथ हो लिये थे। युधिष्ठिरकी इस अनुपम शरणागतवत्सलताको देखकर वे अपने असली रूपमें प्रकट हो गये और युधिष्ठिरको रथमें बिठाकर इन्द्र एवं अन्य देवताओं तथा देवर्षियोंके साथ ऊपरके लोकोंमें चले गये। उस समय देवर्षि नारदने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा कि महाराज युधिष्ठिरसे पहले कोई भौतिक शरीरसे स्वर्ग गया हो ऐसा सुननेमें नहीं आया। ऊपर जाते हुए युधिष्ठिरने नक्षत्रों एवं तारोंको देवताओंके लोकोंके रूपमें देखा। फिर भी देवराज इन्द्रसे उन्होंने यही कहा कि 'जहाँ मेरे भाई-बन्धु



महाबली भीमसेन

तथा देवी द्रौपदी हों, वहीं मुझे ले चलिये; वहीं जानेपर मुझे शान्ति मिलेगी, अन्यत्र नहीं । जहाँ मेरे भाई नहीं हैं, वह स्वर्ग भी मेरे किस कामका !' धन्य बन्धु-प्रेम !

आगे जाकर जब देवराज इन्द्रकी मायासे इन्हें नरकका दृश्य दिखायी पड़ा और वहाँ इन्होंने अपने भाइयोंके कराहने एवं रोनेकी आवाज सुनी, साथ ही इन्होंने लोगोंको यह कहते भी सुना कि 'महाराज ! थोड़ा रुक जाइये, आपके यहाँ रहनेसे हमें नरककी पीड़ा नहीं सताती', तब तो ये वहीं रुक गये और जो देवदूत उन्हें वहाँ ले आया था, उससे इन्होंने कहा कि 'हम तो यहीं रहेंगे; जब हमारे रहनेसे यहाँके जीवोंको सुख मिलता है तो यह नरक ही हमारे लिये स्वर्गसे बढ़कर है ।' धन्य दयालुता !

थोड़ी ही देर बाद वह दृश्य गायब हो गया और वहाँ इन्द्र, धर्म आदि देवता आ पहुँचे । वे सब इनके इस सुन्दर भावसे बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने बतलाया कि 'तुमने छलसे गुरु द्रोणाचार्यको उनके पुत्रकी मृत्युका विश्वास दिलाया था, इसीलिये तुम्हें छलसे नरकका दृश्य दिखाया गया । तुम्हारे सब भाई दिव्यलोकमें पहुँच गये हैं ।' इसके बाद युधिष्ठिर भगवान्‌के परमधाममें गये और वहाँ इन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके उसी रूपमें दर्शन किये, जिस रूपमें वे पहले उन्हें मर्त्यलोकमें देखते आये थे । वहीं उन्होंने श्रीकृष्णकी परिचर्या करते हुए अर्जुनको भी देखा । अपने भाइयों तथा देवी द्रौपदीको भी उन्होंने दूसरे-दूसरे स्थानोंमें देखा । अन्तमें वे अपने पिता धर्मके शरीरमें प्रविष्ट हो गये । इस प्रकार युधिष्ठिरने अपने धर्मके बलसे दुर्लभ गति पायी ।

युधिष्ठिरकी पवित्रताका ऐसा अद्भुत प्रभाव था कि वे जहाँ जाते, वहाँका वातावरण अत्यन्त पवित्र हो जाता था । जिस समय पाण्डव अज्ञातरूपसे राजा विराटके यहाँ रह रहे थे, उस समय कौरवोंने इनका पता लगाना चाहा । उसी प्रसङ्गमें भीष्मपितामहने, जो पाण्डवोंके प्रभावको भलीभाँति जानते थे, उन्हें बतलाया कि 'राजा युधिष्ठिर जिस नगर या राष्ट्रमें होंगे, वहाँकी जनता भी दानशील, प्रियवादिनी, जितेन्द्रिय और लज्जाशील होगी । जहाँ वे रहते होंगे, वहाँके लोग संयमी, सत्यपरायण तथा धर्ममें तत्पर होंगे; उनमें ईर्ष्या, अभिमान, मत्सर आदि दोष नहीं होंगे । वहाँ हर समय वेदध्वनि होती होगी, यज्ञ होते होंगे, ठीक समयपर वर्षा होती होगी, वहाँकी भूमि धन-धान्यपूर्ण तथा सब प्रकारके भयों एवं उपद्रवोंसे शून्य होगी, वहाँ गायें अधिक एवं हृष्ट-पुष्ट होंगी' इत्यादि । यही नहीं, हम ऊपर देख ही चुके हैं कि उनकी संनिधिसे नरकके प्राणियोंतकको सुख-शान्ति मिलती थी । राजा नहुषने, जिन्हें महर्षि अगस्त्यके शापसे अजगरकी योनि प्राप्त हुई थी और जिन्होंने उसी रूपमें भीमसेनको अपने चंगुलमें फँसा लिया था, युधिष्ठिरके दर्शन तथा उनके साथ सम्भाषण करने मात्रसे अजगरकी योनिसे छूटकर पुनः स्वर्ग प्राप्त किया । ऐसे पुण्यश्लोक युधिष्ठिरके पावन चरित्रका जितना ही मनन किया जायगा, उतनी ही पवित्रता प्राप्त होगी ।

'धर्मो विवर्धति युधिष्ठिरकीर्तनेन ।'

महाबली भीमसेन

महाभारतके प्रमुख पात्रोंमें भीमसेन भी अपने ढंगके अद्वितीय योद्धा थे । परम पराक्रमी भीमसेनका जन्म वायुदेवसे हुआ था । अतएव वे देवपुत्र थे । वायुदेवके अवतार थे । उनके जन्मके समय आकाशवाणी हुई थी कि यह कुमार समस्त बलवानोंमें श्रेष्ठ होगा । वस्तुतः शारीरिक बलमें भीमसेन अपने युगके सर्वश्रेष्ठ योद्धा हुए । बचपनमें वे दौड़ने, खेल-कूद करने, खान-पान तथा नाना प्रकारकी बालक्रीडाओंमें धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंका मानमर्दन किया करते थे । परंतु ऐसा वह बालस्वभावके कारण ही करते थे, धृतराष्ट्रके पुत्रोंसे उन्हें द्वेष न था । किंतु उनकी ये बालक्रीडाएँ दुर्योधनको बहुत खलतीं । वे बराबर भीमसेनका अनिष्ट सोचा करते थे । एक दिन दुर्योधनने सोचा कि भीमको किसी प्रकार धोखेसे गङ्गामें डुबो दें और युधिष्ठिर तथा अर्जुनको कैद करके निष्कण्टक राज्य करें । इस दुरभिसन्धिको पूरा करनेकी उन्होंने सारी योजना बना डाली, तथा जलक्रीडाके लिये पाण्डवोंको साथ लेकर गङ्गा-तटपर गये । उन्होंने भोजनमें कालकूट विष मिलाकर पर्याप्त मात्रामें भीमसेनको खिला दिया । भीमसेनपर धीरे-धीरे विषका प्रभाव बढ़ने लगा और वे अचेत होने लगे । तब दुर्योधनने उनको वृक्षकी लताओंसे बाँधा, और गङ्गाजीके ऊँचे तटसे जलमें ढकेल दिया । भीमसेन बेहोशीकी दशामें जलमें डूबकर नागलोकमें जा पहुँचे । वहाँ नागोंने उनको खूब डँसा, जिससे कालकूट विषका प्रभाव नष्ट हो गया । तब भीमसेन होशमें आ गये और अपने बन्धनको तोड़कर सर्पोंको मारने लगे । सर्प भयके मारे नागराज वासुकिके पास गये और उनसे भीमसेनकी शिकायत की । तब नागराज वासुकि और नागराज आर्यक दोनों भीमसेनको देखनेके लिये चले । आर्यक पृथाके पिता शूरसेनके नाना थे । उन्होंने अपने दौहित्रके दौहित्र भीमसेनको पहचानकर छातीसे लगा लिया । नागराज वासुकि भी भीमसेनपर बहुत प्रसन्न हुए और बोले कि 'इनका कौन-सा प्रिय कार्य किया जाय ?' आर्यकने कहा—'नागराज ! यदि आप संतुष्ट हैं तो इस बालकको उस कुण्डका अमृत-रस पिलाइये, जिससे एक हजार हाथियोंका बल प्राप्त होता है ।'

तब नागोंने भीमसेनके लिये स्वस्तिवाचन किया। उसके बाद वे उस कुण्डका रस पीने लगे और एक-एक करके आठ कुण्डोंका रस पी लिया और तत्पश्चात् नागोंकी दी हुई दिव्य शय्यापर सो गये। आठ दिनके बाद जब वह रस पच गया, तब वे जगे। उस समय उनको अपरिमित बल प्राप्त हो गया था। उनको जगा हुआ देखकर नागोंने आश्वासन देते हुए कहा—

यत् ते पीतो महाबाहो रसोऽयं वीर्यसम्भृतः।
तस्मान्नागायुतबलो रणेऽधृष्यो भविष्यति॥

'हे महाबाहो! तुमने जो यह शक्तिपूर्ण रस पीया है, इसके कारण तुम्हारा बल दस हजार हाथियोंके बराबर होगा, और तुम युद्धमें अजेय हो जाओगे।'

× × ×

भीमसेनमें अपरिमित बल हो जानेके पश्चात् गर्वका बढ़ जाना स्वाभाविक था। अब वे और अधिक धृतराष्ट्रके पुत्रोंके लिये दुःखदायी बन गये। जब दुर्योधनने कर्णको अङ्गराजका राजा बनाया और उसी अवसरपर उसके पिता अधिरथने वहाँ पहुँचकर 'बेटा, बेटा' पुकारते हुए आनन्दसे कर्णको हृदयसे लगाया, तो भीमसेनसे रहा न गया। वे अर्जुनके साथ युद्धके लिये तैयार कर्णसे कह उठे—'अरे सूतपुत्र! तू तो अर्जुनके हाथसे मरने योग्य भी नहीं है। तुझे तो शीघ्र ही चाबुक हाथमें लेनी चाहिये; क्योंकि यही तेरे कुलके अनुरूप है।'

भीमसेनकी यह विशेषता थी कि ये जहाँ कहीं अन्याय होता देखते, वहाँ उसके प्रतिकारके लिये तुरंत तैयार हो जाते थे। परंतु वे अपने बड़े भाई युधिष्ठिरके बड़े आज्ञाकारी थे। कोई भी काम उनकी मर्जीके बिना नहीं करते। दस हजार हाथियोंका बल रखते हुए भी भीमसेन अपने बड़े भाईके इशारेपर नाचते थे। जब कोई बड़ा काम आ जाता, जिसको पूरा करनेके लिये बलकी आवश्यकता होती, वहाँ भीमसेन तैयार रहते थे। कौरवोंके अत्याचारोंको ये इसलिये सह लेते थे कि ऐसी ही उनके बड़े भाईकी मर्जी थी। महाबलवान् होनेके कारण भीमसेन अपनी माता और भाइयोंके बहुत काम आते थे। वारणावतके लाक्षागृहसे निकलनेके बाद घने जंगलमें इनकी जब हिडिम्ब राक्षससे मुठभेड़ हुई तो भीमसेनने ही उसे पछाड़कर मार डाला।

इसी प्रकार एकचक्रा नगरीमें जब पाण्डवलोग एक ब्राह्मणके घर रहते थे, उस समय पाँचों भाई भिक्षाटन करके भिक्षान्न लाकर माताको समर्पित करके उनकी आज्ञासे बाँटकर भोजन करते थे। एक दिन चारों भाई भीमसेनको माताके पास छोड़कर भिक्षाके लिये चले गये। उस दिन उस ब्राह्मणके घरमें रोना-पीटना मच गया। यह सुनकर भीमसेनने माता कुन्तीसे कहा—

ज्ञायतामस्य यद्दुःखं यतश्चैव समुत्थितम्।
विदित्वा व्यवसिष्यामि यद्यपि स्यात् सुदुष्करम्॥

(आदिपर्व १५६।१६)

'माँ! पहले यह पता लगाओ कि इस ब्राह्मणको क्या दुःख है, और वह कैसे प्राप्त हुआ है। जान लेनेपर अत्यन्त दुष्कर होनेपर भी उसको दूर करनेकी चेष्टा करूँगा।' भीमसेनके इस वाक्यसे उनकी पर-दुःखकातरता, ब्राह्मणके प्रति भक्ति-भावना आदिका उज्ज्वल प्रमाण मिलता है। पश्चात् माताकी आज्ञासे भीमसेनने वनमें जाकर बकासुरका वध करके उस ब्राह्मण-परिवारकी विपत्ति दूर की, तथा साथ ही उस राज्यके निवासियोंके कष्टको सदाके लिये दूर कर दिया। इस प्रकार अपने जीवनको खतरेमें डालकर भी दूसरोंका कल्याण करना भीमसेनका सहज स्वभाव था। बकासुरके मरनेके बाद वहाँ राक्षसोंकी बाधा सदाके लिये दूर हो गयी।

भीमसेनमें युद्धप्रियता पहले दर्जेकी थी। ये सीधे युद्धके द्वारा न्यायका समर्थन करना चाहते थे, अन्यायके विरुद्ध तत्काल कमर कसकर तैयार हो जाते थे। क्षात्रधर्मकी मूर्ति थे। अकारण किसीको संताप देनेवाले नहीं थे, और न किसीका वध ही करते थे। द्रौपदीके स्वयंवरके अवसरपर ब्राह्मणवेषधारी भीमसेनने मल्लयुद्धमें जब शल्यको पछाड़ दिया और जानसे नहीं मारा तो दर्शकगण देखकर आश्चर्य करने लगे।

तत्राश्चर्यं भीमसेनश्चकार पुरुषर्षभः।
यच्छल्यं पातितं भूमौ नावधीद् बलिनं बली॥

(आदि० १८९।२९)

वहाँ ब्राह्मणलोग भीमसेनके इस अपूर्व पराक्रम और शल्यके ऊपर प्रदर्शित उनकी उदारताको देखकर हँसने लगे।

द्रौपदीके साथ छेड़खानी करनेवाले कीचक तथा उसके परिवारके एक सौ महाबली कीचकोंका वध करके भीमसेनने विराटकी प्रजाको उनके अत्याचारसे मुक्त किया था।

भीमसेन वीरताकी प्रतिमूर्ति थे। जब उनसे कभी यह कहा जाता कि इस दुष्कर कार्यको भीम ही कर सकते हैं तो उनके उत्साहका ठिकाना नहीं रहता। उनके इस अपूर्व उत्साहको देखकर बहुधा युधिष्ठिरको आशङ्का हो जाती थी। इसी कारण जब जरासंधका वध भीमसेन करेंगे, यह प्रस्ताव भगवान् श्रीकृष्णने किया तो युधिष्ठिर जरासंधकी अजेय सैन्यशक्तिका विचार करके शङ्कित हो उठे। तब भीमसेन उत्साहप्रद तथा नीतिगर्भित वचन बोले—

अनारम्भपरो राजा वल्मीक इव सीदति ।
दुर्बलश्चानुपायेन बलिनं योऽधितिष्ठति ॥
(सभापर्व १५ । ११)

अतन्द्रितश्च प्रायेण दुर्बलो बलिनं रिपुम् ।
जयेत्सम्यक् प्रयोगेण नीत्यार्थानात्मनो हितान् ॥
(१५ । १२)

'महाराज ! जो राजा उद्योग नहीं करता तथा दुर्बल होकर भी बिना उपाय किये बलवान्से भिड़ जाता है, वे दोनों वल्मीकके समान सहज ही नष्ट हो जाते हैं । परंतु जो आलस्य छोड़कर उत्तम युक्ति और नीतिसे काम लेता है, वह दुर्बल होनेपर भी बलवान् शत्रुको जीत लेता है, और अपना कल्याणसाधन करता है ।' भीमसेनकी इस युक्तिसे यह सिद्ध होता है कि वे केवल अद्भुत वीर और योद्धा ही नहीं थे, बल्कि नीतिशास्त्रके भी अच्छे ज्ञाता थे । अतएव भगवान् श्रीकृष्णके परामर्शसे मगधमें भीमसेन और जरासंधका मल्लयुद्ध शुरू हो गया । अन्तमें भगवान्ने एक सरकंडा लेकर उसे चीरकर दोनों ओर फेंकते हुए भीमसेनको उसी प्रकार करनेका संकेत दिया । भीमसेनने संकेत पा जरासंधकी दोनों टाँगें पकड़ लीं और उसे दो हिस्सोंमें चीरकर विपरीत दिशाओंमें फेंककर मार डाला । इस प्रकार भारतके उस कालके सबसे शक्तिशाली राजा जरासंधका नाश भीमसेनके ही द्वारा हुआ ।

भीमसेनकी नीतिज्ञताका पता उस समय चलता है, जब भगवान् श्रीकृष्ण संधिका प्रस्ताव लेकर कौरव-सभाके लिये प्रस्थान करते हैं । भीमसेन कहते हैं, 'हे मधुसूदन ! कौरवोंके बीचमें आप ऐसी बातें करें जिनसे शान्ति स्थापित हो जाय । दुर्योधन स्वभावसे ही दुरात्मा है, दुराग्रही है । वह मर जायगा, पर झुकेगा नहीं । अतएव आप उससे जो कुछ भी कहें, कोमल और मधुर वाणीमें धीरे-धीरे कहें । आपका कथन धर्म और अर्थसे युक्त तथा कल्याणकारी हो । उसमें तनिक भी उग्रता न आने पावे । साथ ही यह भी ध्यान रक्खें कि आपकी अधिकांश बातें उसकी रुचिके अनुकूल हों । श्रीकृष्ण ! आप वहाँ बूढ़े पितामह भीष्मजी तथा अन्य सभासदोंको ऐसा करनेके लिये कहें, जिससे हम सब भाइयोंमें सौहार्द बना रहे, और दुर्योधन भी शान्त हो जाय ।'—शान्तिप्रियताके भावोंसे भरे हुए इन शब्दोंसे भीमसेनके हृदयकी विशालताका सहज ही अनुमान हो जाता है । अन्तमें अपने कथनको समाप्त करते हुए वे कहते हैं—

अहमेतद् ब्रवीम्येवं राजा चैव प्रशंसति ।
अर्जुनो नैव युद्धार्थी भूयसी हि दयार्जुने ॥
(उद्योग० ७४ । २३)

'मैं इस प्रकार शान्ति-स्थापनकी बात कह रहा हूँ । युधिष्ठिर भी शान्तिकी ही प्रशंसा करते हैं, और अर्जुन भी युद्धके इच्छुक नहीं हैं; क्योंकि अर्जुनके हृदयमें बड़ी दया भरी हुई है ।' इस वचनसे स्पष्ट हो जाता है कि भीमसेन जितने अधिक शक्तिसम्पन्न पुरुष थे, उतनी ही अधिक उनके हृदयमें दया भरी थी ।

द्रौपदीके चीरहरणके प्रसङ्गमें कौरव-सभामें दुःशासनके दुष्कृत्यको देखकर महाराज युधिष्ठिरके वहाँ रहते ही आपेसे बाहर होकर भीमसेनने सब कौरवोंको युद्धमें मार डालने तथा दुःशासनको मारकर उसके वक्षःस्थलको फाड़कर रक्त पान करनेकी प्रतिज्ञा कर डाली । और इस प्रतिज्ञाको उन्होंने पूरा किया ।

भीमसेनमें वीरत्वका गर्व था । इसलिये कभी-कभी वे उद्धत भी हो जाते थे । महाभारतके युद्धमें जब अश्वत्थामाने नारायणास्त्रका प्रयोग किया तो भगवान् श्रीकृष्णने सबको कह दिया कि इस दिव्यास्त्रसे बचनेका एकमात्र यही उपाय है कि हाथसे हथियार डालकर अपने वाहनोंसे नीचे उतर आओ । भगवान् वासुदेवकी इस बातको सुन सब लोगोंने तदनुसार आचरण किया, परंतु भीमसेन न माने । वे अर्जुन और श्रीकृष्णकी अवहेलना करके आगे बढ़े । नारायणास्त्रके सामने धृष्टता करना महा अनर्थप्रद है, यह सोचकर भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने उनको बलपूर्वक रथसे उतारा ।

धृतराष्ट्रके मुखसे भीमसेनके गुणोंका वर्णन ध्यान देने योग्य है—

नहि तस्य महाबाहो शक्रप्रतिमतेजसः ।
सैन्येऽस्मिन् प्रतिपश्यामि य एनं विषहेद् युधि ॥
अस्त्रे द्रोणार्जुनसमं वायुवेगसमं जवे ।
महेश्वरसमं क्रोधे को हन्याद् भीममाहवे ॥
येन भीमबला यक्षा राक्षसाश्च पुरा हताः ।
कथं तस्य रणे वेगं मानुषः प्रसहिष्यसि ॥
(उद्योगपर्व अ० ५१)

'महाबाहु भीम इन्द्रके समान तेजस्वी है । मैं अपनी सेनामें किसीको नहीं देखता, जो युद्धमें उसका सामना कर सके । वह अस्त्रविद्यामें द्रोण और अर्जुनके समान, वेगमें वायुके समान और क्रोधमें महेश्वरके तुल्य है । ऐसे भीमको युद्धमें कौन मार सकता है ? जिसने पूर्वकालमें भयङ्कर बलशाली यक्ष-राक्षसोंका वध किया है, युद्धमें उसका वेग कोई मनुष्य कैसे सहन कर सकता है ।' धृतराष्ट्रका कथन सर्वथा सत्य है । भीमसेन अद्वितीय योद्धा थे, और महाभारतके युद्धमें उन्होंने खूब पराक्रम दिखलाया । अन्तमें दुर्योधनको मल्लयुद्धमें पछाड़कर पाण्डवोंके लिये उन्होंने विजयश्री प्राप्त की ।

श्रीकृष्णसखा अर्जुन

अर्जुन साक्षात् नर-ऋषिके अवतार थे। ये भगवान् श्रीकृष्णके परम भक्त, सखा एवं प्रेमी थे तथा उनके हाथके एक उत्तम यन्त्र थे। इनको निमित्त बनाकर भगवान्ने महाभारत-युद्धमें बड़े-बड़े योद्धाओंका संहार किया और इस प्रकार अपने अवतारके अन्यतम उद्देश्य भूभारहरणको सिद्ध किया। इस बातको स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने गीताके विश्व-रूपदर्शनके प्रसङ्गमें यह कहते हुए स्वीकार किया है कि 'ये सब तुम्हारे शत्रु मेरेद्वारा पहले ही मारे जा चुके हैं, तुम्हें इनके वधमें केवल निमित्त बनना होगा' (११। ३३)। इनकी भक्ति तथा मित्रताको भी भगवान्ने गीतामें ही 'भक्तोऽसि मे सखा चेति,' 'इष्टोऽसि मे दृढमिति' आदि शब्दोंमें स्वीकार किया है। जिसे स्वयं भगवान् अपना भक्त और प्यारा मानें और उद्घोषित करें, उसके भक्त होनेमें दूसरे किसी प्रमाणकी क्या आवश्यकता है। गीताके अन्तमें 'करिष्ये वचनं तव' यह कहकर अर्जुनने स्वयं भगवान्के हाथका यन्त्र बननेकी प्रतिज्ञा की है और महाभारतके अनुशीलनसे इस बातका पर्याप्त प्रमाण भी मिलता है कि उन्होंने अन्ततक इस प्रतिज्ञाका भलीभाँति निर्वाह किया। गीतासे ही इस बातका भी प्रमाण मिलता है कि ये भगवान्को अपना सखा मानते थे और उनके साथ बराबरीका नाता भी रखते थे। श्रीकृष्ण और अर्जुन अनेकों बार भिन्न-भिन्न अवसरोंपर एवं भिन्न-भिन्न स्थानोंमें महीनों साथ रहे थे और ऐसे अवसरोंपर स्वाभाविक ही उनका उठना-बैठना, खाना-पीना, घूमना-फिरना, सोना-लेटना साथ ही होता था और ऐसी स्थितिमें उनमें परस्पर किसी प्रकारका संकोच नहीं रह गया था। दोनोंका एक-दूसरेके साथ खुला व्यवहार था, अभिन्नहृदयता थी। दोनोंका एक-दूसरेके अन्तःपुरमें भी निःसंकोच आना-जाना, उठना-बैठना होता था, एक दूसरेसे किसी प्रकारका पर्दा नहीं था। इन दोनोंमें कैसा प्रेम था, इसका वर्णन संजयने धृतराष्ट्रको पाण्डवोंका संदेश कहते समय सुनाया था। युद्धके पूर्व जब संजय कौरवोंका संदेश लेकर उपप्लव्यमें पाण्डवोंके पास गये, उस समय श्रीकृष्ण और अर्जुनको उन्होंने किस अवस्थामें देखा, इसका वर्णन करते हुए संजय कहते हैं—'महाराज! आपका संदेश सुनानेके लिये मैं अर्जुनके अन्तःपुरमें गया। उस स्थानमें अभिमन्यु और नकुल-सहदेव भी नहीं जा सकते थे। वहाँ पहुँचनेपर मैंने देखा कि श्रीकृष्ण अपने दोनों चरण अर्जुनकी गोदमें रक्खे हुए हैं तथा अर्जुनके चरण द्रौपदी और सत्यभामाकी गोदमें हैं' इत्यादि।

× × ×

जब पाण्डव जुएकी शर्तके अनुसार वनमें चले जाते हैं, उस समय भगवान् श्रीकृष्ण उनसे मिलनेके लिये आते हैं। उस समय वे अर्जुनके साथ अपनी अभिन्नताका उल्लेख करते हुए कहते हैं—'अर्जुन! तुम एकमात्र मेरे हो और मैं एकमात्र तुम्हारा हूँ। जो मेरे हैं, वे तुम्हारे हैं और जो तुम्हारे हैं, वे मेरे हैं। जो तुमसे द्वेष करता है, वह मुझसे द्वेष करता है और जो तुम्हारा प्रेमी है, वह मेरा प्रेमी है। तुम नर हो और मैं नारायण। तुम मुझसे अभिन्न हो और मैं तुमसे; हम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है, हम दोनों एक हैं।' अर्जुन श्रीकृष्णको कितने प्रिय थे तथा दोनोंमें कैसी अभिन्नता थी—इसका प्रमाण महाभारतकी कई घटनाओंसे मिलता है। जब अर्जुन अपने वनवासके समय तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें प्रभासक्षेत्रमें पहुँचते हैं तो भगवान् श्रीकृष्ण उनका समाचार पाते ही उनसे मिलनेके लिये द्वारकासे प्रभासक्षेत्रको जाते हैं और वहाँसे उन्हें रैवतक पर्वतपर ले आकर कई दिन उनके साथ वहीं बिताते हैं। रैवतक पर्वतसे दोनों द्वारका चले आते हैं और द्वारकामें अर्जुन श्रीकृष्णके ही महलोंमें कई दिनोंतक उनके प्रिय अतिथिके रूपमें रहते हैं और रातको दोनों साथ सोते हैं। वहाँ जब श्रीकृष्णको पता चलता है कि अर्जुन उनकी बहिन सुभद्रासे विवाह करना चाहते हैं तो वे उनके बिना पूछे ही इसके लिये अनुमति दे देते हैं और उसे हरकर ले जानेकी युक्ति भी बतला देते हैं। इतना ही नहीं, अपना रथ और हथियार भी उन्हें दे देते हैं। एवं सुभद्राहरण हो जानेके बाद जब बलरामजी इसका विरोध करते हैं तो वे उन्हें समझा-बुझाकर मना लेते हैं और वहीं द्वारकामें सुभद्राका पाणिग्रहण हो जाता है। यही नहीं, खाण्डवदाहके प्रसङ्गमें भगवान् श्रीकृष्ण इन्द्रसे यह वरदान माँगते हैं कि उनकी अर्जुनके साथ मित्रता उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाय। खाण्डवदाहके प्रसङ्गमें ही अर्जुन और श्रीकृष्णकी अभिन्नताका एक और प्रमाण मिलता है। खाण्डववनके भयङ्कर अग्निकाण्डमेंसे मय दानव निकल भागनेकी चेष्टा कर रहा था। अग्निदेव मूर्तिमान् होकर उसे जला डालनेके लिये उसके पीछे दौड़ रहे थे। उनकी सहायताके लिये भगवान् श्रीकृष्ण भी अपना चक्र लिये उसे मारनेको प्रस्तुत थे। मय दानवने अपने बचनेका कोई उपाय न देखकर अर्जुनकी शरण ली और अर्जुनने उसे अभयदान दे दिया। अब तो श्रीकृष्णने भी अपना चक्र वापस ले लिया और अग्निदेवने भी उसका पीछा करना छोड़ दिया। मय दानवके प्राण बच गये। मय दानवने इस उपकारके बदलेमें अर्जुनकी कुछ सेवा करनी चाही। अर्जुनने कहा—'तुम श्रीकृष्णकी सेवा कर दो, इसीसे मेरी सेवा हो जायगी।' मय दानव बड़ा निपुण शिल्पी था। श्रीकृष्णने उससे महाराज युधिष्ठिरके लिये एक बड़ा सुन्दर सभाभवन तैयार करवाया। इस प्रकार अर्जुन और श्रीकृष्ण सदा एक दूसरेका प्रिय करते रहते थे।

जिस प्रकार श्रीकृष्ण अर्जुनको प्यार करते थे, उसी प्रकार अर्जुन भी श्रीकृष्णको अपना परम आत्मीय एवं हितू समझते थे। यही कारण था कि उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी एक

अरव नारायणी सेनाको न लेकर अकेले और निहत्थे श्रीकृष्ण-को ही सहायकके रूपमें वरण किया। जहाँ भगवान् एवं उनके ऐश्वर्यका मुकाबला होता है, वहाँ सच्चे भक्त ऐश्वर्यको त्यागकर भगवान्‌का ही वरण करते हैं। श्रीकृष्णने भी उनके प्रेमके वशीभूत होकर युद्धमें उनका सारथ्य करना स्वीकार किया। अर्जुन साथ-ही-साथ अपने जीवनरूप रथकी बागडोर भी उन्हींके हाथोंमें सौंपकर सदाके लिये निश्चिन्त हो गये। फिर तो अर्जुनकी विजय और रक्षा—योग और क्षेम—दोनोंकी चिन्ता सर्वसमर्थ श्रीकृष्णके कंधोंपर चली गयी। उनकी तो यह प्रतिज्ञा ही ठहरी कि जो कोई अनन्यभावसे उनका चिन्तन करते हुए अपनी सारी चिन्ताएँ उन्हींपर डाल देते हैं, उनके योगक्षेमका भार वे अपने कंधोंपर ले लेते हैं। कोई भी अपना भार उनके ऊपर डालकर देख ले।

बस, फिर क्या था। अब तो अर्जुनको जिताने और भीष्म-जैसे दुर्दान्त पराक्रमी वीरोंसे उनकी रक्षा करनेका सारा भार श्रीकृष्णपर आ गया। वैसे विजय तो पाण्डवोंकी पहलेसे ही निश्चित थी; क्योंकि धर्म उनके साथ था। जिस ओर धर्म, उस ओर श्रीकृष्ण और जिस ओर श्रीकृष्ण उस ओर विजय—यह तो सदाका नियम है। फिर तो युद्धके प्रारम्भमें शत्रुओंको पराजित करनेके लिये अर्जुनसे रणचण्डीका आवाहन एवं स्तवन कराना तथा प्रत्यक्ष दर्शन कराके विजयके लिये उनका आशीर्वाद प्राप्त कराना, भगवद्गीताके उपदेश तथा विश्वरूपदर्शनके द्वारा उनके मोहका निरास करना, युद्धमें शस्त्र न लेनेकी प्रतिज्ञाकी परवा न कर भीष्मकी प्रचण्ड बाणवर्षाको रोकनेमें असमर्थ अर्जुनकी प्राणरक्षाके लिये एक बार चक्र लेकर तथा दूसरी बार चाबुक लेकर भीष्मके सामने दौड़ना, भगदत्तके छोड़े हुए सर्वसंहारक वैष्णवास्त्रको अपनी छातीपर ले लेना, रथको पैरोंसे दबाकर कर्णके छोड़े हुए सर्पमुख बाणसे अर्जुनकी रक्षा करना तथा अस्त्रोंसे जले हुए अर्जुनके रथको अपने संकल्पके द्वारा कायम रखना आदि अनेकों लीलाएँ श्रीकृष्णने अर्जुनके योगक्षेमके निर्वाहके लिये कीं।

× × ×

भीष्मको पाण्डवोंसे लड़ते-लड़ते नौ दिन हो गये थे। फिर भी उनके पराक्रममें किसी प्रकारकी शिथिलता नहीं आ पायी थी। प्रतिदिन वे पाण्डव-पक्षके हजारों वीरोंका संहार कर रहे थे। उनपर विजय पानेका पाण्डवोंको कोई मार्ग नहीं सूझ रहा था। महाराज युधिष्ठिरने बड़े ही करुणापूर्ण शब्दोंमें सारी परिस्थिति अपनी नौकाके कर्णधार श्रीकृष्णके सामने रक्खी। श्रीकृष्णने उन्हें सान्त्वना देते हुए जो कुछ कहा, उससे उनका अर्जुनके प्रति असाधारण प्रेम प्रकट होता है। साथ ही अर्जुनके सम्बन्धमें उनकी कैसी ऊँची धारणा थी, इसका भी पता लगता है। श्रीकृष्ण बोले—'धर्मराज! आप बिल्कुल चिन्ता न करें। भीष्मके मारे जानेपर ही यदि आपको विजय दिखायी देती हो तो मैं अकेले ही उन्हें मार सकता हूँ। आपके भाई अर्जुन मेरे सखा, सम्बन्धी तथा शिष्य हैं; आवश्यकता हो तो मैं इनके लिये अपने शरीरका मांस भी काटकर दे सकता हूँ और ये भी मेरे लिये प्राण त्याग सकते हैं। अर्जुनने उपप्लव्यमें सबके सामने भीष्मको मारनेकी प्रतिज्ञा की थी, उसकी मुझे हर तरहसे रक्षा करनी है। जिस कामके लिये अर्जुन मुझे आज्ञा दें, उसे मुझे अवश्य करना चाहिये। अथवा भीष्मको मारना अर्जुनके लिये कौन बड़ी बात है। राजन्! यदि अर्जुन तैयार हो जायँ तो वे असम्भव कार्य भी कर सकते हैं। दैत्य एवं दानवोंके साथ सम्पूर्ण देवता भी युद्ध करने आ जायँ तो अर्जुन उन्हें भी परास्त कर सकते हैं; फिर भीष्मकी तो बात ही क्या है।' सच है, 'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्' समर्थ भगवान् जिसके रक्षक एवं सहायक हों, वह क्या नहीं कर सकता।

× × ×

पुत्रशोकसे पीड़ित अर्जुन अभिमन्युकी मृत्युका प्रधान कारण जयद्रथको समझकर दूसरे दिन सूर्यास्तसे पहले-पहले जयद्रथको मार डालनेकी प्रतिज्ञा कर बैठते हैं और साथ ही यह भी प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि 'ऐसा न कर सका तो मैं स्वयं जलती हुई आगमें कूद पड़ूँगा।' 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' इस वचनके अनुसार अर्जुनकी इस प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेका भार भी श्रीकृष्णपर आ पड़ा था। अर्जुन तो उनके भरोसे निश्चिन्त थे। इधर कौरवोंकी ओरसे जयद्रथको बचानेकी पूरी चेष्टा हो रही थी। उसी दिन श्रीकृष्ण आधी रातके समय ही जाग पड़े और सारथि दारुकको बुलाकर कहने लगे—'दारुक! मेरे लिये स्त्री, मित्र अथवा भाई-बन्धु—कोई भी अर्जुनसे बढ़कर प्रिय नहीं है। इस संसारको अर्जुनके बिना मैं एक क्षण भी नहीं देख सकता। ऐसा हो ही नहीं सकता। कल सारी दुनिया इस बातका परिचय पा जायगी कि मैं अर्जुनका मित्र हूँ। जो उनसे द्वेष रखता है, वह मेरा भी द्वेषी है; जो उनके अनुकूल है, वह मेरे भी अनुकूल है। तुम अपनी बुद्धिमें इस बातका निश्चय कर लो कि अर्जुन मेरा आधा शरीर है। मेरा विश्वास है कि अर्जुन कल जिस-जिस वीरको मारनेका प्रयत्न करेंगे, वहाँ-वहाँ अवश्य उनकी विजय होगी।' भला, ऐसे मित्रवत्सल प्रभु जिसके लिये इस प्रकार उद्यत हों, उसकी विजयमें क्या संदेह हो सकता है। दूसरे दिन श्रीकृष्णकी बतायी हुई युक्तिसे जयद्रथको मारकर अर्जुनने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और सारे संसारने देखा कि श्रीकृष्णकी कृपासे अर्जुनका बाल भी बाँका नहीं हुआ।

× × ×

कर्ण अर्जुनके साथ शुरूसे ही ईर्ष्या रखता था। दोनों एक दूसरेके प्राणोंके ग्राहक थे। भीष्मके मरणके बाद भगवान् श्रीकृष्णको अर्जुनके लिये सबसे अधिक भय कर्णसे ही था।

उसके पास इन्द्रकी दी हुई एक अमोघ शक्ति थी, जिसे उसने अर्जुनको मारनेके लिये ही रख छोड़ा था। उस शक्तिके बलपर वह अर्जुनको मरा हुआ ही समझता था। उसका प्रयोग एक ही बार हो सकता था। कर्णको उस शक्तिसे हीन करनेके लिये भगवान्‌ने उसे भीमसेनके पुत्र घटोत्कचसे भिड़ा दिया। उसने ऐसा अद्भुत पराक्रम दिखाया कि कर्णके प्राणोंपर बन आयी। वह उसके प्रहारोंको नहीं सह सका। उसने बाध्य होकर वह इन्द्रदत्त शक्ति घटोत्कचपर छोड़ दी और उसने घटोत्कचका काम तमाम कर दिया। घटोत्कचके मारे जानेसे पाण्डवोंके शिबिरमें शोक छा गया। सबकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। परंतु इस घटनासे श्रीकृष्ण बड़े प्रसन्न हुए। वे हर्षसे झूमकर नाचने लगे। उन्होंने अर्जुनको गले लगाकर उनकी पीठ ठोंकी और बारंबार गर्जना की। अर्जुनने उनके बेमौके इस प्रकार आनन्द मनानेका रहस्य जानना चाहा; क्योंकि वे जानते थे कि भगवान्‌की कोई भी क्रिया अकारण नहीं होती। इसके उत्तरमें श्रीकृष्णने जो कुछ कहा, उससे उनका अर्जुनके प्रति अगाध प्रेम झलकता है। उन्होंने कहा—'अर्जुन! आज सचमुच मेरे लिये बड़े ही आनन्दका अवसर है। कारण जानना चाहते हो? सुनो। तुम समझते हो कर्णने घटोत्कचको मारा है; पर मैं कहता हूँ कि इन्द्रकी दी हुई शक्तिको निष्फल करके घटोत्कचने ही कर्णको मार डाला है; अब तुम कर्णको मरा हुआ ही समझो। कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो कर्णके हाथमें शक्ति रहते उसके मुकाबलेमें ठहर सकता।' उन्होंने यह भी बतलाया कि 'मैंने तुम्हारे ही हितके लिये जरासंध, शिशुपाल आदिको एक-एक करके मरवा डाला। वे लोग यदि पहले न मारे गये होते, तो इस समय बड़े भयंकर सिद्ध होते। हमलोगोंसे द्वेष रखनेके कारण वे लोग अवश्य ही कौरवोंका पक्ष लेते और दुर्योधनका सहारा पाकर वे समस्त भूमण्डलको जीत लेते। उनके समान देव-द्रोहियोंका नाश करनेके लिये ही मेरा अवतार हुआ है।' इसी प्रसङ्गपर उन्होंने सात्यकिसे यह भी कहा कि 'कौरवपक्षके सब लोग कर्णको यही सलाह दिया करते थे कि वह अर्जुनके सिवा किसी दूसरेपर शक्तिका प्रयोग न करे और वह भी इसी विचारमें रहता था; परंतु मैं ही उसे मोहमें डाल देता था। यही कारण है कि उसने अर्जुनपर शक्तिका प्रहार नहीं किया। सात्यके! अर्जुनके लिये वह शक्ति मृत्युरूप है—यह सोच-सोचकर मुझे रातों नींद नहीं आती थी। आज वह घटोत्कचपर पड़नेसे व्यर्थ हो गयी—यह देखकर मैं ऐसा समझता हूँ कि अर्जुन मौतके मुँहसे छूट गये। मैं अर्जुनकी रक्षा करना जितना आवश्यक समझता हूँ, उतनी अपने माता-पिता, तुम-जैसे भाइयों तथा अपने प्राणोंकी भी रक्षा आवश्यक नहीं समझता। तीनों लोकोंके राज्यकी अपेक्षा भी यदि कोई दुर्लभ वस्तु हो, तो उसे भी मैं अर्जुनके बिना नहीं चाहता। इसीलिये आज अर्जुन मानो मरकर जी उठे हैं, ऐसा समझकर मुझे बड़ा आनन्द हो रहा है। इसीलिये इस रात्रिमें मैंने राक्षस घटोत्कचको ही कर्णसे लड़नेके लिये भेजा था; उसके सिवा दूसरा कोई कर्णको नहीं दबा सकता था।' भगवान्‌के इन वाक्योंसे स्पष्ट हो जाता है कि अर्जुन भगवान्‌को कितने प्रिय थे और उनकी वे कितनी सँभाल रखते थे। जो अपनेको भगवान्‌के हाथका यन्त्र बना देता है, उसकी भगवान् इसी प्रकार सँभाल रखते हैं और उसका बाल भी बाँका नहीं होने देते। ऐसे भक्तवत्सल प्रभुकी शरणको छोड़कर जो और-और सहारे ढूँढ़ते रहते हैं, उनके समान मूर्ख कौन होगा।

× × ×

द्रोणाचार्यके वधसे अमर्षित होकर वीर अश्वत्थामाने पाण्डवोंके प्रति आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया। उसके छूटते ही आकाशसे बाणोंकी वर्षा होने लगी और सेनामें चारों ओर आग फैल गयी। अर्जुन अकेले एक अक्षौहिणी सेना लेकर अश्वत्थामाका मुकाबला कर रहे थे। उस अस्त्रके प्रभावसे उनकी सारी सेना इस प्रकार दग्ध हो गयी कि उसका नाम-निशानतक मिट गया; परंतु श्रीकृष्ण और अर्जुनके शरीरपर आँचतक नहीं आयी। इन दोनों महापुरुषोंको अस्त्रके प्रभावसे मुक्त देखकर अश्वत्थामा चकित और चिन्तित हो गया, अपने हाथका धनुष फेंककर वह रथसे कूद पड़ा और 'धिक्कार है, धिक्कार है' कहता हुआ रणभूमिसे भाग चला। इतनेमें ही उसे व्यासजी दिखायी दिये। उसने उन्हें प्रणाम किया और उस सर्वसंहारी अस्त्रका श्रीकृष्ण और अर्जुनपर कुछ भी प्रभाव न पड़नेका कारण पूछा। तब व्यासजीने उसे बताया कि 'श्रीकृष्ण नारायण ऋषिके अवतार हैं और अर्जुन नरके अवतार हैं। इनका प्रभाव भी नारायणके ही समान है। ये दोनों ऋषि संसारको धर्म-मर्यादामें रखनेके लिये प्रत्येक युगमें अवतार लेते हैं।' व्यासजीकी इन बातोंको सुनकर अश्वत्थामाकी शङ्का दूर हो गयी और उसकी अर्जुन और श्रीकृष्णमें महत्त्व-बुद्धि हो गयी। व्यासजीके इन वचनोंसे भी श्रीकृष्ण और अर्जुनकी अभिन्नता सिद्ध होती है।

अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णके तो कृपापात्र थे ही, भगवान् शङ्करकी भी उनपर बड़ी कृपा थी। युद्धमें शत्रु-सेनाका संहार करते समय वे देखते थे कि एक अग्निके समान तेजस्वी महापुरुष उनके आगे-आगे चल रहे हैं। वे ही उनके शत्रुओंका नाश करते थे, किंतु लोग समझते थे कि यह अर्जुनका कार्य है। वे त्रिशूल धारण किये रहते थे और सूर्यके समान तेजस्वी थे। वेदव्यासजीसे बात होनेपर उन्होंने अर्जुनको बताया कि वे भगवान् शङ्कर ही थे। जिसपर श्रीकृष्णकी कृपा हो, उसपर और सब लोग भी कृपा करें—

इसमें आश्चर्य ही क्या है। 'जापर कृपा राम कै होई। तापर कृपा करहिं सब कोई ॥' अस्तु;

भगवान्‌के परम भक्त एवं कृपापात्र होनेके साथ-साथ अर्जुनमें और भी बहुत गुण थे। क्यों न हो, सूर्यके साथ सूर्यरश्मियोंकी तरह भक्तिके साथ-साथ दैवी गुण तो आनुषङ्गिकरूपसे रहते ही हैं। ये बड़े धीर, वीर, इन्द्रिय-जयी, दयालु, कोमलस्वभाव एवं सत्य-प्रतिज्ञ थे। इनमें दैवीगुण जन्मसे ही मौजूद थे, इस बातको गीतामें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने 'सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि' कहकर स्वीकार किया है। इनके जन्मके समय आकाशवाणीने इनकी माताको सम्बोधन करके कहा था—'कुन्ती! यह बालक कार्तवीर्य अर्जुन एवं भगवान् शङ्करके समान पराक्रमी एवं इन्द्रके समान अजेय होकर तुम्हारा यश बढ़ायेगा। जैसे विष्णुने अपनी माता अदितिको प्रसन्न किया था, वैसे ही यह तुम्हें प्रसन्न करेगा।' यह आकाशवाणी केवल कुन्तीने ही नहीं, सब लोगोंने सुनी थी। इससे ऋषि-मुनि, देवता और समस्त प्राणी बहुत प्रसन्न हुए। आकाशमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, पुष्पवर्षा होने लगी। इस प्रकार इनके जन्मके समयसे ही इनकी अलौकिकता प्रकट होने लगी थी। जब ये कुछ बड़े हुए तो इनके भाइयों तथा दुर्योधनादि धृतराष्ट्र-कुमारोंके साथ-साथ इनकी शिक्षा-दीक्षाका भार पहले कृपाचार्य-को, और पीछे द्रोणाचार्यको सौंपा गया। सूतपुत्रके नामसे प्रसिद्ध कर्ण भी इन्हींके साथ शिक्षा पाते थे। द्रोणाचार्यके सभी शिष्योंमें रण शिक्षा, बाहुबल और उद्योग की दृष्टिसे तथा समस्त शस्त्रोंके प्रयोग, लाघवता और सफाईमें अर्जुन ही सबसे बढ़े-चढ़े थे। ये द्रोणाचार्यकी सेवा भी बहुत करते थे। इनकी सेवा, लगन और बुद्धिसे प्रसन्न होकर द्रोणाचार्यने एक दिन इनसे कहा था कि 'बेटा! मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा कि संसारमें तुम्हारे समान और कोई धनुर्धर न हो।' द्रोणाचार्य-जैसे सिद्ध गुरुकी प्रतिज्ञा क्या कभी असत्य हो सकती है? अर्जुन वास्तवमें संसारके अद्वितीय धनुर्धर निकले।

जब पाण्डव एवं कौरव-राजकुमार अस्त्रविद्याका अभ्यास पूरा कर चुके और गुरुदक्षिणा देनेका अवसर आया, उस समय गुरु द्रोणाचार्यने अपने शिष्योंसे कहा—'तुमलोग पाञ्चालराज द्रुपदको युद्धमें पकड़कर ला दो, यही मेरे लिये सबसे बड़ी गुरुदक्षिणा होगी।' सबने प्रसन्नतासे गुरुदेवकी आज्ञा स्वीकार की और उनके साथ अस्त्र-शस्त्रसे सुसजित हो रथपर सवार होकर द्रुपद-नगरपर चढ़ाई कर दी। वहाँ पहुँचनेपर पाञ्चालराजने अपने भाइयोंके साथ इनका मुकाबला किया। पहले अकेले कौरवोंने ही इनपर धावा किया था। परंतु उन्हें पाञ्चालराजसे हारकर लौटना पड़ा। अन्तमें अर्जुनने भीम और नकुल-सहदेवको साथ लेकर द्रुपदपर आक्रमण किया। बात-की-बातमें अर्जुनने द्रुपदको धर दबाया और उन्हें पकड़कर द्रोणाचार्यके सामने खड़ा कर दिया। इस प्रकार अर्जुनके पराक्रमकी सर्वत्र धाक जम गयी।

पाण्डव द्रौपदीके स्वयंवरका समाचार पाकर एकचक्रा नगरीसे द्रुपदनगरकी ओर जा रहे थे। रास्तेमें उनकी गन्धर्वोंसे मुठभेड़ हो गयी। अर्जुनने अपने अस्त्रकौशलसे गन्धर्वोंके छक्के छुड़ा दिये और उनके राजा अङ्गारपर्ण (चित्ररथ) को पकड़ लिया। अन्तमें दोनोंमें मित्रता हो गयी। द्रौपदीके स्वयंवरमें अर्जुनने वह काम करके दिखला दिया, जिसे उपस्थित राजाओंमेंसे कोई भी नहीं कर सका था। दुर्योधन, शाल्व, शिशुपाल, जरासंध एवं शल्य आदि अनेकों महाबली राजाओं तथा राजकुमारोंने वहाँपर रक्खे हुए धनुषको उठाकर चढ़ानेकी चेष्टा की, परंतु सभी असफल रहे। अर्जुनने बात-की-बातमें उसे उठाकर उसपर रौंदा चढ़ा दिया और लोगोंके देखते-देखते लक्ष्यको भी बेध दिया। उस समय अर्जुन ब्राह्मणोंके वेषमें अपनेको छिपाये हुए थे। अतः उन्हें ब्राह्मण समझकर समस्त राजाओंने मिलकर उनका पराभव करना चाहा। परंतु वे अर्जुन और भीमका बाल भी बाँका न कर सके। उस समय अर्जुन और कर्णका बाणयुद्ध और भीम एवं शल्यका गदायुद्ध हुआ। परंतु अर्जुन और भीमके सामने उनके दोनों ही प्रतिद्वन्द्वियोंको नीचा देखना पड़ा।

खाण्डवदाहके समय भी अर्जुनने अद्भुत पराक्रम दिखलाया था। जब अग्निदेवताने श्रीकृष्ण और अर्जुनकी सहायतासे खाण्डववनको जलाना प्रारम्भ किया, उस समय उसकी गरमीसे सारे देवता त्रस्त हो देवराज इन्द्रके पास गये। तब इन्द्रकी आज्ञासे दल-के-दल मेघ उस प्रचण्ड अग्निको शान्त करनेके लिये जलकी मोटी-मोटी धाराएँ बरसाने लगे। अर्जुनने अपने अस्त्रबलसे बाणोंके द्वारा जलकी धाराओंको आकाशमें ही रोक दिया और पृथ्वीपर नहीं गिरने दिया। इन्द्रने भी अपने तीक्ष्ण अस्त्रोंकी वर्षासे अर्जुनको उत्तर दिया। दोनों ओरसे घमासान युद्ध छिड़ गया। श्रीकृष्ण और अर्जुनने मिलकर अपने चक्र और तीखे बाणोंके द्वारा देवताओंकी सारी सेनाको तहस-नहस कर डाला। भगवान् श्रीकृष्णने उस समय अपना कालरूप प्रकट कर दिया था। देवता और दानव सभी उनके पौरुषको देखकर दंग रह गये। अन्तमें इन्द्रको सम्बोधन करके यह आकाशवाणी हुई कि 'तुम अर्जुन और श्रीकृष्णको युद्धमें किसी प्रकार भी नहीं जीत सकोगे। ये साक्षात् नर-नारायण हैं। इनकी शक्ति और पराक्रम असीम है। ये सबके लिये अजेय हैं। तुम देवताओंको लेकर यहाँसे चले जाओ, इसीमें तुम्हारी शोभा है।' आकाशवाणी सुनकर देवराज अपनी सेनाके साथ लौट पड़े और अग्निने देखते-देखते उस विशाल

वनको भस्म कर दिया। अर्जुनकी सेवासे प्रसन्न होकर अग्निने उन्हें दिव्य अस्त्र दिये। इन्द्रने भी उनके अस्त्र-कौशलसे प्रसन्न होकर उन्हें समय आनेपर अस्त्र देनेकी प्रतिज्ञा की तथा अग्निकी प्रार्थनापर वरुणदेवने उन्हें अक्षय तरकस, गाण्डीव धनुष और वानर-चिह्नयुक्त ध्वजासे मण्डित रथ युद्धसे पहले ही दे दिया था।

जब पाण्डवलोग दूसरी बार जुएमें हारकर वनमें रहने लगे, उस समय एक दिन महर्षि वेदव्यासजी उनके पास आये और युधिष्ठिरको एकान्तमें ले जाकर उन्होंने समझाया कि 'अर्जुन नारायणका सहचर महातपस्वी नर है। इसे कोई जीत नहीं सकता, यह अच्युतस्वरूप है। यह तपस्या एवं पराक्रमके द्वारा देवताओंके दर्शनकी योग्यता रखता है। इसलिये तुम इसको अस्त्रविद्या प्राप्त करनेके लिये भगवान् शङ्कर, देवराज इन्द्र, वरुण, कुबेर और धर्मराजके पास भेजो। यह उनसे अस्त्र प्राप्त करके बड़ा पराक्रम करेगा और तुम्हारा खोया हुआ राज्य वापस ला देगा।' युधिष्ठिरने वेदव्यासजीकी आज्ञा मानकर अर्जुनको उन्हीं महर्षिकी दी हुई मन्त्र-विद्या सिखाकर इन्द्रके दर्शनके लिये इन्द्रकील पर्वतपर भेज दिया। वहाँ पहुँचनेपर एक तपस्वीके रूपमें इन्हें इन्द्रके दर्शन हुए। इन्द्रने इन्हें स्वर्गके भोगों एवं ऐश्वर्यका प्रलोभन दिया, परंतु इन्होंने सब कुछ छोड़कर उनसे अस्त्रविद्या सीखनेका ही आग्रह किया। इन्द्रने कहा—'पहले तुम तपद्वारा भगवान् शङ्करके दर्शन प्राप्त करो। उनके दर्शनसे सिद्ध होकर तुम स्वर्गमें आना, तब मैं तुम्हें सारे दिव्य अस्त्र दे दूँगा।' अर्जुन मनस्वी तो थे ही। वे तुरंत ही कठोर तपस्यामें लग गये। इनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् शङ्कर एक भीलके रूपमें इनके सामने प्रकट हुए। एक जंगली सूअरको लेकर दोनोंमें विवाद खड़ा हो गया और फिर दोनोंमें युद्ध छिड़ गया। अर्जुनने अपने अस्त्रकौशलसे भगवान् शङ्करको प्रसन्न कर लिया। वे बोले—'अर्जुन! तुम्हारे अनुपम कर्मसे मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारे-जैसा धीर-वीर क्षत्रिय दूसरा नहीं है। तुम तेज और बलमें मेरे ही समान हो। तुम सनातन ऋषि हो। तुम्हें मैं दिव्य ज्ञान देता हूँ, तुम देवताओं-को भी जीत सकोगे।' इसके बाद भगवान् शङ्करने अर्जुनको देवी पार्वतीके सहित अपने असली रूपमें दर्शन देकर विधिपूर्वक पाशुपतास्त्रकी शिक्षा दी। इस प्रकार देवाधिदेव महादेवकी कृपा प्राप्तकर वे स्वर्ग जानेकी बात सोच रहे थे कि इतनेमें ही वरुण, कुबेर, यम एवं देवराज—ये चारों लोकपाल वहाँ आकर उपस्थित हुए। यम, वरुण और कुबेरने क्रमशः उन्हें दण्ड, पाश एवं अन्तर्धान नामक अस्त्र दिये और इन्द्र उन्हें स्वर्गमें आनेपर अस्त्र देनेको कह गये। इसके बाद इन्द्रके भेजे हुए रथपर बैठकर अर्जुन स्वर्गलोकमें गये और वहाँ पाँच वर्ष रहकर इन्होंने अस्त्रज्ञान प्राप्त किया और साथ-ही-साथ चित्रसेन गन्धर्वसे गान्धर्वविद्या सीखी। इन्द्रसे अस्त्रविद्या सीखकर जब अर्जुन सब प्रकारके अस्त्रोंके चलानेमें निपुण हो गये, तब देवराजने उनसे निवातकवच नामक दानवोंका वध करनेके लिये कहा। ये समुद्रके भीतर एक दुर्गम स्थानमें रहते थे। इनकी संख्या तीन करोड़ बतायी जाती थी। इन्हें देवता भी नहीं जीत सकते थे। अर्जुनने अकेले ही जाकर उन सबका संहार कर डाला। इतना ही नहीं, निवातकवचोंको मारकर लौटते समय उनका कालिकेय एवं पौलोम नामक दैत्योंसे युद्ध हुआ और उनका भी अर्जुनने सफाया कर डाला। इस प्रकार इन्द्रका प्रिय कार्य करके तथा इन्द्रपुरीमें कुछ दिन और रहकर अर्जुन वापस अपने भाइयोंके पास चले आये।

स्वर्गसे लौटकर वनमें तथा एक वर्ष अज्ञातरूपसे विराट नगरमें रहते हुए भी अर्जुनने अद्भुत पराक्रम दिखाया। वनमें इन्होंने दुर्योधनादिको छुड़ानेके लिये गन्धर्वोंसे युद्ध किया, जिसका उल्लेख युधिष्ठिरके प्रसङ्गमें किया जा चुका है। इसके बाद जब वनवासके बारह वर्ष पूरे हो गये और पाण्डवलोग एक वर्षके अज्ञातवासकी शर्त पूरी करनेके लिये विराटके यहाँ रहने लगे, उस समय इन लोगोंका पता लगानेके लिये दुर्योधनने विराटनगरपर चढ़ाई की। भीष्म द्रोण, कर्ण, कृप, अश्वत्थामा आदि सभी प्रधान-प्रधान वीर उनके साथ थे। ये लोग राजा विराटकी साठ हजार गौओंको घेरकर ले चले। तब विराट-कुमार उत्तर बृहन्नला बने हुए अर्जुनको सारथि बनाकर उन्हें रोकनेके लिये गये। कौरवोंकी विशाल सेनाको देखते ही उत्तरके रोंगटे खड़े हो गये, वह रथसे उतरकर भागने लगा। बृहन्नला (अर्जुन) ने उसे पकड़कर समझाया और उसे सारथि बनाकर स्वयं युद्ध करने चले। इन्होंने बारी-बारीसे कर्ण, कृप, द्रोण, अश्वत्थामा और दुर्योधनको पराजित किया और भीष्मको भी मूर्छित कर दिया। इसके बाद भीष्म, दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन, विविंशति, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा और कृपाचार्य—ये सभी महारथी एक साथ अर्जुनपर टूट पड़े और उन्होंने इन्हें चारों ओरसे घेर लिया; परंतु अर्जुनने अपने बाणोंकी झड़ीसे सबके छक्के छुड़ा दिये। अन्तमें उन्होंने सम्मोहन नामके अस्त्रको प्रकट किया, जिससे सारे-के-सारे कौरव वीर अचेतन हो गये, उनके हाथोंसे शस्त्र गिर पड़े। उस समय अर्जुन चाहते तो इन सबको आसानीसे मार सकते थे, परंतु वे इन सब बातोंसे ऊपर थे। होशमें आनेपर भीष्मकी सलाहसे कौरवोंने गौओंको छोड़कर लौट जाना ही श्रेयस्कर समझा। अर्जुन विजयघोष करते हुए नगरमें चले आये। इस प्रकार अर्जुनने विराटकी गौओंके साथ-साथ उनकी मान-मर्यादाकी भी रक्षा करके अपने आश्रयदाताका ऋण कई गुने रूपमें चुका दिया। धन्य स्वामिभक्ति!

महाभारत-युद्धके तो अर्जुन एक प्रधान पात्र थे ही। पाण्डवोंकी सेनाके प्रधान सेनानायक यही थे। भगवान् श्रीकृष्णने इन्हींका सारथि बनना स्वीकार किया था तथा भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा आदि अजेय योद्धाओंसे टक्कर लेना इन्हींका काम था। ये लोग सभी इनका लोहा मानते थे। इन्होंने जयद्रथ-वधके दिन जो अद्भुत पराक्रम एवं अस्त्रकौसल दिखलाया, वह तो इन्हींके योग्य था। इनकी भयंकर प्रतिज्ञाको सुनकर उस दिन कौरवोंने जयद्रथको सारी सेनाके पीछे खड़ा किया था। कई अक्षौहिणी सेनाके बीचमेंसे रास्ता काटते हुए अर्जुन बड़ी मुस्तैदी एवं अदम्य उत्साहके साथ अपने लक्ष्यकी ओर बढ़े चले जा रहे थे। शत्रु-सेनाके हजारों वीर और हाथी-घोड़े उनके अमोघ बाणोंके शिकार बन चुके थे। वे रथसे एक कोसतकके शत्रुओंका सफाया करते जाते थे। इतनेमें शाम होनेको आ गयी। इनके घोड़े बाणोंके लगनेसे बहुत व्यथित हो गये थे और अधिक परिश्रमके कारण थक भी गये थे। भूख-प्यास उन्हें अलग सता रही थी। अर्जुनने श्रीकृष्णसे कहा—'आप घोड़ोंको खोलकर इनके बाण निकाल दीजिये। तबतक मैं कौरवोंकी सारी सेनाको रोके रहूँगा।' ऐसा कहकर अर्जुन रथसे उतर पड़े और बड़ी सावधानीसे धनुष लेकर अविचल भावसे खड़े हो गये, उस समय इन्हें पराजित करनेका अच्छा मौका देखकर शत्रुसेनाके वीरोंने एक साथ इन्हें घेर लिया और तरह-तरहके बाणों एवं शस्त्रोंसे ढक दिया; किंतु वीर अर्जुनने उनके अस्त्रोंको अपने अस्त्रोंसे रोककर बदलेमें उन सभीको बाणोंसे आच्छादित कर दिया। इधर श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा कि 'घोड़े प्याससे व्याकुल हो रहे हैं; किंतु पासमें कोई जलाशय नहीं है।' इसपर अर्जुनने तुरंत ही अस्त्रद्वारा पृथ्वीको फोड़कर घोड़ोंके पानी पीने योग्य एक सुन्दर सरोवर बना दिया। इतना ही नहीं, उस सरोवरके ऊपर उन्होंने एक बाणोंका घर बना दिया। अर्जुनका यह अभूतपूर्व पराक्रम देखकर सिद्ध, चारण और सैनिकलोग दाँतोंतले अँगुली दबाने और वाह-वाह करने लगे। सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात तो यह हुई कि बड़े-बड़े महारथी भी पैदल अर्जुनको पीछे नहीं हटा सके। इस बीचमें श्रीकृष्णने फुर्तीसे घोड़ोंके बाण निकालकर उन्हें नहलाया, मालिश की, जल पिलाया और घास खिलाकर तथा जमीनपर लिटाकर उन्हें फिरसे रथमें जोत लिया। अर्जुन जब जयद्रथके पास पहुँचे तो इनपर आठ महारथियोंने एक साथ आक्रमण किया और दुर्योधनने अपने बहनोईकी रक्षाके उद्देश्यसे उन्हें चारों ओरसे घेर लिया; परंतु अर्जुन उन सबका मुकाबला करते हुए आगे बढ़ते ही गये। इनके वेगको कोई रोक नहीं सका। इन्होंने श्रीकृष्णकी कृपासे सूर्यास्त होते-होते जयद्रथको अपने वज्रतुल्य बाणोंका शिकार बना लिया और श्रीकृष्णके कथनानुसार इस कौशलसे उसके मस्तकको काटा कि वह कुरुक्षेत्रसे बाहर जाकर उसके पिताकी गोदमें गिरा। इस प्रकार श्रीकृष्णकी सहायतासे सूर्यास्तसे पहले-पहले अर्जुनने जयद्रथको मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

× × ×

अर्जुन जगद्विजयी वीर और अद्वितीय धनुर्धर तो थे ही; वे बड़े भारी सत्यप्रतिज्ञ, सदाचारी, धर्मात्मा एवं इन्द्रियजयी भी थे। पाण्डव जब इन्द्रप्रस्थमें राज्य करते थे, उन दिनों एक दिन लुटेरे किसी ब्राह्मणकी गौएँ लेकर भाग गये। ब्राह्मणने आकर पाण्डवके सामने पुकार की। अर्जुनने ब्राह्मणकी करुण पुकार सुनी और उन्हें गौओंको छुड़ाकर लानेका वचन दिया। परंतु उनके शस्त्र उस घरमें थे, जहाँ उनके बड़े भाई महाराज युधिष्ठिर द्रौपदीके साथ एकान्तमें बैठे हुए थे। पाँचों भाइयोंमें पहलेसे ही यह शर्त हो चुकी थी कि 'जिस समय द्रौपदी एक भाईके पास एकान्तमें रहे, उस समय दूसरा कोई भाई यदि उनके कमरेमें चला जाय तो वह बारह वर्षके लिये निर्वासित कर दिया जाय।' अर्जुन बड़े असमंजसमें पड़ गये। यदि ब्राह्मणकी गौओंकी रक्षा नहीं की जाती तो क्षत्रिय-धर्मसे च्युत होते हैं और उसके लिये शस्त्र लेने कमरेमें जाते हैं तो नियमभंग होता है। अन्तमें अर्जुनने नियमभंग करके भी ब्राह्मणकी गौओंकी रक्षा करनेका ही निश्चय किया। उन्होंने सोचा—'नियमभंगके कारण मुझे कितना भी कठिन प्रायश्चित्त क्यों न करना पड़े, चाहे प्राण ही क्यों न चले जायँ, ब्राह्मणके गोधनकी रक्षा करके अपराधियोंको दण्ड देना मेरा धर्म है और वह मेरे जीवनकी रक्षासे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।' धन्य धर्मप्रेम !

अर्जुन चुपचाप युधिष्ठिरके कमरेमें जाकर शस्त्र ले आये और उसी समय लुटेरोंका पीछा करके ब्राह्मणकी गौएँ छुड़ा लाये। वहाँसे लौटकर उन्होंने अपने बड़े भाईसे नियमभंगके प्रायश्चित्तरूपमें वन जानेकी आज्ञा माँगी। युधिष्ठिरने उन्हें समझाया कि 'बड़ा भाई अपनी स्त्रीके पास बैठा हो, उस समय छोटे भाईका उसके पास चला जाना अपराध नहीं है। यदि कोई अपराध हुआ भी हो तो वह मेरे प्रति हुआ है और मैं उसे स्वेच्छासे क्षमा करता हूँ। फिर तुमने धर्मके लिये ही तो नियमभंग किया है, इसलिये भी तुम्हें वन जानेकी आवश्यकता नहीं है।' अर्जुनके लिये नियमभंगके प्रायश्चित्तसे बचनेका यह अच्छा मौका था। और कोई होता तो इस मौकेको हाथसे नहीं जाने देता। आजकल तो कानूनके शिकंजेसे बचनेके लिये कानूनका ही आश्रय लेना बिल्कुल जायज समझा जाता है, परंतु अर्जुन बहाना लेकर दण्डसे बचना नहीं जानते थे। उन्होंने युधिष्ठिरके समझानेपर भी सत्यकी रक्षाके लिये नियमका पालन आवश्यक समझा और

वनवासकी दीक्षा लेकर वहाँसे चल पड़े ! धन्य सत्यप्रतिज्ञता और नियम-पालनकी तत्परता !

जिस समय अर्जुन इन्द्रपुरीमें रहकर अस्त्रविद्या तथा गान्धर्व-विद्या सीख रहे थे, एक दिन इन्द्रने रात्रिके समय उनकी सेवाके लिये वहाँकी सर्वश्रेष्ठ अप्सरा उर्वशीको उनके पास भेजा। उस दिन सभामें इन्द्रने अर्जुनको उर्वशीकी ओर निर्निमेष नेत्रोंसे देखते हुए पाया था। उर्वशी अर्जुनके रूप और गुणोंपर पहलेसे ही मुग्ध थी। वह इन्द्रकी आज्ञासे खूब सज-धजकर अर्जुनके पास गयी। अर्जुन उर्वशीको रात्रिमें अकेले इस प्रकार निःसंकोचभावसे अपने पास आयी देख सहम गये। उन्होंने शीलवश अपने नेत्र बंद कर लिये और उर्वशीको माताकी भाँति प्रणाम किया। उर्वशी यह देखकर दंग रह गयी। उसे अर्जुनसे इस प्रकारके व्यवहारकी आशा नहीं थी। उसने खुल्लमखुल्ला अर्जुनके प्रति कामभाव प्रकट किया। अब तो अर्जुन मारे संकोचके धरतीमें गड़-से गये। उन्होंने अपने हाथोंसे दोनों कान मूँद लिये और बोले—'माता ! यह क्या कह रही हो ? देवि ! निस्संदेह तुम मेरी गुरुपत्नीके समान हो। देवसभामें मैंने तुम्हें निर्निमेष नेत्रोंसे देखा अवश्य था; परंतु मेरे मनमें कोई बुरा भाव नहीं था। मैं यही सोच रहा था कि पूरुवंशकी यही माता हैं। इसीसे मैं तुमको देख रहा था। देवि ! मेरे सम्बन्धमें और कोई बात तुम्हें सोचनी ही नहीं चाहिये। तुम मेरे लिये बड़ोंकी बड़ी और मेरे पूर्वजोंकी जननी हो। जैसे कुन्ती, माद्री और इन्द्रपत्नी शची मेरी माताएँ हैं, वैसे ही तुम भी पूरुवंशकी जननी होनेके नाते मेरी पूजनीया माता हो। मैं तुम्हारे चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।'* अब तो उर्वशी क्रोधके मारे आगबबूला हो गयी। उसने अर्जुनको शाप दिया—'मैं इन्द्रकी आज्ञासे कामातुर होकर तुम्हारे पास आयी थी; परंतु तुमने मेरे प्रेमको ठुकरा दिया। इसलिये जाओ, तुम्हें स्त्रियोंके बीचमें नचनियाँ होकर रहना पड़ेगा और लोग तुम्हें हिजड़ा कहकर पुकारेंगे।' अर्जुनने उर्वशीके शापको सहर्ष स्वीकार कर लिया, परंतु धर्मका त्याग नहीं किया। एकान्तमें स्वेच्छासे आयी हुई उर्वशी-जैसी अनुपम सुन्दरीका परित्याग करना अर्जुनका ही काम था। धन्य इन्द्रियजय ! जब इन्द्रको यह बात मालूम हुई तो उन्होंने अर्जुनको बुलाकर उनकी पीठ ठोंकी और कहा—'बेटा ! तुम्हारे-जैसा पुत्र पाकर तुम्हारी माता धन्य हुई। तुमने अपने धैर्यसे ऋषियोंको भी जीत लिया। अब तुम किसी प्रकारकी चिन्ता न करो। उर्वशीने जो शाप तुम्हें दिया है, वह तुम्हारे लिये वरदानका काम करेगा। तेरहवें वर्षमें जब तुम अज्ञातवास करोगे, उस समय यह शाप तुम्हारे छिपनेमें सहायक होगा। इसके बाद तुम्हें पुरुषत्वकी प्राप्ति हो जायगी।' सच है—'धर्मो रक्षति रक्षितः।'

× × ×

विराटनगरमें अज्ञातवासकी अवधि पूरी हो जानेपर जब पाण्डवोंने अपनेको राजा विराटके सामने प्रकट किया, उस समय राजा विराटने कृतज्ञतावश अपनी कन्या उत्तराकुमारीका अर्जुनसे विवाह करना चाहा। परंतु अर्जुनने उनके इस प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—'राजन् ! मैं बहुत कालतक आपके रनिवासमें रहा हूँ और आपकी कन्याको एकान्तमें तथा सबके सामने भी पुत्रीके रूपमें ही देखता आया हूँ। उसने भी मुझपर पिताकी भाँति ही विश्वास किया है। मैं उसके सामने नाचता था और संगीतका जानकार भी हूँ, इसलिये वह मुझसे प्रेम तो बहुत करती है परंतु सदा मुझे गुरु ही मानती आयी है। वह वयस्का हो गयी है और उसके साथ एक वर्षतक मुझे रहना पड़ा है। अतः आपको या किसी औरको हम दोनोंके प्रति अनुचित संदेह न हो, इसलिये उसे मैं अपनी पुत्रवधूके रूपमें ही वरण करता हूँ। ऐसा करनेसे ही हम दोनोंका चरित्र शुद्ध समझा जायगा।' अर्जुनके इस पवित्र भावकी सब लोगोंने प्रशंसा की और उत्तरा अभिमन्यु को ब्याह दी गयी। अर्जुन-जैसे महान् इन्द्रियजयी ही इस प्रकार युवती कन्याके साथ एक वर्षतक घनिष्ठ सम्पर्कमें रहकर भी अपनेको अछूता रख सके और उसका भाव भी इनके प्रति बिगड़ा नहीं। वयस्क छात्रों तथा छात्राओंके शिक्षकों को इससे शिक्षा लेनी चाहिये।

× × ×

जब अश्वत्थामा रात्रिमें सोये हुए पाण्डवोंके पुत्रों तथा धृष्टद्युम्न आदिको मारकर स्वयं गङ्गातटपर जा बैठा, तब पीछे से उसके क्रूर कर्मका संवाद पाकर भीमसेन और अर्जुन उसे बदला लेनेके लिये उसकी तलाशमें गये। भीम और अर्जुन को आते देख अश्वत्थामा बहुत डर गया और इनके हाथों बचनेका और कोई उपाय न देख उसने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। देखते-देखते वहाँ प्रलयकालकी-सी अग्नि उत्पन्न हो गयी और वह चारों ओर फैलने लगी। उसे शान्त करनेके लिये अर्जुनने भी ब्रह्मास्त्रको प्रकट किया; क्योंकि ब्रह्मास्त्र ब्रह्मास्त्रके द्वारा ही शान्त किया जा सकता था। दोनों अस्त्रों के आपसमें टकरानेसे बड़ी भारी गर्जना होने लगी, हजारों उल्काएँ गिरने लगीं और सभी प्राणियोंको बड़ा भय मालूम होने लगा। यह भयंकर काण्ड देखकर देवर्षि नारद और महर्षि व्यास दोनों वहाँ एक साथ पधारे और दोनों वीरोंको शान्त करने लगे। इन दोनों महापुरुषोंके कहनेसे अर्जुनने तो तुरंत अपना दिव्य अस्त्र लौटा लिया। उन्होंने उसे छोड़

---

* यथा कुन्ती च माद्री च शची चैव ममानघे।
तथा च वंशजननी त्वं हि मेऽद्य गरीयसी॥
गच्छ मूर्ध्ना प्रपन्नोऽस्मि पादौ ते वरवर्णिनि।
त्वं हि मे मातृवत् पूज्या रक्ष्योऽहं पुत्रवत्त्वया॥

(महा० वन० ४६। ४६-४७)

ही था अश्वत्थामाके अस्त्रको शान्त करनेके लिये ही। उस अस्त्रका ऐसा प्रभाव था कि उसे एक बार छोड़ देनेपर सहसा उसे लौटाना अत्यन्त कठिन था। केवल ब्रह्मचारी ही उसे लौटा सकता था। अश्वत्थामाने भी उन दोनों महापुरुषोंको देखकर उसे लौटानेका बहुत प्रयत्न किया, पर वह संयमी न होनेके कारण उसे लौटा न सका। अन्तमें व्यासजीके कहनेसे उसने उस अस्त्रको उत्तराके गर्भपर छोड़ दिया और वह बालक मरा हुआ निकला; किंतु भगवान् श्रीकृष्णने उसे फिरसे जिला दिया। इस प्रकार अर्जुनमें शूरवीरता, अस्त्रज्ञान और इन्द्रियजय—इन तीनों गुणोंका अद्भुत सम्मिश्रण था।

अर्जुनका जीवन एक दिव्य जीवन था। उनके चरित्र-परहम जितना ही विचार करते हैं, उतना ही हमें वह आदर्श एवं शिक्षाओंसे पूर्ण प्रतीत होता है।

महावीर युवक अभिमन्यु

अर्जुनका पुत्र सुभद्राकुमार अभिमन्यु महाभारत महाकाव्यका एक अपूर्व पात्र है। यह भगवान् श्रीकृष्णका भानजा अर्जुनके समान ही महान् धनुर्धर था। वह श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंको समान प्रिय था। महाराज युधिष्ठिरके साथ अन्य चारों भाई भी उसको बहुत अधिक प्यार करते थे। पाण्डवोंके अज्ञातवासके पश्चात् ही अभिमन्युका ब्याह महाराजा विराटकी पुत्री उत्तराके साथ बड़ी धूम-धामसे हुआ था। अर्जुनने उत्तराको पुत्रवधूके रूपमें स्वीकार करते समय महाराजा विराटसे कहा था—

स्नुषार्थमुत्तरां राजन् प्रतिगृह्णामि ते सुताम्॥
स्वस्रीयो वासुदेवस्य साक्षात् देवशिशुर्यथा।
दयितश्चक्रहस्तस्य सर्वास्त्रेषु च कोविदः॥

(विराट० ७२। ७। ८)

अभिमन्युर्महाबाहुः पुत्रो मम विशाम्पते।
जामाता तव युक्तो वै भर्त्ता च दुहितुस्तव॥

(७२। ९)

'राजन्! आपकी पुत्री उत्तराको मैं पुत्रवधूके रूपमें ग्रहण करता हूँ। मेरा पुत्र अभिमन्यु भगवान् वासुदेवका भानजा और देखनेमें साक्षात् देवकुमार-सा है। चक्रधारी श्रीकृष्णको वह अति प्रिय है। तथा वह सब प्रकारकी अस्त्रविद्यामें कुशल है। महाराज! मेरा वह महाबली पुत्र अभिमन्यु आपकी पुत्रीका उपयुक्त पति तथा आपका सुयोग्य जामाता बनने योग्य है।'

इस सम्बन्धसे महाराज विराट कृतकृत्य हो गये। परंतु इसके बाद ही विराटकी सभामें महाभारतके युद्धकी भूमिका शुरू हो गयी।

महायुद्धमें जब द्रोणाचार्य कौरवसेनाके सेनाध्यक्ष बने और अपनी सेनाकी व्यूह-रचना करके व्यूहके द्वारपर स्वयं डट गये तो पाण्डवोंके सामने एक विकट प्रश्न आ उपस्थित हो गया। उस समय अर्जुन संशप्तकोंसे युद्ध कर रहे थे, और द्रोणके व्यूहको तोड़नेवाला अर्जुनकुमार अभिमन्युके सिवा कोई दूसरा न था। वह व्यूह तोड़कर भीतर तो घुस सकता था, परंतु शत्रुसैन्यके भीतरसे बाहर आनेकी कला उसे मालूम न थी। भीमसेन उसका अनुगमन करनेवाले थे और उनके पीछे धृष्टद्युम्न और सात्यकि तथा पाञ्चाल, कैकय, मत्स्यादि सैनिकोंका दल घुसनेवाला था। परंतु भगवान् शङ्करका वर प्राप्त करनेके कारण जयद्रथ उस दिन अजेय बन गया था, उसने किसीको भी अभिमन्युके पीछे नहीं जाने दिया। अभिमन्यु अकेला ही कौरवोंकी महासेनामें घुसकर वहाँ प्रलयका दृश्य उपस्थित कर बड़े-बड़े महारथियोंके छक्के छुड़ाने लगा।

द्रोणपर्वके ३४ वें अध्यायमें संजयने श्रीकृष्ण और पाण्डवोंकी प्रशंसा करते हुए अन्तमें धृतराष्ट्रसे कहा था कि—

ये च कृष्णे गुणाः स्फीताः पाण्डवेषु च ये गुणाः।
अभिमन्यौ किलैकस्था दृश्यन्ते गुणसंचयाः॥

(द्रोण० ३४। ८)

युधिष्ठिरस्य वीर्येण कृष्णस्य चरितेन च।
कर्मभिर्भीमसेनस्य सदृशो भीमकर्मणः॥
धनंजयस्य रूपेण विक्रमेण श्रुतेन च।
विनयात् सहदेवस्य सदृशो नकुलस्य च॥

(द्रोण० ३४। ९-१०)

महात्मा संजयने संक्षेपमें अभिमन्युके गुणोंका दिग्दर्शन कराया है। 'श्रीकृष्णमें तथा पाण्डवोंमें जो श्रेष्ठ गुण हैं, वे सारे गुण संचित होकर एकत्र अभिमन्युमें देखे जाते हैं। वह वीर्यमें युधिष्ठिरके समान है, आचारमें श्रीकृष्णके समान है, भयंकर कर्म करनेवाले भीमसेनके समान कर्मठ है, विद्या, पराक्रम और रूपमें अर्जुनके समान है, तथा विनयमें सहदेव और नकुलके समान है।'

इस प्रकारके सर्व गुणोंसे युक्त वीर बालक अभिमन्युने कौरवोंकी महती सेनामें रथ, गज और पैदल—सेनाके तीनों अङ्गोंको इस प्रकार मथ डाला मानो स्वयं विष्णु भगवान् असुर सैन्यका संहार करनेपर तुल गये हों। अभिमन्युके शस्त्रसंघातसे कौरवसेनामें हाहाकार मच गया। धृतराष्ट्रने अभिमन्युके पराक्रमका संवाद सुनकर कहा था—

द्वैधीभवति मे चित्तं ह्रिया तुष्ट्या च संजय।
मम पुत्रस्य यत् सैन्यं सौभद्रः समवारयत्॥

(द्रोण ३९। १)

'हे संजय ! मेरे पुत्र दुर्योधनकी महती सेनाको वीर बालक सुभद्राकुमार अभिमन्युने तहस-नहस करके तितर-बितर कर दिया, यह सुनकर मेरा हृदय लज्जा और आनन्दसे द्विविधामें पड़ जाता है ।' धन्य है महाभाग धृतराष्ट्र ! अपने पौत्र अर्जुनकुमार अभिमन्युकी वीरताको सुनकर आप हर्षित हो उठते हैं, यह आपके उत्कृष्ट क्षात्र-धर्म और विशुद्ध आत्मीयताका द्योतक है, और लज्जित इसलिये होते हैं कि इतनी बड़ी और शक्तिशाली हमारे पुत्रोंकी कौरवसेना, एक बालकके सामने नहीं टिक सकी !

उस युद्धमें अभिमन्युके अद्भुत पराक्रमको देखकर गुरु द्रोणसे नहीं रहा गया, वे बोल उठे—

एष गच्छति सौभद्रः पार्थानां प्रथितो युवा ।
नन्दयन् सुहृदः सर्वान् राजानं च युधिष्ठिरम् ॥
नास्य युद्धे समं मन्ये कंचिदन्यं धनुर्धरम् ।
इच्छन् हन्यादिमां सेनां किमर्थमपि नेच्छति ॥

(द्रोण० ३९ । ११, १३)

'यह पृथापुत्रोंका प्रसिद्ध युवक सुभद्राकुमार अभिमन्यु अपने सब सुहृज्जनोंको तथा राजा युधिष्ठिरको आनन्दित करता हुआ कौरव-सेनाके भीतर घुसता जा रहा है । इस युद्धमें इसके समान् धनुर्धर मैं किसी दूसरेको नहीं मानता । यह चाहे तो इस सेनाका संहार कर सकता है । पर यह ऐसा चाहता क्यों नहीं है ?'

दुर्योधन अभिमन्युके पराक्रमको देखकर दंग हो गया, परंतु करता क्या ? आचार्य द्रोणकी आलोचना करते हुए कहने लगा । कर्ण ! यह अर्जुनका मूढ़ पुत्र द्रोणके द्वारा रक्षित होकर अपनेको बड़ा पराक्रमशाली समझ रहा है । ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ आचार्य द्रोण तो उच्चकोटिके धनुर्धरोंके आचार्य हैं, अपने शिष्यका पुत्र समझकर इसे छोड़ रहे हैं ।' परंतु दुर्योधनके उकसानेपर भी कौरवसेनाके महारथी एक-एक करके अभिमन्युसे हार खाने लगे । उसकी युद्ध-कलाकी कुशलताका वर्णन गुरु द्रोणने द्रोणपर्वके ४८ वें अध्यायमें किया है । जिसे सुनकर कौरवोंका पक्षपाती कर्ण भी बोल उठा—

स्थातव्यमिति तिष्ठामि पीड्यमानोऽभिमन्युना ।
तेजस्विनः कुमारस्य शराः परमदारुणा ॥
क्षिण्वन्ति हृदयं मेऽद्य घोराः पावकतेजसः ।

(द्रोण० ४८ । २५)

'अभिमन्युके द्वारा पीड़ित होकर, मुझे युद्धभूमिसे भागना नहीं चाहिये, इसी विचारसे मैं ठहरा हूँ । तेजस्वी सुभद्राकुमारके बाण परम दारुण हैं, आज उसके अग्निके समान तेज और भयंकर बाण मेरे हृदयको छलनी कर रहे हैं ।'

द्रोणाचार्यने कर्णकी इस बातका समर्थन करते हुए कहा कि 'जबतक इसके हाथमें धनुषबाण है, तबतक इसे देवता और असुरोंके समूह भी नहीं जीत सकते । इसलिये इसको रथ और धनुषसे रहित कर दो ।

सधनुष्को न शक्योऽयमपि जेतुं सुरासुरैः ।
विरथं विधनुष्कं च कुरुष्वैनं यदीच्छसि ॥

(द्रोण० ४८ । ३०-३१)

तत्पश्चात् महाभारतके युद्धका सबसे बड़ा अन्याय सामने आया । एक वीर बालकके विरुद्ध छः महारथी योद्धाओंने चारों ओरसे बाण-वर्षा करके उसको धनुर्विहीन कर दिया, रथविहीन कर दिया । उसे निहत्था करके आघात करते गये, और अन्तमें उसे मार डाला ।

महात्मा संजय कहते हैं कि—

द्रोणकर्णमुखैः षड्भिर्धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
एकोऽयं निहतः शेते नैष धर्मो मतो हि नः ॥

(द्रोण० ४९ । २२)

'द्रोण, कर्ण आदि छः कौरव महारथियोंने अकेले अभिमन्युको मार डाला, मेरे विचारसे यह धर्मविरुद्ध है । परंतु वे कौरव महारथी युद्धमें अभिमन्युसे संत्रस्त होकर ही इस धर्मविरुद्ध कार्यपर उतारू हुए थे । अभिमन्युकी अद्भुत वीरताका यह एक स्पष्ट प्रमाण है । अभिमन्युके इस युद्धकी विशिष्टताके कारण द्रोणपर्वके अन्तर्गत ३३ वें अध्यायसे लेकर ७० वें अध्यायतकका अवान्तर भाग अभिमन्यु-वधके नामसे अभिहित हुआ है, इस पर्वमें अभिमन्युकी वीरताका विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है, जो महाभारतके युद्धमें विशेषरूपसे दर्शनीय है । इसीसे भगवान् श्रीकृष्णने अपनी बहिन सुभद्राको सान्त्वना देते हुए कहा था—

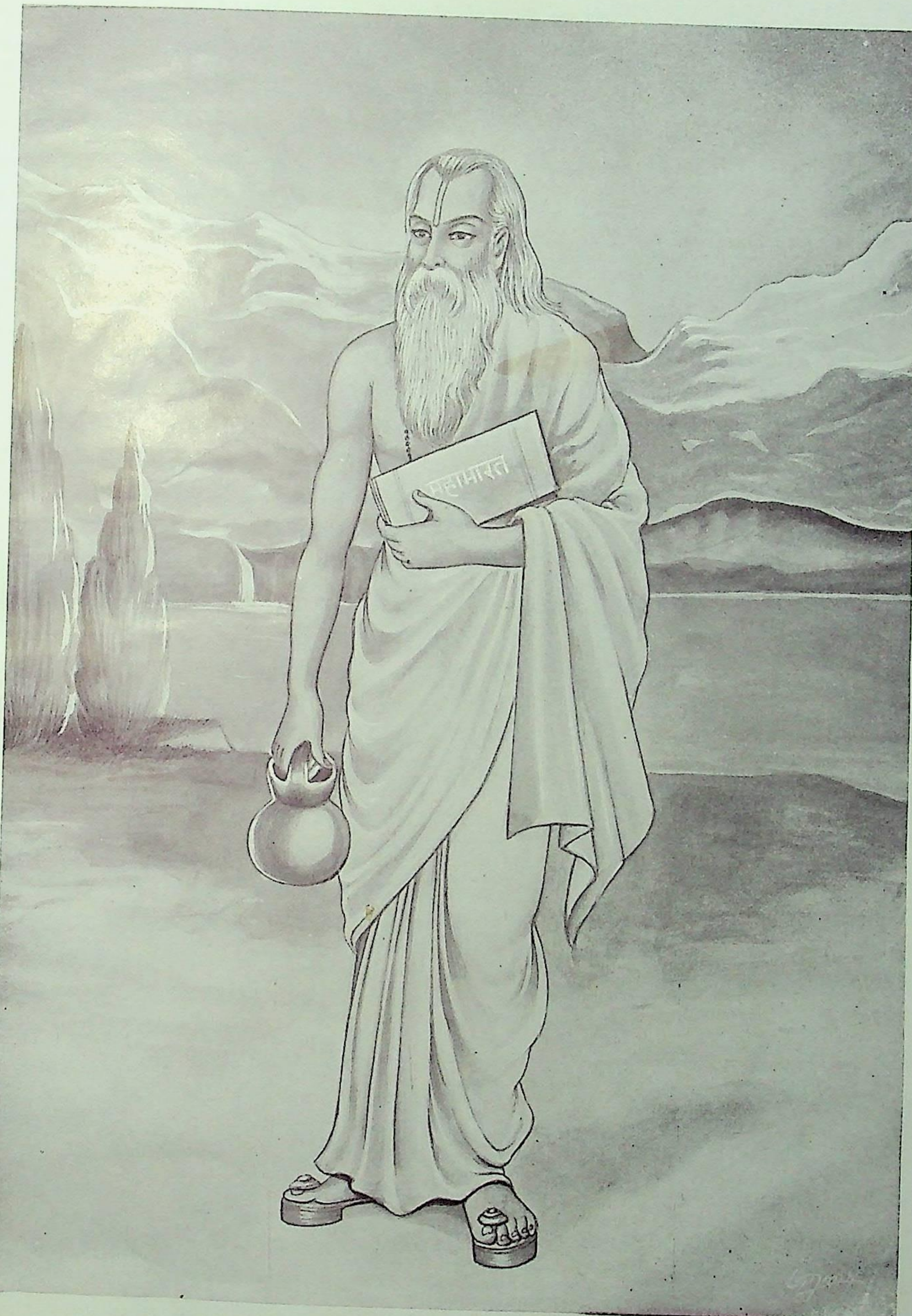
क्षत्रधर्मं पुरस्कृत्य गतः शूरः सतां गतिम् ।
यां गतिं प्राप्नुयामेह ये चान्ये शस्त्रजीविनः ॥

(द्रोण० ७७ । २१)

'बहिन ! 'शूरवीर अभिमन्युने क्षत्रिय-धर्मकी शोभा बढ़ाकर संतपुरुषोंको प्राप्त होनेवाली वह गति पायी है जिसको हमलोग तथा इस संसारके सभी शस्त्रधारी क्षत्रिय प्राप्त करना चाहते हैं ।'

भगवान् वेदव्यास

भगवान् वेदव्यास महर्षि पराशरके पुत्र थे । ये कैवर्तराजकी पोष्यपुत्री सत्यवतीके गर्भसे जन्मे थे । व्यासजी एक अलौकिक शक्तिसम्पन्न महापुरुष थे । ये एक महान् कारक पुरुष थे । इन्होंने लोगोंकी धारणाशक्तिको क्षीण होते देख वेदोंके ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये चार विभाग किये और एक-एक संहिता अपने एक-एक शिष्यको पढ़ा दी । एक-एक संहिताकी फिर अनेकों शाखा-प्रशाखाएँ हुईं । इस प्रकार इन्हींके प्रयत्नसे वैदिक वाङ्मयका बहुवि-



भगवान् वेदव्यास

विस्तार हुआ। व्यास कहते हैं विस्तारको; क्योंकि वेदोंका विस्तार इन्हींसे हुआ, इसलिये ये वेदव्यासके नामसे प्रसिद्ध हुए। इनका जन्म एक द्वीपके अंदर हुआ था और इनका वर्ण श्याम था, इसलिये इन्हें लोग कृष्णद्वैपायन भी कहते हैं। बदरीवनमें रहनेके कारण इनका एक नाम बादरायण भी है। अठारह पुराण एवं महाभारतकी रचना इन्हींके द्वारा हुई और संक्षेपमें उपनिषदोंका तत्त्व समझानेके लिये इन्होंने ब्रह्मसूत्रोंका निर्माण किया, जिसपर भिन्न-भिन्न आचार्योंने भिन्न-भिन्न भाष्योंकी रचना कर अपना-अपना अलग मत स्थापित किया। व्यासस्मृतिके नामसे इनका रचा हुआ एक स्मृतिग्रन्थ भी उपलब्ध होता है। इस प्रकार भारतीय वाङ्मय एवं हिंदू-संस्कृतिपर व्यासजीका बहुत बड़ा ऋण है। श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त सनातन धर्मके व्यासजी एक प्रधान व्याख्याता कहे जा सकते हैं। इनके उपकारसे हिंदू-जाति कदापि उऋण नहीं हो सकती। जबतक हिंदू-जाति और भारतीय संस्कृति जीवित है, तबतक इतिहासमें व्यासजीका नाम अमर रहेगा। ये जगत्के एक महान् पथप्रदर्शक और शिक्षक कहे जा सकते हैं। इसीसे इन्हें जगद्गुरु कहलानेका गौरव प्राप्त है। गुरुपूर्णिमा (अषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा) के दिन प्रत्येक आस्तिक हिंदू गृहस्थ इनकी पूजा करता है। भगवद्गीता-जैसा अनुपम रत्न भी संसारको व्यासजीकी कृपासे ही प्राप्त हुआ। इन्होंने ही भगवान् श्रीकृष्णके उस अमर उपदेशको अपनी महाभारतसंहितामें ग्रथितकर उसे संसारके लिये सुलभ बना दिया।

महर्षि वेदव्यास त्रिकालदर्शी एवं इच्छागति हैं। वे प्रत्येकके मनकी बात जान लेते हैं और इच्छा करते ही जहाँ जाना चाहें वहीं पहुँच जाते हैं। ये जन्मते ही अपनी माताकी आज्ञा लेकर वनमें तपस्या करने चल दिये। जाते समय ये मातासे कह गये कि 'जब कभी तुम्हें मेरी आवश्यकता जान पड़े, तुम मुझे याद कर लेना। मैं उसी समय तुम्हारे पास चला आऊँगा।'

जब पाण्डव विदुरजीकी बतायी हुई युक्तिका अनुसरण कर लाक्षाभवनसे निकल भागे और एकचक्रा नगरीमें जाकर रहने लगे, उन दिनों व्यासजी उनके पास उनसे मिलनेके लिये आये और प्रसङ्गवश उन्होंने उन्हें द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाकर यह बताया कि 'वह कन्या तुम्हीं लोगोंके लिये पहलेसे निश्चित है।' इस बातको सुनकर पाण्डवोंको बड़ी प्रसन्नता एवं उत्सुकता हुई। और वे द्रुपदकुमारीके स्वयंवरमें सम्मिलित होनेके लिये पाञ्चालनगरकी ओर चल पड़े। वहाँ जाकर जब अर्जुनने स्वयंवरकी शर्त पूरी करके द्रौपदीको जीत लिया और माता कुन्तीकी आज्ञासे पाँचों भाइयोंने उससे विवाह करना चाहा, तब राजा द्रुपदने इसपर आपत्ति की। उसी समय व्यासजी वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने द्रुपदको द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त सुनाकर पाँचों भाइयोंके साथ अपनी कन्याका विवाह करनेके लिये राजी कर लिया।

महाराज युधिष्ठिरने जब इन्द्रप्रस्थमें राजसूय यज्ञ किया, उस समय भी वेदव्यासजी यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये अपनी शिष्यमण्डलीके साथ पधारे थे। यज्ञ समाप्त होनेपर वे विदा होनेके लिये युधिष्ठिरके पास आये और बातों-ही-बातोंमें उन्होंने युधिष्ठिरको बतलाया कि 'आजसे तेरह वर्ष बाद क्षत्रियोंका महासंहार होगा, जिसमें दुर्योधनके अपराधसे तुम्हीं निमित्त बनोगे।'

× × ×

पाण्डवोंका सर्वस्व छीनकर तथा उन्हें बारह वर्षोंकी लंबी अवधिके लिये वन भेजकर भी दुर्योधनको संतोष नहीं हुआ। वह पाण्डवोंको वनमें ही मार डालनेकी घात सोचने लगा। अपने मामा शकुनि, कर्ण तथा दुःशासनसे सलाह करके उसने चुपचाप पाण्डवोंपर आक्रमण करनेका निश्चय किया और सब लोग शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित रथोंपर सवार होकर वनकी ओर चल पड़े। व्यासजीको अपनी दिव्य दृष्टिसे उनकी इस दुरभिसन्धिका पता लग गया। वे तुरंत उनके पास आये और उन्हें इस घोर दुष्कर्मसे निवृत्त किया। इसके बाद उन्होंने धृतराष्ट्रके पास जाकर उन्हें समझाया कि 'तुमने जुएमें हराकर पाण्डवोंको वनमें भेज दिया, यह अच्छा नहीं किया, इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। तुम यदि अपना तथा अपने पुत्रोंका हित चाहते हो तो अब भी सँभल जाओ, भला! यह कैसी बात है कि दुरात्मा दुर्योधन राज्यके लोभसे पाण्डवोंको मार डालना चाहता है। मैं कहे देता हूँ कि अपने इस लाड़ले बेटेको इस कामसे रोक दो। वह चुपचाप घर बैठा रहे। यदि उसने पाण्डवोंको मार डालनेकी चेष्टा की, तो वह स्वयं अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठेगा। यदि तुम अपने पुत्रकी द्वेष-बुद्धि मिटानेकी चेष्टा नहीं करोगे तो बड़ा अनर्थ होगा। मेरी सम्मति तो यह है कि दुर्योधन अकेला ही वनमें जाकर पाण्डवोंके पास रहे। सम्भव है पाण्डवोंके सत्सङ्गसे उसका द्वेषभाव दूर होकर प्रेमभाव जाग्रत् हो जाय। परंतु यह बात है बहुत कठिन; क्योंकि जन्मगत स्वभावका बदल जाना सहज नहीं है। यदि तुम कुरुवंशियोंकी रक्षा और उनका जीवन चाहते हो तो अपने पुत्रसे कहो कि वह पाण्डवोंके साथ मेल कर ले।' व्यासजीने धृतराष्ट्रसे यह भी कहा कि 'थोड़ी ही देरमें महर्षि मैत्रेयजी यहाँ आनेवाले हैं। वे तुम्हारे पुत्रको पाण्डवोंसे मेल कर लेनेका उपदेश देंगे। वे जैसा कहें, बिना सोचे-विचारे तुम लोगोंको वैसा ही करना चाहिये। यदि उनकी बात नहीं मानोगे तो वे क्रोधवश शाप दे देंगे।' परंतु दुष्ट दुर्योधनने उनकी बात नहीं मानी और फलतः उसे महर्षि मैत्रेयका कोपभाजन बनना पड़ा।

× × ×

व्यासजी त्रिकालदर्शी तो थे ही, उनका सामर्थ्य भी

अद्भुत था। जब पाण्डव लोग वनमें रहते थे, उस समय इन्होंने एक दिन उनके पास जाकर युधिष्ठिरके द्वारा अर्जुनको प्रतिस्मृति-विद्याका उपदेश दिया, जिससे उनमें देवदर्शनकी योग्यता आ गयी। इतना ही नहीं, इन्होंने संजयको दिव्य दृष्टि दे दी, जिसके प्रभावसे उन्हें युद्धकी सारी बातोंका ही ज्ञान ही नहीं हुआ; उनमें भगवान्‌के विश्वरूप एवं दिव्य चतुर्भुजरूपके देवदुर्लभ दर्शनकी योग्यता भी आ गयी और वे साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे भगवद्गीताके दिव्य उपदेशका भी श्रवण कर सके, जिसे अर्जुनके सिवा और कोई भी नहीं सुन पाया था। जिस दिव्य-दृष्टिके प्रभावसे संजयमें इतनी बड़ी योग्यता आ गयी, उस दिव्यदृष्टिके प्रदान करनेवाले महर्षि वेदव्यासमें कितना सामर्थ्य होगा—हमलोग इसका ठीक-ठीक अनुमान भी नहीं लगा सकते। वे साक्षात् भगवान् नारायणकी कला ही जो ठहरे।

× × ×

एक बार, जब धृतराष्ट्र और गान्धारी वनमें रहते थे और महाराज युधिष्ठिर भी अपने परिवारके साथ उनसे मिलनेके लिये गये थे, व्यासजी वहाँ आये और यह देखकर कि धृतराष्ट्र और गान्धारीका पुत्रशोक अभीतक दूर नहीं हुआ है और कुन्ती भी अपने पुत्रोंके वियोगसे दुखी है, इन्होंने धृतराष्ट्रसे वर माँगनेको कहा। राजा धृतराष्ट्रने उनसे यह जानना चाहा कि 'महाभारत-युद्धमें उनके जिन कुटुम्बियों और मित्रोंका नाश हुआ है, उनकी क्या गति हुई होगी ? साथ ही उन्होंने व्यासजीसे उन्हें एक बार दिखला देनेकी प्रार्थना की। व्यासजीने उनकी प्रार्थना स्वीकार करते हुए गान्धारीसे कहा कि 'आज रातको ही तुम सब लोग अपने मृत बन्धुओंको उसी प्रकार देखोगे, जैसे कोई सोकर उठे हुए मनुष्योंको देखे। सायंकालका नित्यकृत्य करके व्यासजीकी आज्ञासे सब लोग गङ्गातटपर एकत्रित हुए। व्यासजीने गङ्गाजीके पवित्र जलमें घुसकर पाण्डव एवं कौरवपक्षके योद्धाओंको, जो युद्धमें मर गये थे, आवाज दी। उसी समय जलमें वैसा ही कोलाहल सुनायी दिया, जैसा कौरव-पाण्डवोंकी सेनाओंके एकत्र होनेपर कुरुक्षेत्रके मैदानमें सुन पड़ा था। इसके बाद भीष्म और द्रोणको आगे करके वे सब राजा और राजकुमार, जिन्होंने युद्धमें वीरगति प्राप्त की थी, सहसा जलमेंसे बाहर निकल आये। युद्धके समय जिस वीरका जैसा वेष था, जैसी ध्वजा थी, जो वाहन थे, वे सब ज्यों-के-त्यों वहाँ दिखायी दिये। वे दिव्य वस्त्र और दिव्य मालाएँ धारण किये हुए थे, सबके चमकते हुए कुण्डल पहन रक्खे थे और सबके शरीर दिव्य प्रभासे चम-चम कर रहे थे। सब-के-सब निर्वैर, निरभिमान, क्रोधरहित और डाहसे शून्य प्रतीत हुए थे। गन्धर्व उनका यश गा रहे थे और बंदीजन स्तुति कर रहे थे। उस समय व्यासजीने धृतराष्ट्रको दिव्य नेत्र दे दिये, जिनसे वे उन सारे योद्धाओंको अच्छी तरह देख सके। वह दृश्य अद्भुत, अचिन्त्य और रोमाञ्चकारी था। सब लोगोंने निर्निमेष नेत्रोंसे उस दृश्यको देखा। इसके बाद सब आये हुए योद्धा अपने-अपने सम्बन्धियोंसे क्रोध और वैर छोड़कर मिले। इस प्रकार रातभर प्रेमियोंका वह समागम जारी रहा। इसके बाद वे सब लोग जिस प्रकार आये थे, उसी प्रकार भागीरथीके जलमें प्रवेश करके अपने-अपने लोकोंको चले गये। उस समय वेदव्यासजीने जिन स्त्रियोंके पति वीरगतिको प्राप्त हुए थे, उनको सम्बोधन करके कहा कि 'आपमेंसे जो कोई अपने पतिके लोकमें जाना चाहती हो उन्हें गङ्गाजीके जलमें गोता लगाना चाहिये।' उनके इस वचनको सुनकर बहुत-सी स्त्रियाँ जलमें घुस गयीं और मनुष्यदेहको छोड़कर अपने-अपने पतिके लोकमें चली गयीं। उनके पति जिस प्रकारके दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर आये थे, उसी प्रकारके दिव्य वस्त्राभूषणोंको धारणकर तथा विमानोंमें बैठकर वे अपने-अपने अभीष्ट स्थानोंमें पहुँच गयीं।

इधर राजा जनमेजयने वैशम्पायनजीके मुखसे जब यह अद्भुत वृत्तान्त सुना तो उनके मनमें बड़ा कौतूहल हुआ और उन्होंने भी अपने स्वर्गवासी पिता महाराज परीक्षित्‌के दर्शन करने चाहे। व्यासजी वहाँ मौजूद ही थे। उन्होंने राजाकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये उसी समय राजा परीक्षित्‌को वहाँ बुला दिया। जनमेजयने यज्ञान्त-स्नानके अवसरपर अपने साथ अपने पिताको भी स्नान कराया और इसके बाद परीक्षित् वहाँसे चले गये। इस प्रकार महर्षि वेदव्यासजीने अपने अलौकिक सामर्थ्यका प्रकाश किया। महर्षि वेदव्यास वास्तवमें एक अद्भुत शक्तिशाली महापुरुष थे। महाभारतके रचयिता उन महर्षिके पुनीत चरणोंमें मस्तक नवाकर हम अपने इस लेखको समाप्त करते हैं।

गुरु द्रोणाचार्य

आचार्य द्रोण भरद्वाज मुनिके पुत्र थे। महर्षि भरद्वाज अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे। उन्होंने महर्षि अग्निवेशको आग्नेय अस्त्रकी शिक्षा दी थी। अग्निवेश मुनिने अपने गुरुपुत्र द्रोणको आग्नेय नामक महान् अस्त्रकी शिक्षा दी थी। पाञ्चाल देशके राजाका पुत्र द्रुपद भी द्रोणके साथ भरद्वाज मुनिके आश्रममें विद्याध्ययन करता था।

कुछ दिनोंके बाद जब भरद्वाज मुनिका शरीरान्त हो गया तो द्रोण उसी आश्रममें रहकर तपस्या करने लगे। वे वेद-वेदाङ्गोंमें पारङ्गत तो थे ही, तपस्याके द्वारा अति तेजस्वी हो गये और उनका यश चारों ओर फैल गया। द्रोणाचार्यका ब्याह शरद्वान् मुनिकी पुत्री कृपीसे हुआ था, जो कृपाचार्यकी बहिन थी। कृपीसे द्रोणको एक पुत्र

उत्पन्न हुआ, जो अश्वत्थामाके नामसे अमर हो गया है।

उस समय सर्वज्ञ तथा समस्त शस्त्रास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ परशुरामजी महेन्द्र पर्वतपर तप करते थे। द्रोणने यह सुनकर कि, परशुरामजीके पास सम्पूर्ण धनुर्वेद तथा दिव्यास्त्रोंका ज्ञान है और वे ब्राह्मणोंको सर्वस्व दान करना चाहते हैं, अपनी शिष्यमण्डलीके साथ वहाँ गये और उनके चरणोंकी वन्दना करके उनसे प्रयोग, रहस्य तथा संहारविधि-सहित सारे अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया। साथ ही रहस्य और व्रतके साथ समस्त धनुर्वेदका उपदेश भी प्राप्त किया।

तत्पश्चात् द्रोण अपने मित्र द्रुपदके पास गये। द्रुपद उस समय पाञ्चाल-नरेश थे। द्रोणने द्रुपदसे कहा—"राजन्! मैं आपका बालसखा हूँ; आपसे मिलने आया हूँ।" मित्र द्रोणके इस प्रकार प्रेमपूर्वक कहनेपर भी द्रुपदको यह बात सह्य न हुई। ऐश्वर्यके मदसे उन्मत्त होकर द्रुपद कहने लगे—"तुम मूढ़ हो। उन पुरानी लड़कपनकी बातोंको अब भी ढो रहे हो। अब उसको मनसे निकाल दो—

न दरिद्रो वसुमतो नाविद्वान् विदुषः सखा।
न शूरस्य सखा क्लीबः सखिपूर्वं किमिष्यते॥

'सच तो यह है कि दरिद्र मनुष्य धनवान्का, मूर्ख विद्वान्का तथा कायर शूरवीरका सखा नहीं हो सकता। अतएव पहलेकी मित्रताका क्या भरोसा करते हो?'

द्रुपदकी यह बात सुनकर द्रोण क्रोधसे जल उठे और बिना कुछ कहे, वहाँसे उठकर हस्तिनापुरकी ओर चल दिये।* वहाँ जाकर कृपाचार्यके घर ठहरे। द्रोणको वहाँ कोई दूसरा नहीं जानता था।

एक दिन कौरव-पाण्डव, सभी वीरकुमार हस्तिनापुरके बाहर गुल्ली-डंडा खेल रहे थे। दैवात् गुल्ली कुएँमें गिर गयी। राजकुमारोंका खेल बंद हो गया। उनकी समझमें नहीं आ रहा था कि क्या करें! इतनेमें एक ब्राह्मणको उधरसे जाते देखकर राजकुमारोंने उनको पकड़ा और गुल्ली कुएँसे निकाल देनेका आग्रह करने लगे। वह ब्राह्मण स्वयं द्रोण थे।

द्रोणने मुट्ठीभर सींकोंको लेकर अभिमन्त्रित करके उसमें बलका संचार किया और एक सींकसे गुल्लीको बींध दिया; उसके बाद उस सींकको दूसरी सींकसे, दूसरीको तीसरीसे—इस प्रकार करते हुए सींकोंकी रस्सी बना दी, और उन लड़कोंने उसे पकड़कर गुल्ली निकाल ली। यह अद्भुत कर्म देखकर राजकुमारोंके नेत्र आनन्दसे खिल उठे। इसके बाद राजकुमारोंने एक अँगूठी कुएँमें डाल दी और द्रोणाचार्यको उसे निकालनेके लिये कहा। द्रोणने उस अँगूठीको भी उसी प्रकार सींकके बाणोंसे बींधकर कुएँसे बाहर निकाल दिया और उन आश्चर्यचकित कुमारोंके हाथमें उसे दे दिया, परंतु वह स्वयं तनिक भी विस्मित न हुए। तब राजकुमार बोले—

अभिवादयामहे ब्रह्मन् नैतदन्येषु विद्यते।
कोऽसि कस्यासि जानीमो वयं किं करवामहे॥
(आदि० १३० । ३४)

'ब्रह्मन्! हम आपको प्रणाम करते हैं। यह अद्भुत अस्त्रकौशल और किसीमें नहीं है। आप कौन हैं, किसके पुत्र हैं, हम जानना चाहते हैं, बताइये—हम आपकी क्या सेवा करें?'

द्रोणने उत्तर दिया—'मेरे रूप और गुणोंकी बात भीष्मसे जाकर कहो, वही तुमलोगोंको मेरा परिचय बता देंगे।'

राजकुमारोंने जाकर भीष्मजीसे सब बातें कह सुनायीं। भीष्मजीने तुरंत समझ लिया कि द्रोणाचार्यके सिवा यह कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है। राजकुमारोंके साथ आकर भीष्मने द्रोणका स्वागत किया और उनको आचार्यके पदपर प्रतिष्ठित करके राजकुमारोंकी शिक्षा-दीक्षाका कार्य सौंप दिया। उस समय भीष्मने द्रोणकी अभ्यर्थना जिन शब्दोंमें की थी उससे उस युगके वीर क्षत्रियोंकी ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति-भावनाका अच्छा निदर्शन प्राप्त होता है—

कुरूणामस्ति यद्वित्तं राज्यं चेदं सराष्ट्रकम्।
त्वमेव परमो राजा सर्वे च कुरवस्तव॥
यच्च ते प्रार्थितं ब्रह्मन्कृतं तदिति चिन्त्यताम्।
दिष्ट्या प्राप्तोऽसि विप्रर्षे महान्मेऽनुग्रहः कृतः॥
(आदि० १३० । ७८-७९)

'हे ब्रह्मन्! कुरुवंशका जो धन है तथा राष्ट्रोंके सहित जो यह राज्य है, इसके आप ही परम राजा हैं, और सभी कुरुवंशी आपके सेवक हैं। आपको जिस वस्तुकी इच्छा होगी, उसको आप प्राप्त हुआ ही समझिये। हे विप्रर्षे! आपने बड़ी कृपा की, बड़े भाग्यसे प्राप्त हुए।' उस समय कुरुवंशके राजकुमारोंके लिये गुरु-रूपमें वरण करके भीष्मने द्रोणको बहुत धन प्रदान किया,

* इस अपमानसे द्रोणके मनमें वैर बँध गया। और आगे चलकर जब कौरव-पाण्डव-कुमारोंको धनुर्वेदकी शिक्षा दे चुके तब गुरुदक्षिणामें द्रुपदको पराजित करके पकड़ लानेके लिये कुमारोंसे कहा, और स्वयं सब शिष्योंको सेनासहित लेकर पाञ्चाल देशपर चढ़ाई कर दी। कर्णसहित कौरवोंको तो हार खानी पड़ी, परंतु अर्जुनने भीम तथा सहदेव और नकुलको साथ लेकर युद्ध करके पाञ्चालोंको पराजित करके द्रुपदको पकड़कर द्रोणके सामने उपस्थित कर दिया। द्रोणने द्रुपदके साथ मित्रवत् व्यवहार किया, और कहा कि भागीरथीके दक्षिण आप राज्य करें और उत्तरमें मैं राज्य करूँगा। मुझे आप अपना पूर्ववत् सखा समझें।

और रहनेके लिये धन-धान्यसे भरपूर सुन्दर गृहकी व्यवस्था कर दी ।

तत्पश्चात् द्रोणाचार्य राजकुमारोंको शिक्षा देने लगे । द्रुपदद्वारा किये गये अपमानको वे नहीं भूले । एक दिन उन्होंने राजकुमारोंसे कहा कि, "मेरे हृदयमें एक आकाङ्क्षा है, जो मुझे सदा चिन्तित रखती है, उसकी पूर्ति शस्त्रास्त्रके द्वारा हो सकती है । क्या तुममें कोई मेरे इस कार्यको सिद्ध कर सकता है ?"—यह सुनकर सब राजकुमार चुप हो गये । केवल अर्जुनने आगे बढ़कर कहा—'गुरुदेव ! मैं आपकी उस आकाङ्क्षाको पूरा करनेकी प्रतिज्ञा करता हूँ ।'—द्रोणाचार्य अर्जुनके इस उत्तरको सुनकर हर्षित हो उठे । उन्होंने अर्जुनको हृदयसे लगा लिया । तत्पश्चात् अर्जुनके प्रति आचार्यकी विशेष प्रीति हो गयी और वह आजीवन बनी रही । अर्जुन भी आचार्यके प्रति सबसे अधिक भक्तिभावपूर्ण थे । आचार्यने प्रीतिपूर्वक नाना प्रकारके दिव्य और मानुष शस्त्रास्त्रोंकी शिक्षा राजकुमारोंको दी । गुरु द्रोणकी ख्याति चारों ओर फैल गयी । धीरे-धीरे वृष्णि, अन्धक तथा अन्यान्य देशोंके युवक उनकी सेवामें शस्त्रास्त्र-ज्ञान प्राप्त करने आये । गुरु द्रोणकी कृपा तथा अपनी सेवा और लगनके कारण अर्जुन सब राजकुमारोंमें अग्रगण्य हो गये ।

एक बार गुरु द्रोण अपने शिष्योंके साथ वनमें जा रहे थे । राजकुमारोंके साथ एक कुत्ता भी था । राजकुमार मृगया-के लिये वनमें आगे बढ़े, कुत्ता आगे-आगे जा रहा था । अचानक कुत्ता वापस आता दिखायी दिया । राजकुमारोंने देखा कि उसका मुँह बाणोंसे भर गया है । यह देखकर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि भला यह दूसरा कौन धनुर्धर है जो इतना लघुहस्त है । आचार्य द्रोणके साथ-साथ सब राजकुमार कुत्तेके पीछे-पीछे आगे बढ़े । कुछ दूर जानेपर देखते क्या हैं कि एक भीलकुमार आचार्य द्रोणकी प्रतिमा खड़ी करके उसकी विधिवत् पुष्पादिके द्वारा पूजा कर रहा है । आचार्यने उसे देखते ही पहचान लिया कि वह भीलकुमार एकलव्य है, जिसको भील होनेके कारण आचार्यने शिष्य बनानेसे इन्कार कर दिया था ।

आचार्यको देखते ही एकलव्य दौड़कर उनके चरणोंमें गिर पड़ा । द्रोणाचार्य नहीं चाहते थे कि उनके प्रिय शिष्य अर्जुनसे बढ़कर कोई दूसरा धनुर्धर हो, इसलिये जब एकलव्यने कहा कि, 'भगवन् ! मैं आपका शिष्य एकलव्य हूँ'—तब द्रोणाचार्यने उससे गुरुदक्षिणामें दाहिने हाथका अँगूठा माँगा । और एकलव्यने प्रसन्नचित्तसे अँगूठा काटकर गुरुके चरणोंमें रख दिया तथा विश्वमें अक्षय कीर्ति प्राप्त की ।

द्रोणाचार्य स्वभावतः अपने शिष्यों—कौरवों और पाण्डवों, दोनोंका हित चाहते थे । अतएव पाण्डवोंके साथ किये जानेवाले कौरवोंके अत्याचारको वे पसंद नहीं करते थे । लाक्षागृहकी दुर्घटनाके बाद जब पाण्डवोंका द्रुपदकी राजसभामें द्रौपदीकी प्राप्तिका समाचार हस्तिनापुरमें पहुँचा, तब भीष्मने कहा कि, 'मेरे लिये जैसे पाण्डुके पुत्र हैं, वैसे कौरव हैं । उनको बुलाकर आधा राज्य प्रदान कर देना चाहिये ।" इसपर द्रोणाचार्यने कहा था कि—

> ममाप्येषा मतिस्तात या भीष्मस्य महात्मनः ।
> संविभज्यास्तु कौन्तेया धर्म एष सनातनः ॥
> (आदि० २०३ । २)

'हे राजन् ! मेरा भी यही विचार है जो महात्मा भीष्मका है । और सनातन धर्म भी यही है कि पाण्डवोंको आधा राज्य दे देना चाहिये ।'

द्रोणाचार्य अपने प्रिय शिष्य अर्जुनकी, जब अवसर आता, प्रशंसा किये बिना नहीं चूकते थे । आचार्यके मुखसे अर्जुनकी प्रशंसा कर्णको प्रायः असह्य हो उठती थी । पाण्डवोंके अज्ञातवासके बाद गोहरणपर्वमें जब विराटकी गायोंको हाँक ले जानेके लिये कौरव-सेना पहुँची तो आचार्य द्रोण 'एष वीरः महेष्वासः सर्व-शस्त्रभृतां वरः' इत्यादि वाक्योंसे अर्जुनकी प्रशंसा करने लगे, तब कर्ण बोला—

> सदा भवान् फाल्गुनस्य गुणैरस्मान् विकत्थसे ।
> न चार्जुनः कलापूर्णो मम दुर्योधनस्य च ॥
> (विराट० ३९ । १४)

'आप तो सदा अर्जुनके गुणोंका वर्णन करके हमारा अनादर करते रहते हैं, और अर्जुन मेरी और दुर्योधनकी बराबरी नहीं कर सकता ।'

इस अवसरपर अर्जुनने विराटकुमार उत्तरसे इस प्रकार आचार्य द्रोणका परिचय दिया है—

> दीर्घबाहुर्महातेजा बलरूपसमन्वितः ।
> सर्वलोकेषु विक्रान्तो भारद्वाजः प्रतापवान् ॥
> बुद्ध्या तुल्यो ह्युशनसा बृहस्पतिसमो नये ।
> वेदास्तथैव चत्वारो ब्रह्मचर्यं तथैव च ॥
> ससंहाराणि सर्वाणि दिव्यान्यस्त्राणि मारिष ।
> धनुर्वेदश्च कार्त्स्न्येन यस्मिन् नित्यं प्रतिष्ठितः ॥
> क्षमा दमश्च सत्यं च आनृशंस्यमथार्जवम् ।
> एते चान्ये च बहवो यस्मिन् नित्यं द्विजे गुणाः ॥
> तेनाहं योद्धुमिच्छामि महाभागेन संयुगे ॥
> (विराट० ५८ । ५—८½)

"भरद्वाज ऋषिके पुत्र आचार्य द्रोण दीर्घबाहु हैं; महातेजस्वी हैं, बलवान् और रूपवान् हैं, सब लोकोंमें विक्रान्त और प्रतापी हैं, बुद्धिमें शुक्राचार्य और नीतिमें बृहस्पतिके तुल्य हैं, चारों वेदोंके ज्ञाता हैं, ब्रह्मचर्य-व्रती हैं, संहार सहित

सारे दिव्य अस्त्रोंके ज्ञाता हैं, सारा धनुर्वेद उनके भीतर प्रतिष्ठित है। क्षमा, दम, सत्य, सौजन्य, सरलता—तथा इसी प्रकारके बहुतसे गुण जिस ब्राह्मणमें नित्य विद्यमान रहते हैं, उस महाभाग आचार्य द्रोणसे मैं युद्ध करना चाहता हूँ।'—अर्जुनकी इस उक्तिसे स्पष्ट हो जाता है कि गुरु द्रोण गुणोंके सिन्धु थे। उन्होंने जब रथपर अर्जुनको युद्धके लिये उद्यत देखा तो भीष्मसे कहा कि 'पाण्डव राज्यसे वञ्चित कर दिये गये हैं, इसलिये आज तपस्याके द्वारा दुर्धर्ष अर्जुन दुर्योधनको क्षमा नहीं कर सकता। अतः हमलोगोंको ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि वह दुर्योधनके पास न पहुँच सके।' अर्जुन उनका प्रिय शिष्य था तथापि आचार्य द्रोण दुर्योधनका अनिष्ट नहीं देख सकते थे। यह उनकी हृदयकी विशालताका द्योतक है।

आचार्य द्रोण भीष्मपितामहकी बातोंका सदा ही समर्थन करते थे; क्योंकि भीष्मकी नीति कौरव और पाण्डवोंमें मेल करानेकी थी, वह गृहयुद्ध पसंद नहीं करते थे। आचार्य द्रोणकी भी यही नीति थी; क्योंकि कौरव और पाण्डव, दोनों ही उनके शिष्य थे। और वे दोनोंका ही कल्याण चाहते थे। कर्ण जब डींग हाँककर पाण्डवोंके विरुद्ध दुर्योधनको बढ़ावा देता था तो भीष्म उसको फटकारते और पाण्डवोंकी शक्तिका बखान करके उनसे संधि करनेका परामर्श कौरवोंको देते। ऐसे अवसरोंपर आचार्य द्रोण बराबर भीष्मका समर्थन करते थे। इसका फल यह हुआ कि दुर्योधन कर्णको तो अपना पक्षपाती, पर भीष्म और द्रोणको पाण्डवोंका पक्षपाती समझता था; परंतु पक्षपातका दोषारोपण मिथ्या था। वे तो दोनोंका ही कल्याण चाहते थे।

वासुदेव भगवान् श्रीकृष्ण जब संधिकार्यमें सफल न हुए, दुरात्मा दुर्योधनने उनकी शुभ सम्मतिकी पूर्ण उपेक्षा कर दी, और युद्ध होना निश्चय हो गया तो बड़े दुःखसे आचार्य द्रोणने कहा—

अश्वत्थाम्नि यथापुत्रे भूयो मम धनंजये।
बहुमानः परो राजन् संनतिश्च कपिध्वजे॥
तं च पुत्रात् प्रियतरं प्रतियोत्स्ये धनंजयम्।
क्षात्रं धर्ममनुष्ठाय धिगस्तु क्षत्रजीविकाम्॥

(उद्योग० १३९। ४-५)

'हे राजन्! अश्वत्थामाके समान ही अर्जुनमें मेरी अतिशय प्रीति है। अर्जुन मेरा बड़ा सत्कार करता है और अत्यन्त नम्र रहता है। वह अर्जुन मुझे पुत्रसे भी प्रिय है। क्षात्र धर्मका पालन करनेके लिये उसके विरुद्ध भी मैं युद्ध करूँगा, धिक्कार है इस क्षत्रजीविकाको!'

पश्चात् महाभारतके युद्धमें अद्भुत पराक्रम प्रदर्शित कर आचार्य द्रोण द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्नके द्वारा मारे गये।

महात्मा विदुर

महात्मा विदुर साक्षात् धर्मके अवतार थे। माण्डव्य ऋषिके शापसे इन्हें शूद्रयोनिमें जन्म ग्रहण करना पड़ा। ये महाराज विचित्रवीर्यकी दासीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। इस प्रकार ये धृतराष्ट्र और पाण्डुके एक प्रकारसे सगे भाई ही थे। ये बड़े ही बुद्धिमान्, नीतिज्ञ, धर्मज्ञ, विद्वान्, सदाचारी एवं भगवद्भक्त थे। इन्हीं गुणोंके कारण सब लोग इनका बड़ा सम्मान करते थे। ये बड़े निर्भीक एवं सत्यवादी थे तथा धृतराष्ट्र आदिको बड़ी नेक सलाह दिया करते थे। ये धृतराष्ट्रके मन्त्री भी थे। दुर्योधन जन्मते ही गधेकी भाँति रेंकने लगा था और उसके जन्मके समय अनेक अमङ्गलसूचक उत्पात भी हुए। यह सब देखकर इन्होंने ब्राह्मणोंके साथ राजा धृतराष्ट्रसे कहा कि 'आपका यह पुत्र कुलनाशक होगा, इसलिये इसे त्याग देना ही श्रेयस्कर है। इसके जीवित रहनेपर आपको दुःख उठाना पड़ेगा। शास्त्रोंकी आज्ञा है कि कुलके लिये एक मनुष्यका, ग्रामके लिये कुलका, देशके लिये एक ग्रामका और आत्माके लिये सारी पृथ्वीका परित्याग कर देना चाहिये।' धृतराष्ट्रने मोहवश विदुरकी बात नहीं मानी। फलतः उन्हें दुर्योधनके कारण जीवनभर दुःख उठाना पड़ा और अपने जीते-जी कुलका नाश देखना पड़ा। महात्माओंकी हितभरी वाणीपर ध्यान न देनेसे दुःख ही उठाना पड़ता है!

जब दुर्योधन पाण्डवोंपर अत्याचार करने लगा तो इनकी सहानुभूति स्वाभाविक ही पाण्डवोंके प्रति हो गयी; क्योंकि एक तो वे पितृहीन थे और दूसरे धर्मात्मा थे। ये प्रत्यक्षरूपमें तथा गुप्तरूपसे भी बराबर उनकी रक्षा एवं सहायता करते रहते थे। धर्मात्माओंके प्रति धर्मकी सहानुभूति होनी ही चाहिये और विदुर सक्षात् धर्मके अवतार थे। ये जानते थे कि पाण्डवोंपर चाहे कितनी ही विपत्तियाँ क्यों न आवें, अन्तमें विजय उनकी ही होगी—'यतो धर्मस्ततो जयः।' इन्हें यह भी मालूम था कि पाण्डव सब दीर्घायु हैं, अतः उन्हें कोई मार नहीं सकता। इसीलिये जब दुर्योधनने खेल-ही-खेलमें भीमसेनको विष खिलाकर गङ्गाजीमें बहा दिया और उनके घर न लौटनेपर माता कुन्तीको चिन्ताके साथ-साथ दुर्योधनकी ओरसे अनिष्टकी भी आशङ्का हुई तो इन्होंने जाकर उन्हें समझाया कि 'इस समय चुप साध लेना ही अच्छा है। दुर्योधनके प्रति आशङ्का प्रकट करना खतरेसे खाली नहीं है। इससे वह और चिढ़ जायगा, जिससे तुम्हारे दूसरे पुत्रोंपर भी आपत्ति आ सकती है। भीमसेन मर नहीं सकता, वह शीघ्र ही लौट आयेगा।' कुन्तीने विदुरजीकी

नीतिपूर्ण सलाह मान ली । उनकी बात बिल्कुल यथार्थ निकली । भीमसेन कुछ ही दिनों बाद जीते-जागते लौट आये ।

लाक्षाभवनसे बेदाग बचकर निकल भागनेकी युक्ति भी पाण्डवोंको विदुरने ही बतायी थी। ये नीतिज्ञ होनेके साथ-साथ कई भाषाओंके भी जानकार थे। जिस समय पाण्डव लोग वारणावत जा रहे थे, उसी समय इन्होंने म्लेच्छ-भाषामें युधिष्ठिरको उनपर आनेवाली विपत्तिकी सूचना दे दी और साथ ही उससे बचनेका उपाय भी समझा दिया। इतना ही नहीं, इन्होंने पहलेसे ही एक सुरंग खोदनेवालेको लाक्षाभवनमेंसे निकल भागनेके लिये सुरंग खोदनेको कह दिया था। उसने गुप्तरूपसे जमीनके भीतर-ही-भीतर जंगलमें जानेका एक रास्ता बना दिया। लाक्षाभवनमें आग लगाकर पाण्डवलोग माता कुन्तीके साथ उसी रास्तेसे निरापद बाहर निकल आये। गङ्गातटपर इनके पार होनेके लिये विदुरजीने नाविकके साथ एक नौका भी पहलेसे ही तैयार रख छोड़ी थी। उसीसे ये लोग गङ्गापार हो गये। इस प्रकार विदुरजीने बुद्धिमानी एवं नीतिमत्तासे पाण्डवोंके प्राण बचा लिये, दुर्योधन आदिको पता भी न लगने दिया। उन लोगोंने यही समझा कि पाण्डव अपनी माताके साथ लाक्षाभवनमें जलकर मर गये। सर्वत्र केवल शारीरिक बल अथवा अस्त्रबल ही काम नहीं देता। आत्मरक्षाके लिये नीतिबलकी भी आवश्यकता होती है। महात्मा विदुर धर्म एवं शास्त्रज्ञानके साथ-साथ नीतिके भी खजाने थे।

विदुरजी जिस प्रकार पाण्डवोंके प्रति सहानुभूति और प्रेम रखते थे, उसी प्रकार अपने बड़े भाई राजा धृतराष्ट्र एवं उनके पुत्रोंके प्रति भी स्नेह और आत्मीयता रखते थे। उनके हितका ये सदा ध्यान रखते थे और उन्हें बराबर अच्छी सलाह दिया करते थे। 'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः' इस सिद्धान्तके अनुसार अवश्य ही इनकी बातें सत्य एवं हितपूर्ण होनेपर भी दुर्योधनादिको कड़वी लगती थीं। इसीलिये दुर्योधन एवं उसके साथी सदा ही इनसे असंतुष्ट रहते थे। परंतु ये उनकी अप्रसन्नताकी कुछ भी परवा न कर सदा ही उसकी मङ्गल-कामना किया करते थे। और उसे कुमार्गसे हटानेकी अनवरत चेष्टा करते रहते थे। धृतराष्ट्र भी अपने दुरात्मा पुत्रके प्रभावमें होनेके कारण यद्यपि हर समय इनकी बातपर अमल नहीं कर पाते थे और इसीलिये कष्ट भी पाते थे, फिर भी उनका इनपर बहुत अधिक विश्वास था। वे इन्हें बुद्धिमान्, दूरदर्शी एवं अपना परम हितचिन्तक मानते थे और बहुधा इनसे सलाह लिये बिना कोई काम नहीं करते थे। पाण्डवोंके साथ व्यवहार करते समय तो वे खास तौरपर इनकी सलाह लिया करते थे। वे जानते थे कि पाण्डवोंके सम्बन्धमें इनकी सलाह पक्षपातशून्य होगी। अस्तु।

जब मामा शकुनिकी सलाहसे दुष्टबुद्धि दुर्योधन पाण्डवोंके साथ जुआ खेलनेका प्रस्ताव लेकर अपने पिताके पास पहुँचा तो उन्होंने नियमानुसार विदुरजीको सलाहके लिये बुलाया। उसकी बात न माननेपर दुर्योधनने उन्हें प्राण त्याग देनेका भय दिखलाया; परंतु उन्होंने उसे साफ कह दिया कि 'विदुरजीसे सलाह लिये बिना मैं तुम्हें जुआ खेलनेकी आज्ञा कदापि नहीं दे सकता।' दुर्योधनका पापपूर्ण प्रस्ताव सुनकर विदुरजीने समझ लिया कि अब कलियुग आनेवाला है। इन्होंने उस प्रस्तावका घोर विरोध किया और अपने बड़े भाईको समझाया कि 'जुआ खेलनेसे आपके पुत्रों और भतीजोंमें वैर-विरोध ही बढ़ेगा, उनमेंसे किसीका भी हित नहीं होगा। इसलिये द्यूतका आयोजन न करना ही अच्छा है। इसीमें दोनों ओरका मङ्गल है।' धृतराष्ट्रने विदुरजी एवं उनके मतकी प्रशंसा करते हुए दुर्योधनको बहुत समझाया, परंतु उसने इनकी एक न मानी। वह तो जुएमें हराकर पाण्डवोंको नीचा दिखानेपर तुला हुआ था। उससे पाण्डवोंका अतुल वैभव देखा नहीं जाता था। दुर्योधनको किसी तरह न मानते देखकर अन्तमें धृतराष्ट्रने उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और विदुरजीके द्वारा ही पाण्डवोंको इन्द्रप्रस्थसे बुला भेजा। यद्यपि विदुरजीको यह बात अच्छी नहीं लगी फिर भी बड़े भाईकी आज्ञाका उल्लङ्घन करना इन्होंने ठीक नहीं समझा।

पाण्डवोंके पास जाकर विदुरजीने उन्हें सारी बात कह सुनायी। महाराज युधिष्ठिरने भी जुएको अच्छा न समझते हुए भी अपने ताऊकी आज्ञा मानकर दुर्योधनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। जुएके समय भी इन्होंने जुएकी बुराइयाँ बताते हुए राजा धृतराष्ट्रसे कहा कि 'आप अब भी सँभल जाइये, दुर्योधनकी 'हाँ' में 'हाँ' मिलाना छोड़ दीजिये और कुलको सर्वनाशसे बचाइये। पाण्डवोंसे विरोध करके उन्हें अपना शत्रु न बनाइये।' पाण्डवोंके वनमें चले जानेपर धृतराष्ट्रके मनमें बड़ी चिन्ता और जलन हुई। उन्होंने विदुरजीको बुलाकर अपने मनकी व्यथा सुनायी और उनसे यह जानना चाहा कि 'अब हमें किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये कि जिससे प्रजा हमपर संतुष्ट रहे और पाण्डव भी क्रोधित होकर हमारी कोई हानि न कर सकें।' इसपर विदुरजीने उन्हें समझाया कि 'राजन्! अर्थ, धर्म और काम— इन तीनों फलोंकी प्राप्ति धर्मसे ही होती है। राज्यकी जड़ है धर्म; अतः आप धर्ममें स्थित होकर पाण्डवोंकी और अपने पुत्रोंकी रक्षा कीजिये। आपके पुत्रोंने शकुनिकी सलाहसे

भरी सभामें धर्मका तिरस्कार किया है; क्योंकि सत्यसन्ध युधिष्ठिरको कपटद्यूतमें हराकर उन्होंने उनका सर्वस्व छीन लिया है, यह बड़ा अधर्म हुआ है। इसके निवारणका मेरी दृष्टिमें एक ही उपाय है, वैसा करनेसे आपका पुत्र पाप और कलङ्कसे छूटकर प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा। वह उपाय यह है कि आपने पाण्डवोंका जो कुछ छीन लिया है, वह सब उन्हें लौटा दिया जाय। राजाका यह परम धर्म है कि वह अपने ही हकमें संतुष्ट रहे, दूसरेका हक न चाहे। जो उपाय मैंने बतलाया है, उससे आपका लाञ्छन छूट जायगा, भाई-भाईमें फूट नहीं पड़ेगी और अधर्म भी न होगा। यदि आपके पुत्रोंका तनिक भी सौभाग्य शेष रह गया हो तो शीघ्र-से-शीघ्र यह काम कर डालना चाहिये। यदि आप मोहवश ऐसा नहीं करेंगे तो सारे कुरुवंशका नाश हो जायगा। यदि आपका पुत्र दुर्योधन प्रसन्नतासे यह बात स्वीकार कर ले, तब तो ठीक है; अन्यथा परिवार और प्रजाके सुखके लिये उस कुलकलङ्क और दुरात्माको कैद करके युधिष्ठिरको राज-सिंहासनपर बैठा दीजिये। युधिष्ठिरके चित्तमें किसीके प्रति राग-द्वेष नहीं है, इसलिये वे ही धर्मपूर्वक पृथ्वीका शासन करें। दुःशासन भरी सभामें भीमसेन और द्रौपदीसे क्षमा-याचना करे। और तो क्या कहूँ; बस, इतना करनेसे आप कृतकृत्य हो जायँगे।'

विदुरजीकी यह मन्त्रणा कितनी सच्ची, हितपूर्ण, धर्मयुक्त और निर्भीक थी। परंतु जिस प्रकार मरणासन्नको ओषधि अच्छी नहीं लगती, उसी प्रकार धृतराष्ट्रको विदुरजीकी यह सलाह पसंद नहीं आयी। वे विदुरजीपर खीझ गये और बोले—'विदुर! अब मुझे तुम्हारी कोई आवश्यकता नहीं है; तुम्हारी इच्छा हो तो यहाँ रहो अथवा चले जाओ। मैं देखता हूँ कि तुम बार-बार पाण्डवोंका ही पक्ष लेते हो। भला, मैं उनके लिये अपने पुत्रोंको कैसे छोड़ दूँ?' विदुरजीने देखा, अब कौरव-कुलका नाश अवश्यम्भावी है; इसलिये ये चुपचाप उठकर वहाँसे चल दिये और तुरंत रथपर सवार होकर पाण्डवोंके पास काम्यकवनमें चले गये। वहाँ पहुँचकर इन्होंने पाण्डवोंको हस्तिनापुरसे चले आनेका कारण बतलाया और उन्हें प्रसङ्गवश बड़े कामकी बातें कहीं। इधर जब धृतराष्ट्रको विदुरजीके पाण्डवोंके पास चले जानेकी बात मालूम हुई तो उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने सोचा कि विदुरकी सहायता और सलाह पाकर तो पाण्डव और भी बलवान् हो जायँगे! तब तो उन्होंने तुरंत संजयको भेजकर विदुरजीको बुलवा भेजा। विदुरजी तो सर्वथा राग-द्वेषशून्य थे। उनके मनमें धृतराष्ट्रके प्रति तनिक भी रोष नहीं था। बड़े भाईकी आज्ञा पाकर जिस प्रकार वे हस्तिनापुरसे चले आये थे, उसी प्रकार इस बार लौट जानेकी आज्ञा पाकर वे वापस उनके पास लौट गये। वहाँ जाकर इन्होंने धृतराष्ट्रसे कहा कि 'मेरे लिये पाण्डव और आपके पुत्र एक-से हैं; फिर भी पाण्डवोंको असहाय देखकर मेरे मनमें स्वाभाविक ही उनकी सहायता करनेकी बात आ जाती है। मेरे चित्तमें आपके पुत्रोंके प्रति कोई द्वेषभाव नहीं है।' बात सचमुच ऐसी ही थी। धृतराष्ट्रने भी इनसे अपने अनुचित व्यवहार-के लिये क्षमा माँगी। विदुरजी पूर्ववत् ही धृतराष्ट्रके पास रहकर उनकी सेवा करने लगे।

एक समय धृतराष्ट्रको रातमें नींद नहीं आयी। तब उन्होंने रातमें ही विदुरजीको बुलाकर उनसे शान्तिका उपाय पूछा। उस समय विदुरजीने धृतराष्ट्रको धर्म और नीतिका जो सुन्दर उपदेश दिया, वह विदुरनीतिके नामसे उद्योगपर्वके ३३ से ४० तक आठ अध्यायोंमें संग्रहीत है। वह स्वतन्त्ररूपसे अध्ययन और मनन करनेकी चीज है। महाभारताङ्कके प्रथम खण्डमें पृष्ठ ५४६ से ५६२ तक उसका अविकल अनुवाद छापा गया था।

विदुरजीके भाषणको सुनकर धृतराष्ट्रकी तृप्ति नहीं हुई। उन्होंने उनके मुखसे और भी कुछ सुनना चाहा। उन्होंने कहा—'राजन्! मुझे जो कुछ सुनाना था, वह मैं आपको सुना चुका, अब ब्रह्माजीके पुत्र सनत्सुजात नामक जो सनातन ऋषि हैं, वे ही आपको तत्त्वविषयक उपदेश करेंगे। तत्त्वोपदेश करनेका मुझे अधिकार नहीं है; क्योंकि मेरा जन्म शूद्राके गर्भसे हुआ है।' यह कहकर उन्होंने उसी समय महर्षि सनत्सुजातका स्मरण किया और वे तुरंत वहाँ उपस्थित हो गये। सनत्सुजातजीने राजा धृतराष्ट्रके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए परमात्माके स्वरूप तथा उनके साक्षात्कारके विषयमें बड़ा सुन्दर विवेचन किया। इस प्रकार विदुरजीने स्वयं तो धृतराष्ट्रको धर्म और नीतिकी बात सुनायी ही, सनत्सुजात जैसे सिद्ध-योगी एवं परमर्षिद्वारा उन्हें तत्त्वका उपदेश कराकर उनके कल्याणका मार्ग प्रशस्त किया। विदुरजीके द्वारा धृतराष्ट्र एवं उनके पुत्रोंके लिये जो कुछ भी चेष्टा होती थी, वह उनके कल्याणके लिये ही होती थी। महात्माओंका जीवन ही दूसरोंके कल्याणके लिये ही होता है। यद्यपि विदुरजी तत्त्वज्ञानी थे, फिर भी शूद्र होनेके नाते उन्होंने स्वयं उपदेश न देकर सनातन मर्यादाकी रक्षा की और इस प्रकार जगत्को अपने आचरणके द्वारा यह उपदेश दिया कि ज्ञानीके लिये भी शास्त्रमर्यादाकी रक्षा आवश्यक है। सनत्सुजातजीका यह उपदेश 'सनत्सुजातीय'के नामसे उद्योगपर्वके ही ४१ से ४६ तक छः अध्यायोंमें संग्रहीत है। इसका भाषान्तर भी महाभारताङ्कके प्रथम खण्डमें पृष्ठ ५७० से ५८१ तक अविकलरूपसे छापा गया था। पाठकोंको वहाँ तथा महाभारतमें उसे पूरा देखना चाहिये।

विदुरजी ज्ञानी एवं तत्त्वदर्शी होनेके साथ-साथ अनन्य भगवद्भक्त भी थे। इनकी भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें

निश्छल प्रीति थी । भगवान् श्रीकृष्ण भी इन्हें बहुत मानते थे। वे जब पाण्डवोंके दूत बनकर हस्तिनापुर गये, उस समय वे राजा धृतराष्ट्र एवं उनके सभासदोंसे मिलकर सीधे विदुरजीके यहाँ पहुँचे और उनका आतिथ्य स्वीकार किया। इसके बाद वे अपनी बूआ कुन्तीसे मिले। इतना ही नहीं, दुर्योधनके यहाँ जानेपर जब दुर्योधनने सम्बन्धी होनेके नाते श्रीकृष्णसे भोजनके लिये प्रार्थना की तो उन्होंने साफ इनकार कर दिया और पुनः विदुरके यहाँ चले आये। वहाँ भीष्म, द्रोण, कृप, बाह्लीक आदि कई सम्भावित लोग उनसे मिलने आये और उन सबने श्रीकृष्णसे अपने यहाँ चलकर आतिथ्य ग्रहण करनेकी प्रार्थना की; परन्तु श्रीकृष्णने सम्मानपूर्वक सबको विदा कर दिया और उस दिन विदुरके यहाँ ही पहले ब्राह्मणोंको भोजन कराके स्वयं भोजन किया । इस घटनासे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि विदुरका श्रीकृष्णके प्रति कैसा अनुराग था । श्रीकृष्णका तो विरद ही ठहरा—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

(गीता ९ । २६)

—प्रेमशून्य बड़ी-बड़ी तैयारियाँ और राजसी ठाट-बाट उन्हें आकर्षित नहीं कर सकते, किन्तु प्रेमके रससे परिप्लुत रूखा-सूखा भोजन भी उनकी तृप्तिके लिये पर्याप्त होता है।

भोजनके बाद रात्रिमें भी श्रीकृष्ण विदुरके यहाँ ही रहे और सारी रात उन्हें बातें करते बीत गयी । सबेरे नित्यकर्मसे निवृत्त होकर श्रीकृष्ण कौरवोंकी सभामें चले गये। वहाँ जब दुर्योधनने श्रीकृष्णको पकड़कर कैद करनेका दुःसाहसपूर्ण विचार किया, उस समय विदुरजीने श्रीकृष्णके बल एवं महिमाका वर्णन करते हुए उसे यह बतलाया कि 'ये साक्षात् सर्वतन्त्रस्वतन्त्र ईश्वर हैं; यदि तुम इनका तिरस्कार करनेका साहस करोगे तो उसी प्रकार नष्ट हो जाओगे, जैसे अग्निमें गिरकर पतंगा नष्ट हो जाता है ।' इसके बाद जब भगवान् श्रीकृष्णने अपना विश्वरूप प्रकट किया, उस समय सब लोगोंने भयभीत होकर अपने-अपने नेत्र मूँद लिये । केवल द्रोणाचार्य, भीष्म, विदुर, सञ्जय और उपस्थित ऋषिलोग ही उनका दर्शन कर सके; क्योंकि भगवान्‌ने इन सबको दिव्यदृष्टि दे दी थी। थोड़ी ही देर बाद अपनी इस लीलाको समेटकर भगवान् श्रीकृष्ण वापस उपप्लव्यकी ओर चले गये, जहाँसे वे आये थे । विदुरजी भी और लोगोंके साथ कुछ दूरतक उन्हें पहुँचानेके लिये गये और फिर उनसे विदा लेकर वापस चले आये।

श्रीकृष्णके असफल लौट जानेपर दोनों ओरसे युद्धकी तैयारियाँ होने लगीं । अठारह अक्षौहिणी सेना लेकर दो दल कुरुक्षेत्रके मैदानपर एकत्रित हुए और अठारह दिनों ही अठारह अक्षौहिणी सेना घासकी तरह कट गयी । रा धृतराष्ट्र अपने सौ-के-सौ पुत्रों तथा पौत्रोंका विनाश हो जाने बड़े दुखी हुए । उस समय विदुरजीने मृत्युकी अनिवार्यता निरूपण करते हुए यह बतलाया कि युद्धमें मारे जानेवालों तो बड़ी उत्तम गति होती है; अतः उनके लिये तो शोक कर ही नहीं चाहिये ।' उन्होंने यह भी बतलाया कि 'जि बार प्राणी जन्म लेता है, उतनी ही बार वह अलग-अ व्यक्तियोंसे सम्बन्ध जोड़ता है और मृत्युके बाद वे स सम्बन्ध स्वप्नकी भाँति विलीन हो जाते हैं । इसलिये भी हुए सम्बन्धियोंके लिये शोक करना बुद्धिमानी नहीं है फिर सुख-दुःखसे सम्बन्ध रखनेवाली संयोग-वियोग आ जितनी भी घटनाएँ होती हैं, वे सब अपने ही द्वारा कि हुए शुभाशुभ कर्मोंके फलरूपमें प्राप्त होती हैं और कर्मफ सभी प्राणियोंको भोगना ही पड़ता है ।' इसके बाद विदुरजी ने संसारकी अनित्यता, निःसारता और परिवर्तनशील जन्म और मृत्युके क्लेश, जीवका अविवेक, मृत्युकी दृ सबकी समानता तथा धर्मके आचरणका महत्त्व बतलाते हु संसारके दुःखोंसे छूटनेके उपायोंका दिग्दर्शन कराया।

युधिष्ठिरका राज्याभिषेक हो जानेके बाद जब धृतरा पाण्डवोंके पास रहने लगे, तब विदुरजी भी धृतराष्ट्रके सम रहकर उन्हें धर्मचर्चा सुनाया करते थे । वहाँसे जब धृतरा और गान्धारीने वन जानेका निश्चय किया तो ये भी उन साथ हो लिये । वहाँ जाकर विदुरजीने घोर तपस्याका व्रत लिया । वे निराहार रहकर निर्जन वनमें एकान्तवास कर लगे । शून्य वनमें कभी-कभी लोगोंको दर्शन हो जाया कर था । कुछ दिनों बाद जब महाराज युधिष्ठिर अपने सम परिवार एवं सेनाको साथ लेकर वनमें अपने ताऊ-ताई त माता कुन्तीसे मिलने आये और वहाँ विदुरजीको न देखक उनके विषयमें राजा धृतराष्ट्रसे पूछने लगे, उसी समय उ विदुरजी दूरपर दिखायी दिये । वे सिरपर जटा धारण कि हुए थे, मुखमें पत्थर दबाये थे और दिगम्बर वेष बना हुए थे । उनके धूलिधूसरित दुर्बल शरीरपर नसें उभर आ थीं, मैल जम गया था । वे आश्रमकी ओर देखकर लौ जा रहे थे । युधिष्ठिर उनसे मिलनेके लिये उनके पीछे दौ और जोर-जोरसे अपना नाम बताकर उन्हें पुकारने लगे घोर जंगलमें पहुँचकर विदुरजी एक वृक्षका सहारा लेक स्थिर भावसे खड़े हो गये । राजा युधिष्ठिरने देखा कि विदुरजीका शरीर अस्थिपञ्जरमात्र रह गया है, वे बड़ी कठिनतासे पहचाने जाते थे । युधिष्ठिरने उनके साम जाकर उनकी पूजा की, विदुरजी समाधिस्थ होकर निर्निमे

दृष्टिसे युधिष्ठिरकी ओर देखने लगे। इसके बाद वे योगबलसे अपने अङ्गोंको युधिष्ठिरके अङ्गोंमें, इन्द्रियोंको उनकी इन्द्रियोंमें तथा प्राणोंको प्राणोंमें मिलाकर उनके शरीरमें प्रवेश कर गये। उनका शरीर निर्जीव होकर उसी भाँति वृक्षके सहारे खड़ा रह गया। इस प्रकार साक्षात् धर्मके अवतार महात्मा विदुर धर्ममय जीवन बिताकर अन्तमें धर्ममूर्ति महाराज युधिष्ठिरके ही शरीरमें प्रवेश कर गये। बोलो धर्मकी जय!

दिव्यदृष्टि संजय

संजय महाराज धृतराष्ट्रके मन्त्री थे। ये जातिके सूत थे। ये बड़े स्वामिभक्त, बुद्धिमान्, नीतिज्ञ एवं धर्मज्ञ थे। ये सत्यवादी एवं निर्भीक भी थे। ये धृतराष्ट्रको बड़ी अच्छी सलाह देते थे। और उनके हितकी दृष्टिसे कभी-कभी कड़ी बातें भी कह दिया करते थे। इन्होंने अन्ततक धृतराष्ट्रका साथ दिया। ये महर्षि वेदव्यासके कृपापात्र तथा अर्जुन एवं भगवान् श्रीकृष्णके प्रेमी थे। ये दुर्योधनके अत्याचारोंका बड़े जोरोंसे प्रतिवाद करते थे और उनका समर्थन होनेपर धृतराष्ट्रको भी फटकार दिया करते थे। जब पाण्डव दूसरी बार जुएमें हारकर वनमें रहने लगे थे, उस समय इन्होंने पाण्डवोंके साथ दुर्योधनके अनुचित बर्तावकी बड़ी कड़ी आलोचना करते हुए राजा धृतराष्ट्रसे कहा—'महाराज! अब यह निश्चित है कि आपके कुलका तो नाश होगा ही, निरीह प्रजा भी न बचेगी। भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य और विदुरजीने आपके पुत्रको बहुत मना किया; फिर भी उस निर्लज्जने पाण्डवोंकी प्रिय पत्नी धर्मपरायणा द्रौपदीको सभामें बुलवाकर अपमानित किया। विनाशकाल समीप आनेपर बुद्धि मलिन हो जाती है, अन्याय भी न्यायके समान दीखने लगता है। आपके पुत्रोंने अयोनिजा, पतिपरायणा, अग्नि-वेदीसे उत्पन्न सुन्दरी द्रौपदीको भरी सभामें अपमानित कर भयङ्कर युद्धको न्योता दिया है। ऐसा निन्दनीय कर्म दुष्ट दुर्योधनके अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता।' क्या कोई निर्भीक-से-निर्भीक मन्त्री राजाके सामने युवराजके प्रति इतनी कड़ी किन्तु सच्ची बात कह सकता है? शास्त्रोंमें भी कहा है—'अप्रियस्य च पथ्यस्य श्रोता वक्ता च दुर्लभः।' धृतराष्ट्रने संजयकी बातका अनुमोदन करते हुए अपनी कमजोरीको स्वीकार किया, जिसके कारण वे दुर्योधनके उस अत्याचारको रोक नहीं सके थे।

संजय सामनीतिके बड़े पक्षपाती थे। इन्होंने युद्धको रोकनेकी बहुत चेष्टा की और दोनों ही पक्षोंको युद्धकी बुराइयाँ बतलाकर तथा आपसकी फूटके दुष्परिणामकी ओर ध्यान आकर्षित करते हुए बहुत समझाया। पाण्डवोंने तो इनकी बात मान ली; परन्तु दुर्योधनने इनके सन्धिके प्रस्तावको तिरस्कारपूर्वक ठुकरा दिया, जिससे युद्ध करना अनिवार्य हो गया। दैवका विधान ऐसा ही था। कौरवोंके पक्षमें भीष्म, द्रोण, विदुर और संजयका मत प्रायः एक होता था, क्योंकि ये चारों ही धर्मके पक्षपाती थे और हृदयसे पाण्डवोंके साथ सहानुभूति रखते थे। ये चारों ही राजा धृतराष्ट्र एवं उनके पुत्रोंकी अप्रसन्नताकी तनिक भी परवा न कर उन्हें सच्ची बात कहनेमें कभी नहीं हिचकते थे और सच्ची बात प्रायः कड़वी होती ही है।

जब धृतराष्ट्रने अपनी ओरसे पाण्डवोंके साथ बात-चीत करनेके लिये संजयको उपप्लव्यमें भेजा, तब संजयने जाकर पाण्डवोंकी सच्ची प्रशंसा करते हुए उन्हें युद्धसे विरत होनेकी ही सलाह दी। उन्होंने कहा कि 'युद्धसे अर्थ और धर्म कुछ भी नहीं सधनेका। सन्धि ही शान्तिका सर्वोत्तम उपाय है और राजा धृतराष्ट्र भी शान्ति ही चाहते हैं, युद्ध नहीं।' श्रीकृष्ण और अर्जुनके विशेष कृपापात्र होनेके नाते इन्हें यह पूरा विश्वास था कि ये लोग मेरी बातको कभी नहीं टालेंगे। अर्जुनके सम्बन्धमें तो इन्होंने यहाँतक कह दिया कि 'अर्जुन तो मेरे माँगनेपर अपने प्राणतक दे सकते हैं।' इससे यह बात सिद्ध होती है कि संजय अर्जुन और श्रीकृष्णके अनन्य प्रेमी थे। युधिष्ठिरने बड़े प्रेमसे संजयकी बातका समर्थन किया, परन्तु उन्होंने सन्धिकी यही शर्त रक्खी कि उन्हें इन्द्रप्रस्थका राज्य लौटा दिया जाय। भगवान् श्रीकृष्णने भी धर्मराजका समर्थन किया और संजय युधिष्ठिरका सन्देश लेकर वापस हस्तिनापुर चले आये। धृतराष्ट्रके पास जाकर पहले तो इन्होंने एकान्तमें उन्हें खूब फटकारा और पीछे सबके सामने पाण्डवोंका धर्मयुक्त सन्देश सुनाकर उनकी युद्धकी तैयारी तथा पाण्डव-पक्षके वीरोंके बलका विशदरूपसे वर्णन किया। साथ ही इन्होंने अर्जुन और श्रीकृष्णकी अभिन्नता सिद्ध करते हुए उन्हें बतलाया कि दोनों एक दूसरेके साथ कैसे घुले-मिले हैं। इन्होंने कहा कि 'जिस समय मैं श्रीकृष्ण और अर्जुनसे मिलने गया, उस समय वे दोनों अन्तःपुरमें थे। वे जिस महलमें थे, वहाँ अभिमन्यु और नकुल-सहदेवतकका प्रवेश नहीं था। वहाँ पहुँचनेपर मैंने देखा कि श्रीकृष्ण अपने दोनों चरण अर्जुनकी गोदमें रक्खे हुए हैं तथा अर्जुनके पैर द्रौपदी और सत्यभामाकी गोदमें हैं।' संजयके इस वर्णनसे श्रीकृष्ण और अर्जुनकी अभिन्नता तो सिद्ध होती ही है, साथ ही यह भी प्रमाणित होता है कि संजय श्रीकृष्ण और अर्जुनके अनन्य प्रेमी थे। जिस स्थानमें अभिमन्यु और नकुल-सहदेवका भी प्रवेश नहीं था और जहाँ श्रीकृष्ण और अर्जुन अपनी पटरानियोंके साथ एकान्तमें बिल्कुल निःसंकोचभावसे बैठे थे, वहाँ संजयका बेरोक-टोक चले जाना और उनकी एकान्त-

गोष्ठीमें सम्मिलित होना इस बातको सिद्ध करता है कि इनका भी श्रीकृष्ण और अर्जुनके साथ बहुत खुला व्यवहार था ।

संजय भगवान्‌के प्रेमी तो थे ही, इन्हें भगवान्‌के स्वरूपका भी पूरा ज्ञान था । इन्होंने आगे चलकर महर्षि वेदव्यास, देवी गान्धारी तथा महात्मा विदुरके सामने राजा धृतराष्ट्रको श्रीकृष्णकी महिमा सुनायी और उन्हें सारे लोकोंका स्वामी बतलाया । इसपर धृतराष्ट्रने उनसे पूछा कि 'श्रीकृष्ण साक्षात् ईश्वर हैं—इस बातको तुमने कैसे जान लिया और मैं उन्हें इस रूपमें क्यों नहीं पहचान सका ?' इसके उत्तरमें संजयने वेदव्यासजीके सामने इस बातको स्वीकार किया कि 'मैंने ज्ञानदृष्टिसे ही श्रीकृष्णको पहचाना है, बिना ज्ञानके कोई उनके वास्तविक स्वरूपको नहीं जान सकता । इतना ही नहीं, उन्होंने यह भी बतलाया कि 'मैं कभी कपटका आश्रय नहीं लेता, किसी मिथ्या धर्मका आचरण नहीं करता तथा ध्यानयोगके द्वारा मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो गया है । इसीलिये मुझे श्रीकृष्णके स्वरूपका ज्ञान हो गया है ।' इसके बाद स्वयं वेदव्यासजीने संजयकी प्रशंसा करते हुए धृतराष्ट्रसे कहा कि 'इसे पुराणपुरुष श्रीकृष्णके स्वरूपका पूरा ज्ञान है, अतः यदि तुम इसकी बात सुनोगे तो यह तुम्हें जन्म-मरणके महान् भयसे मुक्त कर देगा ।' संजयके ज्ञानी होनेका इससे बढ़कर प्रमाण और क्या होगा । इसके बाद धृतराष्ट्रने संजयसे पूछा—'भैया ! मुझे कोई ऐसा निर्भय मार्ग बताओ, जिसपर चलकर मैं भी भगवान् श्रीकृष्णको जान सकूँ और उनका परमपद पा सकूँ ।' संजयने उन्हें बताया कि 'इन्द्रियोंको जीते बिना कोई श्रीकृष्णको नहीं पा सकता और इन्द्रियाँ भोगोंके त्यागसे ही जीती जा सकती हैं । प्रमाद, हिंसा और भोग—इन तीनोंका त्याग ही ज्ञानका साधन है । इन्हींके त्यागसे परम पदकी प्राप्ति सम्भव है ।' अन्तमें संजयने भगवान् श्रीकृष्णके कुछ नामोंकी बड़ी सुन्दर व्याख्या करके धृतराष्ट्रको सुनायी । इससे संजयके शास्त्रज्ञानका भी पता लगता है ।

जब दोनों ओरसे युद्धकी तैयारियाँ पूरी हो चुकीं और दोनों पक्षोंकी सेनाएँ कुरुक्षेत्रमें जा डटीं, उस समय महर्षि वेदव्यासजीने संजयको दिव्यदृष्टिका वरदान देते हुए धृतराष्ट्रसे कहा—'राजन् ! यह संजय तुम्हें युद्धका वृत्तान्त सुनायेगा । सम्पूर्ण युद्धक्षेत्रमें कोई भी ऐसी बात न होगी, जो इससे छिपी रहे । यह दिव्यदृष्टिसे सम्पन्न और सर्वज्ञ हो जायगा । सामनेकी अथवा परोक्षकी, दिनमें होनेवाली या रातमें होनेवाली तथा मनमें सोची हुई बात भी इसे मालूम हो जायगी । इतना ही नहीं, शस्त्र इसे काट नहीं सकेंगे, परिश्रमसे इसे थकान नहीं मालूम होगी और युद्धसे यह जीता-जागता निकल आयेगा ।'

बस, इसी समयसे भगवान् वेदव्यासकी कृपासे संजयकी दिव्यदृष्टि हो गयी । वे वहीं बैठे युद्धकी सारी बातें प्रत्यक्षकी भाँति जान लेते थे और उन्हें ज्यों-की-त्यों महाराज धृतराष्ट्रको सुना देते थे । कोसोंके विस्तारवाले कुरुक्षेत्रके मैदानमें जहाँ अठारह अक्षौहिणियाँ आपसमें जूझ रही थीं । कौन वीर कहाँ किस समय किससे लड़ रहा है, वह किस समय किसपर कितने और कौन-कौन-से अस्त्रोंका प्रयोग करता है, कितनी बार कितने पैंतरे बदलता है और किस प्रकार किस कौशलसे शत्रुका वार बचाता है, उसका कैसा रूप है और कैसा वाहन है—ये सब बातें वे एक ही जगह बैठे जान लेते थे । भगवद्गीताका उपदेश भी जिस प्रकार श्रीकृष्णने अर्जुनको दिया, वह सब इन्होंने अपने कानोंसे सुना (गीता १८ । ७४-७५) । केवल सुना ही नहीं, उपदेश देते समय श्रीकृष्णकी जैसी मुखमुद्रा थी, जो भावभंगी थी तथा जो उनका रूप था, वह इन्हें प्रत्यक्षकी भाँति ही दिखायी देता था । इतना ही नहीं, जिस समय भगवान्‌ने अर्जुनको अपना विश्वरूप दिखलाया, जिसे अर्जुनके सिवा और किसीने पहले नहीं देखा था और जिसके सम्बन्धमें स्वयं भगवान्‌ने उनसे कहा कि 'वेद और यज्ञोंके अध्ययनसे, दानसे, क्रियाओंसे तथा उग्र तपस्याओंसे भी कोई दूसरा इस रूपका दर्शन नहीं कर सकता (गीता ११ । ४८), उस समय संजयने भी उस रूपको उसी प्रकार देखा जिस प्रकार अर्जुन देख रहे थे । इसके बाद जब भगवान्‌ने अपने विश्वरूपको समेटकर अर्जुनको चतुर्भुजरूपमें दर्शन दिया, जिसका दर्शन भगवान्‌ने देवताओंके लिये भी दुर्लभ बताया है तथा जिसके सम्बन्धमें उन्होंने बताया कि तप, दान और यज्ञसे भी उसका दर्शन नहीं प्राप्त किया जा सकता (गीता ११ । ५३), तब उस दिव्य झाँकीका दर्शन महाभाग संजयको भी हस्तिनापुरमें बैठे ही प्राप्त हो गया । उसी प्रसङ्गमें भगवान्‌ने अर्जुनको यह भी बताया कि 'केवल अनन्यभक्तिसे ही मेरे इस रूपका दर्शन सम्भव है ।' (गीता ११ । ५४), इससे सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि संजयको भी भगवान्‌की वह अनन्यभक्ति प्राप्त थी, जिसके कारण उन्हें भगवान्‌की उस दिव्य झाँकीका दर्शन हो सका । गीता सुननेके बाद भी उस रूपकी स्मृति संजयके लिये एक अलौकिक आनन्दकी सामग्री हो गयी । उन्होंने स्वयं अपनी उस उल्लासपूर्ण स्थितिका वर्णन करते हुए कहा है—

राजन् संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥
तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।
विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च पुनः पुनः ॥

(गीता १८ । ७६-७७)

इससे यह सिद्ध होता है कि उनका श्रीकृष्ण और अर्जुनमें जो श्रद्धा-प्रेम था वह विवेकपूर्वक था; क्योंकि वे उनके यथार्थ प्रभावको भी जानते थे। उन्होंने युद्धके पूर्व ही उनकी विजय घोषित करते हुए कह दिया था कि—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥
(गीता १८।७८)

युद्ध-समाप्तिके बाद कुछ दिन महाराज युधिष्ठिरके पास रहकर जब धृतराष्ट्र-गान्धारी वनकी ओर जाने लगे तो संजय भी उनके साथ हो लिये। वहाँ भी इन्होंने अपने स्वामीकी सब प्रकारसे सेवा की। और जब उन्हें देवी गान्धारी और कुन्तीके सहित दावाग्निने घेर लिया तो ये उन्हींकी आज्ञासे वनवासी मुनियोंको उनके शरीर-त्यागकी बात कहनेके लिये उन्हें छोड़कर आश्रममें चले आये और वहाँसे हिमालयकी ओर चले गये। इस प्रकार संजयका जीवन भी एक महान् जीवन था। उनके जीवनसे हमें यह शिक्षा मिलती है कि मनुष्य चाहे किसी भी वर्ण अथवा जातिका क्यों न हो, भगवान्की कृपासे वह कुछ-का-कुछ बन सकता है।

वीर सात्यकि

जिस वृष्णिकुलमें भगवान् श्रीकृष्णका जन्म हुआ था, सात्यकि उसी कुलके एक रत्न थे। महाभारतके युद्धके अन्तमें जीवित रहनेवाले पाण्डवपक्षके आठ वीरोंमें एक सात्यकि भी थे। सात्यकिने अर्जुनसे युद्धविद्याकी शिक्षा ग्रहणकी थी, ये भगवान् श्रीकृष्णके समान ही पाण्डवोंके प्रिय तथा हित-चिन्तक थे। ये बड़े ही स्पष्ट वक्ता थे। पाण्डवोंके अज्ञात वनवासके बाद जब विराटकी राजसभामें युद्ध या शान्तिके प्रश्नपर भाषण चल रहे थे, उस समय सात्यकिने जो व्याख्यान दिया था, उससे उनके व्यक्तित्वपर अच्छा प्रकाश पड़ता है। ये कहते हैं कि, 'यदि भाइयोंसहित कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर अपने घरपर जूआ खेलते होते और कौरव वहाँ जाकर हरा देते तो उनकी धर्मपूर्वक जीत कही जाती। परन्तु उन्होंने क्षत्रिय-धर्ममें लीन रहनेवाले युधिष्ठिरको बुलाकर छल और कपटसे हराया है। वे भीष्म, द्रोण और विदुरके बहुत अनुनय-विनय करनेपर भी पाण्डवोंको उनका पैतृक धन वापस नहीं कर रहे हैं। मैं तो रणभूमिमें तेज बाणोंसे पछाड़कर उनको बलात् रास्तेपर लाकर श्रीमान् युधिष्ठिरके चरणोंमें नत कराऊँगा, अन्यथा मन्त्रियोंके सहित उनको यमलोककी यात्रा करनी पड़ेगी।'

सात्यकि भगवान् श्रीकृष्णके समान ही सर्वतोभावेन पाण्डवोंके थे, और उनकी वाणी वीरता और ओजसे पूर्ण होती थी। वे बड़े ही नीतिज्ञ थे। उपर्युक्त प्रसङ्गमें ही वे आगे कहते हैं—

नाधर्मो विद्यते कश्चिच्छत्रून् हत्वाऽऽततायिनः।
अधर्म्यमयशस्यं च शात्रवाणां प्रयाचनम्॥
(उद्योग० ४।२०)

'आततायी शत्रुको मारनेसे कुछ भी अधर्म नहीं होगा। शत्रुसे याचना करना अधर्म है और अपमानजनक है। तथा—

गर्दभे मार्दवं कुर्याद् गोषु तीक्ष्णं समाचरेत्।
मृदु दुर्योधने वाक्यं यो ब्रूयात् पापचेतसि॥
(उद्योग० ४।५)

'पापात्मा दुर्योधनके प्रति जो मृदु वचन बोलता है, वह मानो गधेके प्रति कोमलतापूर्ण व्यवहार करता है और गायोंके प्रति कठोर।'—इससे स्पष्ट हो जाता है कि सात्यकि सच्चे अर्थमें वीर थे, उनकी वीरतापूर्ण वाणी उनके अनुरूप ही थी। वे बड़े ही चतुर तथा गूढ़ इङ्गितज्ञ थे। इसी कारण जान पड़ता है, भगवान् श्रीकृष्णने कौरवसभामें सन्धि-दूतके रूपमें जाते समय इनको अपने साथ ले लिया था। सात्यकिकी गणना महाभारतकालीन श्रेष्ठ वीरोंमें होती थी। वे असाधारण पुरुष थे। विदुरने धृतराष्ट्रको चेतावनी देते हुए कहा था—

येषां पक्षधरो रामो येषां मन्त्री जनार्दनः।
किं नु तैरजितं संख्ये येषां पक्षे च सात्यकिः॥
(आदि० २०४।८०)

'जिनके पक्षमें बलराम हैं, जिनके मन्त्री श्रीकृष्ण हैं, तथा वीरप्रवर सात्यकि जिनकी ओर हैं, उन पाण्डवोंके लिये युद्धमें क्या अजेय है?'—जान पड़ता है कि इस कारणसे भी भगवान् श्रीकृष्णके साथ सात्यकि गये थे। जब कौरव-सभामें कर्ण, शकुनि तथा दुर्योधनने श्रीकृष्णको पकड़नेकी मन्त्रणा की तो—

तेषां पापमभिप्रायं पापानां दुष्टचेतसाम्।
इङ्गितज्ञः कविः क्षिप्रमन्वबुद्ध्यत सात्यकिः॥
(उद्योग० १३०।९)

उन पापियों, दुरात्माओंकी उस पापचेष्टाको इङ्गितज्ञ, कवि, सात्यकि शीघ्र ही ताड़ गये। और कृतवर्मासे बोले कि, 'शीघ्र ही सेनाको सभाद्वारके सामने व्यूहाकारमें सन्नद्ध करो, तबतक मैं श्रीकृष्णसे इनके अभिप्रायको व्यक्त करता हूँ।' व्यासजीने सात्यकिकी उस समयकी गतिविधिका अत्यन्त स्वाभाविक चित्र खींचा है। कहते हैं—

स प्रविष्टः सभां वीरः सिंहो गिरिगुहामिव।
आचष्टे तमभिप्रायं केशवाय महात्मने॥
धृतराष्ट्रं ततश्चैव विदुरं चान्वभाषत॥१३॥
तेषामेतमभिप्रायमाचचक्षे स्मयन्निव।
धर्मादर्थाच्च कामाच्च कर्म साधुविगर्हितम्॥१४॥

मन्दाः कर्तुमिहेच्छन्ति न चावाप्यं कथंचन।
पुरा विकुर्वते मूढाः पापात्मानः समागताः ॥१५॥
धर्षिता काममन्युभ्यां क्रोधलोभवशानुगाः।
इमं हि पुण्डरीकाक्षं जिघृक्षन्त्यल्पचेतसः॥
पटेनाग्निं प्रज्वलितं यथा बाला तथा जडाः ॥१६॥

'जैसे गिरि-गुफामें सिंह निधड़क प्रवेश करता है, उसी प्रकार निर्भयतापूर्वक सात्यकिने सभामें प्रवेश करके उनका अभिप्राय श्रीकृष्णको बतलाया, और मुसकराते हुए, धृतराष्ट्र तथा विदुरसे उनके आशयको प्रकट करते हुए कहा कि ये अल्प बुद्धिवाले लोग धर्म, अर्थ और कामकी दृष्टिसे सज्जनोंके लिये निन्दनीय कर्म करनेकी इच्छा कर रहे हैं, परंतु इसमें ये कदापि सफल न होंगे। काम, क्रोध, लोभ और मोहके वशमें होकर ये पापात्मा लोग पुण्डरीकाक्ष श्रीकृष्णको पकड़ना चाहते हैं। वस्त्रसे प्रज्वलित अग्निको पकड़नेकी इच्छा करनेवाले मूर्खके समान जड़ हैं, इनको समझ नहीं है।' वीरश्रेष्ठ सात्यकिने दुर्योधन और उसके सारे मित्रोंकी कुमन्त्रणाका भण्डाफोड़ कर उन्हें समयसे पहले ही विफल कर दिया।

महाभारतके युद्धमें वीरप्रवर सात्यकिके पाण्डवपक्षमें आ जानेपर पाण्डवोंकी सैन्य-शक्तिमें अपूर्व वृद्धि हो गयी। वीराग्रगण्य सात्यकि भय क्या वस्तु है—यह जानते ही नहीं थे। द्रोणपर्वके ११० वें अध्यायमें धर्मराज युधिष्ठिरने सात्यकिसे कहा है कि, 'हे तात! द्वैतवनमें अर्जुनने मुझसे कहा था—'महान् स्कन्धवाले विशाल वक्षःस्थल, बड़ी-बड़ी भुजाएँ, महाबली, महावीर्यवान्, महारथी सात्यकि मेरे शिष्य और मेरे सखा हैं। मैं उनके लिये प्रिय हूँ, और वे मेरे प्रिय हैं। वे मेरे सहायक हैं, वे कौरवोंको मथ देंगे। हे राजेन्द्र! मेरे हितार्थ यदि स्वयं केशव तैयार हों, बलरामजी, अनिरुद्ध, महारथी प्रद्युम्न वृष्टिसेनाके साथ गद, सारण और साम्ब सहायताके लिये सन्नद्ध हों तो भी मैं सत्यपराक्रम, नरव्याघ्र सात्यकिको सहायक बनाऊँगा; क्योंकि उनके समान मेरा कोई दूसरा नहीं है—

तथाप्यहं नरव्याघ्रं शैनेयं सत्यविक्रमम्।
साहाय्ये विनियोक्ष्यामि नास्ति मेऽन्यो हि तत्समः॥
(द्रो० ११०। ६१)

—यह तो सात्यकिके विषयमें अर्जुनका अभिप्राय है। स्वयं धर्मराज इसी अध्यायमें अपने श्रीमुखसे कहते हैं—

सर्वेष्वपि च योधेषु चिन्तयञ्छिनिपुङ्गव।
त्वत्तः सुहृत्तमं कञ्चिन्नाभिजानामि सात्यके॥
यथा च केशवो नित्यं पाण्डवानां परायणम्।
तथा त्वमपि वार्ष्णेय कृष्णतुल्यपराक्रमः॥
त्वं हि सत्यव्रतः शूरो मित्राणामभयङ्करः।
लोके विख्यायसे वीर कर्मभिः सत्यवागिति॥
(द्रो० ११०। ४३, ४५, ४८

'हे शिनिपुङ्गव सात्यकि! खूब विचारनेपर भी स[ब] योद्धाओंमें तुमसे अधिक सुहृद् मैं किसीको नहीं पाता। [जै]से श्रीकृष्ण सदा पाण्डवोंके हितमें लगे रहते हैं, उसी प्रकार [हे] वृष्णिकुलश्रेष्ठ! तुम भी पाण्डवोंके हितमें सदा लगे र[हते] हो। तुम सत्यव्रती, शूरवीर, मित्रोंके भयको दूर करनेवा[ले] हो तथा हे वीर! तुम अपने कर्मोंके द्वारा सत्यवक्ताके रू[पमें] संसारमें प्रसिद्ध हो।'

पाण्डवपक्षमें सात्यकिका क्या स्थान है, अर्जुन त[था] धर्मराजके उपर्युक्त वाक्योंसे इसका पता चल जाता है। वस्तुतः महाभारतमें सात्यकिका चरित्र बड़ा ही उज्ज्वल है। द्रोणपर्वके १४७ वें अध्यायमें युद्धमें सात्यकिके पराक्रम[का] वर्णन करते हुए अन्तमें सञ्जयने धृतराष्ट्रसे कहा है—

कृष्णयोः सदृशो वीर्ये सात्यकिः शत्रुतापनः।
जितवान् सर्वसैन्यानि तावकानि हसन्निव॥
कृष्णो वापि भवेल्लोके पार्थो वापि धनुर्धरः।
शैनेयो वा नरव्याघ्र चतुर्थस्तु न विद्यते॥
(१४७। ७६।७[७])

'हे राजन्! श्रीकृष्ण और अर्जुनके समान ही सात्[यकि] भी शत्रुओंके लिये सन्तापकारक है। उसने हँसते-हँ[सते] आपकी सारी सेनाको परास्त कर दिया है। मेरे विचा[रसे] संसारमें श्रीकृष्ण और अर्जुनके बाद तीसरा वीर पु[रुष] सात्यकि ही है। इनके कोटिका कोई चौथा धनु[र्धर] नहीं है।'

सात्यकिकी युद्धकलाका निदर्शन महाभारतमें अनेक स्थलोंपर प्राप्त होता है। वे भीमसेनके समान निर्भयतापूर्वक युद्ध करते हैं, कभी युद्धसे व्याकुल होकर पीठ न[हीं] दिखलाते और अपने बाणोंके आघातसे कौरवसेनाके बड़े-बड़े महारथियोंको निश्चेष्ट कर देते हैं। जयद्रथवधके अवसर पर जब वे कौरवसेनाको परास्त करते हुए, अर्जुनके समीप पहुँचते हैं, तब भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे प्रसन्न होकर सात्यकिकी प्रशंसा करते हुए द्रोणपर्वके १४१ वें अध्यायमें उनका अभिनन्दन करते हैं। वहाँ १५ से २६ वें श्लोकतक 'आयाति सात्यकि, अभ्येति सात्यकि' प्रत्येक श्लोकोंमें प्रयोग करके अपनी प्रसन्नता प्रकट करते हैं। उस समय कौरव-सेनासे भयानक युद्ध करते-करते सात्यकि थकसे गये थे। उसी अवस्थामें भूरिश्रवाने अपनी सारी शक्तिसे आक्रमण कर दिया। पश्चात् भूरिश्रवाने हाथमें तलवार लेकर श्रान्त सात्यकिकी शिखा पकड़ ली। तब भगवान् वासुदेवने कहा—'अर्जुन! देखो, सात्यकिको युद्धमें थका देखकर

भूरिश्रवा तलवारसे उसका सिर काटनेके लिये उद्यत है, बचाओ !' भगवान्‌के मुँहसे यह शब्द निकलते ही अर्जुनने एक बाणसे भूरिश्रवाका वह हाथ काट डाला और इस प्रकार अपने शिष्यकी रक्षा की । सात्यकिके ऊपर सारी महाभारतमें यही एक विपद् आयी थी । वह सर्वत्र वीरतापूर्वक लड़ते हुए अन्ततक जीवित रहे ।

कुरुराज धृतराष्ट्र

धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे । उनको कर्तव्याकर्तव्यका ज्ञान था, परंतु वे कानके कच्चे थे । राज्यकार्यमें भीष्म, द्रोणाचार्य, विदुर और कृपाचार्यसे सलाह लेते थे तथा पाण्डवोंके सम्बन्धमें भी उसी प्रकार सलाह लेते थे । कभी-कभी वे पाण्डवोंके लिये भी अनुकूल हो जाते थे, परंतु जब वे दुर्योधनको कोई दुष्कृत्य करनेपर तुला हुआ देखते, तो उनका हृदय पुत्रमोहसे अन्धा हो जाता था और वे कर्तव्याकर्तव्यको भूल जाते थे । ऐसी हालतमें विदुर आदिके सलाहकी उपेक्षा करके दुर्योधनका ही समर्थन करते थे । ऊपर-ऊपरसे तो पाण्डवोंके सम्बन्धमें वे ठीक-ठीक बोलते थे, परंतु उनके हृदयसे सारे राज्यको आत्मसात् करनेकी वासना दूर नहीं होती थी । अतएव वे न्यायकी परवा न करके दुर्योधनके अनुकूल वर्तने लगते थे । कभी-कभी मोहके वश होकर दुर्योधनके दुष्कर्ममें भी सम्मति दे देते थे । और जब उसका कुफल उनको भोगना पड़ता तो वे अपने तटस्थ होनेका दिखावा करते थे । उदाहरणार्थ, जब पाण्डव लोग तेरह वर्षके वनवासमें द्वैतवनमें ठहरे हुए थे, उस समय उनको परेशान करनेके उद्देश्यसे कर्ण-शकुनि आदिकी सम्मतिसे दुर्योधन वहाँ जानेके लिये प्रस्तुत हुए । परंतु जब वह धृतराष्ट्रसे आज्ञा माँगनेके लिये गये तो उन्होंने वहाँ जानेकी अनुमति न दी और कहा, 'वहाँ पाण्डव ठहरे हुए हैं और वे छलपूर्वक हराये गये हैं तथा वनमें रहकर महान् कष्ट भोग रहे हैं । वे तपःशक्तिसम्पन्न हो रहे हैं । ऐसी अवस्थामें तुम लोग वहाँ जाकर अहंकार और दर्पके वशीभूत होकर कोई अपराध कर बैठोगे तो वे तुमको नष्ट किये बिना न छोड़ेंगे ।' परंतु जब शकुनिने उनको उलटा-सीधा समझाया तो उनकी बुद्धि बदल गयी और वे राजी हो गये । यदि सर्वसंहारक महान् अनर्थका हेतु धृतराष्ट्रको मानें तो इसमें कोई गलती न होगी; क्योंकि भीष्म, विदुर आदिका उपदेश मानकर यदि पहलेसे ही वे दुर्योधनको काबूमें रखते, तो पाण्डवोंके साथ अन्याय न हो पाता और महायुद्धकी नौबत न आती । परंतु पुत्र-स्नेह तथा राजलोभके वशवर्ती होकर वे ऐसा नहीं कर सके । वे विवेक-शून्य हो जाते थे । बीच-बीचमें ऐसे प्रसङ्ग भी आते थे जब उनके हृदयमें पाण्डवोंके प्रति ममता उत्पन्न होती थी; परंतु वह ममत्व देरतक नहीं टिकता था ।

गुण-अवगुणका विचार छोड़कर पुत्रके ऊपर अन्धवात्सल्यभाव रखनेवाले पिताकी जो गति होती है, वही गति धृतराष्ट्रकी हुई । उन्होंने अपने सामने ही सौ पुत्रोंकी अति भयंकर मृत्यु देखी । सौ पुत्रोंके पिता होकर भी मरते समय अपुत्र ही मरे ।

दुर्योधन प्रत्यक्ष ही पाण्डवोंके प्रति ईर्ष्याका भाव रखते थे, परंतु धृतराष्ट्र परोक्षतः पाण्डवोंसे जलते रहते थे । पाण्डवोंके बढ़ते हुए बल और ऐश्वर्यको वे सह नहीं सकते थे । परंतु साथ ही पाण्डवोंसे वे डरते भी थे; क्योंकि पाण्डव बलशाली थे । पाण्डवोंकी कीर्ति बढ़ती देखकर दुर्योधनने अपने मामा शकुनिकी रायसे पाण्डवोंको जुआ खेलनेके लिये बुलाना चाहा और धृतराष्ट्रसे इसके लिये आज्ञा माँगी तो धृतराष्ट्रने बिना कुछ सोचे-समझे अपनी राय दे दी । उस समय विदुरने जुआ खेलनेके दोषोंको जब बतलाया तो धृतराष्ट्रने कहा, 'विदुर ! यहाँ मैं, भीष्म तथा ये सब लोग हैं, और दैवने ही द्यूतका निर्माण किया है, इसलिये हम इसमें कुछ नहीं कर सकते । इस व्यवसायकी निन्दा करनेकी आवश्यकता नहीं है । इसलिये इसमें मैं दैवको ही बलवान् मानता हूँ, उसीके द्वारा यह सब कुछ हो रहा है ।' धृतराष्ट्र अधिकतर दैवका ही अवलम्बन करते थे । उनकी मान्यता थी कि जो कुछ अनिष्ट होता है, वह दैवसे ही होता है । और इस मान्यताके कारण वे दुर्योधनको अनिष्ट कार्योंसे रोक नहीं सकते थे । द्यूतके समय जब युधिष्ठिरने द्रौपदीको दावपर रक्खा, तब सारी सभा स्तब्ध हो गयी । राजा लोग बड़े शोकमें पड़ गये । भीष्म, द्रोणाचार्य और कृपाचार्य पसीने-पसीने हो गये । विदुर दोनों हाथोंसे सिर थामकर बैठ गये । परंतु धृतराष्ट्र बहुत प्रसन्न हुए और बार-बार पूछने लगे, 'कौन जीता, कौन जीता ?' धृतराष्ट्रके लिये इससे बढ़कर निन्दनीय बात और क्या हो सकती थी ?

धृतराष्ट्रमें अपार बल था । वृद्धावस्था होनेपर भी भीमसेनकी लोहेकी मूर्तिको कुचल डालनेकी शक्ति धृतराष्ट्रमें थी । संजय उनको जैसे-जैसे युद्धकी बात सुनाते थे, वैसे-वैसे युवक योद्धाके समान धृतराष्ट्रका वीररक्त उछलता था । वे पाण्डवोंका अनिष्ट सुनकर मन-ही-मन प्रसन्न होते थे तथा कौरव-पक्षका अनिष्ट सुनकर उद्विग्न हो जाते थे । धृतराष्ट्र यदि अन्धे न होते तो शायद महाभारतके युद्धमें वे पूरा-पूरा भाग लेते और भीष्मके समान धृतराष्ट्र भी पाण्डवोंके विरुद्ध पूर्णबलसे युद्ध करते । धृतराष्ट्र भीमसेनसे बहुत डरते थे । वे स्वयं संजयसे कहते हैं—

जागर्मि रात्रयः सर्वा दीर्घमुष्णञ्च निःश्वसन् ।
भीतो वृकोदरात् तात सिंहात् पशुरिवापरः ॥

(उद्योग० ५१ । ३)

'हे तात ! सिंहसे डरे हुए दूसरे पशुकी भाँति मैं भीमसेनसे भयभीत हो रातभर गरम-गरम लंबी साँसें लेता हुआ जागता रहता हूँ ।' इस भयका कारण निश्चय ही द्यूतसभामें भीमसेनकी वह प्रतिज्ञा थी, जिसमें उसने कहा था कि युद्धमें मैं धृतराष्ट्रके सब पुत्रोंको मार डालूँगा और दुःशासनका रक्त पान करूँगा और धृतराष्ट्रका वह भय सच निकला । भीमसेनने एक-एक करके उनके सभी पुत्रोंको मार डाला ।

परंतु यह सब कुछ होते हुए भी हम धृतराष्ट्रमें मानवताके उत्कृष्ट रूपका भी दर्शन करते हैं । जब दुर्योधन पाण्डवोंको वारणावत भेजनेके लिये धृतराष्ट्रसे कहते हैं और उनके अनिष्टके लिये मन्त्रणा करते हैं तो वे स्पष्ट कहते हैं—

दुर्योधन ममाप्येतद्धृदि सम्परिवर्तते ।
अभिप्रायस्य पापत्वान्नैवं तु विवृणोम्यहम् ॥

(आदि० १४१ । १६)

'दुर्योधन ! मेरे हृदयमें भी यही बात घूम रही है । परंतु हम लोगोंका यह अभिप्राय पापपूर्ण है, इसलिये मैं खुलकर नहीं कह सकता ।' अपने हृदयके गुण-दोषोंका निरीक्षण करके कर्तव्याकर्तव्यका निश्चय करना श्रेष्ठ पुरुषका लक्षण है । फिर उन्होंने युधिष्ठिरकी प्रशंसा करते हुए कहा, 'युधिष्ठिर अपने पिता पाण्डुके समान ही धर्मपरायण हैं, उत्तम गुणोंसे युक्त हैं, जगत्प्रसिद्ध हैं । फिर उनको बाप-दादोंके राज्यसे बलात् कैसे वञ्चित किया जा सकता है ?' इस प्रकार धृतराष्ट्रका प्रकृतितः पाण्डवोंके प्रति प्रेमभाव भी लक्षित होता है । द्रौपदीके साथ पाण्डवोंके विवाहका समाचार सुननेके बाद धृतराष्ट्रने 'अहोभाग्य ! अहोभाग्य !!' कहकर आनन्द प्रदर्शित किया और विदुरको भेजकर उनको हस्तिनापुर बुलवाया । पाण्डवोंके आनेपर उनकी आत्मीयता जाग्रत् हुई और उन्होंने कहा कि, 'युधिष्ठिर ! मेरे दुरात्मा पुत्र दम्भ और अहङ्कारसे भरे हैं, मेरा कहना नहीं मानते, सदा अपने स्वार्थसाधनकी बात सोचते रहते हैं । इन दुरात्माओंसे कहीं झगड़ा न हो जाय, इसलिये तुम आधा राज्य लेकर खाण्डवप्रस्थमें निवास करो ।' इस प्रकार महाराज धृतराष्ट्रने झगड़ेका अन्त कर दिया । उनका यह कार्य भगवान् श्रीवासुदेवको भी पसंद आ गया और वे बोल उठे—

युक्तमेतन्महाराज कौरवाणां यशस्करम् ।

'महाराज ! आपका यह विचार सर्वथा उत्तम तथा कौरवोंकी यशवृद्धि करनेवाला है ।'

जुआ खेलनेका प्रस्ताव करनेके पहले धृतराष्ट्रने दुर्यो[धन]को बहुत समझाया और कहा, 'बेटा ! पाण्डवोंसे [द्वेष] मत करो, क्योंकि द्वेष करनेवाला मनुष्य मृत्युके समान [दुःख] पाता है । युधिष्ठिर तुमसे द्वेष नहीं करते और जो उनके [मित्र] हैं, वे तुम्हारे भी मित्र हैं । दूसरेके धनकी स्पृहा क[रना] अच्छे पुरुषोंका काम नहीं है ।

पाण्डोः पुत्रान् मा द्विषस्वेह राजं-
स्तथैव ते भ्रातृधनं समग्रम् ।
मित्रद्रोहे तात महानधर्मः
पितामहा ये तव तेऽपि तेषाम् ॥

(सभा० ५४ । ...

'तुम पाण्डवोंसे द्वेष न करो । वे तुम्हारे भा[ई हैं] भाइयोंका सारा धन तुम्हारा ही है । मित्रद्रोहसे बड़ा अ[धर्म] होता है, तुम्हारे दादे-परदादे जो हैं, उनके भी वे ही ...' इस प्रकार महाराजकी शान्तिप्रियताका पता लगता [है ।] परंतु शकुनिने अपनी दुरभिसन्धिके द्वारा इनकी बुद्धि[पर] पर्दा डालकर जुएके प्रस्तावका समर्थन करा लिया जो कौ[रवों]के सर्वनाशका कारण बना ।

जुएमें जब पाण्डव सर्वस्व हार गये और द्रौप[दीको] दावपर रखना न्यायसङ्गत है या नहीं, इसपर बहस [हो] रही थी तो धृतराष्ट्रने दुर्योधनको फटकारते हुए कहा, 'रे मन्दबुद्धि दुर्योधन ! तू तो विनष्ट हो ग[या] दुर्विनीत ! तू श्रेष्ठ कुरुवंशियोंकी सभामें अपने ही कु[लकी] स्त्री तथा विशेषतः पाण्डवोंकी धर्मपत्नी द्रौपदीको ल[क्ष्य कर] पापकी बातें कर रहा है ।' इस प्रकार बन्धु-बान्ध[वोंको] विनाशसे बचाकर तत्त्वदर्शी महाराज धृतराष्ट्रने द्रौप[दीको] सान्त्वना देते हुए कहा—

वरं वृणीष्व पाञ्चालि मत्तो यदभिवाञ्छसि ।
वधूनां हि विशिष्टा मे त्वं धर्मपरमा सती ॥

(सभा० ७१ । ...

'बहू द्रौपदी ! तुम मेरी पुत्रवधुओंमें सर्वश्रेष्ठ [और] धर्मपरायणा सती हो । तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे [वर] माँगो ।'—यह सुनकर द्रौपदीने युधिष्ठिरको दासभा[वसे] मुक्त करनेका वर माँगा । पश्चात् नन्दिनी, धर्मचारि[णी], कल्याणी आदि शब्दोंसे सम्बोधित करते हुए राजाने [और] और वर माँगनेके लिये कहा, परंतु द्रौपदीने केवल [एक] वर माँगकर भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव[को] अपने-अपने रथ और धनुष-बाणके साथ दास-भावसे [मुक्त] करा लिया । यहाँ महाराज धृतराष्ट्रके विवेक और दूरदर्शि[ता]का सुन्दर उदाहरण प्राप्त होता है । वस्तुतः वे महारा[ज] पाण्डुके बड़े भाई थे, इसलिये इस अवसरपर उन्होंने [जो] कुछ किया, उससे उनकी मर्यादाकी रक्षा हो गयी । प[रंतु] होनी होकर रहती है, पुनः धृतराष्ट्रको उलाहना ...

समझाकर दुर्योधनने धर्मराजको जुआ खेलनेके लिये बुलानेको राजी कर लिया। धृतराष्ट्रकी बुद्धि मारी गयी, उनके आमन्त्रणपर धर्मराज जुआ खेलने आये, और वही जुआ सर्वनाशका कारण बना।

जब दूतके रूपमें भगवान् श्रीकृष्णके पधारनेकी बात विदुरके मुखसे महाराज धृतराष्ट्रने सुनी तो उनका गुणगान करने लगे—

चक्षुष्मतां वै स्पृहयामि संजय
द्रक्ष्यन्ति ये वासुदेवं समीपे।
विभ्राजमानं वपुषा परेण
प्रकाशयन्तं प्रदिशो दिशश्च॥
(उद्योग० ७१।१)

'संजय! मैं आँखवालोंके भाग्यका अभिलाषी हूँ, जो वासुदेव श्रीकृष्णको समीपमें देखते हैं, जो उत्तम श्रीसम्पन्न विग्रहसे दिशाओं, प्रदिशाओंको प्रकाशित करते हुए शोभायमान हैं।'

सहर्षशीर्षं पुरुषं पुराण-
मनादिमध्यान्तमनन्तकीर्तिम्।
शुक्रस्य धातारमजं च नित्यं
परं परेषां शरणं प्रपद्ये॥
(उद्योग० ७१।६)

'जिनके सहस्रों सिर हैं, जो पुराणपुरुष हैं, जिनका आदि, मध्य और अन्त नहीं है। जो अनन्त कीर्तिमान् हैं, जो सृष्टिके बीजको धारण करते हैं, जो अज हैं, नित्य हैं, परात्पर हैं उन भगवान् श्रीकृष्णकी मैं शरण जाता हूँ।'

महाराज धृतराष्ट्रने द्रोणपर्वके ग्यारहवें अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाका संक्षेपमें वर्णन करके श्रीकृष्ण और अर्जुनकी महिमाका गुणगान किया है। सारी लीलाओंका स्मरण करते हुए राजसभामें भगवान् वासुदेवके रूपका वर्णन करते हुए वे कहते हैं—

यच्च तन्महदाश्चर्यं सभायां मम संजय।
कृतवान् पुण्डरीकाक्षः कस्तदन्य इहार्हति॥
यच्च भक्त्या प्रसन्नोऽहमद्राक्षं कृष्णमीश्वरम्।
तन्मे सुविदितं सर्वं प्रत्यक्षमिव चागमम्॥
नान्तो विक्रमयुक्तस्य बुद्ध्या युक्तस्य वा पुनः।
कर्मणां शक्यते गन्तुं हृषीकेशस्य संजय॥
यस्य यन्ता हृषीकेशो योद्धा यस्य धनंजयः।
रथस्य तस्य कः संख्ये प्रत्यनीको भवेद् रथः॥
अर्जुनः केशवस्यात्मा कृष्णोऽप्यात्मा किरीटिनः।
अर्जुने विजयो नित्यं कृष्णे कीर्तिश्च शाश्वती॥
(द्रो० ११।२४–२६, ३६, ३८)

'हे संजय! भगवान् श्रीकृष्णने मेरी सभामें जो महान् आश्चर्य कर दिखाया था, वह दूसरा कौन कर सकता है? भक्तिसे प्रसन्न होकर मैंने भगवान् श्रीकृष्णके जिस स्वरूपको देखा था, वह आज भी प्रत्यक्षवत् स्मरण हो रहा है। संजय! कोई पराक्रमयुक्त या बुद्धियुक्त अथवा कर्मसे युक्त होकर हृषीकेश श्रीकृष्णका अन्त नहीं पा सकता। जिस रथके हाँकनेवाले श्रीकृष्ण हैं तथा योद्धा अर्जुन हैं, उस रथके सामने कोई शत्रु कैसे टिक सकता है? अर्जुन श्रीकृष्णकी आत्मा हैं और श्रीकृष्ण अर्जुनकी आत्मा हैं। अर्जुन नित्य विजयी हैं, और श्रीकृष्णमें शाश्वती कीर्ति है।' और मोहवश दुर्योधन श्रीकृष्णको नहीं पहचान रहा है और न अर्जुनको। ये दोनों पूर्वदेव महात्मा नर-नारायण हैं।

इस प्रकार भगवद्गुणोंके ज्ञाता धृतराष्ट्र पुत्रके मोहमें पड़कर दुर्योधनके अन्यायोंका निराकरण न करनेके कारण दोषके भागी बने। परंतु अंधे होते हुए भी उन्होंने भगवत्कृपासे राजसभामें भगवान्‌के दिव्यरूपका दर्शन किया था, जो सौभाग्य संसारमें विरले ही प्राप्त करते हैं! भगवान्‌ने स्वयं उनको इसके लिये दिव्यदृष्टि प्रदान की थी। महाभारतके अन्तमें कुछ दिन हस्तिनापुरमें रहनेके बाद अन्तमें वनमें जाकर भगवान्‌की आराधनामें उन्होंने अपना जीवन व्यतीत किया।

राजा दुर्योधन

पाण्डवोंके कट्टर शत्रु तथा कलिके अंशावतार दुर्योधन अंधे धृतराष्ट्रके ज्येष्ठ पुत्र थे। वे राज्यलोभी, अहङ्कारी, ईर्ष्यालु, अयोग्य, महत्त्वाकांक्षासे युक्त, दम्भी, गुरुजनकी आज्ञाकी अवहेलना करनेवाले, अपनी बड़ाई आप करनेवाले और अपनी इच्छाके विरुद्ध वर्तनेवाले, शुभचिन्तकोंको भी शत्रुकी दृष्टिसे देखनेवाले थे। उनमें सद्गुण भी थे। परंतु वे गुण भी दुर्गुणोंका साम्राज्य बढ़ जानेके कारण दूसरोंके लिये संहारकारक ही सिद्ध हुए। वे राजनीतिमें निपुण थे, धन तथा सम्मान प्रदान करके दूसरोंको अपना बना लेनेकी उनमें क्षमता थी और इसी कारणसे उन्होंने भीष्म, द्रोणाचार्य आदि, जो पाण्डवोंको समभावसे देखते थे, उनको भी युद्धमें अपने पक्षमें कर लिया था। केवल साधुपुरुष धर्मावतार विदुरजी उनके धनके लोभमें नहीं फँसे थे। इसी कारण दुर्योधन सदा अपना रहस्य खोल देनेवाले शत्रुके रूपमें ही उनको देखते थे। वे युद्धकालमें भी तटस्थ ही रह गये थे। दुर्योधनने अपने राज्यकालमें प्रजाको तथा माण्डलिक राजाओंको प्रसन्न रक्खा था; परंतु इसका मुख्य हेतु यह था कि, किसी प्रकार असंतुष्ट होकर कोई पाण्डवोंकी ओर न चला जाय। वे भीमसेनको अपना कट्टर शत्रु समझते थे, परंतु उनकी शक्तिके आगे उसकी एक न चलती थी।

दुर्योधनने धनुर्वेदादि शस्त्र-विद्याकी शिक्षा द्रोणाचार्यके पास ग्रहण की थी, इसलिये वे अन्यान्य शस्त्रास्त्रोंके द्वारा भी युद्ध करते थे। परंतु गदायुद्धमें तो वे अत्यन्त ही कुशल थे। वे और भीम दोनोंने ही बलरामजीसे गदायुद्धकी शिक्षा ली थी; परंतु भीमसेनके शारीरिक बलके आगे वे निर्बल बन जाते थे, इसी कारण वे कर्तव्याकर्तव्य भूलकर नृशंस कर्म करने लगते थे। वे दूसरोंका छिद्रान्वेषण करते थे, परंतु अपने छिद्रोंको नहीं देखते थे और जब कोई उनका दोष दिखलाता था, तब वे उसकी अवज्ञा कर बैठते थे। इसी कारण वे आजन्म वैराग्निको शान्त न कर सके। जीवनभर वे पाण्डवोंको अपने सम्राट्पदमें विघ्नरूप मानकर उन्हींका स्वप्न देखते थे और उनका कैसे निर्मूल किया जाय, इसीकी कोशिशमें लगे रहते थे। इस वैरभावकी दीक्षा लेकर उन्होंने इस वैराग्निमें भारतमाताके रत्नरूप पुत्रोंका होम कर दिया और अन्तमें स्वयं भी वीरके समान युद्ध करके सौ भाइयोंके साथ होमे गये और भारतभूमिको निस्तेज कर डाला। दूसरोंका अनिष्ट चाहनेवाले वे अपना या दूसरे किसीका भी इष्ट साधन नहीं कर सके, उलटे आनेवाले युगोंके लिये अपना अपयश छोड़ गये।

दैव श्रेष्ठ है या पुरुषार्थ ?—यह प्रश्न उपस्थित होनेपर दुर्योधनका दृष्टान्त लेना चाहिये। पुरुषार्थके ऊपर पूर्ण विश्वास रखनेवाले और दैवको लेशमात्र भी न माननेवाले दुर्योधनका दैवके द्वारा ही नाश हुआ। भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य-जैसे बलवान् महारथी, जो पाण्डवोंके पक्षपाती थे, उनको युद्धमें अपने पक्षमें लेनेका सफल प्रयास दुर्योधनने किया था। उसकी राजनीतिके कारण वृद्ध और सारासारका विवेक रखनेवाले भीष्म-जैसे योद्धा दुर्योधनके अन्यायी पक्षमें अन्ततक रहे और युद्ध करते हुए मरे। जैसे-जैसे दुर्योधन हारते गये, वैसे-वैसे उनको यह लगने लगा कि, 'पुरुषार्थ बेकार है, दैव सर्वथा बलवान् है।'—दुर्योधनके जीवनकी आलोचना करनेपर यह तथ्य सबके सामने आता है।

महाभारत पढ़नेवालोंका पाण्डवोंमें पक्षपात होता है, यदि महाभारतकारने ऐसा जोर न डाला होता तो दुर्योधन कुशल और श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ थे, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। पाण्डवोंको तो वे जन्मसे ही धिक्कारते थे। कर्ण और अर्जुन तथा दुर्योधन और भीम इन दोनोंके बीच बचपनसे ही ईर्ष्या, द्वेष और वैरभाव था। दुर्योधनका द्वेष इस सीमा-तक पहुँच गया था कि उन्होंने पाण्डवोंको सूईकी नोकके बराबर भी जमीन न देनेका सङ्कल्प कर लिया था।

भीष्म और द्रोणको उन्होंने अपने पक्षमें करके पाण्डवों-के विरुद्ध युद्धमें लगाया था। तथापि दुर्योधनको इनके ऊपर विश्वास न था। उसने कई बार उनको खरी-खोटी सुनाते हुए कहा था कि, 'आपलोगोंका पोषण तो मैं करता हूँ, परंतु आपलोग पाण्डवोंका पक्षपात करके युद्ध करते हैं।' भीष्म और द्रोणाचार्यको दुर्योधनका यह स्वभाव अच्छा नहीं लगता था। दुर्योधन कभी-कभी कर्णकी प्रशंसा करते थे और यह भी कहते थे कि उसके द्वारा वे युद्ध जीतेंगे।

दुर्योधन सद्व्यवहारकी महिमा जाननेवाले तथा मृदुभाषी थे। उनके सद्व्यवहार तथा मृदुभाषितासे माद्रीके भाई शल्यने दुर्योधनके पक्षमें रहना और कर्णका सारथी बनना स्वीकार किया। अश्वत्थामा और कर्णके वा... युद्धको इन्होंने अपनी मृदुवाणीसे बंद किया था। उन... अमृतमयी वाणीसे भूलकर धृतराष्ट्र उनके कार्यमें स्वीकृति दे देते थे। यह दुर्योधनकी राजनीति थी। इसी मृदु भाषण... के बलसे उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णकी सारी नारायणी सेना अपने पक्षमें ले लिया था तथा प्रकारान्तरसे श्रीकृष्ण... युद्धमें शस्त्र ग्रहण न करनेका वचन भी ले लिया था।

दुर्योधनके जीवनमें सबसे जघन्य कृत्य था भरी सभा... पाञ्चालकुमारी द्रौपदीका घोर अपमान। द्रौपदी उस का... नारीजगत्का सर्वश्रेष्ठ रत्न थी; उसका अपमान क... दुर्योधनने अपनी मृत्युका—अपने सर्वनाशका बीज बोया...

दुर्योधन महान् तेजस्वी और शक्तिशाली राजा... धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि उनके शासनमें... महाभारतके महायुद्धमें उनकी सेना भी सर्वथा सुव्यवस्थित और सुदृढ़ तथा महान् थी। यदि पाण्डव-पक्षमें भगवान् श्रीवासुदेव न होते तो पाण्डवोंकी विजय संशयास्पद ... दुर्योधनमें कार्यक्षमता भी अपूर्व थी। उनका गुप्तचर-वि... सुव्यवस्थित था, जहाँ-कहीं कौरवोंके विपक्षकी अ... पाण्डवोंके पक्षकी कोई घटना घटती, दुर्योधनको गुप्तचरोंके द्वारा तुरंत उसकी सूचना मिल जाती थी। और वे चौ... होकर प्रतिविधानके लिये तैयार हो जाते थे। उसके गुप्त... प्रत्येक राज्योंमें थे। उनका शासन-तन्त्र भी सुव्यवस्थित ... वे प्रजा-पालनमें राजधर्मका अनुसरण करते थे। गो-ब्राह्मण... रक्षक थे। महाविष्णु यज्ञ करके उन्होंने ब्राह्मणोंको द... दक्षिणासे परितुष्ट कर दिया था। यदि पाण्डवोंके प्रति किये... उनके दुर्व्यवहारोंको अलग करके देखें तो दुर्योधन ... महत्त्वाकांक्षी क्षात्रधर्मके अनुसार प्रजारञ्जन करने... प्रभावशाली सम्राट् थे। उनके राजदरबारमें ब्राह्मणों... ऋषि-मुनियोंको यथोचित सत्कार प्राप्त होता था।

जब भगवान् वासुदेव दूतके रूपमें संधिका प्रस्ताव ले... हस्तिनापुर जाने लगे और इसका समाचार दुर्योधन... दूतोंके द्वारा प्राप्त हुआ, तो उन्होंने भगवान् वासुदेव श्रीकृ... के आगमनके अवसरपर अपूर्व स्वागत-सत्कारका प्रब... किया। वृकस्थलमें भगवान् अपने सैन्यके साथ मार्गमें रा...

समय विश्राम करनेवाले थे। अतएव वृकस्थलसे हस्तिनापुर-तक स्थान-स्थानपर रम्य विश्रामस्थल, रत्नजटित सभास्थल, नाना प्रकारके विचित्र आसन, वसन, अन्न-पान, आहार-विहार तथा नाना प्रकारके बहुमूल्य रत्नोंकी योजना भगवान् श्रीवासुदेवकी प्रसन्नताके लिये की गयी थी। परंतु भगवान् संधि-दूतके रूपमें जा रहे थे, अतएव दुर्योधनके द्वारा आयोजित इन आयोजनोंका उपयोग उन्होंने नहीं किया।

राजा धृतराष्ट्रके सामने जब विदुरजीने श्रीकृष्णकी महिमा सुनाकर उनका सत्कारपूर्वक आतिथ्य करनेकी बात कही तो कूटनीतिज्ञ दुर्योधनने कहा कि 'श्रीकृष्णके विषयमें विदुरजीने जो कुछ कहा है उसे मैं ठीक मानता हूँ, परंतु जनार्दन पाण्डवोंके प्रति अति अनुरक्त हैं। हे राजन्! बुद्धिमान्को ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये कि क्षत्रियका अनादर हो। मैं जानता हूँ कि विशाललोचन श्रीकृष्ण तीनों लोकोंमें पूज्यतम हैं। तथापि पाण्डव-परायण होनेके कारण श्रीकृष्णको नियन्त्रित करना ही ठीक है। यदि वासुदेव पकड़ लिये गये तो सब कार्य सिद्ध हो जायगा।' दुर्योधनकी इस बातको सुन मन्त्रियोंके सहित धृतराष्ट्र काँप उठे और बोले—'अरे बेटा! ऐसी बात न कहो, यह सनातन धर्म नहीं है। एक तो हृषीकेश दूतके रूपमें आये हैं, दूसरे हमारे सम्बन्धी और प्रियजन हैं, तीसरे कौरवोंके विषयमें उनकी पापबुद्धि नहीं है। फिर भला उनको क्यों बन्धनमें डाला जाय?'

दूतश्च हि हृषीकेशः सम्बन्धी च प्रियश्च नः।
अपापः कौरवेयेषु स कथं बन्धमर्हति॥
(उद्योग० ८८। १८)

धृतराष्ट्रकी बात सुनकर भीष्मजी बिगड़ गये और बोले—'धृतराष्ट्र! तुम्हारा पुत्र मूर्ख है। सुहृद्जन इसे भला सुझाते हैं, और यह बुरा ही सोचता है। यह दुष्ट भगवान् वासुदेवको पकड़नेपर क्षणमात्रमें अपने मन्त्रियोंके साथ नाशको प्राप्त हो जायगा। इस पापी, अधर्मी और मूर्खकी बात मैं नहीं सुनना चाहता'—इतना कहकर असंतुष्ट होकर भीष्मजी वहाँसे उठ गये।

परंतु दुर्योधन महा अहङ्कारी थे, उनको अपने बलका बड़ा अभिमान था। दूसरे, कर्ण उनको सहायक मिल गये, जो अपनेको सबसे बड़ा धनुर्धर समझते थे। इन दोनों वीरोंकी विचित्र जोड़ी थी, इसी कारण भगवान् वासुदेवने कर्णको पाण्डवोंके पक्षमें लानेकी चेष्टा की थी। उद्योगपर्वके ६३वें अध्यायमें दुर्योधनने भीष्मपितामहसे रुष्ट होकर यहाँतक कह दिया था कि 'मैं युद्ध आपके भरोसे, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, बाह्लीक तथा दूसरे राजाओंके भरोसे नहीं करने जा रहा हूँ। मैं कर्ण और भाई दुःशासनको साथ लेकर युद्धमें पाँचों पाण्डवोंको मार डालूँगा, और तब भूरि-भूरि विविध दक्षिणाओंसे युक्त महान् यज्ञोंका अनुष्ठान करके गौओं, अश्वों तथा नाना प्रकारके धनोंसे ब्राह्मणोंको परितृप्त करूँगा।'

दुर्योधन महान् सम्राट् थे, इसमें संदेह नहीं है। परंतु वे बड़े भारी अन्यायी थे, उन्होंने पाण्डवोंको बहुत सताया। पाण्डव लोग धर्मात्मा थे, बलमें भी अद्वितीय थे, परंतु धर्मभीरु थे। युधिष्ठिर तो धर्मराज ही कहलाते थे, और शेष चारों भाई उनके आज्ञानुवर्ती थे। अपनी माता कुन्ती और धर्मपत्नी द्रौपदीके साथ पाँचों पाण्डव भगवान् श्रीवासुदेव-के परम प्रियजन थे। भगवान् आर्तोंके—असहायोंके सहायक होते हैं। दुर्योधनने विष देकर भीमसेनको मार डालनेकी चेष्टा की, वारणावतके लाक्षागृहमें कुन्तीसहित पाँचों पाण्डवोंको जला डालनेकी चेष्टा की, जुएमें शकुनिकी सहायतासे छल करके पाण्डवोंका सर्वस्व छीनकर पतिव्रता द्रौपदीको भरी सभामें अपमानित किया, पाण्डवोंको वनवास देकर वन-वन भटकनेके लिये विवश किया। उनके सारे कर्म आततायीपनसे भरे थे। ऐसी अवस्थामें भगवान्का पाण्डव-पक्षमें रहना स्वाभाविक था। इन अत्याचारोंके होते हुए भी दुर्योधन असुर नहीं थे, अपनेको क्षात्रधर्मका अनुवर्तन करनेवाला विशुद्ध क्षत्रिय समझते थे। और तदनुसार बर्तने-की चेष्टा करते थे, इसी कारण भगवान् श्रीवासुदेव दूत बनकर गये कि वह अपनी भूल सुधार ले, पाण्डवोंके प्रति भाईके समान व्यवहार करनेके लिये राजी हो जाय। लेकिन दुर्योधनको अपने बलका बड़ा घमंड था। वे न माने। फलतः महाभारतका महायुद्ध हुआ, जिसमें उनके पक्षके सब राजा अपनी सारी सेनाओंके साथ मारे गये और अन्तमें दुर्योधन गदायुद्धमें भीमके द्वारा मारे गये। कौरवपक्षके केवल कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कृतवर्मा और युयुत्सु बच रहे।

महावीर कर्ण

कुन्तीकी कुमारावस्थामें सूर्यदेवके द्वारा कर्णकी उत्पत्ति ई। परंतु लोकापवादके भयसे कुन्तीने उन्हें काष्ठकी पेटीमें क्षित रखकर गङ्गामें बहा दिया था। और अधिरथ नामके तकी स्त्री राधाने उन्हें पाल-पोसकर बड़ा बनाया था। इसी रण उन्हें सूतपुत्र, राधेय आदि नामोंसे पुकारते थे। वे रव-पक्षमें अर्जुनके समान धनुर्धर थे। दुर्योधन अर्जुन-पराक्रमको देखकर बहुत घबराते थे, परंतु परीक्षाके समय जब कर्णने आकर अर्जुनके समान पराक्रम दिखला दिया तो तभीसे उन्होंने कर्णको अपना मित्र बना लिया तथा उनको अङ्गदेशका राजा बनाकर अपनेको निर्भय समझने लगे। कर्णकी सहायतापर पूर्णरूपेण निर्भर होनेके कारण ही दुर्योधनने पाण्डवोंके प्रति अपने वैरभावको अन्ततक शान्त न होने दिया। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और भीष्म-पितामहपर उनको पूरा भरोसा न था। वे इनको उभय-

पक्षीय मानते थे। परंतु कर्णको सर्वथा अपना ही समझते थे; यही नहीं, उनको यह निश्चय हो गया था कि यह अवश्य ही अर्जुनको मार गिरावेगा। कर्ण शूर थे तथा साथ ही कुछ भीरु भी थे। वे गन्धर्वयुद्धमें, गोहरणके युद्धमें तथा महायुद्धमें पराङ्मुख होकर भागते हुए देखे गये थे। '**राधेये शौरभीरुते**'—कर्णमें शौर्य और भीरुता दोनों थी। शौर्य तो क्षत्रिययोनिमें जन्म लेनेके कारण था और भीरुताका कारण था सूतके घरमें उनका पालन-पोषण। परीक्षाके समय कर्णका पराक्रम देखकर युधिष्ठिरके मनमें यह दृढ़ छाप पड़ गयी थी कि कर्णके समान कोई दूसरा धनुर्धर नहीं है। और यह छाप जबतक कर्ण मरे नहीं, तबतक बनी रही। उनको युद्धमें कर्णसे बहुत डर था, इसी कारण उन्होंने कर्णको बिना मारे आये हुए अर्जुनको बहुत कड़ी बातें सुनायी थीं। कर्ण तपस्वी, दाता और उदार थे। वे नित्य प्रातःकाल गङ्गामें खड़े होकर तबतक जप करते रहते थे जबतक सूर्य ढल न जाय। उस समय उनके पास आकर जो कोई जो कुछ माँगता; उसे वे देते थे। कर्णने कवच और कुण्डल पहने ही जन्म लिया था। वे जबतक उसके साथ रहते तबतक उसकी मृत्यु होनेवाली न थी। अतएव अपने पुत्र अर्जुनको बचानेके लिये साक्षात् इन्द्रने ब्राह्मणका वेष धारण करके कर्णके पास आकर कवच-कुण्डलकी याचना की थी। कर्णने उन्हें पहचान लिया, परंतु अपने व्रतकी रक्षाके लिये उन्होंने कवच और कुण्डल उतारकर इन्द्रको दे दिये। इसपर प्रसन्न होकर इन्द्रने उनको एक अमोघ शक्ति दी, जो एक आदमीको मारनेमें पूर्ण समर्थ थी। कर्णने उस शक्तिके प्रयोगसे घटोत्कचको मारा था। कर्ण कृतज्ञ तथा हठीले थे। श्रीकृष्णने संधिदूतका कार्य करके लौटते समय कर्णको अपने रथमें बैठाकर उन्हें बतलाया कि वे सूतपुत्र नहीं, बल्कि कुन्तीपुत्र हैं। और यह भी कहा कि, 'तुम पाण्डव-पक्षमें आ जाओ तो राज्य तुम्हें ही मिलेगा। परंतु कर्णने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि, 'पाण्डव-पक्षमें आप हैं, इससे जय पाण्डवोंकी ही होगी; परंतु दुर्योधनने मुझको आजतक बहुत मान-सम्मानसे रक्खा है, तथा मेरे ही भरोसे युद्ध खड़ा किया है, ऐसी अवस्थामें यदि मैं उसे छोड़ता हूँ तो यह अन्याय माना जायगा। अतएव मैं ऐसा नहीं कर सकता।' फिर कुन्ती भी वहाँ गङ्गा-तटपर गयी जहाँ कर्ण जप करते थे। और उनके जन्मकी सत्य कथा सुनाकर उसे पाण्डवपक्षमें आनेके लिये कहा। कर्णने उसको भी मार्मिक शब्द सुनाकर अपनी असमर्थता प्रकट की, परंतु उदारतासे यह भी कहा कि 'माँ! या तो अर्जुनसहित तेरे पाँच पुत्र रहेंगे या अर्जुनरहित तेरे पाँच पुत्र रहेंगे। मैं अर्जुनके सिवा तेरे दूसरे पुत्रोंको नहीं मारूँगा।' इस वचनका पालन कर्णने अन्ततक किया। दुर्योधनको न छोड़ना, उनके अडिग व्रत तथा कृतज्ञता... उज्ज्वल दृष्टान्त है। युद्धकी समाप्ति हो जानेपर जलाञ्जलि देते समय कुन्तीने कर्ण किसका पुत्र था, यह रहस्य खो... दिया था। और यह जानकर युधिष्ठिरने जीते-जी ही नहीं बल्कि स्वर्गमें भी शोक करते हुए उनकी खोज की थी। युधिष्ठिरने जल प्रदान करते समय शोकपूर्वक कहा था कि 'कर्ण बहुत कुवचन कहते थे, परंतु मेरी माताके सम... उनके पैर देखकर मेरा क्रोध शान्त हो जाता था तथा... विचारमग्न हो जाता था।' कैसा अदृष्ट बन्धु-प्रेम था! कर्ण दाता, शूर, युद्धकुशल, एकनिष्ठ और उदार थे इसके साथ-साथ वे अनदेखे, बढ़ावा देनेवाले आत्मप्रशं... धृष्ट तथा अभिमानी भी थे। इन्हीं दुर्गुणोंके कारण अर्जुनसे द्वेष करते थे, और इसीसे वे दुर्योधनके साथ दे... जाते थे तथा स्वयं अपकीर्तिके भागी बनते थे। उन्होंने जरासंधको हराया था तथा अकेले ही दिग्विजय किया था उनका यह कार्य उसके अद्भुत शौर्य तथा शस्त्रास्त्रविद्या... नैपुण्यका सूचक है। महायुद्धमें उन्होंने दो दिन सेनापति पदपर रहकर उत्कृष्ट पराक्रम दिखलाया था। अन्त... ब्राह्मणके शापसे उनका रथचक्र भूमिमें धँस गया... उसको उठानेके लिये वे नीचे उतरे, उसी समय श्रीकृष्ण... प्रेरणासे अर्जुनने उनका सिर काट डाला। वे गौर... ऊँचे कदके, प्रचण्ड तेजस्वी तथा प्रभावशाली पुरुष थे। वे दाताके रूपमें अपने पीछे अमरकीर्ति छोड़ गये हैं। ... ही दुर्योधनके पाप-सम्बन्धसे अपकीर्ति भी छोड़ गये... उनके जीवनमें जो सबसे बड़ी कालिमा है, वह है राजसभा... द्रौपदीके प्रति उनकी अधम वाणी। वहाँ द्रौपदीको उन्होंने वेश्याकी उपमा देते हुए कहा है—

> **अस्या सभामानयनं न चित्रमिति मे मतिः।**
> **एकाम्बरधरत्वं वाप्यथ वापि विवस्त्रता॥**
>
> (सभा० ६८। ३...)

'इसको सभामें लाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं... यह एकवस्त्रा हो या नंगी हो तो भी यहाँ लायी जा सकती है।' यह निश्चयपूर्वक अधिरथके घरमें प्राप्त निम्नकोटि... संस्कारोंका ही परिणाम था। उच्चकुलमें उत्तम रजवी... उत्पन्न बुद्धिमान् पुरुष भी कुसङ्गसे कितना गिर जाता है इसका यह प्रत्यक्ष उदाहरण है। कर्ण बड़े ही आत्माभिमानी थे। इसी कारण आत्मश्लाघामें वे इतने आगे बढ़ जाते कि भीष्म-द्रोण आदि गुरुजनोंके लिये भी असह्य हो जाते... गुरुजन तो पाण्डवोंको अजेय बतलाते थे और दुर्योधन... उनके साथ संधि करके चलनेकी सम्मति देते थे। नि... ही उनकी यह सम्मति निष्पक्ष होती थी। और कौरवोंके लिये कल्याणजनक थी। परंतु कर्णके लिये पाण्डवों... **प्रशंसा असह्य थी**। वे सदा उनका पराभव ही चाहते...

उनकी डींग हाँकनेकी आदत भी थी, और वह गुरुजनोंको प्रायः अप्रिय हो जाती थी। विराटकी गौओंके अपहरणके अवसरपर उनका डींग मारना सुनकर कृपाचार्यसे नहीं रहा गया। वे बोले—

सदैव तव राधेय युद्धे क्रूरतरा मतिः।
नार्थानां प्रकृतिं वेत्सि नानुबन्धमवेक्षसे॥
(विराट० ४९। १)

'कर्ण! युद्धके विषयमें तुम्हारा विचार सदा ही अति क्रूर होता है। न तो तुम कार्यकी प्रकृतिको समझते हो, न परिणामको देखते हो।' यहाँ कृपाचार्यने कर्णकी प्रकृतिकी यथावत् आलोचना की है; फिर आगे वे कहते हैं कि 'अर्जुनको जीतना आसान नहीं है। उसने अकेले ही उत्तरकुरु देशपर विजय प्राप्त की, अकेले खाण्डववनको दग्ध कर डाला, अकेले ही पाँच वर्षतक तप करते हुए ब्रह्मचर्यका पालन किया, अकेले ही सुभद्राका अपहरण करके स्वयं श्रीकृष्णको द्वन्द्व-युद्धके लिये ललकारा, अकेले ही किरातवेषधारी शङ्करसे युद्ध किया इत्यादि अनेकों वीरतापूर्ण कार्य किये। और कर्ण! तुमने अकेले क्या किया?

अश्वत्थामाने भी कहा—

न च तावज्जिता गावो न च सीमान्तरं गताः।
न हास्तिनपुरं प्राप्तास्त्वं च कर्ण विकत्थसे॥
(विराट० ५०। १)

'कर्ण! अभी तो हमने न गौओंको जीता, न मत्स्यदेशकी सीमाके बाहर गये और न हस्तिनापुर पहुँचे और तुम व्यर्थ डींग हाँकते हो।' सचमुच वीर पुरुषोंको अपेक्षाकृत अल्पशक्ति रखनेवालोंकी डींग असह्य हो जाती है। इसी कारण भीष्मने उनकी भर्त्सना की थी, और उससे रुष्ट होकर कर्णने प्रण किया था कि 'जबतक भीष्म सेनापति रहेंगे, मैं युद्ध नहीं करूँगा।'

परंतु जब शरशय्यापर भीष्मपितामह लेटे थे, उस समय कर्ण उनके पास गये और गद्गदस्वरसे बोले— 'भीष्म! भीष्म! हे महाबाहो, हे महातेजस्विन्! मैं राधापुत्र कर्ण हूँ, जो सदा ही आपकी आँखोंका काँटा बना रहा।' यह सुनकर भीष्मने आँखें खोलीं और कर्णको एक हाथसे पकड़कर छातीसे लगा लिया, बोले—'कर्ण! तू मुझसे स्पर्धा करता रहा है! यदि तू आज मेरे पास नहीं आता तो निश्चय ही तेरा कल्याण नहीं होता। तू राधापुत्र नहीं, कुन्तीपुत्र है, सूर्यसे उत्पन्न हुआ है। और मैं सत्य कहता हूँ, बेटा! मेरे मनमें तेरे प्रति द्वेष नहीं है। तू जो अकारण ही पाण्डवोंकी निन्दा करता था, इसी कारण मैंने तुझको परुष वाक्य कहे थे। मैं जानता हूँ कि राजा दुर्योधनके द्वारा प्रेरित होकर ही तू ऐसा करता था।

'नीच-आश्रय और ईर्ष्याके कारण तेरी गुणवान् पाण्डवोंमें भी द्वेषबुद्धि देखकर मैंने कौरवसभामें तुझे खरी-खोटी सुनायी थी। मैं यह जानता हूँ कि संसारमें युद्धमें प्रकट हुआ तेरा पराक्रम शत्रुओंके लिये असह्य है। तू तेजस्वी है, शूरवीर है और दानियोंमें श्रेष्ठ है'। इस प्रकार कर्णकी प्रशंसा करते हुए भीष्मने कहा कि 'यदि तू मेरा प्रिय कार्य करना चाहता है तो पाण्डवोंसे मिल जा।' भीष्मके ऐसा कहनेपर भी कर्णने वही उत्तर दिया, जो वे वासुदेव श्रीकृष्णको दे चुके थे—

भुक्त्वा दुर्योधनैश्वर्यं न मिथ्याकर्तुमुत्सहे॥
वसुदेवसुतो यद्वत् पाण्डवाय दृढव्रतः।
वसु चैव शरीरं च पुत्रदारं तथा यशः॥
सर्वं दुर्योधनस्यार्थे त्यक्तं मे भूरिदक्षिणः।

'पितामह! दुर्योधनके दिये ऐश्वर्यका भोग करके मैं मिथ्या आचरण करनेका साहस नहीं कर सकता। जिस प्रकार पाण्डवोंके लिये वासुदेव दृढ़व्रती हैं, उसी प्रकार मैंने अपना तन-धन, स्त्री-पुत्र, यश—सब कुछ दुर्योधनके लिये त्याग दिया है।' अन्तमें चलते समय कर्णने क्षमा-प्रार्थना करते हुए भीष्मसे कहा—

दुरुक्तं विपरीतं वा रभसात् चापलात् तथा।
यन्मयेह कृतं किंचित् तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि॥

'मैंने चपलतावश या उतावलीमें जो कुछ दुर्वचन या विपरीत वचन कहा हो, उसे आप क्षमा करेंगे।'

इस प्रकरणमें कर्णके चरित्रका बड़ा सुन्दर चित्रण प्राप्त होता है। वस्तुतः कर्ण स्वयं देवपुत्र होनेके कारण दिव्य गुणोंसे युक्त थे, परंतु कुसङ्गमें रहनेके कारण उसके दोष उनमें आ जाते थे।

पतिभक्ता गान्धारी

संसारकी पतिव्रता देवियोंमें गान्धारीका स्थान बहुत ऊँचा है। ये गन्धारराज सुबलकी पुत्री और शकुनिकी बहिन थीं। इन्होंने कुमारी-अवस्थामें ही भगवान् शङ्करकी बड़ी आराधना की और उनसे सौ पुत्रोंका वरदान प्राप्त किया। जब इन्हें मालूम हुआ कि इनका विवाह नेत्रहीन धृतराष्ट्रसे होनेवाला है, उसी समयसे इन्होंने अपनी दोनों आँखोंपर पट्टी बाँध ली। इन्होंने सोचा कि जब मेरे पति ही नेत्रसुखसे वञ्चित हैं, तब मुझे संसारको देखनेका क्या अधिकार है। उस समयसे जबतक ये जीवित रहीं, अपने उस दृढ़ निश्चयपर अटल रहीं। पतिके लिये इन्द्रियसुखके त्यागका ऐसा अनूठा उदाहरण संसारके इतिहासमें कहीं नहीं मिलता। इनका यह तप और त्याग अनुपम था, संसारके लिये एक अनोखी वस्तु थी।

ये सदा अपने पतिके अनुकूल रहीं। इन्होंने ससुरालमें आते ही अपने चरित्र और सद्गुणोंसे पति एवं उनके सारे परिवारको मुग्ध कर लिया। धन्य पतिप्रेम !

देवी गान्धारी जैसी पतिव्रता थीं, वैसी ही निर्भीक और न्यायप्रिय भी थीं। ये सदा सत्य, नीति और धर्मका ही पक्ष लेती थीं, अन्यायका कभी समर्थन नहीं करती थीं। इनके पुत्रोंने देवी द्रौपदीके साथ भरी सभामें जो अत्याचार किया था, उसका इनके मनमें बड़ा दुःख था। वे इस बातसे अपने पुत्रोंपर प्रसन्न नहीं हुईं। जब इनके पति राजा धृतराष्ट्रने अपने पुत्रकी बातोंमें आकर दुबारा पाण्डवोंको द्यूतके लिये बुला भेजा, उस समय वे बड़ी दुखी हुईं। इन्होंने जुएका विरोध करते हुए अपने पतिदेवसे कहा—'स्वामी ! दुर्योधन जन्मते ही गीदड़के समान रोने-चिल्लाने लगा था, इसलिये उसी समय परम ज्ञानी विदुरने कहा था कि इस पुत्रका परित्याग कर दो। मुझे तो वह बात याद करके यही जान पड़ता है कि यह कुरुवंशका नाश करके छोड़ेगा। आर्यपुत्र ! आप अपने दोषसे सबको विपत्तिमें न डालिये। इन ढीठ मूर्खोंकी हाँ-में-हाँ न मिलाइये। इस वंशके नाशका कारण मत बनिये। बँधे हुए पुलको मत तोड़िये। बुझी हुई आग फिर धधक उठेगी। पाण्डव शान्त हैं और वैर-विरोधसे विमुख हैं। उनको अब क्रोधित करना ठीक नहीं। यद्यपि यह बात आप जानते हैं, फिर भी मैं आपको याद दिलाती हूँ। दुर्बुद्धि पुरुषके चित्तपर शास्त्रके उपदेशका प्रभाव नहीं पड़ता। परंतु आप वृद्ध होकर बालकोंकी-सी बात करें—यह अनुचित है। इस समय आप अपने पुत्रतुल्य पाण्डवोंको अपनाये रक्खें। कहीं वे दुखी होकर आपसे विलग न हो जायँ। कुलकलङ्क दुर्योधनको त्यागना ही श्रेयस्कर है। मैंने मोहवश उस समय विदुरजीकी बात नहीं मानी, उसीका यह फल है। शान्ति, धर्म और मन्त्रियोंकी सम्मतिसे अपनी विचारशक्तिको सुरक्षित रखिये। प्रमाद मत कीजिये। बिना विचारे काम करना आपके लिये बड़ा दुःखदायी सिद्ध होगा, राजलक्ष्मी क्रूरके हाथमें पड़कर उसीका सत्यानाश कर देती है।' गान्धारीके इन वाक्योंसे धर्म, नीति और निष्पक्षता टपकी पड़ती है। ये दुर्योधनको भी उसकी अनुचित कार्रवाइयोंपर बराबर टोकती रहती थीं, उसकी उद्दण्डताके लिये उसे फटकारती थीं और उसकी अनीतिके भावी दुष्परिणामका भयंकर चित्र उसके सामने खींचा करती थीं। पर दुर्योधनके सिरपर काल नाच रहा था, वह उसे इन सबकी हितभरी बातोंपर ध्यान नहीं देने देता था।

पाण्डवोंकी ओरसे संधिका प्रस्ताव लेकर जब स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हस्तिनापुर गये और वे भी दुर्योधनको समझाकर हार गये, तब धृतराष्ट्रने देवी गान्धारीको बुलाकर उनसे कहा कि 'अब तुम्हीं अपने पुत्रको समझाओ, वह हमलोगोंमेंसे तो किसीकी भी बात नहीं सुनता।' पतिकी यह बात सुनकर गान्धारीने कहा—'राजन् ! आप पुत्रके मोहमें फँसे हुए हैं, इसलिये इस विषयमें सबसे अधिक दोषी तो आप ही हैं। आप यह जानकर भी कि दुर्योधन बड़ा पापी है, उसीकी बुद्धिके पीछे चलते रहे हैं। दुर्योधनको तो काम, क्रोध और लोभने अपने चंगुलमें फँसा रक्खा है। अब आप बलात्कारसे भी उसे इस मार्गसे नहीं हटा सकेंगे। आपने इस मूर्ख, दुरात्मा, कुसङ्गी और लोभी पुत्रको बिना कुछ सोचे-समझे राज्यकी बागडोर सौंप दी; उसीका आप यह फल भोग रहे हैं। आप अपने घरमें जो फूट पड़ रही है, उसकी उपेक्षा किये चले जा रहे हैं। ऐसा करके तो आप पाण्डवोंकी दृष्टिमें अपने-आपको हास्यास्पद बना रहे हैं। देखिये, यदि साम या भेदसे ही विपत्ति टाली जा सकती हो तो कोई भी बुद्धिमान् स्वजनोंके प्रति दण्डका प्रयोग क्यों करेगा।' गान्धारीकी यह युक्ति कैसी निर्भीक, निष्पक्ष, हितभरी, नीतिपूर्ण और सच्ची थी !

इसके बाद गान्धारीने अपने पुत्रको भी बुलाकर उसे समझाना शुरू किया। वे बोलीं—'बेटा ! मेरी बात सुनो। तुमसे तुम्हारे पिता, भीष्मजी, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और विदुरजीने जो बात कही है, उसे स्वीकार कर लो। यदि तुम पाण्डवोंसे संधि कर लोगे तो सच मानो, इससे पितामह भीष्मजीकी, तुम्हारे पिताजीकी, मेरी ओर द्रोणाचार्य आदि हितैषियोंकी तुम्हारे द्वारा बड़ी सेवा होगी। बेटा ! राज्यको पाना, बचाना और भोगना अपने हाथकी बात नहीं है। जो पुरुष जितेन्द्रिय होता है, वही राज्यकी रक्षा कर सकता है। काम और क्रोध तो मनुष्यको अर्थसे च्युत कर देते हैं। इन दोनों शत्रुओंको जीतकर तो राजा सारी पृथ्वीको जीत सकता है। देखो—जिस प्रकार उद्दण्ड घोड़े मार्गमें ही मूर्ख सारथिको मार डालते हैं, उसी प्रकार यदि इन्द्रियोंको काबूमें न रक्खा जाय तो वे मनुष्यका नाश करनेके लिये पर्याप्त हैं। इस प्रकार इन्द्रियाँ जिसके वशमें हैं और जो सब काम सोच-समझकर करता है, उसके पास चिरकालतक लक्ष्मी बनी रहती है। तात ! तुम्हारे दादा भीष्मजीने और गुरु द्रोणाचार्यजीने जो बात कही है, वह बिल्कुल ठीक है। वास्तवमें श्रीकृष्ण और अर्जुनको कोई नहीं जीत सकता। इसलिये तुम श्रीकृष्णकी शरण लो। यदि ये प्रसन्न रहेंगे तो दोनों ही पक्षोंका हित होगा। वत्स ! युद्ध करनेमें कल्याण नहीं है। उसमें धर्म और अर्थ भी नहीं है तो सुख कहाँसे होगा। यदि तुम अपने मन्त्रियोंके सहित राज्य भोगना चाहते हो तो पाण्डवोंका जो न्यायोचित भाग है, वह उन्हें दे दो। पाण्डवोंको जो तेरह वर्षतक घरसे बाहर रक्खा गया, यह भी बड़ा अपराध हुआ है। अब संधि करके इसका मार्जन कर दो। तात ! संसारमें लोभ करनेसे किसीको सम्पत्ति नहीं मिलती।

अतः तुम लोभ छोड़ दो और पाण्डवोंसे संधि कर लो।' कैसा हितपूर्ण और मार्मिक उपदेश था। इससे पता चलता है कि गान्धारी विदुषी थीं तथा वे श्रीकृष्ण और अर्जुनकी महिमा भी जानती थीं।

फिर भी दुष्ट दुर्योधनपर गान्धारीके इस उत्तम उपदेशका कोई असर नहीं हुआ। उसने अपनी जिद नहीं छोड़ी। परिणाम यह हुआ कि दोनों ओरसे युद्धकी तैयारियाँ होने लगीं और अठारह दिनोंतक कुरुक्षेत्रके मैदानमें भीषण मार-काट हुई। युद्धके दिनोंमें दुर्योधन प्रतिदिन इनसे प्रार्थना करता कि 'माँ! मैं शत्रुओंके साथ लोहा लेने जा रहा हूँ; आप मुझे आशीर्वाद दीजिये, जिससे युद्धमें मेरा कल्याण हो।' गान्धारी-में पातिव्रत्यका बड़ा तेज था। वे यदि पुत्रको विजयका आशीर्वाद दे देतीं तो वह अन्यथा न होता। परंतु वे देतीं कैसे? वे जानती थीं कि दुर्योधन अत्याचारी है। अत्याचारी-के हाथोंमें कभी राज्यलक्ष्मी टिक नहीं सकती, इसीलिये वे हर बार यही उत्तर देतीं—'बेटा! जहाँ धर्म है, वहीं विजय है। विजय चाहते हो तो धर्मका आश्रय लो, अधर्मका परि-त्याग करो।' उन्होंने दुर्योधनका कभी पक्ष नहीं लिया। परंतु जब उन्होंने सुना कि मेरे सौ-के-सौ पुत्र मारे गये तो शोकके वेगसे उनका क्रोध उभड़ पड़ा और वे पाण्डवोंको शाप देनेका विचार करने लगीं। भगवान् वेदव्यास तो मन-की बात जान लेते थे। उन्हें जब इस बातका पता लगा तो उन्होंने गान्धारीके पास आकर उन्हें सान्त्वना दी और उनको असत्-सङ्कल्पसे रोका। उस समय पाण्डव भी वहाँ मौजूद थे।

गान्धारीने व्यासजीसे कहा—'भगवन्! पाण्डवोंके प्रति मेरे मनमें द्वेषभाव नहीं है। मैं इनका नाश नहीं चाहती हूँ। पुत्रशोकके कारण बलात् मेरा मन विह्वल हो रहा है। पाण्डवोंकी रक्षा कुन्तीके समान ही मुझे करनी चाहिये। आप जैसे उनकी रक्षा करना चाहते हैं, धृतराष्ट्रके द्वारा भी वे उसी प्रकार रक्षणीय हैं। मैं जानती हूँ कि कुरुवंशका नाश दुर्योधन, शकुनि, कर्ण और दुःशासनके द्वारा हुआ है; युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल-सहदेवका इसमें अपराध नहीं है। युद्धमें लड़ते हुए कौरव मारे गये, इसमें कोई दुःखकी बात नहीं है; परंतु महात्मा वासुदेवके सामने गदायुद्धमें बुलाकर युद्ध करते हुए नाभिसे नीचे प्रहार करके भीमने जो दुष्कर्म किया, इसे याद करके मेरा क्रोध बढ़ रहा है।'

गान्धारीकी यह बात सुनकर भीमसेन डरते हुए विनयपूर्वक बोले—'माता! भयसे मैंने आत्मरक्षाके लिये जो अधर्म या धर्म किया, उसे आप कृपया क्षमा करें। वह तुम्हारा महाबली पुत्र धर्मसे किसीके द्वारा परास्त नहीं हो सकता था, इसी कारण मैंने वह विषम कृत्य किया। उसने पहले युधिष्ठिरको अधर्मसे ही जीतकर हमको विपत्तिमें डाला था। यह सोचकर ही वह विषम कृत्य मैंने किया। यह वीर्यवान् दुर्योधन अकेला बच गया है, कहीं गदायुद्धमें मुझे मारकर राज्य न ले ले, यह सोचकर ही मैंने वैसा किया। एकवस्त्रा, रजस्वला राजपुत्री पाञ्चालीके साथ उसने जो दुर्व्यवहार किया, वह आपको ज्ञात ही है। उसने जो द्रौपदीके सामने बायीं जङ्घा प्रदर्शित की थी, वह हमारे लिये असह्य था। तुम्हारे पुत्रने उसी समय वध करने योग्य काम किया था, किंतु धर्मराजकी आज्ञा न होनेके कारण वह बच गया था। हे महारानी! आपके पुत्रने ही महान् वैर करके संकट उपस्थित किया था, उसीके कारण हमको वनमें बड़ा कष्ट भोगना पड़ा, इसीलिये मैंने वैसा कर्म किया।'

भीमसेनके इस उत्तरको सुनकर गान्धारीने कहा—'हे वृकोदर! तुम्हारी सारी बातें मैं मानती हूँ, परंतु तुमने जो दुःशासनका रक्तपान किया, वह बड़ा ही निन्दनीय, भयङ्कर और अनार्योंके कर्म-जैसा है। यह क्रूर कर्म जो तुमने किया, वह ठीक नहीं था।' यह सुनकर भीमसेनने कहा—'माता! दूसरेका खून नहीं पीना चाहिये, अपना खून पीनेकी तो बात ही क्या? जैसा अपना खून है, वैसा ही भाईका! माँ! सोच न करो, सूर्यनारायण साक्षी हैं कि खून मेरे ओठोंके भीतर नहीं गया, केवल दोनों हाथ खूनसे लथपथ थे। हे महारानी, द्रौपदीके केश पकड़कर खींचे जाते समय क्रोधवश होकर जो प्रतिज्ञा मैंने की थी, उसे पूरा नहीं करता तो धर्म-च्युत होनेके कारण अनन्तकालतक निन्दाका पात्र बनता। आपने पहले अपने पुत्रोंको नहीं सँभाला, अब मुझ अपकार न करनेवालेपर आप क्यों शङ्का करती हैं?'

गान्धारीने कहा—'तात! मेरे सौ पुत्रोंमें अल्प अपराधी किसी एक पुत्रको भी तुमने नहीं छोड़ा, जो हमारे बुढ़ापेकी लकड़ी बनता।

'यदि तुम धर्मका आचरण करते तो मेरे पुत्रोंका वध करनेपर भी मुझे तुमको देखकर दुःख नहीं होता।'

भीम और गान्धारीके इस वार्तालापसे स्पष्ट हो जाता है कि गान्धारीका हृदय कितना विशाल था, तथा उसमें कितनी धर्मप्रियता थी। परंतु माताका हृदय था, पुत्रोंको कुमार्गी देखकर भी माता पुत्रहीना नहीं रहना चाहती। इसी कारण उसके मनमें बड़ा क्षोभ था। यदि उसका कोई एक भी पुत्र जीता बचा होता तो धर्माचारिणी गान्धारी अपने दुर्योधन आदि कुपुत्रोंके मरनेपर दुखी न होती। अपने सौ पुत्रोंको मारनेवाले भीमसे इस प्रकार नीति और प्रीति-युक्त धर्मकी चर्चा गान्धारी-जैसी सतीके सिवा दूसरी स्त्री नहीं कर सकती।

माता गान्धारीके मनमें क्षोभ देखकर युधिष्ठिर उनके पास गये और अपनेको धिक्कारते हुए ज्यों ही उनके चरणोंपर गिरने लगे कि गान्धारीकी क्रोधभरी दृष्टि पट्टीमेंसे होकर महाराज युधिष्ठिरके नखोंपर पड़ी। इससे उनके सुन्दर लाल-लाल नख उसी समय काले पड़ गये। यह देखकर उनके भाई भी मारे भयके इधर-उधर छिपने लगे। उन्हें इस प्रकार कसमसाते देखकर गान्धारीका क्रोध शान्त हो गया और उन्होंने माताके समान पाण्डवोंको धीरज दिया। उपर्युक्त घटनासे गान्धारीके अनुपम पातिव्रत्य-तेजका पता लगता है। अन्तमें गान्धारीने अपना क्रोध श्रीकृष्णपर निकाला। अथवा यों कहना चाहिये कि अन्तर्यामी श्रीकृष्णने ही उनकी मति पलटकर पाण्डवोंको उनके कोपसे बचा लिया और उनका अभिशाप अपने ऊपर ले लिया। देवी गान्धारीने कुरुक्षेत्रमें जाकर जब वहाँका हृदयविद्रावक दृश्य देखा तो वे अपने शोकको सँभाल न सकीं। वे क्रोधमें भरकर श्रीकृष्णसे बोलीं—'कृष्ण! पाण्डव और कौरव अपनी फूटके कारण ही नष्ट हुए हैं; किंतु तुमने समर्थ होते हुए भी अपने सम्बन्धियोंकी उपेक्षा क्यों कर दी? तुम्हारे पास अनेकों सेवक थे और बड़ी भारी सेना भी थी। तुम दोनोंको दबा सकते थे और अपने वाक्कौशलसे उन्हें समझा भी सकते थे। परंतु तुमने जान-बूझकर कौरवोंके संहारकी उपेक्षा कर दी। इसलिये अब तुम उसका फल भोगो। मैंने पतिकी सेवा करके जो तप संचय किया है, उसीके बलपर मैं तुम्हें शाप देती हूँ कि जिस प्रकार परस्पर युद्ध करते हुए कौरव और पाण्डवोंकी तुमने उपेक्षा कर दी, उसी प्रकार तुम अपने बन्धु-बान्धवोंका भी वध करोगे और स्वयं भी अनाथकी तरह मारे जाओगे। आज जैसे ये भरतवंशकी स्त्रियाँ आर्त्तनाद कर रही हैं, उसी प्रकार तुम्हारे कुटुम्बकी स्त्रियाँ भी अपने बन्धु-बान्धवोंके मारे जानेपर सिर पकड़कर रोयेंगी।'

गान्धारीके ये कठोर वचन सुनकर महामना श्रीकृष्ण मुसकराये और बोले—'मैं तो जानता था कि यह बात इसी तरह होनेवाली है। शाप देकर तुमने होनीको ही बतलाया है। इसमें संदेह नहीं वृष्णिवंशका नाश दैवी कोपसे ही होगा। इसका नाश भी मेरे सिवा और कोई नहीं कर सकता। मनुष्य क्या, देवता या असुर भी इनका संहार नहीं कर सकते। इसलिये ये यदुवंशी आपसके कलहसे ही नष्ट होंगे।'

देवी गान्धारीके सौ पुत्र मारे गये, एक भी उनमेंसे जीता न बचा, इसके शोकसे वह दुखी थी ही; परंतु जब उसने द्रौपदीको पृथ्वीपर शोकसे परिप्लुत होकर रोते देखा तो उसको अपना दुःख भूल गया, वह द्रौपदीको सान्त्वना देने लगी—'हे पुत्रि! इस प्रकार शोकार्त न हो। देखो, मैं भी तुम्हारी ही भाँति दुःखिता हूँ। मैं समझती हूँ कि यह जो जनसंहार हुआ है, दैवकी प्रेरणासे हुआ है। यह अवश्यम्भावी था, विदुरने इसके लिये पहले ही भविष्यद्वाणी की थी। हे कृष्णे! युद्धमें मरनेवालोंके लिये शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे स्वर्ग चले गये हैं, इसलिये अशोच्य हैं।

यथैवाहं तथैव त्वं को नावाश्वासयिष्यति।
ममैव ह्यपराधेन कुलमग्र्यं विनाशितम्॥

(स्त्रीपर्व १५। ४४)

'जो मेरी हालत है वही तेरी है। हमको कौन आश्वासन देगा। कृष्णे! मेरे ही अपराधसे इस श्रेष्ठ कुलका विनाश हुआ है।'—यह आश्वासन देवी गान्धारीके हृदयकी विशालताको व्यक्त करता है।

युधिष्ठिरके राज्याभिषेकके बाद देवी गान्धारी कुछ समय तक उन्हींके पास रहकर अन्तमें अपने पतिके साथ वनमें चली गयीं और वहाँ तपस्वियोंका-सा जीवन बिताकर तपस्वियोंकी भाँति ही उन्होंने अपने पतिके साथ दावाग्निसे अपने शरीरको जला डाला और पतिके साथ ही कुबेरके लोकमें चली गयीं। इस प्रकार पतिपरायणा गान्धारीने इस लोकमें पतिकी सेवा करके परलोकमें भी पतिका सान्निध्य एवं सेवा प्राप्त की—जो प्रत्येक पतिव्रताका अभीष्ट लक्ष्य होता है। प्रत्येक पतिव्रता नारीको गान्धारीके चरित्रका मननकर उससे शिक्षा लेनी चाहिये।

माँ कुन्तीदेवी

कुन्तीदेवी एक आदर्श महिला थीं। ये महात्मा पाण्डवोंकी माता एवं भगवान् श्रीकृष्णकी बूआ थीं। ये वसुदेवजीकी सगी बहिन थीं तथा राजा कुन्तिभोजको गोद दी गयी थीं। जन्मसे इन्हें लोग पृथाके नामसे पुकारते थे, परंतु राजा कुन्तिभोजके यहाँ इनका लालन-पालन होनेसे ये कुन्तीके नामसे विख्यात हुईं। ये बालकपनसे ही बड़ी सुशीला, सदाचारिणी, संयमशीला एवं भक्तिमती थीं। राजा कुन्तिभोजके यहाँ एक बार एक बड़े तेजस्वी ब्राह्मण अतिथिरूपमें आये। इनकी सेवाका कार्य बालिका कुन्तीको सौंपा गया। इसकी ब्राह्मणोंमें बड़ी भक्ति थी और अतिथि-सेवामें बड़ी रुचि थी। राजपुत्री पृथा आलस्य और अभिमानको त्यागकर ब्राह्मणदेवताकी सेवामें तन-मनसे संलग्न हो गयी। उसने शुद्ध मनसे सेवा करके ब्राह्मण देवताको पूर्णतया प्रसन्न कर लिया। ब्राह्मण देवताका व्यवहार बड़ा अटपटा था। कभी वे अनियत समयपर आते, कभी आते ही नहीं और कभी ऐसी चीज खानेको माँगते, जिसका मिलना अत्यन्त कठिन होता। किंतु पृथा उनके सारे काम इस प्रकार कर देती मानो उसने उनके लिये पहलेसे ही तैयारी



माँ कुन्ती

कर रक्खी हो। उसके शीलस्वभाव और संयमसे ब्राह्मणको बड़ा संतोष हुआ। कुन्तीकी यह वचपनकी ब्राह्मण-सेवा उसके लिये बड़ी कल्याणप्रद सिद्ध हुई। और इसीसे उनके जीवनमें संयम, सदाचार, त्याग एवं सेवाभावकी नींव पड़ी। आगे जाकर इन गुणोंका उनके अंदर अद्भुत विकास हुआ।

कुन्तीके अंदर निष्काम भावका विकास भी बचपनसे ही हो गया था। इन्हें बड़ी तत्परता एवं लगनके साथ महात्मा ब्राह्मणकी सेवा करते पूरा एक वर्ष हो गया। इनके सेवामन्त्र-का अनुष्ठान पूरा हुआ। इनकी सेवामें ढूँढ़नेपर भी ब्राह्मण-को कोई त्रुटि नहीं दिखायी दी। तब तो वे इनपर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'बेटी! मैं तेरी सेवासे बहुत प्रसन्न हूँ। मुझसे कोई वर माँग ले।' कुन्तीने ब्राह्मणदेवताको बड़ा ही सुन्दर उत्तर दिया। श्रीकृष्णकी बूआ और पाण्डवोंकी भावी माताका यह उत्तर सर्वथा अनुरूप था। कुन्तीने कहा—'भगवन्! आप और पिताजी मुझपर प्रसन्न हैं, मेरे सब कार्य तो इसीसे सफल हो गये। अब मुझे वरोंकी कोई आवश्यकता नहीं है।' एक अल्पवयस्क बालिकाके अंदर विलक्षण सेवाभावके साथ-साथ ऐसी निष्कामताका संयोग मणि-काञ्चन-संयोगके समान था। हमारे देशकी बालिकाओं-को कुन्तीके इस आदर्श निष्काम सेवाभावसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। अतिथि-सेवा हमारे सामाजिक जीवनका प्राण रही है और उसकी शिक्षा भारतवासियोंको बचपनसे ही मिल जाया करती थी। सच्ची एवं सात्त्विक सेवा वही है, जो प्रसन्नतापूर्वक की जाय—जिसमें भार अथवा उकताहट न प्रतीत हो, और जिसके बदलेमें कुछ न चाहा जाय। आजकलकी सेवामें प्रायः इन दोनों बातोंका अभाव देखा जाता है। प्रसन्नतापूर्वक निष्कामभावसे की हुई सेवा कल्याण-का परम साधन बन जाती है। अस्तु,

जब कुन्तीने ब्राह्मणसे कोई वर नहीं माँगा तो उन्होंने उससे देवताओंके आवाहनका मन्त्र ग्रहण करनेके लिये कहा। वे कुछ-न-कुछ कुन्तीको देकर जाना चाहते थे। अबकी बार ब्राह्मणके अपमानके भयसे वह इन्कार न कर सकी। तब उन्होंने उसे अथर्ववेदके शिरोभागमें आये हुए मन्त्रोंका उपदेश दिया और कहा कि 'इन मन्त्रोंके बलसे तू जिस-जिस देवताका आवाहन करेगी, वही तेरे अधीन हो जायगा।' यों कहकर वे ब्राह्मण वहीं अन्तर्धान हो गये। ये ब्राह्मण और कोई नहीं, उग्रतपा महर्षि दुर्वासा थे। इनके दिये हुए मन्त्रोंके प्रभावसे आगे चलकर कुन्तीने धर्म, वायु, इन्द्रका आवाहन करके इनसे क्रमशः युधिष्ठिर, भीम और अर्जुनको पुत्ररूपमें प्राप्त किया। उसकी सपत्नी माद्रीको अश्विनीकुमारसे दो पुत्र प्राप्त हुए—नकुल और सहदेव।

कुन्तीका विवाह महाराज पाण्डुसे हुआ था। महाराज पाण्डु बड़े ही धर्मात्मा थे। इनके द्वारा एक बार भूलसे मृगरूपधारी किन्दम मुनिकी हिंसा हो गयी। इस घटनासे इनके मनमें बड़ी ग्लानि और निर्वेद हुआ और इन्होंने सब कुछ त्यागकर वनमें रहनेका निश्चय कर लिया। देवी कुन्ती बड़ी पतिभक्ता थीं। ये भी अपने पतिके साथ इन्द्रियोंको वशमें करके तथा कामजन्य सुखको तिलाञ्जलि देकर वनमें रहनेके लिये तैयार हो गयीं। तबसे इन्होंने जीवनपर्यन्त नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन किया और संयमपूर्वक रहीं। पतिका स्वर्गवास होनेपर इन्होंने अपने बच्चोंकी रक्षाका भार अपनी छोटी सौत माद्रीको सौंपकर अपने पतिका अनुगमन करनेका विचार किया। परंतु माद्रीने इसका विरोध किया। उसने कहा—'बहिन! मैं अभी युवती हूँ; अतः मैं ही पतिदेवका अनुगमन करूँगी। तुम मेरे बच्चोंकी सँभाल रखना।' कुन्तीने माद्रीकी बात मान ली और अन्ततक उसके पुत्रोंको अपने पुत्रोंसे बढ़कर समझा। सपत्नी एवं उसके पुत्रोंके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये, इसकी शिक्षा भी हमारी माता-बहिनोंको कुन्तीके जीवनसे लेनी चाहिये। पतिके जीवनकालमें इन्होंने माद्रीके साथ छोटी बहिनका-सा बर्ताव किया और उसके सती होनेके बाद उसके पुत्रोंके प्रति वही भाव रक्खा जो एक साध्वी स्त्रीको रखना चाहिये। सहदेवके प्रति तो उनकी विशेष ममता थी और वह भी इन्हें बहुत अधिक प्यार करता था।

पतिकी मृत्युके बादसे कुन्तीदेवीका जीवन बराबर कष्टमें बीता। परंतु ये बड़ी ही विचारशीला एवं धैर्यवती थीं। अतः इन्होंने कष्टोंकी कुछ भी परवा नहीं की और अन्ततक धर्मपर आरूढ़ रहीं। दुर्योधनके अत्याचारोंको भी ये चुपचाप सहती रहीं। इनका स्वभाव बड़ा ही कोमल और दयालु था। इन्हें अपने कष्टोंकी कोई परवा नहीं थी, परंतु ये दूसरोंका कष्ट नहीं देख सकती थीं। लाक्षाभवनसे निकलकर जब ये अपने पुत्रोंके साथ एकचक्रा नगरीमें रहने लगी थीं, उन दिनों वहाँकी प्रजापर एक बड़ा भारी संकट था। उस नगरीके पास ही एक बकासुर नामका राक्षस रहता था। उस राक्षसके लिये नगर-वासियोंको प्रतिदिन एक गाड़ी अन्न तथा दो भैंसे पहुँचाने पड़ते थे। जो मनुष्य इन्हें लेकर जाता, उसे भी वह राक्षस खा जाता। वहाँके निवासियोंको बारी-बारीसे यह काम करना पड़ता था। पाण्डवलोग जिस ब्राह्मणके घरमें भिक्षुकोंके रूपमें रहते थे, एक दिन उसके घरसे राक्षसके लिये आदमी भेजने-की बारी आयी। ब्राह्मण-परिवारमें कुहराम मच गया। कुन्तीको जब इस बातका पता लगा तो उनका हृदय दयासे भर आया। उन्होंने सोचा—'हमलोगोंके रहते ब्राह्मण-परिवारको कष्ट भोगना पड़े, यह हमारे लिये बड़ी लज्जाकी बात होगी। फिर हमारे तो ये आश्रयदाता हैं, इनका प्रत्युपकार हमें किसी-न-किसी रूपमें करना ही चाहिये। अवसर आनेपर

उपकारीका प्रत्युपकार न करना धर्मसे च्युत होना है । जब इनके घरमें हमलोग रह रहे हैं तो इनका दुःख बँटाना हमारा कर्तव्य हो जाता है ।' यों विचारकर कुन्ती ब्राह्मणके घर गयीं। उन्होंने देखा कि ब्राह्मण अपनी पत्नी और पुत्रके साथ बैठे हैं। वे अपनी स्त्रीसे कह रहे हैं, 'तुम कुलीन, शीलवती और बच्चोंकी माँ हो । मैं राक्षससे अपने जीवनकी रक्षाके लिये तुम्हें उसके पास नहीं भेज सकता ।' पतिकी बात सुनकर ब्राह्मणीने कहा—'नहीं, मैं स्वयं उसके पास जाऊँगी । पत्नीके लिये सबसे बढ़कर सनातन कर्तव्य यही है कि वह अपने प्राणोंको निछावर करके पतिकी भलाई करे । स्त्रियोंके लिये यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि वे अपने पतिसे पहले ही परलोकवासिनी हो जायँ । यह भी सम्भव है कि स्त्रीको अवध्य समझकर वह राक्षस मुझे न मारे । पुरुषका वध निर्विवाद है और स्त्रीका संदेहग्रस्त, इसलिये मुझे ही उसके पास भेजिये ।' माँ-बापकी दुःखभरी बात सुनकर कन्या बोली—'आप क्यों रो रहे हैं ? देखिये, धर्मके अनुसार आप दोनों मुझे एक-न-एक दिन छोड़ देंगे । इसलिये आज ही मुझे छोड़कर अपनी रक्षा क्यों नहीं कर लेते ? लोग संतान इसीलिये चाहते हैं कि वह हमें दुःखसे बचावे ।' यह सुनकर माँ-बाप दोनों रोने लगे; कन्या भी रोये बिना न रह सकी । सबको रोते देखकर नन्हा-सा ब्राह्मण-बालक कहने लगा—'पिताजी ! माताजी ! बहिन ! मत रोओ ।' फिर उसने एक तिनका उठाकर हँसते हुए कहा—'मैं इसीसे राक्षसको मार डालूँगा ।' तब सब लोग हँस पड़े । कुन्ती यह सब देख-सुन रही थीं । वे आगे बढ़कर उनसे बोलीं—'महाराज ! आपके तो एक पुत्र और एक ही कन्या है । मेरे आपकी दयासे पाँच पुत्र हैं । राक्षसको भोजन पहुँचानेके लिये मैं उनमेंसे किसीको भेज दूँगी, आप घबरायें नहीं ।' ब्राह्मणदेवताने कुन्तीदेवीके इस प्रस्तावको सुनते ही अस्वीकार कर दिया । उन्होंने कहा—'देवि ! आपका इस प्रकार कहना आपके अनुरूप ही है; परंतु मैं तो अपने लिये अपने अतिथिकी हत्या नहीं करा सकता ।' कुन्तीने उन्हें बतलाया कि 'मैं अपने जिस पुत्रको राक्षसके पास भेजूँगी, वह बड़ा बलवान्, मन्त्रसिद्ध और तेजस्वी है; उसका कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता ।' इसपर ब्राह्मण राजी हो गये । तब कुन्तीने भीमसेनको उस कामके लिये राक्षसके पास भेज दिया । भला, दूसरोंकी प्राणरक्षाके लिये इस प्रकार अपने हृदयके टुकड़ेका जान-बूझकर कोई माता बलिदान कर सकती है ? कहना न होगा कि कुन्तीके इस आदर्श त्यागके प्रभावसे संसारपर बहुत ही अच्छा असर पड़ा । अतएव सभीको इससे शिक्षा लेनी चाहिये ।

कुन्तीदेवीका सत्यप्रेम भी आदर्श था । ये विनोदमें भी कभी झूठ नहीं बोलती थीं । भूलसे भी इनके मुँहसे जो बात निकल जाती थी, उसका ये जी-जानसे पालन करती थीं । इस प्रकारकी सत्यनिष्ठा इतिहासके पन्ने उलटनेपर भी दूस जगह प्रायः नहीं देखनेमें आती । अर्जुन और भीम स्वयंव द्रौपदीको जीतकर जब माताके पास लाये और कहा 'माता ! आज हम यह भिक्षा लाये हैं' इन्होंने उ बिना देखे ही कह दिया—'बेटा ! पाँचों भाई मिल इसका उपयोग करो ।' जब इन्हें मालूम हुआ कि ये ए कन्या लाये हैं, तब तो ये बड़े असमंजसमें पड़ गयीं । इन्हें सोचा—'यदि मैं अपनी बात वापस लेती हूँ तो असत्य दोष लगता है; और यदि अपने पुत्रोंको उसीके अनु चलनेके लिये कहती हूँ तो सनातन मर्यादाका लोप हो है ।' पाँच भाइयोंका एक स्त्रीसे विवाह हो—यह प कभी नहीं देखा-सुना गया था । ऐसी स्थितिमें कुन्ती कुछ भी निश्चय न कर सकीं, वे किंकर्तव्यविमूढ हो गयीं अन्तमें उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिरकी सम्मति पूछी और उन्हों भी इन्हें सत्यपर कायम रहनेकी ही सलाह दी । पीछे रा द्रुपदकी ओरसे आपत्ति होनेपर वेदव्यासजीने द्रौपदी पूर्वजन्मोंकी कथा कहते हुए उन्हें समझाया कि शङ्कर वरदानसे ये पाँचों ही द्रुपदकुमारीका पाणिग्रहण करेंगे । इ प्रकार पाँचोंके साथ द्रुपदकुमारी विधिपूर्वक ब्याह दी गयीं कुन्तीदेवीकी सत्यनिष्ठाकी विजय हुई । उनके मुखसे ह ऐसी ही बात निकली, जो होनेवाली थी । सत्यका दृढ़तापू आश्रय लेनेपर ऐसा होना किसीके लिये भी असम्भ नहीं है । अस्तु,

कुन्तीदेवीका जीवन शुरूसे अन्ततक बड़ा ही त्यागपू तपस्यामय और अनासक्त था । पाण्डवोंके वनवास ए अज्ञातवासके समय ये उनसे अलग हस्तिनापुरमें ही रहीं वहींसे इन्होंने अपने पुत्रोंके लिये अपने भतीजे भगवा श्रीकृष्णके द्वारा क्षत्रियधर्मपर डटे रहनेका संदेश भेजा इन्होंने विदुला और संजयका दृष्टान्त देकर बड़े ही मार्मि शब्दोंमें उन्हें कहला भेजा—'पुत्रो ! जिस कार्यके लि क्षत्राणी पुत्र उत्पन्न करती है, उस कार्यके करनेका स आ गया है । * इस समय तुमलोग मेरे दूधको न लजाना महाभारत-युद्धके समय भी ये वहीं रहीं और युद्ध-समाप्ति बाद जब धर्मराज युधिष्ठिर सम्राट्के पदपर अभिषिक्त हु और इन्हें राजमाता बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ, उस स इन्होंने पुत्रवियोगसे दुखी अपने जेठ-जेठानीकी सेवा भार अपने ऊपर ले लिया और द्वेष एवं अभिमानर होकर उनकी सेवामें अपना समय बिताने लगीं । यहाँ कि जब ये दोनों युधिष्ठिरसे अनुमति लेकर वन जाने ल उस समय ये चुपचाप उनके सङ्ग हो लीं और युधि

* एतद्धनञ्जयो वाच्यो नित्योद्युक्तो वृकोदरः ॥
यदर्थं क्षत्रिया सूते तस्य कालोऽयमागतः ।
(महा० उद्योग० १३६ । ९-१०

आदिके समझानेपर भी अपने दृढ़ निश्चयसे विचलित नहीं हुई। जीवनभर दुःख और क्लेश भोगनेके बाद जब सुखके दिन आये, उस समय भी सांसारिक सुख-भोगको ठुकराकर स्वेच्छासे त्याग, तपस्या एवं सेवामय जीवन स्वीकार करना कुन्तीदेवी-जैसी पवित्र आत्माका ही काम था। जिन जेठ-जेठानीसे उन्हें तथा उनके पुत्रों एवं पुत्रवधुओंको कष्ट, अपमान एवं अत्याचारके अतिरिक्त कुछ नहीं मिला, उन जेठ-जेठानीके लिये इतना त्याग संसारमें कहाँ देखनेको मिलता है। हमारी माताओं एवं बहिनोंको कुन्तीदेवीके इस अनुपम त्यागसे शिक्षा लेनी चाहिये।

कुन्तीदेवीको वन जाते समय भीमसेनने समझाया कि 'माता! यदि तुम्हें अन्तमें यही करना था तो फिर नाहक हमलोगोंके द्वारा इतना नर-संहार क्यों करवाया? हमारे वनवासी पिताकी मृत्युके बाद हमें वनसे नगरमें क्यों लायीं?' उस समय कुन्तीदेवीने उन्हें जो उत्तर दिया, वह हृदयमें अङ्कित करने योग्य है। वे बोलीं—'बेटा! तुमलोग कायर बनकर हाथ-पर-हाथ रखकर न बैठे रहो, क्षत्रियोचित पुरुषार्थको त्यागकर अपमानपूर्ण जीवन न व्यतीत करो, शक्ति रहते अपने न्यायोचित अधिकारसे सदाके लिये हाथ न धो बैठो—इसीलिये मैंने तुमलोगोंको युद्धके लिये उकसाया था, अपने सुखकी इच्छासे ऐसा नहीं किया था। मुझे राज्य-सुख भोगनेकी इच्छा नहीं है। मैं तो अब तपके द्वारा पतिलोकमें जाना चाहती हूँ। इसलिये अपने वनवासी जेठ-जेठानीकी सेवामें रहकर मैं अपना शेष जीवन तपमें ही बिताऊँगी। तुमलोग सुखपूर्वक घर लौट जाओ और धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हुए अपने परिजनोंको सुख दो।' इस प्रकार अपने पुत्रोंको समझा-बुझाकर कुन्तीदेवी अपने जेठ-जेठानीके साथ वनमें चली गयीं और अन्तसमय-तक उनकी सेवामें रहकर उन्हींके साथ दावाग्निमें जलकर योगियोंकी भाँति शरीर छोड़ दिया। कुन्तीदेवी-जैसी आदर्श महिलाएँ संसारके इतिहासमें बहुत कम मिलेंगी।

देवी द्रौपदी

देवी द्रौपदी पञ्चालनरेश राजा द्रुपदकी अयोनिजा पुत्री थीं। इनकी उत्पत्ति यज्ञवेदीसे हुई थी। इनका रूप-लावण्य अनुपम था। इनके-जैसी सुन्दरी उस समय पृथ्वी-भरमें कोई नहीं थी। इनके शरीरसे तुरंतके खिले कमलकी-सी गन्ध निकलकर एक कोसतक फैल जाती थी। इनके जन्मके समय आकाशवाणीने कहा था—'देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये क्षत्रियोंके संहारके उद्देश्यसे इस रमणीरत्नका जन्म हुआ है। इसके कारण कौरवोंको बड़ा भय होगा।' कृष्णवर्णा होनेके कारण लोग इन्हें कृष्णा कहते थे। पूर्वजन्ममें दिये हुए भगवान् शङ्करके वरदानसे इन्हें इस जन्ममें पाँच पति प्राप्त हुए। अकेले अर्जुनके द्वारा स्वयंवरमें जीती जानेपर भी माता कुन्तीकी आज्ञासे इन्हें पाँचों भाइयोंने ब्याहा था।

द्रौपदी आदर्श पत्नी थीं। राजसूय यज्ञसे लौटनेपर दुर्योधनने धृतराष्ट्रसे कहा था—'राजन्! उस यज्ञमें द्रौपदी पहले स्वयं भोजन न करके इस बातकी देख-भाल करती थी कि कुबड़ों और बौनोंतक सब लोगोंमें कौन खा चुका और किसको भोजन नहीं मिला।' आर्यगृहिणीका यही आदर्श है। आज भी धर्मभीरु कुलाङ्गनाएँ सबको खिलाकर अन्तमें भोजन करती हैं।

द्रौपदी उच्च कोटिकी पतिव्रता एवं भगवद्भक्ता थीं। इनकी भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अविचल प्रीति थी। ये उन्हें अपना रक्षक, हितू एवं परम आत्मीय तो मानती ही थीं, उनकी सर्वव्यापकता एवं सर्वशक्तिमत्तामें भी इनका पूर्ण विश्वास था। जब कौरवोंकी सभामें दुष्ट दुःशासनने इन्हें नंगी करना चाहा और सभासदोंमेंसे किसीकी हिम्मत न हुई कि इस अमानुषी अत्याचारको रोके, उस समय अपनी लाज बचानेका कोई दूसरा उपाय न देख इन्होंने अत्यन्त आतुर होकर भगवान् श्रीकृष्णको पुकारा—

गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय ॥
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव।
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्त्तिनाशन ॥
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन।
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन ॥
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम्।

(महा० सभा० ६८। ४१—४४)

'हे गोविन्द! हे द्वारकावासी! हे गोपीजन-प्रिय श्रीकृष्ण! हे केशव! क्या तुम नहीं जानते कि मैं कौरवोंके द्वारा अपमानित हो रही हूँ। हे नाथ! हे रमापति! हे व्रजेश! हे संकटोंका नाश करनेवाले जनार्दन! मुझ कौरव-रूपी समुद्रमें डूबती हुई अबलाका उद्धार करो। हे महायोगी हे विश्वात्मा! हे विश्वभावन श्रीकृष्ण! हे श्रीकृष्ण! कौरवोंके बीच विपन्नावस्थाको प्राप्त मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये।'

सच्चे हृदयकी करुण पुकार भगवान् बहुत जल्दी सुनते हैं। श्रीकृष्ण उस समय द्वारकामें थे। वहाँसे वे तुरंत दौड़े आये और धर्मरूपसे द्रौपदीके वस्त्रोंमें छिपकर उनकी लाज बचायी। भगवान्की कृपासे द्रौपदीकी साड़ी अनन्तगुना बढ़ गयी। दुःशासन उसे जितना ही खींचता था, उतना ही वह बढ़ती जाती थी। देखते-देखते वहाँ वस्त्रका ढेर लग गया। महाबली दुःशासनकी प्रचण्ड भुजाएँ थक गयीं

परंतु साड़ीका छोर हाथ नहीं आया। उपस्थित सारे समाजने भगवद्भक्ति एवं पातिव्रत्यका अद्भुत चमत्कार देखा। अन्तमें दुःशासन हारकर लज्जित हो बैठ गया। भक्तवत्सल प्रभुने अपने भक्तकी लाज रख ली। धन्य भक्तवत्सलता!

एक दिनकी बात है—जब पाण्डवलोग द्रौपदीके साथ काम्यक वनमें रह रहे थे, दुर्योधनके भेजे हुए महर्षि दुर्वासा अपने दस हजार शिष्योंको साथ लेकर पाण्डवोंके पास आये। दुर्योधनने जान-बूझकर उन्हें ऐसे समयमें भेजा जब कि सब लोग भोजन करके विश्राम कर रहे थे। महाराज युधिष्ठिरने अतिथिसेवाके उद्देश्यसे ही भगवान् सूर्यदेवसे एक ऐसा चमत्कारी बर्तन प्राप्त किया था, जिसमें पकाया हुआ थोड़ा-सा भी भोजन अक्षय हो जाता था। लेकिन उसमें शर्त यही थी कि जबतक द्रौपदी भोजन नहीं कर चुकती थीं, तभीतक उस बर्तनमें यह करामात रहती थी। युधिष्ठिरने महर्षिको शिष्यमण्डलीके सहित भोजनके लिये आमन्त्रित किया और दुर्वासाजी स्नानादि नित्यकर्मसे निवृत्त होनेके लिये सबके साथ गङ्गातटपर चले गये।

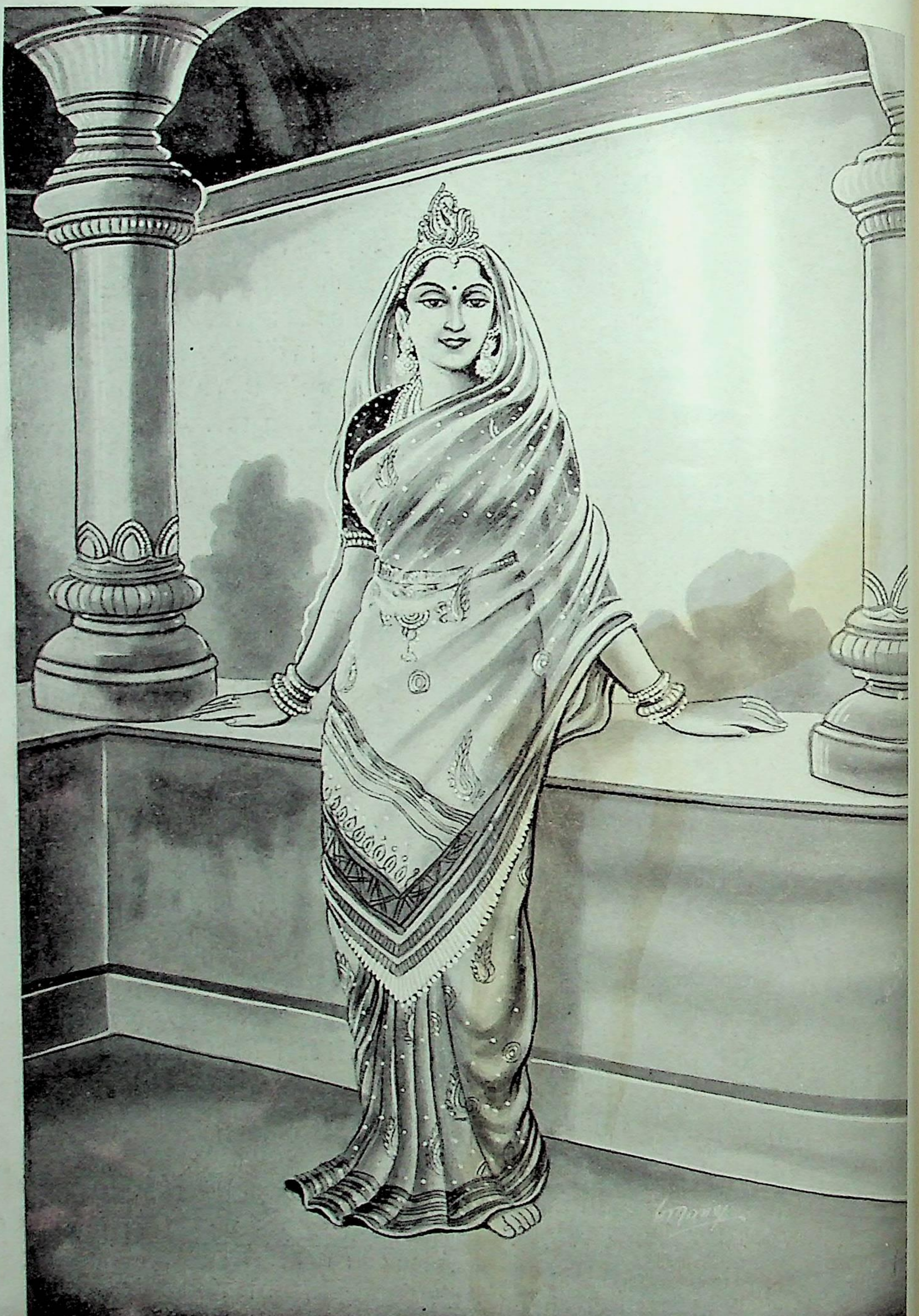
दुर्वासाजीके साथ दस हजार शिष्योंका एक पूरा-का-पूरा विश्वविद्यालय-सा चला करता था। धर्मराजने उन सबको भोजनका निमन्त्रण तो दे दिया और ऋषिने उसे स्वीकार भी कर लिया; परंतु किसीने भी इसका विचार नहीं किया कि द्रौपदी भोजन कर चुकी हैं, इसलिये सूर्यके दिये हुए बर्तनसे तो उन लोगोंके भोजनकी व्यवस्था हो नहीं सकती थी। द्रौपदी बड़ी चिन्तामें पड़ गयीं। उन्होंने सोचा—'ऋषि यदि बिना भोजन किये वापस लौट जाते हैं तो वे बिना शाप दिये नहीं रहेंगे।' उनका क्रोधी स्वभाव जगद्विख्यात था। द्रौपदीको और कोई उपाय नहीं सूझा। तब उन्होंने मन-ही-मन भक्त-भय-भञ्जन भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण किया और इस आपत्तिसे उबारनेकी उनसे इस प्रकार प्रार्थना की—

कृष्ण कृष्ण महाबाहो देवकीनन्दनाव्यय॥
वासुदेव जगन्नाथ प्रणतार्त्तिविनाशन।
विश्वात्मन् विश्वजनक विश्वहर्तः प्रभोऽव्यय॥
प्रपन्नपाल गोपाल प्रजापाल परात्पर।
आकूतीनां च चित्तीनां प्रवर्तक नतास्मि ते॥
वरेण्य वरदानन्त अगतीनां गतिर्भव।
पुराणपुरुष प्राणमनोवृत्त्याद्यगोचर॥
सर्वाध्यक्ष पराध्यक्ष त्वामहं शरणं गता।
पाहि मां कृपया देव शरणागतवत्सल॥
नीलोत्पलदलश्याम पद्मगर्भारुणेक्षण।
पीताम्बरपरीधान लसत्कौस्तुभभूषण॥
त्वमादिरन्तो भूतानां त्वमेव च परायणम्।
परात्परतरं ज्योतिर्विश्वात्मा सर्वतोमुखः॥
त्वामेवाहुः परं बीजं निधानं सर्वसम्पदाम्।
त्वया नाथेन देवेश सर्वापद्भ्यो भयं न हि॥
दुःशासनादहं पूर्वं सभायां मोचिता यथा।
तथैव सङ्कटादस्मान्मामुद्धर्तुमिहार्हसि॥

(महा० वन० २६३। ८-१

'हे कृष्ण! हे महाबाहु श्रीकृष्ण! हे देवकीनन्दन! अविनाशी वासुदेव! हे प्रणत जनके दुःख दूर करने जगदीश्वर! हे विश्वात्मन्, विश्वके पिता, विश्वका करनेवाले, शरणागत-रक्षक गोपाल! हे प्रभो! तुम हो, प्रजापालक हो, परात्पर हो, तुम मन और बुद्धिके हो। हे परमात्मन्! तुझको मेरा प्रणाम! सबके वरण योग्य हे वरदाता! हे अनन्त! जिसकी कोई गति न उसकी गति (सहायक) बनो। हे पुराणपुरुष! हे मन, बुद्धि आदिके अगोचर! सबके स्वामी, परम प्रभु! तुम्हारी शरणमें हैं। हे शरणागतवत्सल! हे देव! मुझे बचाओ। हे नीलकमलदलके समान श्याम कमल पुष्पके गर्भके समान अरुणनयन! हे पीताम्बर हे श्रीकृष्ण! तुम्हारे वक्षःस्थलपर कौस्तुभ सुशोभित तुम्हीं भूतोंके आदि और अन्त हो, तुम्हीं सबके परम हो। तुम परात्पर हो, ज्योतिर्मय विश्वात्मा हो, सब मुँहवाले परमेश्वर हो। ज्ञानीलोग तुमको ही इस ज परम बीज तथा सम्पूर्ण सम्पदाओंकी निधि बतलाते हैं देवेश! यदि तुम मेरे रक्षक हो तो मुझे समस्त आपदा भी भय नहीं है। जैसे तुमने पहले कौरवसभामें दुःशा मेरी रक्षा की थी, उसी प्रकार तुम्हीं इस संकटमें मेरा कर सकते हो।'

श्रीकृष्ण तो घट-घटकी जाननेवाले हैं। वे वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर द्रौपदीके शरीरमें मानो आ गये, डूबते हुएको मानो सहारा मिल गया। द्रौ संक्षेपमें उन्हें सारी बात सुना दी। श्रीकृष्णने अ प्रदर्शित करते हुए कहा—'और सब बात पीछे होगी, मुझे जल्दी कुछ खानेको दो। मुझे बड़ी भूख लगी है। जानती नहीं हो मैं कितनी दूरसे हारा-थका आया द्रौपदी लाजके मारे गड़-सी गयीं। उन्होंने रुकते कहा—'प्रभो! मैं अभी-अभी खाकर उठी हूँ। अ उस बटलोईमें कुछ भी नहीं बचा है।' श्रीकृष्णने कहा 'जरा अपनी बटलोई मुझे दिखाओ तो सही।' बटलोई ले आयीं। श्रीकृष्णने उसे हाथमें लेकर देखा उसके गलेमें उन्हें एक सागका पत्ता चिपका हुआ मि उन्होंने उसीको मुँहमें डालकर कहा—'इस सागके सम्पूर्ण जगत्के आत्मा यज्ञभोक्ता परमेश्वर तृप्त हो जा इसके बाद उन्होंने सहदेवसे कहा—'भैया! अब मुनीश्वरोंको भोजनके लिये बुला लाओ।' सहदेवने गङ्गात



देवी द्रौपदी

जाकर देखा तो वहाँ उन्हें कोई नहीं मिला। बात यह हुई कि जिस समय श्रीकृष्णने सागका पत्ता मुँहमें डालकर वह संकल्प पढ़ा उस समय मुनीश्वरलोग जलमें खड़े होकर अघमर्षण कर रहे थे। उन्हें अकस्मात् ऐसा अनुभव होने लगा मानो उनका पेट गलेतक अन्नसे भर गया हो। वे सब एक दूसरेके मुँहकी ओर ताकने लगे और कहने लगे कि 'अब हमलोग वहाँ जाकर क्या खायेंगे?' दुर्वासाने चुपचाप भाग जाना ही श्रेयस्कर समझा; क्योंकि वे यह जानते थे कि पाण्डव भगवद्भक्त हैं और अम्बरीषके यहाँ उनपर जो कुछ बीती थी, उसके बादसे उन्हें भगवद्भक्तोंसे बड़ा डर लगने लगा था। बस, सब लोग वहाँसे चुपचाप भाग निकले। सहदेवको वहाँ रहनेवाले तपस्वियोंसे उन सबके भाग जानेका समाचार मिला और उन्होंने लौटकर सारी बात धर्मराजसे कह दी। इस प्रकार द्रौपदीकी श्रीकृष्ण-भक्तिसे पाण्डवोंकी एक भारी बला टल गयी। श्रीकृष्णने आकर उन्हें दुर्वासाके कोपसे बचा लिया और इस प्रकार अपनी शरणागतवत्सलताका परिचय दिया।

× × ×

एक बार वनमें भगवान् श्रीकृष्ण देवी सत्यभामाके साथ पाण्डवोंसे मिलने आये। उस समय बातों-ही-बातोंमें सत्यभामाजीने द्रौपदीसे पूछा—"बहिन! मैं तुमसे एक बात पूछती हूँ। मैं देखती हूँ कि तुम्हारे शूरवीर और बलवान् पति सदा तुम्हारे अधीन रहते हैं; इसका क्या कारण है? तुम कोई जंतर-मंतर या औषध जानती हो? अथवा तुमने जप, तप, व्रत, होम या विद्यासे उन्हें वशमें कर रक्खा है? मुझे भी कोई ऐसा उपाय बताओ, जिससे भगवान् श्यामसुन्दर मेरे वशमें हो जायँ।' देवी द्रौपदीने कहा—'बहिन! आप श्यामसुन्दरकी पटरानी एवं प्रियतमा होकर कैसी बात करती हैं। सती-साध्वी स्त्रियाँ जंतर-मंतर आदिसे उतनी ही दूर रहती हैं, जितनी साँप-बिच्छूसे। क्या पतिको जंतर-मंतर आदिसे वशमें किया जा सकता है? भोली-भाली अथवा दुराचारिणी स्त्रियाँ ही पतिको वशमें करनेके लिये इस प्रकारके प्रयोग किया करती हैं। ऐसा करके वे अपना तथा अपने पतिका अहित ही करती हैं। ऐसी स्त्रियोंसे सदा दूर रहना चाहिये।'

इसके बाद उन्होंने बतलाया कि अपने पतियोंको प्रसन्न रखनेके लिये वे किस प्रकारका आचरण करती थीं। उन्होंने कहा—"बहिन! मैं अहङ्कार और काम-क्रोधका परित्याग करके बड़ी सावधानीसे सब पाण्डवोंकी और उनकी स्त्रियोंकी सेवा करती हूँ। मैं ईर्ष्यासे दूर रहती हूँ और मनको काबूमें रखकर केवल सेवाकी इच्छासे ही अपने पतियोंका मन रखती हूँ। मैं कटुभाषणसे दूर रहती हूँ, असभ्यतासे खड़ी नहीं होती, खोटी बातोंपर दृष्टि नहीं डालती, बुरी जगहपर नहीं बैठती, दूषित आचरणके पास भी नहीं फटकती तथा पतियोंके अभिप्रायपूर्ण संकेतका अनुसरण करती हूँ। देवता, मनुष्य, गन्धर्व, युवा, धनी अथवा रूपवान्—कैसा ही पुरुष क्यों न हो, मेरा मन पाण्डवोंके सिवा और कहीं नहीं जाता। अपने पतियोंके भोजन किये बिना मैं भोजन नहीं करती, स्नान किये बिना स्नान नहीं करती और बैठे बिना स्वयं नहीं बैठती। जब-जब मेरे पति घर आते हैं, तब-तब मैं खड़ी होकर उन्हें आसन और जल देती हूँ। मैं घरके बर्तनोंको माँज-धोकर साफ रखती हूँ, मधुर रसोई तैयार करती हूँ, समयपर भोजन कराती हूँ, सदा सजग रहती हूँ, घरमें अनाजकी रक्षा करती हूँ और घरको झाड़-बुहारकर साफ रखती हूँ। मैं बातचीतमें किसीका तिरस्कार नहीं करती, कुलटा स्त्रियोंके पास नहीं जाती और सदा ही पतियोंके अनुकूल रहकर आलस्यसे दूर रहती हूँ। मैं दरवाजेपर बार-बार जाकर खड़ी नहीं होती तथा खुली अथवा कूड़ा-करकट डालनेकी जगहपर भी अधिक नहीं ठहरती, किंतु सदा ही सत्यभाषण और पतिसेवामें तत्पर रहती हूँ। पतिदेवके बिना अकेली रहना मुझे बिल्कुल पसंद नहीं है। जब किसी कौटुम्बिक कार्यसे पतिदेव बाहर चले जाते हैं तो मैं पुष्प और चन्दनादिको छोड़कर नियम और व्रतोंका पालन करते हुए समय बिताती हूँ। मेरे पति जिस चीजको नहीं खाते, नहीं पीते अथवा सेवन नहीं करते, मैं भी उससे दूर रहती हूँ। स्त्रियोंके लिये शास्त्रने जो-जो बातें बतायी हैं, उन सबका मैं पालन करती हूँ। शरीरको यथाप्राप्त वस्त्रालङ्कारोंसे सुसज्जित रखती हूँ तथा सर्वदा सावधान रहकर पतिदेवका प्रिय करनेमें तत्पर रहती हूँ।

"सासजीने मुझे कुटुम्बसम्बन्धी जो-जो धर्म बताये हैं, उन सबका मैं पालन करती हूँ। भिक्षा देना, पूजन, श्राद्ध, त्यौहारोंपर पकवान बनाना, माननीयोंका आदर करना तथा और भी मेरे लिये जो-जो धर्म विहित हैं, उन सभीका मैं सावधानीसे रात-दिन आचरण करती हूँ, मैं विनय और नियमोंको सर्वदा सब प्रकार अपनाये रहती हूँ। मेरे विचारसे तो स्त्रियोंका सनातनधर्म पतिके अधीन रहना ही है, वही उनका इष्टदेव है। मैं अपने पतियोंसे बढ़कर कभी नहीं रहती, उनसे अच्छा भोजन नहीं करती, उनसे बढ़िया वस्त्राभूषण नहीं पहनती और न कभी सासजीसे वाद-विवाद करती हूँ, तथा सदा ही संयमका पालन करती हूँ। मैं सदा अपने पतियोंसे पहले उठती हूँ तथा बड़े-बूढ़ोंकी सेवामें लगी रहती हूँ। अपनी सासकी मैं भोजन, वस्त्र और जल आदिसे सदा ही सेवा करती रहती हूँ। वस्त्र, आभूषण और भोजनादिमें मैं कभी उनकी अपेक्षा अपने लिये कोई विशेषता नहीं रखती। पहले महाराज युधिष्ठिरके दस हजार दासियाँ थीं। मुझे उनके नाम, रूप, वस्त्र आदि सबका पता रहता था और इस

बातका भी ध्यान रहता था कि किसने क्या काम कर लिया है और क्या नहीं । जिस समय इन्द्रप्रस्थमें रहकर महाराज युधिष्ठिर पृथ्वी-पालन करते थे, उस समय उनके साथ एक लाख घोड़े और उतने ही हाथी चलते थे । उनकी गणना और प्रबन्ध मैं ही करती थी और मैं ही उनकी आवश्यकताएँ सुनती थी । अन्तःपुरके ग्वालों और गड़रियोंसे लेकर सभी सेवकोंके काम-काजकी देख-रेख भी मैं ही किया करती थी ।

''महाराजकी जो कुछ आय, व्यय और बचत होती थी, उस सबका विवरण मैं अकेली ही रखती थी । पाण्डवलोग कुटुम्बका सारा भार मेरे ऊपर छोड़कर पूजा-पाठमें लगे रहते थे और आये-गयोंका स्वागत-सत्कार करते थे; और मैं सब प्रकारका सुख छोड़कर उसकी सँभाल करती थी । मेरे पतियोंका जो अटूट खजाना था, उसका पता भी मुझ एकको ही था । मैं भूख-प्यासको सहकर रात-दिन पाण्डवोंकी सेवामें लगी रहती । उस समय रात और दिन मेरे लिये समान हो गये थे । मैं सदा ही सबसे पहले उठती और सबसे पीछे सोती थी । सत्यभामाजी ! पतियोंको अनुकूल बनानेका मुझे तो यही उपाय मालूम है ।'' एक आदर्श गृहपत्नीको घरमें किस प्रकार रहना चाहिये—इसकी शिक्षा हमें द्रौपदीके जीवनसे लेनी चाहिये ।

× × ×

देवी द्रौपदीमें क्षत्रियोचित तेज और भक्तोचित क्षमा—दोनोंका अभूतपूर्व सम्मिश्रण था । ये बड़ी बुद्धिमती और विदुषी भी थीं । इनका त्याग भी अद्भुत था । इनके पातिव्रत्यका तो सभी लोग लोहा मानते थे । इन्हें जब दुष्ट दुःशासन बाल खींचते हुए सभामें घसीटकर लाया, उस समय इन्होंने उसे डाँटते हुए अपने पतियोंके कोपका भय दिखलाया और सारे सभासदोंको धिक्कारते हुए द्रोण, भीष्म और विदुर-जैसे सम्मान्य गुरुजनोंको भी उनके चुप बैठे रहनेपर फटकारा । इन्होंने साहसपूर्वक सभासदोंको ललकारकर उनसे न्यायकी माँग की और उन्हें धर्मकी दुहाई देकर यह पूछा कि 'जब महाराज युधिष्ठिरने अपनेको हारकर पीछे मुझे दाँवपर लगाया है, ऐसी हालतमें उनका मुझे दाँवपर लगानेका अधिकार था या नहीं ?' सब-के-सब सभासद् चुप रहे । किसीसे द्रौपदीके इस प्रश्नका उत्तर देते नहीं बना । अन्तमें दुर्योधनके भाई विकर्णने उठकर सबसे द्रौपदीके प्रश्नका उत्तर देने और मौन भङ्ग करनेके लिये अनुरोध किया और अपनी ओरसे यह सम्मति प्रकट की कि 'प्रथम तो द्रौपदी पाँचों भाइयोंकी स्त्री है, अतः अकेले युधिष्ठिरको उन्हें दाँवपर रखनेका कोई अधिकार नहीं था । दूसरे उन्होंने अपनेको हारनेके बाद द्रौपदीको दाँवपर लगाया था, इसलिये भी यह उनकी अनधिकार चेष्टा ही समझी जायगी ।' विकर्णकी बात सुनकर विदुरने भी उसका समर्थन किया और अन्य सभासदोंने भी उनकी प्रशंसा की । परंतु कर्णने डाँटते हुए उसे बलपूर्वक बैठा दिया । इस प्रकार भरी सभामें दुःशासनद्वारा घसीटी जाने एवं अपमानित होनेपर भी द्रौपदीकी नैतिक विजय ही हुई । उनकी बुद्धि सर्वोपरि रही । कोई भी उनकी बातका खण्डन नहीं कर सका । अन्तमें विदुरके समझानेपर धृतराष्ट्रने दुर्योधनको डाँटा और द्रौपदीको प्रसन्न करनेके लिये उनसे वर माँगनेको कहा । इन्होंने वरदानके रूपमें धृतराष्ट्रसे केवल यही माँगा कि मेरे पाँचों पति दासतासे मुक्त कर दिये जायँ ।' धृतराष्ट्रने कहा—'बेटी ! और कुछ माँग ले ।' उस समय द्रौपदीने उन्हें जो उत्तर दिया, वह सर्वथा द्रौपदीके अनुरूप ही था । उससे इनकी निर्लोभता एवं धर्मप्रेम स्पष्ट झलकता था । इन्होंने कहा—'महाराज ! अधिक लोभ करना ठीक नहीं । और कुछ माँगनेकी मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं है । मेरे पति स्वयं समर्थ हैं । अब जब वे दासतासे मुक्त हो गये हैं तो बाकी सब कुछ वे स्वयं कर लेंगे ।' इस प्रकार द्रौपदीने अपनी बुद्धिमत्ता एवं पातिव्रत्यके बलसे अपने पतियोंको दासतासे मुक्त करा दिया ।

द्रौपदीके जिन लंबे-लंबे, काले बालोंका कुछ ही दिन पहले राजसूय यज्ञमें अवभृथ-स्नानके समय मन्त्रपूत जलसे अभिषेक किया गया था, उन्हीं बालोंका दुष्ट दुःशासनके द्वारा भरी सभामें खींचा जाना द्रौपदीको कभी नहीं भूला । उस अभूतपूर्व अपमानकी आग उनके हृदयमें सदा ही जला करती थी । इसीलिये जब-जब उनके सामने कौरवोंसे संधि करनेकी बात आयी, तब-तब इन्होंने उसका विरोध ही किया और बराबर अपने अपमानकी याद दिलाकर अपने पतियोंको युद्धके लिये प्रोत्साहित करती रहीं । अन्तमें जब यही तय हुआ कि एक बार कौरवोंको समझा-बुझाकर देख लिया जाय और जब भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंकी ओरसे संधिका प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर जाने लगे, उस समय भी इन्हें अपने अपमानकी बात नहीं भूली और इन्होंने अपने लंबे-लंबे बालोंको हाथमें लेकर श्रीकृष्णसे कहा—'श्रीकृष्ण ! तुम संधि करने जा रहे हो, सो तो ठीक है । परंतु तुम मेरे केशोंको न भूल जाना ।' इन्होंने यहाँतक कह दिया कि 'यदि पाण्डवोंकी युद्ध करनेकी इच्छा नहीं है तो कोई बात नहीं; अपने महारथी पुत्रोंके सहित मेरे वृद्ध पिता कौरवोंसे संग्राम करेंगे तथा अभिमन्युके सहित मेरे पाँचों बली पुत्र उनके साथ जूझेंगे ।' द्रौपदी वीर क्षत्राणी थी ।

× × ×

काम्यकवनमें जब दुष्ट जयद्रथ द्रौपदीको बलपूर्वक ले जानेकी चेष्टा करने लगा, उस समय इन्होंने उसे इतने जोरसे धक्का दिया कि वह कटे हुए पेड़की तरह जमीनपर गिर पड़ा । किंतु वह तुरंत ही सँभलकर खड़ा हो गया और इन्हें जबर्दस्ती रथपर बैठाकर ले चला । पीछे जब भीम और

अर्जुन उसे पकड़ लाये और उसकी काफी मरम्मत बना चुके, तब इन्होंने दयापूर्वक उसे छुड़ा दिया। इस प्रकार द्रौपदी क्रोधके साथ-साथ क्षमा करना भी जानती थीं। इनका पातिव्रत्य तेज तो अपूर्व था ही। जिस किसीने इनके साथ छेड़-छाड़ अथवा दुश्चेष्टा की, उसीको प्राणोंसे हाथ धोने पड़े। दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण, जयद्रथ, कीचक आदि सबकी यही दशा हुई। भला, पतिव्रता-पीड़िता नारीकी हाय किसको नहीं खा लेगी। महाभारत-युद्धमें जो कौरवोंका सर्वनाश हुआ, उसका मूल सती द्रौपदीका अपमान ही था। द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंकी सुप्तावस्थामें जब अश्वत्थामाने हत्या कर डाली, उस अवसरपर द्रौपदीने द्रोणपुत्रको मारकर उसकी मणि ले आनेके लिये भीमसेनसे कहा। पाण्डवोंमें भीमसेनके पराक्रमपर ही द्रौपदीको अधिक विश्वास था। क्योंकि उसने उनको अनेक बार असाध्य कर्मको भी सम्पादन करते देखा था। भीमसेन अश्वत्थामाको मारनेके लिये गये, परंतु उसको बिना मारे ही व्यासजीके बीच-बचावसे वे मणि लेकर लौटे, और द्रौपदीसे बोले कि, 'देवि! द्रोणपुत्रको ब्राह्मण समझकर मैंने छोड़ दिया, अब उसका केवल शरीरमात्र बचा हुआ है; क्योंकि मणि ले लेनेपर उसका यश समाप्त हो गया। देवि! यह मणि तुम लो।'

द्रौपदीका क्रोध शान्त हो गया। उसने कहा—'अच्छा ही किया जो आपने अश्वत्थामाको छोड़ दिया। वह गुरुपुत्र है, मेरे गुरुके समान है। मणि ले लेनेसे बदला चुक गया। अब इस मणिको महाराज युधिष्ठिर सिरपर धारण करें।' उसके बाद द्रौपदीके कहनेसे गुरुका उच्छिष्ट समझकर युधिष्ठिर उस मणिको सिरपर धारणकर सुशोभित हो उठे। द्रुपदतनया द्रौपदीके उज्ज्वल चरित्रकी यह भी एक अलौकिक घटना है। अपने पाँच पुत्रोंका वध करनेवाले अश्वत्थामाको भी गुरुपुत्र समझकर उसके प्रति गुरु-भाव व्यक्त करना महामहिममयी रानी द्रौपदीका ही काम हो सकता है। ऐसी आदर्श क्षमाशीलता अन्यत्र कहीं देखनेको नहीं मिलती।

महाभारतके महानायक

(लेखक—आचार्य श्रीअक्षयकुमार वन्द्योपाध्याय एम्० ए०)

धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र आज उत्कट समरक्षेत्रके रूपमें परिणत है। जो सुपवित्र भूमि प्राचीन कालमें ब्रह्मर्षि और राजर्षियोंकी यज्ञस्थलीके रूपमें व्यवहृत होती थी, जहाँ 'आत्मनो मोक्षार्थं जनताहिताय च' समस्त पार्थिव सम्पत्तिको विश्वप्राण विष्णुकी सेवामें उत्सर्ग करके आर्यसंतान अपने मानवत्वके पूर्णता-सम्पादनका व्रत ग्रहण करते थे, आज उसी पुण्यभूमिमें उन्हींके वंशज लोभ और द्वेष, स्वार्थपरता और परश्रीकातरता, साम्राज्यलिप्सा और भोगवासनाकी प्रेरणासे आत्मविस्मृत होकर जल, स्थल और अन्तरिक्षको भस्मीभूत कर डालनेवाले समरानलमें आत्माहुति देनेके लिये ढेर-के-ढेर चित्र-विचित्र विषपूर्ण मारणास्त्रोंको लेकर इकट्ठे हो रहे हैं। विशाल भारतकी प्रबल क्षात्रशक्ति आसुरी भावोंसे भावित और दम्भ-मोह-मदसे युक्त होकर आज मानो आप ही अपना विनाश करनेको तैयार है। जलमें, स्थलमें, आकाशमें और हवामें जहाँ-तहाँ आग बरसाकर सभी सबको जला डालनेके लिये व्याकुल हैं। मृत्यु देवता बुद्धिपर आरूढ़ होकर सभीको मानो ध्वंसके पथपर ले चले हैं। दूसरेपर मृत्युका प्रहार करने जाकर आज सभी लोग स्वयं उछल-उछलकर मृत्युके कराल गालमें कूदते चले जा रहे हैं। देश, जाति और समाजकी एकता, शान्ति, स्वाधीनता और धर्मानुवर्तिताको अक्षुण्ण और निर्दोष बनाये रखनेके लिये ही भगवान्के विधानसे राष्ट्रका उद्भव और क्षात्रशक्तिका अभ्युदय होता है। इसी उद्देश्यसे देशकी ब्राह्मणशक्ति—विज्ञान, दर्शन, धर्म, त्याग और तपस्याकी शक्ति—अपनी साधनाके महान् फलोंको राष्ट्र-शक्तिके हाथोंमें सौंपकर क्षात्रशक्तिको अजेय बनाती है। इसी उद्देश्यसे देशकी वैश्यशक्ति भी क्षात्रशक्तिके सामने सिर झुकाकर उसके आदेशके अनुसार चलती है और देशकी अर्थ-सम्पत्तिको उसके हाथोंमें समर्पण करती है। आज उसी उद्देश्यको सम्पूर्णतया व्यर्थ करनेके लिये, मानवजातिकी एकता और शक्तिको नष्ट कर डालनेके लिये, मनुष्यमात्रकी स्वाधीनताको पददलित करनेके लिये और मानव-जीवनसे धर्मको बाहर निकाल फेंकनेके लिये, बलके घमंडसे चूर मोहग्रस्त क्षत्रिय-वीर राष्ट्रशक्तिका दुरुपयोग करनेमें लगे हैं। राष्ट्रशक्तिके पापलिप्त हो जानेके कारण आज जातिके सैकड़ों टुकड़े हो रहे हैं; समाजमें अत्याचार, अविचार और दुष्ट नीतिका प्रवाह बह रहा है; सङ्घर्ष, प्रतियोगिता और एक दूसरेको गिरानेकी चेष्टामें लगे रहनेके कारण आज मानवजीवनसे आध्यात्मिक आदर्श अन्तर्धान हो गया है, उसका नैतिक बल नष्ट हो चुका है। मानव-जातिकी ब्राह्मणशक्तिने आज आसुरी प्रभावमें पड़कर नित्य नये मारणास्त्रोंके निर्माणमें, अधर्मको धर्मके रूपमें सजाकर सुललित भाषामें उसका अभिनन्दन करनेमें, हिंसा-मन्त्रकी जन-मन-मोहक व्याख्याके प्रचारमें, असुरोंकी असाधारण शक्ति और प्रतिभाकी महिमा गानेमें, एवं मानव-प्राणोंमें विद्वेषकी भयानक आग भड़कानेमें अपनेको लगाकर सनातन आर्यसभ्यताकी जड़ उखाड़नेका मानो व्रत ले लिया है।

भारतके प्राण, विश्वके प्राण, मानवजातिकी अन्तरात्मा मानवजातिपर आसुरीशक्तिके इस आधिपत्यको, मानवमात्रके शरीर-मन-बुद्धिपर अधर्मपरायण राष्ट्रशक्तियोंके इस अत्याचारको, मानवी साधनापर दम्भ, मोह, हिंसा, घृणा, असत्य और अन्यायके इस प्रभुत्वको मानो सहन करनेमें असमर्थ हो गयी है। पृथ्वीदेवी पापके भारसे पीड़ित होकर उससे छुटकारा पानेके लिये विश्वके प्राणपुरुषके शरणागत हो रही है—उसने अपनी अन्तर्निहित धर्ममयी प्राणशक्तिको जगा दिया है। मानवप्राणकी व्याकुल पुकारसे, माँ वसुन्धराकी अनन्य प्रार्थनासे, मानवसमाजको नवीन रूप प्रदान करनेके लिये असुरोंके द्वारा विध्वस्त की हुई लोभ-मोह-मदसे ग्रसित इस पुण्यभूमिमें स्वयं भगवान् अवतीर्ण हुए और उन्होंने भाँति-भाँतिसे विभक्त, दावानलसे जले हुए मरणोन्मुख भारतवर्षको अखण्ड, अमर, नित्य उज्ज्वल, नित्य प्रशान्त महाभारतके रूपमें प्रतिष्ठित करनेके लिये अपनी भगवती शक्तिको नियुक्त किया।

महामति वेदव्यासप्रणीत महाभारत महाकाव्यके महानायक हैं इस महाभारतके प्रतिष्ठाता, विश्वमानव-प्राण-विग्रह स्वयं भगवान् वासुदेव। द्वापरयुगके अन्तमें, कलियुगकी—वर्तमान युगकी सूचनाके समय उन्होंने विशेष उद्देश्यकी सिद्धिके लिये विशेष मूर्ति धारण की थी। भारतकी अखण्डता, भारतीय आत्माकी मुक्ति, भारतीय मानवसमाजके सनातन नैतिक और आध्यात्मिक आदर्शकी विजय और इस सुमहान् समुज्ज्वल आदर्शके आधारपर भारतीय महाजातिका संगठन—यह था उन लीलामयका जीवन-व्रत, उनके समस्त कर्म और सम्पूर्ण चेष्टाओंका लक्ष्य। उन्होंने चाहा था भारतवर्षको महामानवके महामिलनका क्षेत्र बनाकर समस्त जगत्के सामने इस महामिलनका आदर्श उपस्थित करना। आसुरी प्रतियोगिता और प्रतिद्वन्द्विता—वीभत्स संग्राम और कलह, अनार्यजुष्ट हिंसा, घृणा और भय, दुर्बलपर प्रबलका अत्याचार, अवनतके प्रति उन्नतकी अवज्ञा, सरलचित्त अशिक्षित जनसाधारणके प्रति प्रभुत्वकामी कूटबुद्धि शिक्षित सम्प्रदायकी प्रवञ्चना और अखण्ड महाजातिसंगठनके प्रतिकूल सभी प्रकारके दोषोंको सभी प्रकारके नर-नारियोंके साधनक्षेत्र तथा चित्तक्षेत्रसे दूर हटाकर उनकी जगह प्रेम और सहानुभूति, सेवा और सहयोग, यज्ञ और त्याग, साम्य और मैत्री, करुणा और मुदिता तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके समन्वयकी नींवपर महाभारतीय सभ्यताका विशाल प्रासाद निर्माण करनेके लिये उन महामानवने अपनी शक्तिको नियोजित किया था।

इस महाभारतके संगठनके लिये उन्होंने विशाल भारतकी सभी जाति, सभी समाज, सभी सम्प्रदाय और सभी राष्ट्रोंको आग्रहके साथ आमन्त्रित किया था। वे चाहते थे भारतकी समस्त शक्तियोंका मिलन; आर्य और अनार्य परस्पर प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्रिय शक्तियोंका, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंका, वेदवादी और वेदविमुख सम्प्रदायोंका, याज्ञिक और तपस्वियोंका, गृहस्थ और संन्यासियोंका, ज्ञानी और भक्तोंका, शैव, शाक्त और वैष्णवोंका, देवपूजक सगुणोपासकों और निर्गुण ब्रह्मके जिज्ञासुओंका—प्राणसे प्राण मिलाकर मिलन; राष्ट्रिय, सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक—सब प्रकारके मतोंका महासम्मेलन। सभी श्रेणियोंके, सभी भावोंके, सभी स्तरोंके मानव सम्मिलित होकर—समस्त भेदोंमें एक अभेदभूमिका आविष्कार कर सारी विषमताओंके भीतर एक महान् साम्यसूत्रका निर्माण करके, एक महामानवताके आदर्शपर सभी अनुप्राणित और इस महामानवताके आदर्शपर ही परिवार, समाज, जाति, राष्ट्र, सम्प्रदाय आदिका संगठन हो—यही था उनका अभिप्राय, यही थी भारतीय प्राणोंकी प्रार्थना, यही थी माँ वसुन्धराकी आकाङ्क्षा।

भारतवर्ष सम्पूर्ण मानवजगत्की आध्यात्मिक केन्द्र है; इसमें महामिलनका आदर्श सुप्रतिष्ठित हो जानेपर, भारत कुलधर्म, जातिधर्म, समाजधर्म, साम्प्रदायिक धर्म—भारत साधनाके सभी विभाग—इस महामिलनके आदर्श सुनियन्त्रित और अनुरञ्जित हो जानेपर पृथ्वीके अन्य देशोंमें यही भावधारा बहने लगेगी; जगत्की प्रत्येक जाति प्रत्येक समाज और प्रत्येक सम्प्रदाय इसी आदर्शसे अनुप्राणित हो जायगा; विश्वमानवकी जीवनधारामें सुमहान् एकता और कल्याणमयी शान्ति आ विराजेगी—आदर्शको लेकर भारतीय जीवनके एक विकट सङ्कटके भारतके और विश्वके प्राणपुरुष मानव-विग्रह धारण कर्मक्षेत्रमें अवतीर्ण हुए थे। विश्वमानवकी विविध विचित्र में एक महामिलन-सूत्रका आविष्कार करनेके लिये विशिष्ट मानवके रूपमें मानवात्मा भगवान्ने साधकका ग्रहण किया था। उनके विराट् प्राणकी सूक्ष्म अनु उनकी विशाल बुद्धिकी महान् कल्पनाशक्ति, उनकी अ कर्मशक्ति और असाधारण तपःशक्ति मानवीय उपा इस महामिलन-सूत्रका आविष्कार करनेमें लग गयी।

अखिलप्रेमामृतसिन्धु सर्वजीवप्राण श्रीभगवान्के विग्रह वासुदेव श्रीकृष्ण स्वभावतः ही प्रेमम थे। मानवमात्र—जीवमात्रके प्रति उनका निर्मल प्रेम और पूर्ण सहानुभूति थी। उच्च-नीच, धनी-निर्धन, ज्ञानी-मूर्ख सभीके प्रति उनकी प्रेमस्निग्ध समदृष्टि थी। युद्धमें उ कोई रति नहीं थी, किसीके साथ संघर्ष करनेमें उ

उल्लास नहीं था । सर्वत्र—समस्त विषयोंमें वे प्रेमके पथसे, शान्तिके पथसे, अहिंसा और सत्यके पथसे, अपौरुषेय वेदवाणी और सुनिपुण विचारकी सहायतासे मनुष्यकी अन्तरात्माको जगाकर विश्वमानवके महामिलनका महान् आदर्श प्रचार करनेमें लगे थे । इस आदर्श प्रचारकार्यमें महाभारतके रचयिता वेदव्याख्याता पराशरनन्दन महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासको उन्होंने प्रधान आचार्यके रूपमें प्राप्त किया था । विश्वभारतके गुरुस्थानीय, अशेष शास्त्रार्थदर्शी महामनीषी व्यासदेवकी सहायता वासुदेव श्रीकृष्णके लक्ष्यसाधनमें विशेष उपयोगी सिद्ध हुई थी। आचार्य व्यासदेवने अपने शिष्य-प्रशिष्योंके सहयोगसे भगवान् वासुदेवके आदर्श और भाव-धाराको, जीवन और वाणीका विभिन्न भाषाओंमें, विभिन्न छन्दोंमें, नाना युक्तितर्कोंके द्वारा, प्रामाणिक शास्त्रोंके व्याख्याकौशलके द्वारा आर्य और आर्येतर समाजमें सर्वत्र प्रचार किया था । श्रीकृष्णके द्वारा उपदेश किये हुए सुमहान् आदर्शको केन्द्र बनाकर श्रीकृष्ण और तद्भावभावित कर्मी, ज्ञानी और भक्तोंके जीवनको आधार बनाकर, तदनुकूल शास्त्र, युक्ति और इतिहासका आश्रय लेकर आचार्यप्रवर व्यासदेवने बड़ी ही निपुणताके साथ पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रिय, नैतिक और आध्यात्मिक—सभी प्रकारकी समस्याओंके सामञ्जस्यपूर्ण समाधानका मार्ग दिखलाया है । इस उद्देश्यसे उन्होंने जिन ग्रन्थोंका निर्माण किया, उनमें महाभारत सर्वश्रेष्ठ है । 'जो नहिं भारतमें सो नहिं भारतमें' अर्थात् भारतीय साधनाके क्षेत्रमें ऐसा कोई भी तत्त्व नहीं है, ऐसा कोई भी मत और मार्ग नहीं है, ऐसी कोई भी समस्या और समाधान नहीं है, जिसकी महाभारत ग्रन्थमें पूर्ण निपुणताके साथ व्याख्या और आलोचना न हुई हो—इस कहावतमें जरा भी अत्युक्ति नहीं है । वस्तुतः एकमात्र महाभारत ग्रन्थका अच्छी तरह अध्ययन कर लिया जाय तो भारतीय साधनाके समस्त विभागोंका, महाभारत और महामानवके प्राणोंका, वासुदेव श्रीकृष्णके जीवनादर्श और विश्वमानवके महामिलन-सूत्रका पूरा परिचय प्राप्त हो जाता है । पुराणोंमें व्यासदेव और उनके शिष्य-प्रशिष्योंने महाभारतका ही विचित्र व्याख्यान और विस्तार किया है । महाभारतके प्राणस्थानीय श्रीकृष्णोपदिष्ट श्रीमद्भगवद्गीताके प्रकाशसे ही व्यासदेवने उपनिषदों—अपौरुषेय श्रुतिवाक्योंकी व्याख्या और उनका समन्वय करके ब्रह्मसूत्र या वेदान्त-विज्ञानकी रचना की है । इन सबके अंदर ही उन्होंने श्रीकृष्णके जीवन, कर्मादर्श, भावादर्श और दार्शनिक सिद्धान्तको चिरस्थायी रूप प्रदान किया है । श्रीकृष्णके द्वारा प्रचारित आदर्शको ही व्यासदेवने सनातन आर्यसाधनाका यथार्थ तात्पर्य बतलाकर प्राचीन शास्त्रोंकी व्याख्या और नये शास्त्रोंका निर्माण किया है । पाराशर कृष्णका इस प्रकार सर्वाङ्गीण समर्थन सर्वजनमान्य अपौरुषेय वेदके समर्थनरूपसे वासुदेव श्रीकृष्णके जीवनव्रतको सार्थक करनेमें विशेष सहायक हुआ था ।

आदर्शका प्रचार, सुशिक्षाकी व्यवस्था, जाति और समाजके श्रेष्ठतम मनीषियोंका समर्थन, पुरानेको स्वाभाविक नियमोंके द्वारा नयी धारामें प्रवाहित करनेका कौशल—नवीन आदर्शको देशभरमें सुप्रतिष्ठित करनेके प्रधान उपाय यही हैं । इस प्रकारकी गठनमूलक पद्धतिसे जीवनीशक्तिके सम्यक् विकासमें बाधा देनेवाले सारे कुसंस्कार मिट जाते हैं, प्रतिकूल शक्तियाँ रास्ता छोड़कर अलग खड़ी हो जाती हैं, जाति और समाज मानो कुछ-कुछ अनजानमें ही सभ्यता और संस्कृतिके उच्चतर सोपानपर चढ़ जाते हैं । श्रीकृष्णने अपने विराट् महान् समुदार सार्वभौम आदर्शकी स्थापनाके लिये प्रधानतः इसी प्रकारकी गठनमूलक पद्धतिको अपनाया था । विश्वमानव और विश्वप्रकृतिकी परम ऐक्यभूमि सच्चित्प्रेमानन्दघन भगवान्को मानवजीवनका केन्द्र बनाकर, मानवजीवनको भागवतजीवनमें बदल देनेके चरम आदर्शको वास्तविक रूपसे सबके अंदर जगाकर, मनुष्यमात्रके पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रिय, आर्थिक जीवनको—जीवनके सभी विभागोंको भगवत्-केन्द्रिक और भगवत्-सेवामय बनाकर, मानवीय जीवन-साधनाकी सारी धाराओंको एक ही पारमार्थिक लक्ष्यकी ओर बहाकर, मनुष्यके प्रति मनुष्यके सब तरहके हिंसा, घृणा, भय, द्वेष और वैर-भावके सम्बन्धको एक सुन्दर भ्रातृभावके सम्बन्धमें विलीनकर विश्वके प्रत्येक मानवके प्राण-प्राणमें एकता उत्पन्न कर देना, प्राणीमात्रको एक अच्छेद्य प्रेमके सूत्रमें ग्रथित कर देना, सम्पूर्ण जगत्में एक सत्य-प्रेम-पवित्रताके राज्यकी प्रतिष्ठा करना—यही था श्रीकृष्णके अपने जीवनसाधनका लक्ष्य; और सहज-से-सहज तथा सुन्दर-से-सुन्दर उपायोंद्वारा इस लक्ष्यको सिद्ध करना, इसी ओर थी उनकी दृष्टि । भारतमें सम्यक् ऐक्यकी स्थापनाके द्वारा विश्वमें ऐक्य-प्रतिष्ठाका पथ प्रस्तुत करना ही उनका आन्तरिक अभिप्राय था । इसके लिये उन्होंने नाना प्रकारके संगठनमूलक उपायोंका ही अवलम्बन किया था, शान्तिके मार्गका ही अनुसन्धान किया था, यथासम्भव प्रेम-मैत्री, सुपरामर्श, सुशिक्षा, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रिय सौहार्द-स्थापनकी ही चेष्टा उन्होंने सर्वत्र की थी । व्यासदेवने महाभारतमें इन सबका वर्णन किया है । श्रीकृष्णकी मानवीय साधनाओंको केन्द्र बनाकर ही महाभारतकी रचना की गयी है ।

परन्तु श्रीकृष्णकी यह सामनीति सर्वत्र सफल नहीं हो सकी । (यह भी उन्हींकी लीला थी ।) अहिंसा, प्रेम और

शान्तिके मार्गसे समग्र भारतमें ऐक्यकी प्रतिष्ठा और एक अखण्ड धर्मराज्यकी स्थापनामें प्रबल विघ्न था भारतकी सामरिक शक्ति और असुरबलगर्वित राज्य-सुख-भोगके प्यासे राजाओंकी क्षुद्र स्वार्थबुद्धि । देशके टुकड़े-टुकड़े करके जो लोग विभिन्न प्रदेशोंकी राष्ट्रशक्तिपर अधिकार जमाये बैठे थे, उनमेंसे बहुत-से ऐसे थे, जो सम्पूर्ण देशके नैतिक, आध्यात्मिक और आर्थिक कल्याणकी अपेक्षा अपनी प्रभुत्वरक्षा और ऐश्वर्यवृद्धिके लिये ही अत्यधिक उत्सुक थे । भारतीय महाजातिके सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें प्रेमपूर्ण ऐक्य-स्थापनके लिये चेष्टा न करके वे अपनी सामरिक और आर्थिक शक्तिको केवल अपनी प्रधानताकी प्रतिष्ठामें ही लगाते थे । समरकुशल एक महान् सेनाका सङ्गठन करके दिग्विजयके लिये निकलना और दूसरोंके धनको लूटना उन पराक्रमी वीरोंका आदर्श था और इसीके द्वारा उनके नाम, यश और मर्यादाकी भी वृद्धि होती थी । अपने ऐश्वर्य और प्रभुत्वके विस्तारके लिये वे न्याय और धर्मका त्याग करनेमें गौरव समझते थे । इन राज्यलोलुप अर्थलोभी असुरभावापन्न राजाओंका आश्रय पाकर ही जगत्‌में अधर्मका अभ्युत्थान और धर्मकी ग्लानि हुआ करती है ।

श्रीकृष्णके प्रेमधर्मकी वाणी, उनका ऐक्य और साम्यका आदर्श, उनकी अखण्ड महाभारत-प्रतिष्ठाकी कल्पना, उनका आध्यात्मिक नींवपर राष्ट्र और समाजके प्रासाद-निर्माणका सङ्कल्प इन आसुरभावापन्न परस्पर प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्र-नियन्ताओंको अच्छा नहीं लगा । वे इसे आदरके साथ अपनानेको राजी नहीं हुए । श्रीकृष्णका आदर्श और समाजके समस्त स्तरोंमें उसका प्रचार उनकी स्वार्थदृष्टिमें नितान्त ही विप्लवात्मक था । उनकी धारणा हो गयी कि श्रीकृष्ण हमें हमारी शक्ति और कूटबुद्धिके द्वारा प्राप्त किये हुए ऐश्वर्य, प्रभुत्व, मान-सम्मान और निग्रहानुग्रहके सामर्थ्यसे वञ्चित करके एक विराट् आदर्शके बहाने सारे देशमें अपना प्रभुत्व फैलाना चाहते हैं । इसलिये वे पहलेसे ही श्रीकृष्णके प्रभावको घटाकर, श्रीकृष्णके आदर्शको देशसे निकाल फेंकनेके लिये कमर कसकर तैयार हो गये । उनकी इन कुचेष्टाओंसे श्रीकृष्णका प्रभाव घटा नहीं, वरं अधिकाधिक बढ़ता गया; और ज्यों-ज्यों वह बढ़ता गया और दल-के-दल लोग उनके अनुगत होकर उनके आदर्शको अपनाने लगे, त्यों-ही-त्यों असुरस्वभाव राजाओंमें भी उनकी शत्रु-संख्या बढ़ने लगी । कुछ वेदवादरत, परन्तु वेदके मर्मसे अनभिज्ञ, स्वार्थलोलुप ब्राह्मण भी असुरस्वभाव राजाओंके पक्षमें होकर श्रीकृष्णके सार्वभौम धर्मके आदर्शको, सुमहान् ऐक्यके आदर्शको, सर्वजीवोंके प्रति प्रेमके आदर्शको और भगवत्-सेवामय जीवनके आदर्शको वेदविरुद्ध और सनातनधर्मसे विपरीत बता[ने] लगे । देशमें जो लोग सताये हुए, गिराये हुए, पददलि[त] किये हुए और मान-मर्यादाको खोये हुए थे, वे श्रीकृष्ण[को] परित्राण कर्ता कहकर, पतितपावन मानकर उनकी पू[जा] करने लगे और जो सतानेवाले थे, ऊँचे पदोंपर स्थि[त] प्रभाव-प्रतिपत्तिवाले लोग थे, उनमेंसे बहुत-से श्रीकृ[ष्ण-] द्वेषी होकर उनसे डरने और उनके विरुद्ध आचरण करने ल[गे] ।

मानव-समाजमें धर्म, प्रेम, शान्ति और एकताके आ[दर्शको] नित्य नूतन और ऊँचा बनाये रखनेके लिये ही क्षात्रशक्ति[की] आवश्यकता है । क्षत्रिय राजाओंकी प्रधानता और सं[घ-] शक्तिकी रक्षाके लिये ही धर्मके आदर्शको छोड़ देना, ऐ[क्य-] स्थापनके सङ्कल्पको त्याग देना एवं प्रेम और साम्यके प्रचा[रसे] अलग हो जाना तो महान् कापुरुषता है—मनुष्यत्वका अप[मान] है । वासुदेव श्रीकृष्ण प्रेमघनमूर्ति होनेपर भी इस कापुरु[षता] को वरण करना पसंद नहीं करते थे । विरोधी प्र[बल] शक्तियोंके भयसे या उनके साथ सङ्घर्षकी आशङ्का[से] आदर्शका त्याग करनेके लिये तैयार नहीं थे । उन्होंने यह अनुभव किया कि उनके आदर्श-प्रतिष्ठाके पथमें बहु[त-से] काँटे देश और समाजके साधनक्षेत्रमें अपनी दृढ़ जड़ ज[माकर] फैले हैं, जिनको जड़से उखाड़े बिना लक्ष्यकी सिद्धि नहीं हो[गी,] धर्मराज्यकी स्थापना नहीं होगी, प्रेम और ऐक्यका [प्र]चार नहीं किया जा सकेगा, तब उन्होंने सचमुच ही अ[पनी] विप्लव-मूर्ति प्रकट कर दी और अवस्थाके अनुसार क्षात्र[धर्म] तथा दण्डनीतिका अवलम्बन करके वे दुर्वृत्तोंके दम[नमें] प्रवृत्त हो गये ।

मूर्तिमान् प्रेमको आदर्शकी प्रतिष्ठाके लिये योद्धाका [वेश] धारण करना पड़ा । अहिंसा और सत्यकी प्रतिष्ठाके [लिये] उन्हें हिंसा और असत्यके विरुद्ध प्रबल पराक्रमके साथ [खड़ा] होना पड़ा । न्याय और धर्मकी मर्यादा स्थापन करनेके [लिये] उनको अन्याय और अधर्मके नाशके हेतु तलवार च[लानी] पड़ी । दुर्बलों और निरीहोंको बलवानोंके पंजेसे छुड़ानेके [लिये] उन्हें प्रयोजनानुरूप क्षात्रबलका प्रयोग करना पड़ा । [देश] और समाजमें जब अप्रेम और अधर्मका, हिंसा और कलह[का,] विभेद और विषमताका निर्बाध आधिपत्य फैल जाता है, [तब] प्रेम और धर्मके अवतारको, अहिंसा और शान्तिके [मूर्त] विग्रहको अभेद और साम्यके स्वरूपको भी कहीं[-कहीं] कठोरताका अवलम्बन करना पड़ता है—प्रेमघन[मूर्ति] सच्चिदानन्दविग्रह वासुदेव श्रीकृष्णका क्षात्रभावान्वित कर्म[मय] जीवन इसके लिये एक परम उत्कृष्ट दृष्टान्त है । महाभा[रत,] हरिवंश और पुराणादिमें श्रीकृष्णके जीवनसे इस सम्ब[न्धकी] अनेकों घटनाओंका वर्णन किया गया है । श्रीकृष्णकी

जीवोंके प्रति प्रीति, करुणा, सहानुभूति और समदृष्टि थी। उनका महान् ऐक्यका आदर्श था और अखण्ड महाभारत-प्रतिष्ठाका अटूट संकल्प था। इसीलिये उनको बहुत-से प्रबल पराक्रान्त असुर-दैत्य-दानवोंके साथ युद्ध करना पड़ा, अनेकों स्वार्थोद्धत मदोन्मत्त सम्राट् उनके शत्रु बने और अनेकों धनी-मानी पण्डितोंके लिये उन्हें भयका स्थान बनना पड़ा। भारतीय सभ्यताको महामानवताकी सुदृढ़ भूमिपर सुप्रतिष्ठित करनेके मार्गमें वे किसी भी विप्लवका सामना करनेके लिये बिना सङ्कोचके तैयार थे। उन्होंने स्वार्थसे अंधी और घमंडसे चूर सब प्रकारकी विद्रोही शक्तियोंको ध्वंस करनेका निश्चय कर लिया था; आवश्यकता होनेपर सब तरहके मित्र-द्रोह, जातिद्रोह, लोकक्षय और करुणक्रन्दनके अंदरसे होकर भी जाति और समाजको आदर्शकी ओर ले जानेमें उनका हृदय नहीं काँपता था; उनके प्रेमार्द्र चित्तमें शोक, ताप, भय, चिन्ता और खेद कभी उत्पन्न ही नहीं होते थे। महा-मानवताके नित्य सत्य विराट् आदर्शकी सुस्थापनाके लिये अपने प्रिय-से-प्रिय असंख्य मनुष्योंके अनित्य क्षणभङ्गुर शरीरोंकी बलि देनेमें भी उनका विशाल हृदय जरा भी संकुचित नहीं होता था। आदर्शकी प्रतिष्ठाके लिये आवश्यक होनेपर वे 'महद्भयं वज्रमुद्यतम्' रूपमें अपनेको प्रकट करते थे।

बहुत-से भागोंमें बँटे हुए भारतको एक महाभारतके रूपमें परिणत करनेके लिये, आर्य और अनार्य, ब्राह्मण और म्लेच्छ, प्रबल और दुर्बल, ज्ञानी और अज्ञानी—सभीके हृदयोंमें एक अद्वितीय सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् सर्वगुणसम्पन्न निखिलरसामृतसिन्धु अनन्तप्रेमाधार सृष्टि-स्थिति-प्रलयकारी भगवान्को प्रतिष्ठित करनेके लिये, सभी लोगोंके साधनजीवन और व्यावहारिक कर्मजीवनको एक विश्वजनीन विश्वमानवताके आदर्शके द्वारा अनुप्राणित करनेके लिये, एक भक्तिमूलक भागवत-योगधर्मके द्वारा सभी श्रेणियोंके, सभी सम्प्रदायोंके और सभी स्तरोंके नर-नारियोंके सब प्रकारके धर्ममत और साधनप्रणालियोंका समन्वय करनेके लिये महामानव श्री-कृष्णने अपनी अनन्य-साधारण संगठन-शक्ति और अनन्य-साधारण क्षात्रवीर्यका समभावसे प्रयोग किया। उनके संगठन-कार्यमें पाराशर-कृष्ण व्यासदेवने जैसे अपनी असामान्य ज्ञानशक्तिके द्वारा सहायता की, वैसे ही उनके मार्गके काँटोंको उखाड़ फेंकनेके कार्यमें उनके एकान्त अनुगत महावीर पाण्डवोंने—विशेषतः पाण्डव-कृष्ण अर्जुनने—उनका बड़ा हाथ बँटाया। भारतके इतिहासमें ययातिपुत्र त्यागवीर पूरु और उनके वंशधरोंका एक प्रधान स्थान था। पूरुकी पितृभक्ति और आत्मबलिदानपर इस वंशकी मर्यादा प्रतिष्ठित थी। भारतमें आर्यसभ्यताके विस्तारकार्यमें अपने तेज, वीर्य और धर्मज्ञानका परिचय देकर उन्होंने क्षात्रसमाजके केन्द्र-स्थानपर अधिकार प्राप्त कर लिया था। असाधारण महा-पुरुषोंने इस वंशमें जन्म ले-लेकर आर्य-संस्कृतिकी उन्नति और अनार्य शक्तिका दमन करके भारतके प्राचीन इतिहासको अलङ्कृत किया था। इस इतिहासप्रसिद्ध पूरुवंशके उपर्युक्त वंशज पाण्डवोंने श्रीकृष्णका आनुगत्य स्वीकार करके और श्रीकृष्णके आदर्शकी स्थापनाके लिये अपनी सारी शक्ति लगाकर श्रीकृष्णके मार्गको बहुत कुछ सुगम और निष्कण्टक बना दिया था। व्यासके ज्ञान और अर्जुनकी शूरताने श्रीकृष्णके मस्तिष्क और भुजाका कार्य किया था।

प्रथितकीर्ति पूरुवंशकी एक शाखाके नेता थे प्रबल पराक्रमी आत्म-गर्वित और दुरभिसन्धिसे प्रेरित दुर्योधन। इन दुर्योधनको केन्द्र बनाकर जब श्रीकृष्णके आदर्शस्थापनके विरोधी पक्षने अपना संगठन आरम्भ किया, तब इसी वंशकी दूसरी शाखाके धर्मवीर पाण्डवोंकी प्रभाववृद्धि और अधिकार-प्रतिष्ठा श्रीकृष्णके आदर्श-प्रचारके लिये अत्यन्त आवश्यक हो गयी। धर्मके लिये, मानवोचित जीवनादर्शके लिये, जाति और समाजके ऐक्य, शान्ति और सर्वाङ्गीण कल्याणके लिये सब प्रकारका क्लेश-सहन और त्याग करनेको पाण्डव सदा ही प्रस्तुत थे। उन्होंने श्रीकृष्णको अपने जीवनके सभी विभागोंमें नेतारूपसे वरण कर लिया था और वे श्रीकृष्णके जीवनव्रतको सफल बनानेके लिये अपने जीवनतकका उत्सर्ग करनेको उत्सुक थे। महाभारतके संगठनके लिये सूक्ष्मदर्शी श्रीकृष्णने केन्द्रीय राष्ट्रशक्तिको धर्मराज युधिष्ठिरके द्वारा परिचालित न्यायदण्डधारी अमितपराक्रमी पाण्डवोंके हाथोंमें सौंपना आवश्यक समझा था।

न्याय और धर्मकी दृष्टिसे पाण्डव ही कौरव-राज्यके उत्तराधिकारी थे और अपने चरित्रमाधुर्य तथा क्षात्रोचित गुणगरिमासे भी उन्होंने सबके हृदयोंपर अधिकार कर लिया था। इतनेपर भी लड़कपनसे ही उनका दण्ड, यातना और क्लेशकी गोदमें ही लालन-पालन हुआ था। दुर्योधन और उनके कूटबुद्धि बन्धु-बान्धवोंके षड्यन्त्रके कारण वे शैशवसे ही नाना प्रकारके अत्याचारोंसे पीडित और दुःख-कष्टसे जर्जरित थे। जीवनके प्रत्येक विभागमें धर्म, प्रेम, क्षमा और सहिष्णुताके आदर्शको अक्षुण्ण बनाये रखना उनका व्रत था; इसीसे उन्होंने प्रतीकारकी शक्ति रखते हुए भी सब तरहके अत्याचार-अविचार और निर्यातनको प्रसन्न चित्तसे सहन किया था। इस प्रकारकी तपस्याके द्वारा ही उन्होंने लोकसमाजमें श्रीकृष्णके महान् आदर्शकी पताका फहरानेकी योग्यता प्राप्त की थी। स्वयं भाँति-भाँतिके निग्रह, निर्यातन और लाञ्छना

सहकर जाति और समाजके सभी निगृहीत, पीडित, लाञ्छित और पददलित जनसाधारणके प्रतिनिधिरूपमें उन्होंने न्याय और धर्मकी प्रतिष्ठा और सब लोगोंके कल्याणके लिये संग्राम करके प्रतिकूल शक्तियोंके विनाशका नैतिक अधिकार प्राप्त कर लिया था। भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें जो राजा और क्षत्रियवीर पाण्डवोंके गुणोंपर मुग्ध थे, न्याय और धर्मके पक्षपाती थे और श्रीकृष्णके महान् आदर्शके प्रेमी थे, वे प्रेम और सहानुभूतिके साथ अपनी सारी शक्तिको लेकर उनके साथ आ मिले।

भारतकी राष्ट्रशक्तियाँ कार्यतः दो भागोंमें विभक्त हो परस्पर प्रतिद्वन्द्वी बनकर सुसज्जित हो गयीं। एक भाग था न्यायके पक्षमें और दूसरा था बुनियादी स्वार्थका पक्षपाती; एक भाग सताये हुए नर-नारियोंका पक्ष करता था, तो दूसरा सतानेवालोंके पक्षमें था; एक ऐक्य और मिलनका पक्षपाती था, तो दूसरा भेद और विरोधका; और एक भाग श्रीकृष्णके महाराष्ट्र, महासमाज, महाधर्म और महाभारत-संगठनका पक्ष करता था तो दूसरा उस नवीन आदर्शके पक्षमें बाधा खड़ी करनेके पक्षमें था। श्रीकृष्णने अपने वंशजोंमें वीर्य-शौर्य जगाकर और उन्हें वीरोचित शिक्षा-दीक्षा देकर दुर्धर्ष क्षात्रशक्तिका सृजन किया। देशके लब्धप्रतिष्ठ क्षत्रिय राजालोग जिनको जरा भी नहीं मानते थे, जिनको किसी प्रकारका उच्चाधिकार और उन्नत शिक्षा-दीक्षा नहीं देते थे, उन्हीं सब अनादृत—अवज्ञात लोगोंको अपने झंडेके नीचे इकट्ठा करके, उन्हें समुन्नत धर्मज्ञान और वीरोचित शिक्षा-दीक्षा प्रदानकर श्रीकृष्णने एक विराट् नारायणी सेनाका संगठन किया। इन सब शक्तियोंका उचित-रूपसे संचालन करके महानायक श्रीकृष्ण अपने महाभारत-संगठनकी विरोधी शक्तियोंको प्रयोजनानुसार कठोरताके साथ कुचल डालनेको तैयार हो गये। अर्जुन और भीमकी सामरिक शक्तिसे सहायता लेकर भी उन्होंने कई काँटे उखाड़े। यह शत्रुदमन-कार्य—परिकल्पित धर्मराज्यकी स्थापनाके विघ्नोंके नाशका कार्य—वे ऐसे कौशलके साथ करते कि जिसमें निरीह प्रजाकी स्वच्छ जीवनधारामें जरा भी क्षोभ और अशान्तिका उदय नहीं होता।

आसुरी शक्तिके उत्पीड़नसे मानवात्माको छुटकारा दिलानेके लिये, आसुरी मनोवृत्तिके प्रभावसे मनुष्यकी चिन्ता-धारा और कर्मधाराको मुक्त करके उसे धर्मप्रेम और मोक्षके मार्गपर बहानेके लिये, भारतीय सभ्यताको आसुरी आदर्शके आधिपत्यसे छुड़ाकर विश्वमानवताका आदर्श प्रतिष्ठित करनेके लिये भारतके प्राणपुरुष प्रेमघनविग्रह वासुदेव श्रीकृष्णका आदर्शप्रचार और कण्टकोद्धार तथा संगठनलीला और ध्वंसलीला—दोनों एक ही साथ चलने लगे। साधु परित्राण और प्रभाववृद्धि तथा दुष्टोंके पराभव और प्र नाशके लिये वे अपनी प्रेमशक्ति और संग्रामशक्ति दोनोंका समान व्यवहार करने लगे। ऐक्य और प्रेमकी वाणी, और सर्वजनीन स्वाधीनताकी वाणी, सत्य और अहिं वाणी, उदारता और विश्वमानवताकी वाणी असुर प्रभावित मानवसमाजमें सदा ही विप्लवकी वाणीके रूपमें प्र हुआ करती है। बुनियादी स्वार्थ, सुप्रतिष्ठित अन्याय प्रभुत्व, सङ्घबद्ध असत्य और हिंसा एवं मानप्राप्त दम्भ परस्वापहरणके विरुद्ध विद्रोहकी घोषणा करके ही धर्मकी वाणी—विश्वमानवके महामिलनकी वाणी मानव प्रकट हुआ करती है। अतएव श्रीकृष्ण भी महाकि वाणी लेकर ही संसारके कर्मक्षेत्रमें अवतीर्ण हुए थे। श्री की वाणीका जितना ही प्रचार होने लगा, उनका संगठन जितना ही अग्रसर होने लगा, सङ्घर्षके कारण भी उतने बढ़ने लगे। आसुरी शक्तियाँ उनको और उनके आद मटियामेट करनेके लिये सङ्घबद्ध होने लगीं, विप्लवका दा अधिक-से-अधिक जल उठा। देहराज्यमें विप्लव हुए प्राणोंकी आत्मप्रतिष्ठा नहीं होती; असुर-राज्यमें विप्लवके दैवादर्शकी आत्मप्रतिष्ठा नहीं हो सकती; और काम, लोभके राज्यमें विप्लवके बिना भगवान् प्रकट नहीं हो भारतके और विश्वमानवके प्राणपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण देशव्यापी विप्लवके लिये प्रस्तुत थे। धर्मकी ग्लानि अधर्मका प्रादुर्भाव कितना अधिक हो चुका था, इस वि व्यापकता और वीभत्सता ही उसका निदर्शन है।

साम, दान, भेद और दण्ड—सभी नीतियोंको अप व्यासार्जुनकी सहायतासे श्रीकृष्णने अनेकों विरोधी शक्ति दमन किया था, बहुत-से शत्रुओंको मित्र बना लिया अनेकों प्रतिकूलाचारी ब्राह्मण, क्षत्रिय और अनार्य वं अपने आदर्शका प्रेमी बनानेमें सफलता प्राप्त की थी। परस्पर प्रतिद्वन्द्वी राजशक्तियोंको विवाहसूत्रमें बाँ सामाजिक मैत्रीकी स्थापना की थी। उन्होंने स्वयं भी अनार्य, मित्र और शत्रु अनेक वंशोंमें विवाह करके सब की प्रतिष्ठा की थी। परंतु इससे उनके संग्रामकी आव दूर नहीं हुई। वे ध्वंसलीलाको अपनी कर्मपद्धतिसे अल कर पाये।

अन्तमें देशव्यापी विप्लव घनीभूत होकर महाभार महासमरके रूपमें प्रकट हुआ। धार्तराष्ट्र और पाण्ड साम्राज्याधिकारका विवाद तो एक निमित्तमात्र था। श्रीकृ महान् आदर्शकी विरोधी शक्तियाँ, बुनियादी स्वार्थकी पातिनी राष्ट्रशक्तियाँ दुर्योधनको केन्द्र बनाकर आत्म

लिये इकट्ठी हो गयीं। इधर श्रीकृष्णके आदर्शकी अनुरागिणी शक्तियाँ श्रीकृष्णके द्वारा संचालित पाण्डवोंके पक्षमें सम्मिलित हो गयीं। इस महासमरको अनिवार्य जानकर भी श्रीकृष्णने इसके निवारणके लिये लौकिक साम-उपायसे यथासाध्य चेष्टा की। श्रीकृष्णकी सलाहसे युद्धको बचानेके लिये धर्मराज युधिष्ठिरने दुर्योधनसे पाँचों भाइयोंके लिये केवल पाँच गाँव लेकर ही संतुष्ट होना स्वीकार किया। स्वयं श्रीकृष्ण दूत बनकर शान्तिस्थापनका प्रयत्न करने पधारे। बाल्यावस्थासे लेकर अबतक दुर्योधन और उनके पक्षवालोंने पाण्डवोंपर जो अत्याचार किये थे, उन सभीको क्षमा करनेके लिये तैयार होकर श्रीकृष्णाश्रित पाण्डवोंने महा-मानवताका आदर्श उपस्थित किया। भीमको विष देकर मार डालनेकी चेष्टा, कुन्तीसमेत पाँचों पाण्डवोंको लाक्षागृहमें जला डालनेके षड्यन्त्र, कपट-जूएमें धन-मान-राज्यसुखका अपहरण--यहाँतक कि राजदरबारमें असंख्य राजाओंके सामने राज-कुल-वधू एकवस्त्रा वीराङ्गना द्रौपदीके केश खींचकर उसे नग्न करनेकी पापपूर्ण चेष्टा--इन सभी अत्याचारोंको देशमें एकता, शान्ति और प्रेमकी प्रतिष्ठाके लिये श्रीकृष्णानुगामी महावीर पाण्डव भुला देनेको राजी हो गये।

परंतु संधिस्थापनके सभी प्रयास व्यर्थ हुए। देशकी नैतिक, राष्ट्रिक और सामाजिक परिस्थिति जब महासमरके उपयुक्त हो उठती है, तब उसे कोई भी निवारण नहीं कर सकता। जबतक यह स्वार्थपरायण दाम्भिक आसुरभावापन्न क्षात्रशक्ति ध्वंस नहीं हो जाती तबतक एकता, शान्ति और प्रेमका आदर्श भगवद्भक्तिपूत विश्वमानवताका आदर्श मानवसमाजमें सुप्रतिष्ठित नहीं हो सकता--मानवात्माकी मुक्ति नहीं हो सकती। कालप्रभाव और भगवान्के विधानसे जब आसुरी प्रभावसे मानवात्माकी मुक्तिका समय आता है, तब आसुरी शक्तिका नाश करनेके लिये महासमर अनिवार्यरूपसे सम्पन्न होता है। लीलामय श्रीकृष्णने इसी नियमको मानकर मानो युद्धके लिये सम्मति प्रदान की थी। इस महासमरमें परस्पर प्रतिद्वन्द्वी किसी पक्षविशेषका जय-पराजय उनका लक्ष्य नहीं था। एक असुरसङ्घको पराजित और निगृहीत करके दूसरा एक असुरसङ्घ मर्यादा और प्रभुत्वके आसनपर आरूढ़ हो--यह उनकी इच्छा नहीं थी। वे चाहते हैं मानवात्माकी नैतिक और आध्यात्मिक मुक्ति; वे चाहते हैं मानव-समाजमें अधर्मका पराभव और धर्मका अभ्युदय; वे चाहते हैं मानवजातिमें सप्रेम ऐक्यप्रतिष्ठा--साम्य, मैत्री, पवित्रता और आनन्दकी प्रतिष्ठा; और वे चाहते हैं विश्व-जगत्में सत्य-शिव-सुन्दरकी सुस्थापना। मानव-प्राणकी यही चाह है। इस आदर्शकी विजय ही उनको अभिप्रेत है। इस आदर्शकी विजय ही मानव-प्राणोंमें स्वाराज्यकी प्रतिष्ठा--भारतप्राणोंमें आत्मप्रतिष्ठा होगी। इस सुमहान् सुमङ्गल आदर्शके विजय-ध्वजको गहरा गाड़नेके लिये ही श्रीकृष्ण विप्लव-तरङ्गमें कूदे थे और भारतकी क्षात्रशक्तिका ध्वंस करनेवाले महासमरका समर्थन करके उन्होंने उसमें योग-दान किया था।

दो दलोंमें बँटी हुई भारतीय राष्ट्रशक्तियाँ एक दूसरेका ध्वंस करनेके लिये सब प्रकारके मारणास्त्रोंसे सुसज्जित होकर तैयार हो गयीं। देशकी शान्तिप्रिय निरीह जनता महासमरकी विभीषिका और अशान्तिकी ज्वालासे बची रहे और आसुर-भावापन्न राजालोग परस्पर अपना ध्वंस कर सकें, इसके लिये युद्धको एक स्थानविशेषमें मर्यादित करके सीमाबद्ध कर दिया गया। कुरुक्षेत्रकी विशाल भूमिमें वे एक दूसरेका मुकाबला करनेके लिये आ डटे। यथासम्भव कम-से-कम समयमें ही महासमरको समाप्त कर देनेकी श्रीकृष्णने बड़े कौशलसे व्यवस्था की। उन्होंने स्वयं इस महासमरके महानायक होनेपर भी किसी पक्षमें अस्त्र धारण न करके अपनी निरपेक्षता प्रकट की; परंतु अर्जुनके सारथि बनकर उनके पक्षमें अपने नैतिक समर्थनकी घोषणा कर दी। दूसरी ओर, अर्जुनके विपक्षमें दुर्योधनको अपनी नारायणी सेना प्रदान करके वस्तुतः अर्जुनके अस्त्रोंसे अपनी सामरिक शक्तिका नाश करनेकी भी व्यवस्था कर दी।

अठारह दिनोंके युद्धमें भारतकी आत्मविस्मृत आसुर-भावापन्न क्षात्रशक्ति प्रायः निर्मूल हो गयी। बचे श्रीकृष्णके विशेष अनुग्रहपात्र, उनकी पताकाका वहन करनेवाले पाँच पाण्डव। और बचे—स्त्री, बालक तथा वृद्ध, जो युद्धमें सम्मिलित ही नहीं हुए थे। प्रायः निःक्षत्रिय भारतवर्षमें उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिरको राजचक्रवर्ती-पदपर प्रतिष्ठित किया। क्षात्रशक्तिके या आसुरी शक्तिके श्मशानपर श्रीकृष्णके आदर्शकी प्रतिष्ठा हुई। अखण्ड महाभारतकी नींव पड़ी और नवयुगकी सूचना हुई। व्यासके शिष्यगण महाभारतके नैतिक और आध्यात्मिक सङ्गठनमें लगे रहे। महाभारतके महानायककी यह अनोखी लीला है!

महाभारतपर स्वर्गीय विद्वान् श्रीचिन्तामणि राव वैद्यके कुछ विचार

महाभारत एक महाकाव्य

'वस्तुतः 'महाभारत' शब्दसे ही मनमें विशाल तथा अत्यन्त वैविध्यसे युक्त किसी वस्तुकी भावना आ उपस्थित होती है; परंतु काव्यत्वके दृष्टिकोणसे महाभारतमें विषयोंकी विशालता और विविधताका भान बहुत कम लोगोंको होता है। काव्यरचनाके अनुकूल प्रसङ्ग महाभारतमें इतने क्रमबद्ध तथा वैविध्यसे भरपूर हैं कि अर्वाचीन संस्कृत कवियोंने जिस किसी रसमय प्रसङ्गका वर्णन किया है, उन सबका बीज महाभारतमें मिले विना नहीं रह सकता। सूतजी स्वयं अपने ग्रन्थके प्रारम्भमें अभिमानपूर्वक कहते हैं—'एक विशाल वटवृक्षके समान महाभारत सभी अर्वाचीन कवियोंके लिये आश्रय-स्थान है। इस अमरस्रोतसे अनेक कवियोंने सुधा-रसका पान किया है तथा नयी चेतना प्राप्त की है।'

'महाभारतके पृथक्-पृथक् तथा विविधतासे भरे प्रसङ्ग एक ही वार्ताके रूपमें इस प्रकार सुन्दरतासे ग्रंथित हुए हैं कि इससे अधिक भव्य और सुयोजित कथानककी कल्पना करना शक्य नहीं है। अनेकों बार मेरे मनमें ऐसा आया है कि महाभारतकी कथा यदि ऐतिहासिक नहीं भी है तो भी इसकी रूप-रेखा जिस कथासे उत्पन्न हुई है उसकी कल्पना शेक्सपियरकी कल्पनाकी अपेक्षा भी अधिक समृद्ध होनी चाहिये। पात्रोंकी विविधता और स्वाभाविकता जितनी शेक्सपियरके नाटकोंमें देखनेमें आती है, उतनी ही महाभारतमें भी दीख पड़ती है; परंतु आश्चर्यकी बात यह है कि महाभारतमें एक ही कथानकके भीतर इतने अधिक पात्रोंका एकत्र समावेश हो जाता है! शेक्सपियरने अनेकों नाटकोंकी रचना करके जो दिखलाया है, उसे व्यासजीने एक विशाल कथानकके द्वारा प्रदर्शित कर दिया है। कथानकके अङ्ग विशाल होनेपर भी गजराजके अवयवके समान उनकी योजना एक सुबद्ध और सुन्दर शरीरमें हो जाती है।'

'यह तो जानी हुई बात है कि महाभारतके कुछ प्रसङ्गोंके आधारपर परवर्ती संस्कृत कवियोंने महाकाव्यों तथा नाटकोंके लिये अनुकूल विषयोंका चयन किया है। यह भी जानी बात है कि वर्तमान कथाकार इस विशाल ग्रन्थमेंसे कुछ फुटकर प्रसङ्गोंको लेकर उनके द्वारा घंटों-घंटों चलनेवाली कहानियोंकी रचना करते हैं। पर यह जानी बात नहीं है कि महाभारतकी कथा बड़ी और सुगठित है, इतना ही नहीं, बल्कि इसका अभी विशेष विस्तार होनेके लिये अवकाश बना हुआ है। वस्तुतः मुख्य विषय महाभारतके युद्धको कविने अपने मनश्चक्षुके सामने सदा रक्खा है और विस्तार करनेके लालचके अभिवश होकर भी वे कहीं बहुत दूर नहीं भटके हैं।'

'पैरेडाइज लास्ट' और 'महाभारत'—इन दोनोंकी तुलना नहीं की जा सकती; परंतु होमरके 'इलियड' के विषय तथा महाभारतके विषयकी तुलना भलीभाँति की जा सकती है। 'इलियड' जिस प्रकार ग्रीसकी जनताका महाकाव्य था, उसी प्रकार महाभारत भारतीय जनताका महाकाव्य था और अबतक है। भारतीय प्रजासे सम्बन्ध रखनेवाली वंशावली, दन्तकथाएँ तथा प्राचीन तत्त्वज्ञानका महान् संग्रह इस ग्रन्थमें प्राप्त होता है।'

पुरुष-पात्र

'जिस पात्रके उच्च पराक्रम और प्रौढ़ विचार महाभारतमें अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढंगसे वर्णित हैं, उस पात्रकी योग्य प्रशंसा करनेके लिये शब्द हमको ढूँढ़े नहीं मिलते। श्रीकृष्णके अतिरिक्त युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, कर्ण, द्रौपदी, द्रोण और भीष्मपितामह—ये सभी पात्र महत्ता और नीतिमत्ताके आदर्शके रूपमें परिगणित हुए हैं, और सदा होते रहेंगे। कर्तव्य-पालनार्थ जिन कृत्योंमें आत्म-बलिदानकी आवश्यकता होती है, उनके लिये प्रेरणा-शक्ति इन पात्रोंके द्वारा भारतकी आर्य-प्रजाको सदासे मिलती रही है। दुर्योधन-जैसे पात्रमें भी कुछ और ही प्रताप और सौन्दर्य देखनेमें आता है। उनका अडिग निश्चय, मृत्यु और राजमुकुट—इन दोनोंके मध्यके किसी भी अधकचरे मार्गको न स्वीकार करनेकी उनकी उच्चाभिलाषा—इनका निरूपण कविने अत्यन्त ही प्रभावोत्पादक ढंगसे किया है। और इनके भीतरसे नये-नये उपदेश अपने-आप निकल आते हैं। पात्रोंके चरित्र-चित्रणके कार्यमें होमर और मिल्टनकी अपेक्षा भी महाभारतके कविकी विशिष्टता स्पष्ट दीख पड़ती है।

स्त्री-पात्र

महाभारतके स्त्री-पात्र भी इलियडके स्त्री-पात्रोंकी अपेक्षा बढ़े-चढ़े दीखते हैं। हेलेन और एण्ड्रोमश भी द्रौपदीकी तुलनामें नहीं आ सकतीं। द्रौपदी-जैसे पात्रद्वारा महाभारतकारने स्त्री-स्वभावकी उच्चताका ऐसा प्रबल उदाहरण हमारे सामने रक्खा है कि इस प्रकारके पात्रकी योग्य प्रशंसा करनेके लिये हमें खोजनेसे भी शब्द नहीं मिलते। द्रौपदी एक साध्वी स्त्री है। आत्मगौरवका भान वह कभी नहीं खोती है। महान्-से-महान् विपत्ति आ पड़नेपर भी वह किंकर्तव्यविमूढ़ नहीं होती। वह इतनी पवित्र और निर्दोष है कि जिसकी कल्पना भी मनुष्य नहीं कर सकता, तथापि उसमें मनुष्यत्व भी है। बहुधा बातचीतके दौरानमें स्त्री-जाति-सुलभ हठ तथा अन्य मनोभाव उसमें दीख पड़ते हैं। बहुधा

बातपर वह अड़ जाती है, उसको स्वीकार करना उसके पतियोंको भी आवश्यक हो जाता है। तथापि वह हल्की नहीं बनती। हेक्टर जिस प्रकार अपनी स्त्रीको घरके धंधेके ही योग्य समझता है, उस प्रकार द्रौपदीको तुच्छ नहीं गिन सकते। वह एक क्षत्रियाणी है। क्षात्र-शौर्य और मनोबल उसके चेहरेपर झलकता रहता है। अरे! जिस समय कीचक और जयद्रथ-जैसे मनुष्य उसको पकड़कर बलात्कार करनेका प्रयत्न करते हैं, उस समय एक क्षत्रियाणीके लिये शोभनीय जोशसे वह उनको ऐसा धक्का देती है कि वे जमीन पकड़ लेते हैं। अवसरदर्शिता भी उसमें ऐसी है कि वैसी अवसर-दर्शिता यदि पुरुषमें हो तो उसे अभिमान आये बिना न रहे। उदाहरणार्थ, स्वयंवरमें धनुष चढ़ानेके लिये कर्ण खड़ा होता है, उस समय 'मैं सूतके साथ ब्याह करना नहीं चाहती'—यह कहते हुए उसको जरा भी देर नहीं लगती। और 'चौपड़ खेलते समय तू दावपर रक्खी गयी है'—यह जब उससे कहा जाता है तो वह ऐसा प्रश्न उठाती है कि जिससे दुर्योधनके दरबारी बड़ी उलझनमें पड़ जाते हैं। सबसे बढ़कर तो, स्वयंवरमें अर्जुनको प्राप्त होकर उस समय गरीब ब्राह्मणके वेषमें खड़े अर्जुनके साथ सुख-दुःखमें सहचारिणी होनेका इसका उदार सङ्कल्प और दीर्घकालतक वनवासमें पाण्डवोंके साथ रहनेकी पूर्ण इच्छा, इन सारे संयोगोंमें हिंदू रमणीके लिये शोभनीय धैर्य और संतोषवृत्ति रखकर एक समान भक्तिपूर्वक पतिके साथ रहनेकी प्रेरणा इसके हृदयमें निरन्तर प्रवाहित होती है।'

'कुन्ती महाभारतकी दूसरी प्रतापशालिनी स्त्रीपात्र हैं। पाण्डव अपनी स्त्रीको लेकर बारह वर्षके लिये वनवासमें जाते हैं, उस समय विदुरके घरमें रहती हुई कुन्ती माताने श्रीकृष्णके द्वारा अपने पुत्रोंको जो संदेश भेजा है वह सचमुच क्षत्रियाणीके ही अनुरूप है, तथा युद्धमें उनको प्रबल उत्साह प्रदान करनेवाला है। 'विजय प्राप्त करो या मृत्युको प्राप्त हो' इस प्रकारकी इच्छा वह अपने पुत्रोंके सामने प्रकट करती है। इस प्रकार वह अपने पुत्रोंको युद्धके लिये उकसाती है, परंतु वह अपने स्वार्थके लिये नहीं। पाण्डवोंको जब विजय प्राप्त होती है और वे राज्यारूढ़ होते हैं तब कुन्ती उनको छोड़कर धृतराष्ट्रके साथ वनमें चली जाती है और उस अंधे जेठकी सेवा करते-करते अन्तमें मृत्युको प्राप्त होती है। वह जब जाती है, उस समय भीम बहुत विनती करते हुए कहते हैं—'तुम हमारे साथ रहो और तुम्हारी शिक्षाके अनुसार चलनेसे हमको जो फल प्राप्त हुआ है, उसको तुम भी हमारे साथ रहकर भोगो।' परंतु वह सुन्दरतापूर्वक उत्तर देती है कि—'मैं अपने पतिके जीवनकालमें बहुत ही भोगैश्वर्य प्राप्त कर चुकी हूँ। अब मुझको भोगकी इच्छा नहीं है। मैंने तुमको युद्ध करनेकी शिक्षा दी, युद्धके लिये मैंने तुमको उकसाया, इसका कारण केवल यही था कि मैं नहीं चाहती थी कि तुम भीख माँगो।' अलग होनेके समयकी ऐसी अन्तिम शिक्षा स्वर्णाक्षरोंमें लिखने योग्य है—

'धर्ममें तुम अपनी बुद्धि रक्खो। सदा उदारचेता बने रहो (धर्मे ते धीयतां बुद्धिर्मनस्ते महदस्तु च)।' सारे महाभारतका सार इस एक पङ्क्तिमें आ जाता है।'

'महाभारतके स्त्री-पात्र साधारण स्त्रियोंकी अपेक्षा बहुत चढ़े-बढ़े हैं; परंतु जो मनुष्यत्वका तत्त्व हमको अन्यत्र देखनेमें आता है वह इनमें भी है। जिस समय अर्जुन अपनी दूसरी स्त्री सुभद्राको इन्द्रप्रस्थमें लाता है, उस समय द्रौपदी एक प्रबल दृष्टान्तके द्वारा अपना ईर्ष्याभाव प्रकट करती है। वह कहती है कि, 'पहली गाँठ चाहे जितनी कड़ी और मजबूत हो; परंतु उसके पीछे जो दूसरी गाँठ आती है उससे वह ढीली पड़े बिना नहीं रहती।' युद्धके मैदानमें कर्णको देखनेके साथ ही कुन्तीको मूर्च्छा आ जाती है। कौरवोंके सामने आक्रमण करनेके लिये उत्तराका भाई जिस समय जाता है उस समय उत्तरा अर्जुनको उसके साथ रहनेके लिये कहती है, और 'मेरे गुड़ियोंके लिये अच्छे-अच्छे वस्त्र चुनकर लेते आना' यह विनती करती है, पर उत्तराके मनमें यह शङ्का भी नहीं आती कि कौरवोंकी बड़ी सेना मेरे भाईको पराजित कर देगी। स्त्रीजातिकी विशुद्धताके सूचक ऐसे-ऐसे प्रसङ्गोंका समावेश कविने अपने ग्रन्थमें किया है, जिसके कारण महाभारतके स्त्री-पात्रोंकी ओर हमारा विशेष प्रेम उत्पन्न होता है।'

देव-पात्र

पुरुष-पात्र और स्त्री-पात्रके अतिरिक्त देव-पात्र भी महाभारतमें आते हैं। ये पात्र सचमुच देवता ही हैं। इलियडके देवता पात्रोंके समान हास्य उत्पन्न नहीं करते। साधारणतः यह कहा जाता है कि, महाकाव्यकी गम्भीर और प्रौढ़ रचनामें हास्यरसके चित्रोंके लिये कुछ भी अवकाश नहीं रहता; तथापि इलियडमें यदि कुछ हास्यरस चित्रण हुआ है तो वह आलिम्पस पर्वतके ऊपरके देवताओंसे सम्बन्ध रखता है। स्वर्गके देवता भूमण्डलपर होनेवाली रचनाके लिये विवाद करते हैं। अति क्षुद्र हेतुसे प्रेरित होकर मनुष्यकी सहायता करनेमें अत्यन्त व्यस्त होकर बर्तते हैं। आश्चर्य तो यह है कि सबसे समर्थ देवता जुपिटर (बृहस्पति) भी कतिपय पक्षपातमें लिप्त अपनी स्त्री ज्यूनोंके हठसे अनेकों बार व्याकुल हो उठते हैं, और कभी-कभी तो अपनी स्त्रीको मार डालनेकी धमकी भी दे बैठते हैं। महाभारतके देवता अनेक दृष्टिसे ग्रीक लोगोंके देवताओंके समान हैं; परंतु कवि कभी उनको उनके उच्च स्थानसे पदभ्रष्ट नहीं करता।

कवितामें बहुत ही प्रभावोत्पादक ढंगसे कवि इन पात्रोंका प्रवेश कराता है, और इस प्रकार काव्यके पात्रोंकी विविधता-में वृद्धि करता है। मानवीय विषयोंमें व्यासके देवता शायद ही कहीं बीचमें पड़ते हैं, यदि कहीं पड़ते भी हैं तो अपना व्यवहार देवताओं-जैसा ही रखते हैं, स्वार्थी मनुष्योंके-जैसा बर्ताव वे नहीं करते। इसका एक उदाहरण मैं दूँगा। युद्धमें कर्ण अजेय है—ऐसा अर्जुनको न लगे, इसके लिये कर्णके प्राकृतिक कवचको जो उसके जन्मके साथ ही उत्पन्न हुआ था, लेनेके लिये कर्णके पास इन्द्रके जानेका वर्णन आता है। कर्ण ऐसा दानी प्रसिद्ध था, जो ब्राह्मणोंको किसी भी वस्तुके लिये खाली नहीं जाने देता था। इसलिये ब्राह्मणका वेष धारण करके इन्द्र कर्णके पास जाता है और कहता है कि 'तुम अपना कवच मुझको दे दो।' दानी कर्ण इन्द्र-को पहचान लेता है, फिर भी उसको अपना कवच दे देता है। यहाँ 'इन्द्र उस कवचको लेकर अभिमानपूर्वक चलता बना'—ऐसा वर्णन महाभारतमें नहीं दिया है, परंतु देवता-को जैसा शोभता है, वैसे ही बर्तावकी रक्षा करते हुए इसको प्रदर्शित किया गया है। कर्णके ऊपर वह प्रसन्न होता है और देवताके रूपमें कर्णको वरदान माँगनेके लिये कहता है। कर्ण यह वरदान माँगता है कि 'एक मर्त्यके विरुद्ध छोड़ा जा सके, ऐसा एक अमोघ अस्त्र मुझको दो।' पश्चात्, यह अस्त्र शायद अर्जुनके विरुद्ध ही प्रयोग करनेमें न आ जाय, इसकी आशङ्का न करके इन्द्र एक अस्त्र उसको देता है। फिर, अर्जुन स्वर्गमें अथवा इन्द्रके दरबारमें जाता है, वहाँ उसको शिवके दर्शन होते हैं, और शिव उसके ऊपर प्रसन्न होते हैं। यह विषय, जिसका विस्तार भारविने अपने 'किरातार्जुनीय' नामक महाकाव्यमें किया है, महाभारतमें कुछ सुरम्य रेखाचित्रोंके द्वारा चित्रित हुआ है; और इसमें स्वर्गके पात्रोंका बर्ताव मनुष्यों-जैसा नहीं, बल्कि देवताओं-जैसा ही दिखलाया गया है।'

संवाद और भाषण

'व्यासजी अपने पात्रोंको कैसे प्रतिष्ठित करते हैं, उनकी कथा कैसे आगे बढ़ती है, अब इस प्रश्नके ऊपर हम विचार करेंगे। आर्नल्डने महाकाव्य (Epic Poem) का जो लक्षण दिया है, उसमें एक अंशका सारांश यहाँ हम देते हैं। 'संवाद, स्वगत-भाषण और वर्णन—इन तीनोंके मिश्रणके द्वारा महाकाव्यका विकास होता जाता है। महाभारतके ग्रन्थमें जिस प्रकार महाकाव्यके दूसरे लक्षण पुष्ट दीख पड़ते हैं, उसी प्रकार यह लक्षण भी देखनेमें आता है। महाभारतमें संवाद अत्यन्त उत्तम होते हैं। वस्तुतः संवादोंमें ही इस काव्यकी विशेष शक्ति निहित है। इलियड और पैरेडाइज लास्ट (Iliad and Paradise Lost) के समान इस काव्यके सारे भाषण सुयोजित, वक्तृत्वसे भरपूर और जो[illegible] हैं, तथा पृथक्-पृथक् पात्रोंके मुखसे जो भाषण कराये [illegible] हैं, वह उन-उन पात्रोंके मुखसे ही शोभा देते हैं। [illegible] भाषण ऐसा नहीं है, जिसको विस्तारपूर्वक यहाँ लिखा [illegible] इसलिये कुछ श्रेष्ठ भाषणोंकी सूचना देकर ही हमको [illegible] लेना पड़ेगा। आदिपर्वमें धनुर्विद्याके ज्ञानकी परीक्षाके [illegible] दुर्योधन, कर्ण, अर्जुन और भीम—इन चारोंके [illegible] चलनेवाला संवाद; सभापर्वमें जिस संवादके अन्तमें श्रीकृ[illegible] सुदर्शनचक्र फेंककर शिशुपालका नाश किया था, वह शिशु[illegible] और भीष्मका संवाद; वनपर्वमें प्रपञ्चके सामने प्रपञ्च करने[illegible] सलाह जहाँ द्रौपदीके द्वारा दी गयी है; द्रौपदी, भीम [illegible] युधिष्ठिरका संवाद; द्रोणपर्वमें द्रोण जिस समय अपनी [illegible] करनेमें असमर्थ थे, उस समय धृष्टद्युम्नने उनका वध कि[illegible] तत्पश्चात् सात्यकि, अर्जुन, धृष्टद्युम्न और युधिष्ठिर—[illegible] चारोंके बीच चलनेवाला संवाद—ये विशेषरूपसे ध्यान दे[illegible] योग्य हैं। उभयपक्षके बीच संधि करानेके उद्देश्यसे श्रीकृ[illegible] जाते हैं, और कौरवोंके आगे जो भाषण करते हैं, [illegible] साहित्यका एक श्रेष्ठ नमूना है। और यही एक नमूना स[illegible] भाषणकी कल्पना करनेकी व्यासकी अद्भुत क्षमताका चि[illegible] पाठकोंके हृदयमें अङ्कित कर देता है। श्रीकृष्णके उत्कृ[illegible] भाषणका एक दूसरा उदाहरण कर्णपर्वमें प्राप्त होता है; कर्ण[illegible] साथ लड़नेके लिये अर्जुन आगे बढ़ता है, उस सम[illegible] अर्जुनको प्रोत्साहन करनेके लिये श्रीकृष्ण जो भाषण करते हैं वह बहुत ही रम्य और प्रभावोत्पादक है। यह और ऐ[illegible] अनेकों भाषण महाभारतके काव्यमें कुछ और ही रमणीय[illegible] की सृष्टि करते हैं, और इस महाकाव्यको मानो नाटक-जै[illegible] बना देते हैं।''

निर्भयता महाभारतके भीतरके भाषणोंका एक वि[illegible] लक्षण है। सामनेके मनुष्यको मुखसे अपने अभिप्राय[illegible] हिम्मतसे कह सुनावे, इस प्रकारके निश्छल हृदय त[illegible] प्रामाणिक मनुष्योंके वचन इस ग्रन्थमें व्यक्त किये गये हैं। उदाहरणार्थ, दुर्योधन जब-जब कोई बुरा कर्म करता है, त[illegible] तब विदुर उसको कड़े-से-कड़े शब्दोंमें फटकारनेसे न[illegible] चूकते। परंतु विदुरके लिये तो क़दाचित् यह भी कहा जा सक[illegible] है कि उनका पद तथा उनका सम्बन्ध इस प्रकारका था [illegible] वह यदि पूर्ण स्वतन्त्रतापूर्वक बोलें तो भी कोई हानि न हो। शकुन्तलाको इस प्रकारकी निर्भयता प्रदान करनेका को[illegible] कारण न था, फिर भी व्यासकी शकुन्तला कालिदासकी शकुन्तलासे इस अर्थमें और ही है। यह ग्राम्यबाला, निश्छलहृदया, हिम्मतवाली तथा सद्गुणके गौरवको समझने वाली है। भरी सभामें राजा दुष्यन्तने जब यह कहा कि 'मैंने तुझे कहीं देखा ही नहीं, फिर तेरे साथ परिणय कैसे हो गया?' तब उसने उत्तर दिया कि 'सत्यके लिये यदि

तुम्हारे भीतर सम्मान नहीं है तो तुम्हारे-जैसे पुरुषका सङ्ग मुझे नहीं चाहिये। पति या पुत्रकी अपेक्षा भी सत्य अधिक मूल्यवान् वस्तु है।' कालिदासके प्रख्यात नाटककी कुम्हली नायिकाके समान वह मूर्च्छित नहीं होती, परंतु वह रुष्ट होकर राजसभासे चल देती है।'

कर्णपर्वमें शल्य और कर्णका संवाद, महाभारतके पात्र किस प्रकार स्वच्छन्दतापूर्वक बोलते हैं—इसका एक दूसरा उदाहरण है। एक विशेष उपदेश देनेके उद्देश्यसे हंस और कौएकी वार्ता जो कही गयी है, वह बहुत ही सरस तथा पठनीय है। वस्तुतः व्यासजीने अपने पात्रोंके मुखसे नीतिका महान्-से-महान् उपदेश बड़ी सुन्दरतापूर्वक प्रदान कराया है और सत्यता, सरलता, स्वाभिमान, कर्त्तव्यपरायणता, उदारता, आत्मसंयम आदिके आवश्यकतानुसार असंख्य उपदेश और दृष्टान्त इस ग्रन्थमें प्राप्त होते हैं। केवल एक ही सद्गुण—स्वदेशाभिमानके विषयमें इस ग्रन्थमें कहीं भी कुछ कहनेमें नहीं आया है; 'इलियड' के कुछ भाषणोंमें देशाभिमानका जोर पूर्णतः देखनेमें आता है, पर उसका यहाँ पूर्ण अभाव है। इसका एकमात्र कारण यह है कि पश्चिमके देशोंमें राजकीय प्रभुता बढ़ानेके लिये प्रयोजनीय देशाभिमान आदि जिन-जिन सद्गुणोंका विकास हुआ था, वह भारतके आर्य लोगोंमें नहीं हुआ था; अथवा कदाचित् यह भी हो सकता है कि एक ही कुटुम्बके दो पक्षके बीचका युद्ध ही एक ऐसा विषय है कि इसमें स्वदेशाभिमानके उद्धारके लिये कोई प्रसङ्ग ही नहीं आता।

अब हम स्वगत भाषणको लेते हैं। संस्कृतके कवि नाटकोंके सिवा दूसरी रचनाओंमें स्वगत भाषणोंका कुछ भी उपयोग करते हुए नहीं दीखते। नाटकोंका 'स्वगत' भी बहुत ही संक्षिप्त होता है, और उसमें वक्तृत्वकी सुन्दरता अधिक नहीं देखी जाती। रणभूमिमें घायल होकर पड़ा हुआ दुर्योधन जो विलाप करता है, उसको यदि स्वगत भाषणमें न गिनें तो सारे महाभारतमें एक भी स्वगत भाषण नहीं आता, यह हम कह सकते हैं। मेरे विचारके अनुसार, 'स्वगत भाषण' कुछ अप्राकृतिक वस्तु है। मनुष्य कभी-कभी संक्षिप्त विचार करे तो यह सम्भव हो सकता है; परंतु मनमें विचार चलता हो, उस समय एक अखण्ड और जोशसे भरा हुआ भाषण दिया जाय—यह तो बहुत कम लोगोंसे ही बन सकता है। कदाचित् किसीसे भी नहीं बन सकता, परंतु इस विषयमें हम किसी प्रकारकी चर्चामें उतरना नहीं चाहते। महाभारतमें स्वगत-भाषण बिल्कुल ही नहीं हैं, यह बात नोट करके ही हम संतोष करेंगे।

युद्धके वर्णन

वर्णनके विषयमें महाभारतके कविका सामर्थ्य होमर अथवा मिल्टनके जैसा ही देखनेमें आता है। इनकी बात कहनेकी रीतिमें सदा जोश और स्पष्टता देखनेमें आती है। और इनके वर्णन बहुत ही यथार्थ और प्रौढ़ होते हैं। युद्धका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेमें तो व्यासकी शक्ति सचमुच ही अद्भुत है। महाभारतके छोटे-छोटे द्वन्द्वयुद्धोंका जो वर्णन दिया गया है, उनके सम्बन्धमें कदाचित् ही कोई यह टीका करना चाहेगा कि इन वर्णनोंमें पुनरुक्तिकी अधिकता है। 'अमुक योद्धाने अपने प्रतिपक्षीके सामने इतने अस्त्र प्रहार किये और उसने बदलेमें इतने अस्त्र प्रहार किये' इस प्रकार द्वन्द्व-युद्धका वर्णन किया गया है। और इसी प्रकारके वर्णन बार-बार आते हैं, इससे पाठकका चित्त स्वभावतः उकताये बिना नहीं रहता। इलियडमें भी इसी प्रकारके वर्णन आते हैं, और उससे भी हमारा जी जरा उकता जाता है। परंतु जिस समय इस प्रकारके अस्त्र ही युद्धके मुख्य साधन थे, और जिस समय रणस्थलमें उभयपक्षके सरदारोंके मध्य द्वन्द्वयुद्ध ही अधिक देखनेमें आते थे, उस समयका पूरा-पूरा विचार भी हमको अपने मनमें रखना चाहिये। महाभारतमें युद्धके जो वर्णन देखनेमें आते हैं, उनमें भी कविने जो विविध प्रकारके चित्र चित्रित किये हैं, तथा जोशीले ढंगसे जो उनका वर्णन किया है, वह सचमुच ही आश्चर्यजनक है। इलियडके समान महाभारतकी, विशेषतः इसकी युद्धकी कथाओंसे श्रोताओंके हृदयमें शौर्यकी लहरें उठने लगती हैं। और शिवाजीके भीतर जो पराक्रमशीलता आयी थी, वह इस कथाके सुननेसे आयी थी—इस बातको सभी जानते हैं।

दूसरे कतिपय वर्णन

सृष्टि—सौन्दर्यके वर्णनमें महाभारतका काव्य रामायणकी अपेक्षा कुछ उतरता हुआ जान पड़ता है। सारे ग्रन्थमें इस प्रकारके वर्णन बहुत कम ही देखनेमें आते हैं। परंतु वनपर्वमें हिमालयका वर्णन ऐसा हुआ है कि बर्फसे आच्छादित इस भारतके उत्तरी प्रदेशको जिसने अपनी आँखों देखा है, अथवा जिसने इस प्रदेशमें निवास किया है, उसके द्वारा यह वर्णन किया गया है—ऐसा हमको लगता है। पर्वतके ऊपर गिरती हुई हिम-राशिमें पाण्डव और द्रौपदी फँस गये थे, इसका वर्णन इतना सटीक हुआ है कि जैसे वर्तमान कालमें बर्फके तूफानमें बहुधा मेलट्रेन पड़ जाती है और मनुष्योंकी जान चली जाती है तथा उसका समाचार हम समाचारपत्रोंमें पढ़ते हैं, वैसा ही यह वर्णन भी हमको लगता है।' परंतु गन्धमादन पर्वतका जो वर्णन दिया गया है, वह यद्यपि बहुत ही सुन्दर और पूर्ण है, तथापि उसमें कुछ विस्तारकी बातें अपनी ओरसे जोड़ी हुई जान पड़ती हैं। उदाहरणार्थ, पर्वतको सुशोभित करनेवाले वृक्षोंमें

तालवृक्षका भी उल्लेख किया गया है । इस प्रकारके कथनके लिये सच्ची वस्तुस्थितिका आधार नहीं है, किंतु कल्पनाका आधार लिया गया है—ऐसा लगता है ।'

'मनुष्योंका वर्णन करनेमें महाभारतकी शैली निर्मल और जोशीली जान पड़ती है । स्त्री-सौन्दर्यका वर्णन करनेमें परवर्ती कालके संस्कृत कवियोंके समान विषयपरायणता महाभारतमें नहीं देखनेमें आती । द्यूतक्रीडाके प्रसङ्गमें द्रौपदीको दावपर रखते समय युधिष्ठिरने जो उसका वर्णन किया है, वह इस प्रकारके वर्णनका एक उत्तम नमूना है—

नैव ह्रस्वा न महती न कृशा नाति रोहिणी ।
नीलकुञ्चितकेशी च तया दीव्याम्यहं त्वया ॥
शारदोत्पलपत्राक्ष्या शारदोत्पलगन्धया ।
शारदोत्पलसेविन्या रूपेण श्रीसमानया ॥
तथैव स्यादानृशंस्यात्तथा स्याद् रूपसम्पदा ।
तथा स्याच्छीलसम्पत्त्या यामिच्छेत् पुरुषः स्त्रियम् ॥
चरमं संविशति या प्रथमं प्रतिबुध्यते ।
आगोपालाविपालेभ्यः सर्वं वेद कृताकृतम् ॥
तथैवविधया राजन् पाञ्चाल्याहं सुमध्यमा ।
ग्लहं दीव्यामि चार्वङ्ग्या द्रौपद्या हन्त सौबल ॥

अर्थात् 'न तो नाटी है और न ऊँची है, न दुबली है और न मोटी, ऐसी काले और कुञ्चित केशवाली द्रौपदीको मैं दावपर रखता हूँ । शरद्ऋतुके कमलपत्रके समान आँखोंवाली, शरद्ऋतुके कमलके समान गन्धवाली, शरद् ऋतुके कमलका सेवन करनेवाली तथा लक्ष्मी-जैसी कान्तिवाली, सौजन्यमें, रूपसम्पत्तिमें और शीलसम्पत्तिमें कोई भी पुरुष जैसी स्त्रीकी इच्छा करता है वैसी, पतिके सो जानेपर जो सोती है और पतिके उठनेके पहले जो उठती है ऐसी, गौ और भेड़ चरानेवालोंसे लेकर समस्त कर्मचारियोंके सारे कार्योंको जानती है, उस पतली कमरवाली और सुन्दर अङ्गोंवाली द्रौपदीको दावपर रखता हूँ ।'

'कीचक जैसे विषयासक्त पात्रके मुखसे कविने द्रौपदीके सौन्दर्यकी जो प्रशंसा करायी है, वह भी जैसी दीख पड़ती है, वैसी दूषित नहीं है । बृहन्नलाके वेषमें छिपे अर्जुनका वर्णन दिया गया है, वह भी बहुत ही सुन्दर और सच्चा है । तथा भीष्म और द्रोण—ये दोनों योद्धा युद्धमें जाते हैं एवं आदिपर्वमें दूसरोंके साथ मुकाबलेमें उतरनेकी कर्ण तैयारी करता है, वह वर्णन भी ऐसा ही है । इस सम्बन्धमें उदाहरण-के रूपमें इतना ही लिखना बस होगा ।'

भाषा और छन्दरचना

''महाभारतमें प्रयुक्त छन्द और महाभारतकी भाषा, यह एक प्रश्न अब विचारनेके लिये शेष रह गया है । महाभारतका काव्य मुख्यतः अनुष्टुप् छन्दमें रचा गया है इसमें बहुधा उपजाति छन्दका भी प्रयोग किया गया है संस्कृत भाषामें महाकाव्यके भीतर इन दो छन्दोंका बहुतायतसे प्रयोग किया गया है । जो प्रसिद्ध महाकाव्य हैं सभी अधिकांशमें इन्हीं दो छन्दोंमें रचे गये हैं; और कहीं किसी-किसी स्थानमें दूसरे छन्द प्रयुक्त हुए हैं । पु उपपुराण तथा काव्यकलाके ग्रन्थ, सभीमें अनुष्टुप् छन्द उपयोग होनेके कारण इस छन्दका गौरव घट गया है । छन्द अतिशय प्रयुक्त हो चुका है तथा सहज है, ऐसा ज लगता है; परंतु हमें याद रखना चाहिये कि जब स कवियोंके द्वारा इस छन्दका उपयोग होता है तो इसके प्र और सामर्थ्यमें बिल्कुल ही कमी आती नहीं दीख पड़ कालिदासने रघुवंश नामक काव्यकी रचना की है, उ पहला और चौथा सर्ग अनुष्टुप् छन्दमें ही रचा है । फिर भी वह अति उत्तम समझा जाता है । एक और एक दीर्घ, दो अक्षरके पदवाले अंग्रेजी (Iamb के समान अनुष्टुप् छन्द यद्यपि सारे वीरचरित काव्योंमें महाकाव्योंमें साधारणतः प्रयुक्त होता है, तथापि अंग्रेजी संस्कृत इन दोनों भाषाओंमें काव्यके गौरवका आधार बातपर निर्भर करता है कि काव्यकी रचना करनेवाला वास्तविक कवि है या तुकड़ है ।'

महाभारतकी भाषा भी गौरवयुक्त और महाका सुशोभित करनेवाली है । इसके तीन मुख्य लक्षण दे आते हैं—सरलता, प्रौढ़ता और शुद्धता । सरलता प्रौढ़ता दोनों ही एक साथ देखनेमें आवें, यह तो क्वचित् ही बन पाता है । सारे अर्वाचीन महाकाव्योंमें गौरव तो देखनेमें आता है, परंतु यह गौरव स्पष्टार्थताकी बलि दिये बिना काम नहीं चलता । इन की वाणीका आनन्द हम श्रवणमात्रसे प्राप्त कर परंतु अर्थ समझनेके पहले प्रत्येक अक्षरपर रुक विचार करनेकी जरूरत पड़ती है । महाभारतकी भाषा प्रकारकी नहीं है । परवर्तीकालके पुराण इस विषयमें कदाचित् महाभारतकी अपेक्षा आगे बढ़ गये हैं बहुधा उनमें अशुद्ध भाषा प्रयुक्त हुई है और इन प्रयोगोंके सम्बन्धमें स्थान-स्थानपर टीकाकारोंने भी प्रयोग है'—ऐसा कहकर जान बचानेकी चेष्टा की है चीतमें प्रयुक्त होनेवाली भाषाके ऊपर अधिकार र एक समर्थ लेखककी छाप महाभारतकी भाषाके ऊपर तरहसे पड़ी हुई दीख पड़ती है । मिल्टन कविके आर्नल्डने कहा है कि मिल्टनकी भाषा वैषम्ययुक्त हों भी विषयके गौरवके साथ भाषाका गौरव भी घटता जाता है, तथापि इसकी अंग्रेजी शुद्ध और निर्दो होती । अंग्रेजी लिखनेमें लैटिन और ग्रीक शब्द, यही

लैटिन और ग्रीक वाक्यरचनाको भी ठूँसते जाते हैं। मैं मानता हूँ कि महाभारतकी भाषा जो पैरेडाइज लास्ट (Paradise Lost) की भाषाके समान गौरवयुक्त नहीं है, तथापि शुद्धताकी दृष्टिसे यह भाषा 'पैरेडाइज लास्ट' की अपेक्षा ऊँचे दर्जेकी है।'

''महाभारतकी भाषाका सौन्दर्य समझनेकी जिसकी इच्छा हो, उसे भगवद्गीता बाँचनी चाहिये। गीताके विषयमें स्वयं कविने जो कहा है उसके अनुसार सारे महाभारतका अमृत और सर्वस्व इसमें आ जाता है। महाभारतकी उँची-से-ऊँची फिलासफीका उपदेश इसमें निहित है। इतना ही नहीं, बल्कि कविका संस्कृत भाषाके ऊपर कितना अधिकार है—यह भी इस कवितासे भलीभाँति ज्ञात हो जाता है। वैदिक कालके पीछेके अर्थात् शुद्ध संस्कृत साहित्यके सारे क्षेत्रमें एक भी ग्रन्थ नहीं है, जो भाषाकी सरलतामें, वाणीकी मिठासमें और शैलीकी प्रौढ़ता तथा रुचिरतामें भगवद्गीताकी समानता कर सके। इस श्रेष्ठ गीताके शब्द और वाक्य सचमुच शुद्ध सुवर्णके बने हैं; क्योंकि ये आकृतिमें छोटे, वजनदार और तेजस्वी हैं।'

नीतिके उपदेश

'महाकाव्यमें नीतिके उपदेशोंका समावेश होना ही चाहिये, ऐसी बात नहीं; परंतु महाभारतमेंसे ऐसे अच्छे उपदेश निकाले जा सकते हैं। ये उपदेश सम्पूर्ण विशाल पटमें फैले सारे तन्तुओंको जोड़नेवाले सूत्रके समान हैं। ये उपदेश क्यों हैं, यह तर्क उठानेकी आवश्यकता भी कविने नहीं रहने दी है। कविने स्वयं ही ये उपदेश हमको दिये हैं। प्रत्येक स्थितिमें, चाहे जैसी विपत्तिके प्रसङ्गमें भी धर्मपर आरूढ़ रहे, ऐसे उपदेश महाभारतमें स्थान-स्थानपर दिये गये हैं। 'धर्म' का अर्थ है ईश्वरके प्रति तथा मनुष्यके प्रति अपने सारे कर्तव्य। महाभारतके अन्तमें पाँच श्लोक हैं, उनमें यह उपदेश विशेष-रूपसे कथित हुआ है। इन पाँचों श्लोकोंको एकत्र करके इनके लिये 'भारतसावित्री' यह नाम प्रयुक्त हुआ है। एक शास्त्रीजीने मुझे बतलाया था कि 'प्रातःस्मरण' करते समय प्रतिदित प्रातःकाल धर्मात्मा ब्राह्मण इस 'भारतसावित्री' का पाठ करते हैं। उनमेंसे एक श्लोक यहाँ उद्धृत करते हैं—

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति माम्।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते॥

'मैं भुजाओंको उठाकर यह घोषित करता हूँ, कोई मेरी बात नहीं सुनता कि जिस धर्मसे अर्थ और कामकी प्राप्ति होती है, उस धर्मका सेवन क्यों नहीं करते।'

क्या पाण्डव काल्पनिक हैं?

'कुरु और पाञ्चाल, इन दो पड़ोसी आर्यलोगोंमें जो महायुद्ध हुआ था, उस महायुद्धमें भाग लेनेवाले पात्रोंके विषयमें इस प्रकरणमें हम चर्चा करेंगे। साधारणतः इतना तो स्वीकार ही किया जाता है कि 'पड़ोसके दो प्रजाजन पीछे एकत्र होकर एक प्रजाके रूपमें आ गये, उनके बीचके एक प्राचीन युद्धकी घटनाके आधारपर पीछे महाभारतकी रचना हुई है।' परंतु यह युद्ध कब हुआ था, यही नहीं; बल्कि इस युद्धमें भाग लेनेवाले कौन थे, इस सम्बन्धमें बहुत मतभेद है। वे बर आदिके तर्कोंका अनुसरण करते हुए श्रीदत्त ऐसा मानते हैं कि 'पाण्डवोंको दन्तकथाके कल्पित वीरके रूपमें मानना चाहिये।' क्योंकि महाभारतके जो दूसरे पात्र हैं, उनके विषयमें तत्कालीन वैदिक-साहित्यमें अनेक बार उल्लेख हुआ है, परंतु पाण्डवोंके विषयमें कहीं भी कोई उल्लेख देखनेमें नहीं आता। उदाहरणार्थ, परीक्षित्-के पुत्र जनमेजयका नाम वैदिक साहित्यमें अनेक बार आता है; परंतु भारतकी लड़ाईके मुख्य योद्धा तथा जनमेजयके प्रपितामह अर्जुनका नाम कहीं भी देखनेमें नहीं आता। ब्राह्मणग्रन्थोंमें अर्जुन शब्द इन्द्रके नामके रूपमें प्रयुक्त हुआ जान पड़ता है। इस हेतुको लेकर, महाभारतमें वर्णित विषयों-का ऐतिहासिक दृष्टिसे सार प्रदान करनेके पहले इस प्रश्नकी चर्चा आवश्यक है कि 'क्या पाण्डव काल्पनिक व्यक्ति हैं?'

''साधारणतः तो ऐतिहासिक घटनाओंका जहाँ वर्णन हो, उस ग्रन्थमें घटनाविशेष या व्यक्तिविशेषके विषयमें हुए वर्णनके अनुसार इतना ही कह देना पर्याप्त हो जाता है कि अमुक व्यक्ति हो गया है तथा अमुक घटना घट चुकी है। मोज़ेज अथवा रोम्युलस हुए हैं या नहीं, इस सम्बन्धमें तत्कालीन इतिहास-ग्रन्थ, अथवा तत्कालीन मनुष्योंने यदि इतिहास न लिखा हो तो परम्परासे प्राप्त मान्यताओंके आधारपर रची पुस्तकोंके सिवा किसी दूसरे प्रमाणकी आवश्यकता नहीं पड़ती। तथा दूसरा कोई प्रमाण प्राप्त होना सम्भव भी नहीं होता। अवश्य ही, परम्परासे आनेवाली मान्यताएँ अथवा ऐतिहासिक ग्रन्थ सत्य नहीं हैं, यह यदि प्रमाणित हो जाय अथवा इनके ऊपर भरोसा करना ठीक नहीं, ऐसा कोई दृढ़ तर्क दिया जा सके तो उन मान्यताओं तथा ऐतिहासिक ग्रन्थोंकी प्रामाणिकता स्वीकार नहीं करनी चाहिये—यह बात ठीक है। परंतु जहाँ ऐसी स्थिति नहीं है, वहाँ इन मान्यताओं अथवा इन ऐतिहासिक ग्रन्थोंके ऊपर निर्भर न करनेका कोई कारण नहीं दीखता। महा-भारतका महाकाव्य कोई उपन्यास नहीं है, बल्कि इसकी रचना इतिहासके रूपमें हुई है। इसलिये जबतक इसके विरुद्ध प्रबल तर्क नहीं आते, तबतक महाभारतके अन्तर्गत वर्णित पाण्डव और उनके शत्रु सचमुच ही हो गये हैं तथा उनके किये गये पराक्रमोंका जो वर्णन प्राप्त है, वह सचमुच ही हुआ है, यही हमको मानना चाहिये।''

"इस निर्णयके विरुद्ध जो विरोधी पक्षके लोग दलील देते हैं, वह बहुधा विचार-विहीन होती है। हम विचार करें तो ज्ञात होगा कि तत्कालीन अथवा परवर्ती वैदिक साहित्यमें पाण्डवोंके विषयमें कोई उल्लेख नहीं दीख पड़ता, केवल इतनेसे ही कोई अनुमान नहीं निकाला जा सकता। जबतक यह सिद्ध नहीं हो जाता कि इस प्रकारके साहित्यमें उनका उल्लेख करना आवश्यक ही था, तबतक पाण्डवोंके विषयमें उल्लेखकी बात कोई महत्त्व नहीं रखती। और भी उत्कट उदाहरण लें तो पार-डी-वर्गकी जब लड़ाई हुई थी उस समय सैकड़ों पुस्तकें लिखी गयी थीं और उसके बाद ही लिखी गयीं। परंतु उनमें अधिकांश पुस्तकोंमें लार्ड राबर्ट्स अथवा लार्ड किचनर, जो निःसन्देह आधुनिक समयके महान्-से-महान् वीर पुरुष हुए हैं, इनका नाम बिल्कुल ही नहीं आया है। इसपर यदि हम यह कहें कि ये पुरुष हुए ही नहीं तो इससे बढ़कर मूर्खताकी बात न होगी। मराठों और अफगानोंके बीच पानीपतकी बड़ी लड़ाई हुई; इसके बाद मराठी, अंग्रजी आदि भाषाओंमें अनेकों पुस्तकें लिखी गयीं तथा अनेकों कविताएँ रची गयीं। परंतु प्रत्येक पुस्तक या प्रत्येक कवितामें इस लड़ाईके विषयमें अथवा इसके नेताओंके विषयमें सूचित किये जानेकी आशा करना हास्यास्पद है। पानीपतकी लड़ाईके बाद रची गयी किसी पुस्तकमें यदि सदाशिवराव भाऊ अथवा जंकोजी सिंधियाका नाम बिल्कुल ही देखनेमें न आवे तो इससे यह अनुमान करना कि 'ये लोग हुए ही नहीं थे' भूलसे भरा हुआ माना जायगा। इन प्रबल उदाहरणोंसे यह ज्ञात हो जाता है कि विरोधी पक्षका तर्क कितना हास्यास्पद है। ऊपर जिस पुस्तकोंके विषयमें हमने लिखा है वे पुस्तकें बोअर लोगोंका तथा मराठोंका इतिहास लिखनेके विशेष उद्देश्यसे उस समय या उसके कुछ बाद रची गयी होतीं तो बात दूसरी थी; क्योंकि ऐसे इतिहास-ग्रन्थोंमें तो स्वभावतः इन घटनाओं तथा इनमें भाग लेनेवाले मनुष्योंके विषयमें उल्लेख होना आवश्यक है। अब यह तो जानी हुई बात है कि वैदिक साहित्यमें साधारणतः धर्मानुष्ठानोंकी विधियाँ तथा कभी-कभी तत्त्वज्ञान और अध्यात्मविद्याके सिद्धान्त वर्णित हुए हैं। इनमें ऐतिहासिक विषयोंका उल्लेख कदाचित् ही कहीं है और वह भी उदाहरणके रूपमें दिया गया है। जो घटनाएँ घटी हैं तथा जो मनुष्य हो गये हैं, उनका सबका उल्लेख वैदिक ग्रन्थोंमें किया जाना कभी सम्भव नहीं है। हमारे मन्तव्यके अनुसार तो महाभारतकी लड़ाईके विषयमें अथवा पाण्डवोंके विषयमें इन ग्रन्थोंमें कहीं उल्लेख नहीं हुआ है, इस आधारपर यह अनुमान लगाना कि लड़ाई हुई ही नहीं अथवा पाण्डव हुए ही नहीं, तार्किक दृष्टिसे सम्भव नहीं है; क्योंकि महाभारतके भीतर जो ऐतिहासिक प्रमाण हमें प्राप्त हुए हैं, उन प्रमाणोंको काटनेवाले प्रबल कारण हमें उपलब्ध नहीं होते।'

'परंतु इसके सिवा, पाण्डव हुए ही नहीं—इस विचा के विरुद्ध दूसरे भी प्रबल तर्क हैं। अपने ग्रन्थके संस्करणमें श्रीदत्तजीने यह अभिप्राय व्यक्त किया था कि 'महाभारतका युद्ध सचमुच ही हुआ था, परंतु पाण्डव कु विशिष्ट सद्गुणोंके मूर्त्तरूप हैं, और कवि-कल्पनाके द्वारा पीछेसे पात्रोंकी सृष्टि की गयी थी।' परंतु महाभारतके भीतर ही पाण्डवों के जीवनचरित्र-सम्बन्धी कुछ तथ्य हैं, जिनका इस सिद्धान्त साथ मेल नहीं खाता। उदाहरणार्थ, पाँच भाइयोंके विषय यह कहा गया है कि वे एक ही स्त्री (द्रौपदी) को ब्या थे। और भारतके आर्योंमें अनेक पतियोंके साथ ब्याह करने का रिवाज कहीं भी नहीं था। वैदिक-कालके ऋषि ऐ कहते थे कि 'यज्ञकी एक ही रज्जु अनेकों स्थाणुओंको लपेट न सकती, उसी प्रकार एक ही स्त्री अनेक पुरुषोंको ब्याही न जा सकती।' यदि उनके मन्तव्यके अनुसार एक ही स्थाणु यज्ञकी अनेक रज्जुएँ घेर सकती हैं तो एक पुरुषको अने स्त्रियाँ भी ब्याही जा सकती हैं। तब सद्गुणके मूर्त्तस्वरू समझे जानेवाले ये पात्र सद्वृत्तिविषयक आर्य विचारों विरुद्ध बर्तते हुए क्यों प्रदर्शित किये गये हैं ? महाभारतमें यह बात स्वीकार की गयी है कि इस प्रकारका व्यवहा साधारण न होकर अन्य ही प्रकारका था। और इस व्यवहा के समर्थनमें विभिन्न स्थलोंमें विभिन्न व्याख्याएँ दी गयी यह भी हमने स्पष्ट देखा है। बल्कि द्रौपदीके प्रति किये अपमानका बदला लेनेके लिये युद्धमें दुःशासनको मार उसका रुधिर पान करते हुए भीमने इसका वर्णन किया है यह जंगली बर्ताव भी प्रत्येक मनुष्यकी सद्वृत्तिविषय सामान्य विचारके विपरीत है, और पिछले समयके कवि वीरोंमें कविने इस प्रकारके लक्षणका आरोप किया हो— बात मान्य नहीं हो सकती। ऐसे अनेकों छोटे-छोटे प्रसङ्गों हमें ऐसा जान पड़ता है कि पाण्डवलोग कल्पित नहीं बल्कि सचमुच होनेवाले वीर पुरुष थे। इस सम्बन्ध कदाचित् यह तर्क उठाया जाय कि जिस समय आ लोगोंमें अनेक पतियोंसे ब्याह करनेका रिवाज था, तथा जि समय मनुष्यका रुधिर-पान करना कोई त्रासदायक बात न मानी जाती थी, उस समयके विचारोंका चित्र इस स्थल दिया गया है।' इस तर्ककी सत्यतामें बहुत संशय है; फि भी इस तर्कको यदि हम सत्यरूपमें स्वीकार करें तो इत मानना ही पड़ेगा कि जिस समय ऐसे विचारोंका आधि था, वह समय सचमुच ही बहुत प्राचीन होना चाहिये। इ तर्कसे 'पाण्डव सचमुच ही हो गये हैं' यह बात स्वीका करनी पड़ती है—ऐसा न मानें तो भी यह तो कहना ही पड़ेगा कि इस बातके स्वीकार करनेकी अपेक्षा कोई अधिक अच्छा परिणाम इससे नहीं निकलता।'

'इस प्रकरणका सार अब हम संक्षेपमें कहेंगे। घटि

घटनाओंका इतिहास लिखना वैदिक-साहित्यका उद्देश्य नहीं है, इसलिये इन ग्रन्थोंमें पाण्डवोंके विषयमें अथवा महाभारतके युद्धके विषयमें कोई उल्लेख नहीं हुआ तो इससे अनुमान नहीं किया जा सकता कि पाण्डव हुए ही नहीं अथवा महाभारतकी लड़ाई कभी हुई ही नहीं।

'इससे प्रमाणित होता है कि पाण्डव सचमुच हो गये हैं तथा महाभारतके युद्धमें भाग लेनेवाले भी (जनमेजय नहीं) पाण्डव ही थे।'

पाण्डवोंके पूर्वज

'मनुकी पुत्री इला और चन्द्रसे उत्पन्न क्षत्रिय चन्द्रवंशी कहलाते हैं। चन्द्रवंशके सबसे प्रथम राजा पुरूरवा हुए। पुरूरवा तथा उर्वशी नामक स्वर्गकी अप्सराके प्रेमकी कथा ऋग्वेदमें है, और कालिदासने अपने (विक्रमोर्वशी) नामक सुविख्यात नाटककी रचना करके इन दोनोंके प्रेमको अमर कर दिया है। इस वंशके दूसरे प्रसिद्ध राजा ययाति हुए। ययाति और उनकी दो रानियों, देवयानी और शर्मिष्ठाकी कथा महाभारतकी अत्यन्त रसमयी कथाओंमेंसे एक है और यह कथा यहाँ विस्तारपूर्वक देने योग्य है। चन्द्रवंशी क्षत्रिय सिन्धु नदीके उस पार राज्य करते थे, ऐसा ज्ञात होता है। क्योंकि असुरलोगोंके राजा वृषपर्वा (जो ईरानके राजा थे, यह ठीक-ठीक स्वीकार किया जाता है।) का राज्य ययातिके राज्यके समीप था, यह बात इस कथामें कही गयी है। शर्मिष्ठा ईरानके राजा वृषपर्वाकी पुत्री थी और देवयानी उनके गुरु शुक्रकी पुत्री थी। ये दोनों कन्याएँ एक बार वनमें घूमनेके लिये निकल पड़ीं और एक कुएँके पास स्नान करनेके लिये गयीं। उस समय भूलसे उनके वस्त्र अदल-बदल हो गये। ब्राह्मणकी पुत्री गर्वीली थी, वह राजकुमारीको मानो वह उसकी लौंड़ी हो इस प्रकार गाली देने लगी। इसपर राजकुमारी (शर्मिष्ठा) ने चिढ़कर उसको धक्का मारा और वह कुएँमें गिर गयी। अचानक राजा ययाति वहाँ जा पहुँचा और देवयानीकी चीत्कार सुनकर वह कुएँपर पहुँचा और उसको कुएँसे बाहर निकाला। इस उपकारके बदलेमें देवयानीने उससे ब्याह करनेकी अपनी इच्छा प्रकट की, और अपने पिताकी सम्मति लेकर देवयानीने ययातिके साथ ब्याह किया। मेरी सखी (शर्मिष्ठा) ने मेरा अपमान किया है, यह सोचकर देवयानीके हृदयमें वैर साधनेका विचार उठा। उसने दासीका काम करनेके लिये वृषपर्वासे शर्मिष्ठाको माँगा। वृषपर्वाको दूसरा उपाय न सूझा, इसलिये देवयानीकी यह अपमानयुक्त माँग भी उसने स्वीकार कर ली, और जिस लड़कीने अपराध किया था उसको उसने इस दम्पतिके हाथमें सौंप दिया।'

'देवयानीने उस लड़कीको ययातिके राजमहलमें वर्षों रक्खा, परंतु उसको जो उसने दण्ड दिया था वह उसके लिये वरदान हो जायगा, यह विचार देवयानीको स्वप्नमें भी न था। एक दिन वह सोयी थी, अचानक अपने पति-जैसे रूपवाले एक लड़केके आनेसे वह अचानक चौंक उठी। पता लगानेपर ज्ञात हुआ कि वह लड़का ययातिका था और शर्मिष्ठाके पेटसे पैदा हुआ था। यह समाचार सुनकर उसको बड़ा क्रोध आया और क्रोधमें पिताके पास जाकर पतिके अपराधका बदला लेनेकी प्रार्थना की। शुक्राचार्यने राजाको यह शाप दिया कि, 'जा, तू अकाल वृद्धावस्थाको प्राप्त हो जा।' इस प्रकार देवयानीने मूर्खतावश अपने शत्रुको हानि उठाने जाकर स्वयं अपना ही नुकसान किया और अन्तमें अपने पिताके पास जाकर प्रार्थना की कि 'इस शापकी उग्रता आप कम करें।' तत्पश्चात् शुक्राचार्यने कहा कि 'यह वृद्धावस्था दूसरा कोई लेनेके लिये तैयार हो तो दी जा सकेगी।' तब ययातिने अपने पुत्रोंसे एक-एक करके कहा कि 'तुम मेरी वृद्धावस्था स्वीकार करो।' परंतु पूरुके सिवा किसीने भी इसे स्वीकार न किया। पूरुसे प्राप्त किये यौवनके द्वारा ययातिने अनेकों वर्षोंतक इस जगत्के भोग-विलासका आनन्द उठाया। अन्तमें उसको ऐसा लगा कि—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥
यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत्सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत्॥

'कामनाओंके उपभोगसे कामनाका शमन कदापि नहीं होता बल्कि जिस प्रकार घृतादि हविष्यके पड़नेसे अग्नि सुदीप्त होती है उसी प्रकार भोगसे कामना और भी बढ़ती है। इस जगत्का सारा स्वर्ण, सारा अन्न, सारी स्त्रियाँ एक मनुष्यके लिये बस नहीं हो सकतीं, इसलिये इच्छाओंको वशमें रखकर संतोष धारण करना चाहिये।'

ययातिने अपने पुत्र पूरुको बुलाया और उसको उसका यौवन वापस कर दिया और अपना बुढ़ापा उससे वापस लेकर, प्राचीन भारतके प्रतिष्ठित राजाओंके समान अपनी दोनों रानियोंको साथ लेकर वनमें निवास किया। पूरुने पुत्रधर्मका यथार्थ पालन किया था, उसके बदलेमें उसको आशीर्वाद दिया और कहा कि राज्याधिकार पूरुके वंशको ही प्राप्त होगा।

ययातिकी कथासे उत्तम उपदेश प्राप्त होता है, उसके कारण यह कथा बहुत सुन्दर लगती है, परंतु इसके सिवा इतिहासकी दृष्टिसे भी यह कथा बहुत उपयोगी है। पहले तो हमने देखा कि उस समय चन्द्रवंशके आर्य लोग सिन्धुनदीके उस पार बसते थे। दूसरे, उस समय ब्राह्मण-क्षत्रियके बीच ब्याह-सम्बन्ध बिल्कुल साधारण बात थी।

तीसरे, ययातिके यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, पूरु और अनु—ये पाँच पुत्र थे। यदुके वंशज यादव, तुर्वसुके वंशज यवन, द्रुह्युके वंशज भोजलोग, पूरुके वंशज पौरव (जिनका पश्चात् भरत नाम पड़ा) और अनुके वंशज म्लेच्छ लोग थे। इस प्रकार इस कथासे ज्ञात होता है कि ययाति अनेकों जातियोंके पूर्वज थे। इनमें यादव, भोज और पौरव—ये तीन जातियाँ भारतमें प्रविष्ट हुईं। चौथी यवन जाति पश्चिम ओर चली गयी। यहाँ जिन नामोंका उल्लेख हुआ है, उनमें अदल-बदल हुआ हो, यह सम्भव है। कदाचित् अनुके वंशज यवन कहलाये हों। और ईरानियोंके तुरान तथा आधुनिक इतिहासके तुर्क—इन नामोंके साथ तुर्वसु नाम कुछ मिलता-जुलता है, अतएव सम्भव है कि तुर्वसुके वंशज म्लेच्छ कहे गये हों। वृद्धावस्था दूसरेको देनेकी जो बात है, उसको ऐतिहासिक दृष्टिसे इस प्रकारका साधारण रूप दिया जा सकता है:—'राजा ययातिने पर्याप्त वृद्ध होनेपर भी शायद देवयानीके पुत्रोंको राज्याधिकारमें भाग न लेने दिया होगा। ये लड़के अपनी माताके समान ही उद्धत होंगे। उन्होंने राज्याधिकार छोड़नेके लिये कहा होगा तथा उनको यह देखनेमें आया होगा कि यह वृद्ध अभी राज्य करनेमें समर्थ है और राज्याधिकार छोड़नेके लिये तैयार नहीं है, इसलिये उन्होंने उत्पात मचाया होगा। फलतः ययातिने उनको निकाल दिया होगा। और इस काममें उसके पुत्र पूरुने मदद की होगी। पुत्रधर्मका पालन करके अन्तमें उत्तराधिकारके रूपमें पूरुको अपने पिताका राज्याधिकार प्राप्त हुआ होगा!'

'पूरुके वंशजोंमें पहला प्रसिद्ध राजा दुष्यन्त था। दुष्यन्त और शकुन्तलाकी कथा संस्कृत-काव्यके प्रत्येक पाठकको ज्ञात है; क्योंकि कालिदासके जिस सुन्दर नाटककी महाकवि गेटेने इतनी प्रशंसा की है, वह नाटक इस कथाके आधारपर ही प्रणीत हुआ है, परंतु महाभारतकी शकुन्तला और कालिदासकी शकुन्तलामें बड़ा अन्तर है। कालिदासने शकुन्तलाको एक सुघरी हुई और भीरु स्त्रीके रूपमें चित्रित किया है, परंतु महाभारतकी शकुन्तला ऐसी नहीं है। महाभारतकी शकुन्तलाको नीतिके गौरवका भान था। वह एक विशुद्ध हृदयकी ग्रामीण कन्या थी। अरण्यमें कण्वके आश्रमके सामने राजा दुष्यन्त अकस्मात् आ पहुँचे, उस समय शकुन्तलाके पालक पिता कण्व वहाँ मौजूद न थे। गान्धर्वरीतिसे राजा दुष्यन्तने उसके साथ ब्याह किया। इस विवाहका कोई साक्षी न था। कुछ वर्षोंके बाद अपने पुत्रको साथ लेकर और अरण्यके आश्रमको छोड़कर शकुन्तला अपने पतिकी राजधानीमें गयी। वहाँ भरी सभामें राजा दुष्यन्तने उसके साथ अपने ब्याहकी बात अस्वीकार कर दी, उस समय शकुन्तलाने कहा—'राजाकी अपेक्षा—यही क्यों, पुत्रकी अपेक्षा भी सत्य अधिक मूल्यवान् वस्तु है और जो मनुष्य सत्यकी उपेक्षा करता है, वह यदि मेरा पति भी हो तो भी उसका सङ्ग मुझे नहीं चाहिये।' राजाने अपनी प्रजाको संतुष्ट करनेके लिये ही यह युक्ति की थी, परंतु 'शकुन्तला सचमुच ही दुष्यन्तकी स्त्री है'—ऐसी आकाशवाणी हुई और राजाने शकुन्तलाको अपनी धर्मपत्नीके रूपमें स्वीकार किया। नीति-बलसे युक्त कन्याके साथ स्नेह-परिणयके फलस्वरूप भरत नामके संतानकी उत्पत्ति हुई। आगे चलकर वह पूरुवंशका सबसे यशस्वी राजा माना गया। भारतमें गङ्गा-यमुनाके सङ्गमतकके प्रदेशको उसने जीत लिया था तथा वहाँ यज्ञ किया था, ऐसा कहा जाता है। शतपथब्राह्मणके १९ वें काण्डमें एक मन्त्रमें गङ्गा-यमुनाके सङ्गमपर इसके द्वारा किये गये अश्वमेध यज्ञकी प्रशंसा की गयी है। इसके नामपर केवल इसके वंशजोंका ही नहीं, बल्कि सारे देशका नाम पड़ा था और आजतक संस्कृत-साहित्यमें भारतवर्षको 'भरतभूमि' नामसे ही पुकारा गया है।'

'भरतके वंशजोंमें हस्ती नामके एक राजा थे, उन्होंने गङ्गानदीके पश्चिमी किनारेपर हस्तिनापुर बसाया और वह हस्तिनापुर एक नये देशकी राजधानी बना। ऐसा जान पड़ता है कि भरतलोग धीरे-धीरे पंजाबको छोड़कर गङ्गानदीकी ओर बढ़ने लगे और हस्तीके प्रपौत्र कुरुने गङ्गा और यमुनाके दोआबेके ऊपरी भागमें आधुनिक दिल्लीके उत्तर और यमुनानदीके पश्चिमके उपजाऊ मैदानको 'कुरुक्षेत्र' नाम प्रदान किया। कुरुलोग अब बहुत अच्छी स्थितिमें आ गये। उनको तथा गङ्गाके पूर्व और कुछ दक्षिणकी ओर बसनेवाले पञ्चाललोगोंको ब्राह्मण-ग्रन्थोंमें बहुत ही उन्नत और प्रतापी बतलाया है।'

'इस उपजाऊ तथा समृद्धिमान् भूदेशके ऊपर कुरुवंशके जिन राजाओंने पीछे राज्य किया, उनकी हम पहले गणना कर चुके हैं। यहाँ इस वंशके विषयमें शन्तनु राजासे प्रारम्भ करके हम आगे चलेंगे। शन्तनु राजाके गङ्गानदीसे भीष्म नामका पुत्र उत्पन्न हुआ। वह भीष्म महाभारतके एक अत्यन्त ही असाधारण पात्र थे। इस पुत्रके उत्पन्न होनेपर गङ्गानदीने राजा शन्तनुको त्याग दिया। उसके बाद राजा शन्तनुका प्रेम एक सत्यवती नामकी मत्स्यकन्याके साथ हो गया, परंतु सत्यवतीने कहा—'मेरे जो पुत्र होगा, उसको यदि राज्य देनेका तुम वचन दो तो मैं तुम्हारे साथ ब्याह करूँगी।' राजा शन्तनु यह शर्त मानकर भीष्मके राज्याधिकारको छीननेके लिये तैयार न थे, परंतु भीष्मने स्वयं ही अपने पिताको उलझनसे

मुक्त किया और अपने राज्याधिकारको त्याग दिया। इतना ही नहीं, बल्कि सत्यवतीको राजासे जो पुत्र उत्पन्न हो, उसके साथ लड़ाई करनेवाली संतान कहीं उत्पन्न न हो जाय, इस उद्देश्यसे स्वयं ब्याह न करनेकी दृढ़ प्रतिज्ञा की। इस प्रतिज्ञाका पालन उन्होंने अन्तिम समयतक किया, तथा अपने स्वार्थत्याग और धर्म-बुद्धिके कारण ऐसी उज्ज्वल कीर्ति सम्पादन की कि आजतक भारतके लोग इनके नामका उच्चारण अत्यन्त आदरपूर्वक करते हैं।'

'सत्यवतीसे शन्तनुको दो पुत्र हुए, उनमें एक बचपनमें ही मर गया। कुरुओंके राजाका पद शन्तनुके बाद उनके पुत्र विचित्रवीर्यको मिला। काशिराजकी दो कन्याओं—अम्बिका और अम्बालिकाको भीष्मने बलपूर्वक जीता और दोनोंका ब्याह विचित्रवीर्यके साथ करा दिया। तथापि वह पुत्रहीन होकर ही मृत्युको प्राप्त हुए। शन्तनुके साथ ब्याह होनेके पहले ही सत्यवतीको पराशरमुनिसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ था और वह दूसरा कोई नहीं, बल्कि महाभारतके रचयिता तथा वेदोंको व्यवस्था करनेवाले स्वयं व्यासजी थे।'

'अब भीष्मकी सम्मतिसे सत्यवतीने व्याससे अपने सौतेले भाई विचित्रवीर्यकी विधवाओंसे पुत्र उत्पन्न करनेके लिये कहा और इस प्रकार नियोगसे विचित्रवीर्यके धृतराष्ट्र और पाण्डु दो पुत्र हुए। एक दासीके पेटसे व्यासको तीसरा पुत्र विदुर पैदा हुआ। धृतराष्ट्र अन्धे थे, इस कारण कुछ समयतक पाण्डुने राज्य चलाया। पश्चात् पाण्डुने अरण्यमें निवास किया और वहाँ ही वह मृत्युको प्राप्त हुए। धृतराष्ट्रके विषयमें यह कहा जाता है कि इनकी स्त्री गान्धारी गन्धारके राजाकी पुत्री थी। उससे इनको सौ पुत्र हुए। उनमें दुर्योधन और दुःशासन मुख्य थे। इन्हीं लोगोंने पाण्डवों अथवा पाण्डुके पुत्रोंके साथ महाभारतका युद्ध किया था। राजा पाण्डुसे पाण्डवोंकी उत्पत्ति हुई थी। इस युद्धके तथा अन्यान्य रसमय और हृदय-द्रावक वर्णन महाभारतमें दिये गये हैं।'

द्रौपदीके पाँच पति थे या एक ?

(लेखक—पं० श्रीदीनानाथजी शर्मा, शास्त्री, सारस्वत, विद्यावागीश, विद्यानिधि, विद्याभूषण)

महाभारतमें यह उल्लेख है कि द्रौपदी पाँचों पाण्डवोंकी पत्नी थी। पर इस विषयमें विभिन्न विचारोंके महानुभावोंमें बड़ा मतभेद है। अतएव इस सम्बन्धमें कुछ विवेचन किया जाता है।

कई पाश्चात्त्य संस्कृतिसे प्रभावित, पर हिंदू प्राच्य संस्कृतिसे भी प्रेम रखनेवाले महाशय पाश्चात्त्योंके समक्ष अपनी प्राच्य संस्कृतिको अपने परिष्कृत प्रकारोंसे इस प्रकार उपस्थित करते हैं कि उन पाश्चात्त्योंकी हमारी पौरस्त्य संस्कृतिपर श्रद्धा बढ़े। पर वे उनके स्वपरिष्कृत प्रकार अमौलिक होनेसे हमारे शास्त्र और इतिहासको सर्वथा विरूप कर दिया करते हैं। हम चाहते हैं कि ऐसे परिष्कार उनमें किये जायँ कि 'साँप भी मर जाय, लाठी भी न टूटे।'

आज हम उन्हीं पाश्चात्त्य संस्कृतिसे प्रभावित महाशयों-का द्रौपदीविषयक आख्यानपर उसके एकपतिकत्वार्थ किया हुआ परिष्कार-प्रकार उपस्थित करते हैं। उसके अनन्तर हम उसपर शास्त्राविरोधपूर्वक उसके एकपतिकत्वका प्रकार लिखेंगे। उन लोगोंका कथन प्रायः यह होता है—

द्रौपदीके एकपतिकत्वका सुन्दर प्रकार

''परमात्मा तथा प्रकृतिकी कृति विचित्र है। प्रकृतिके गुणोंकी विचित्रतासे ही जीवके स्वभावकी विचित्रता भी नैसर्गिक है। अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार सब वैसे-वैसे कार्योंमें व्यापृत हुआ करते हैं। तब किसने, कब, कैसे क्या किया, यह बात बिना आधार किसीके द्वारा सहसा नहीं जानी जा सकती। उसी आधारको प्रामाणिक विद्वान् 'इतिहास' शब्दसे कहा करते हैं। आर्योंका प्राचीनतम पुरावृत्त ऋग्वेदमें मिलता है, उसके बाद 'रामायण', फिर 'महाभारत' में मिलता है—यह सब लोग निर्विवाद मानते ही हैं। परंतु वर्तमान कालमें 'महाभारत' जिस रूपमें उपलब्ध है, उसमें जैसे न माननेयोग्य उपाख्यान वर्णित किये गये हैं, वे सभी आर्योंकी रीति, व्यवहार तथा धर्म आदिमें भारतीयों तथा पाश्चात्त्योंके मनमें संदेह उत्पन्न कर दिया करते हैं। बहुत क्या कहा जाय ? वे—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

(मनु० २। २०)

'पृथिवीमण्डलमें सभी लोग इस ब्रह्मर्षिदेशमें उत्पन्न ब्राह्मणसे अपना-अपना चरित्र सीखें' इस मनुकी उक्तिको भी खण्डित करवा दिया करते हैं।

पाठकगण पहले प्रातःस्मरणीयनामा द्रौपदीके पञ्चपतित्वको ही देखें—पतिव्रता वीराङ्गना द्रौपदी तथा संसारविश्रुत धर्मप्राण पाण्डवोंके चरित्रोंको—

कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे।

(महा० १। १९०। २)

इत्यादि पद्यके साधारण अर्थको भी न जाननेवाले लोगोंने दूषित कर दिया है, इसमें विद्वान् ही प्रमाण हैं।

वस्तुतः द्रौपदी अर्जुनकी ही पत्नी थी, अर्जुनने ही स्वयंवरमें लक्ष्य वेधकर प्रतिज्ञानुसार द्रौपदीका वरण किया था। उसने भी अर्जुनको ही जयमालासे अलंकृत किया था। द्रुपदकी इच्छा भी द्रौपदी अर्जुनको ही देनेकी थीं, जैसे कि 'महाभारत' में कहा गया है—

यज्ञसेनस्य कामस्तु पाण्डवाय किरीटिने।
कृष्णां दद्यामिति सदा न चैतद् विवृणोति सः॥
(१ । १८४ । ८)

'राजा द्रुपदके मनमें सदा यही कामना थी कि मैं पाण्डुनन्दन अर्जुनके साथ द्रौपदीका विवाह करूँ, परंतु वे अपने मनोभावको प्रकट नहीं करते थे।' इसीलिये द्रुपदके मनोरथको जानकर युधिष्ठिरने धनुषसे लक्ष्यको नहीं वेधा, नहीं तो, वे भी समर्थ तथा ज्येष्ठ होनेसे अधिकारी थे। तभी युधिष्ठिरने अर्जुनसे ही द्रौपदीके साथ विवाहार्थ कहा था कि—

त्वया जिता फाल्गुन याज्ञसेनी·················।
प्रज्वाल्यतामग्निरमित्रसाह गृहाण पाणिं विधिवत् त्वमस्याः॥
(१ । १९० । ७)

'अर्जुन! तुमने द्रौपदीको जीता है। तुम अग्नि प्रज्वलित करो और विधिपूर्वक इस राजकन्याका पाणिग्रहण करो।'

'माता कुन्तीके वचनसे द्रौपदी पाँचों पाण्डवोंकी पत्नी बनी—यह बड़ा आश्चर्य है। जब कि माताकी वैसी इच्छा नहीं थी, तब ऐसा होना कैसे संगत हो सकता है? भीमसेन तथा अर्जुनने, द्रौपदीके लिये कुन्तीसे कहा था कि—'मातः! हम भिक्षा लाये हैं,' यह बात भी नहीं घट सकती। द्रौपदीको तो प्रतियोगितामें जीता गया था, भिक्षाकी तरह माँगा नहीं गया था, तब धर्मभीरु तथा सत्यवादी अर्जुन तथा भीमसेन द्रौपदीको झूठ-मूठ 'भिक्षा' कैसे कह सकते थे—यह बात विद्वानोंको सोचनी चाहिये।

'तो इसमें क्या रहस्य है? **'मातृदेवो भव'** यह वैदिक आदेश है। **'प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे'** यह माताका वचन भी अवश्य कर्तव्य है। माताका आदेश यदि पाण्डव न मानें, तब भी प्रत्यवाय है, यदि उसे पालें तो अभूतपूर्व धर्मसंकट है। इधर व्याघ्र है, उधर नदी है। इस उभयतः पाशा-रज्जुने अल्पज्ञ तथा यथार्थताको न जाननेवालोंको मोहमें डाल दिया, जिससे उन्होंने मूल इतिहासमें कई काल्पनिक भाव निविष्ट कर दिये।

'केवल भारतवर्षमें ही स्त्रीका बहुपतित्व निन्दित नहीं, अपि तु अन्य देशोंमें भी निन्दित है। तब युधिष्ठिर आदिमें श्रीव्यासके वाक्योंमें एवं तात्कालिक सामाजिक रीतियोंमें वैसी सम्भावना नहीं हो सकती। तात्कालिक इतिहाससे भी स्त्रीका बहुपतित्व वा पञ्चपतित्व सिद्ध नहीं होता। ब्राह्मणग्रन्थोंमें स्त्रियोंके बहुपतित्वका निषेध तथा कारणवश पुरुषकी बहुत पत्नियोंका विधान स्पष्ट तथा सहेतुक प्रतिपादित किया गया है। जैसे कि—

'ऋक् च वा इदमग्रे, साम च आस्ताम्, 'सैव' नाम ऋगासीत्, 'अमो' नाम साम। सा वा ऋक् साम उपावदत्-मिथुनं सम्भवाव प्रजात्या इति (शतपथ० ८ । १ । ३ । ५)

न इत्यब्रवीत् साम, ज्यायान् वा अतो मम महिमा—इति।·····तस्माद् एकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति, नैकस्या बहवः सहपतयः। (गोपथ ब्राह्मण ३ । २०, ऐतरेय ब्रा० ३ । २३)

यहाँपर सामका तीन ऋचाओंसे विवाह-सा बताया गया है, परंतु एक स्त्रीके बहुतपतित्वका निषेध किया गया है।

'तब यह द्रौपदीका पञ्चपतित्वका उपाख्यान सर्वथा काल्पनिक प्रतीत होता है। इसीलिये पाँच इन्द्रोंकी कथाका वर्णन, शिवद्वारा पाँच पतियोंका वर देनारूप उपाख्यान, बहुत पतियोंवाली नालायनी आदिका चरित्ररूप दृष्टान्त, युधिष्ठिर आदिके द्रौपदीसे एक-एक पुत्रका वर्णन किया गया है, पर यह सब अवैयासिक, अभारतीय एवं अधार्मिक है—यह निस्संशय है।

इससे महाभारतीय सारा ही उक्त उपाख्यान असत्य नहीं है, केवल शब्दोंका अर्थ ठीक-ठीक नहीं जाना गया। जैसे आजकल भी कोई अर्थानभिज्ञ व्यक्ति **'स्वसुर्जारः शृणोतु नः'**–(ऋ० द ५५ । ५), **'स्वसुर्यो जार उच्यते'** (ऋ० ६ । ५५ । ४) **'प्रजापतिः स्वदुहितृभ्यां दुराचचार'** ब्राह्मणभाग तथा पुराणोंमें उषा-सूर्यका सभापति-सभासमितिरूप अर्थ न जानते हुए बहिन-उपपति, ब्रह्मा, उसकी लड़की—ऐसा अर्थ करते हुए स्वयं भी भ्रान्त रहते हैं, दूसरोंको भी भ्रममें डालते हैं, वैसे ही—**'प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे'** यहाँपर भी भुज धातु पालनार्थक है, उपभोगार्थक नहीं। 'तुम सब मिलकर इस द्रौपदीरूप गृह-लक्ष्मीकी पालना करो।' यही कुन्तीका अभिप्राय था, जिसे आजकलके लोग नहीं समझ सके। 'भुङ्क्त' पद परस्मैपदका प्रयोग है, परस्मैपदमें पालन-अर्थ होता है, उपभोग नहीं। **'श्रिया वा एतद् रूपं यत् पत्न्यः** (तै० ब्रा० ३ । ९ । ४ । ७) यहाँपर पत्नीसे गृह-लक्ष्मी माना गया है। **'पा रक्षणे'** धातुसे डति प्रत्ययमें निष्पन्न पति, शब्द भी पालनार्थक ही है, तब पाँचों पाण्डवोंने द्रौपदीका पतित्व-पालन स्वीकृत किया और माताका वचन अन्ततक पाला।

कई महोदय **'पतयो ह्येव स्त्रियै प्रतिष्ठा'** (शतपथ ब्रा० २ । ६ । २ । १४) यहाँपर 'पतयः'में बहुवचन देखकर बहुपतित्व मानते हों, यह भी ठीक नहीं। 'जात्या-

ख्यायामेकस्मिन् बहुमन्यतरस्याम् (पा० १ । २ । ५८) इस सूत्रसे उक्त स्थलमें 'पति' शब्दमें बहुवचन जात्यभिप्रायसे है, व्यक्त्यभिप्रायसे नहीं । वस्तुतः युधिष्ठिर आदि पाँचों प्रत्येकमें पाँच रूपसे अवस्थित थे । वही एक ही अर्जुन युद्धमें स्थिर होनेसे 'युधिष्ठिर' थे, शत्रुके लिये भयानक होनेसे 'भीम' थे, नियोगसे उत्पन्न होनेसे कुल न होनेके कारण 'नकुल' थे, कृष्ण-सारथि, जो देव थे, उनसे युक्त होनेसे 'सहदेव थे ; द्रौपदीका पति अकेला वीरवर अर्जुन ही था—यह निर्विवाद है, शेष सब रावणके दस सिरोंके समान, वा कुम्भकर्णकी छः मासकी नींदके समान रूपक या काल्पनिक हैं ।''

उपर्युक्त प्रकारका परिहार

यह अर्वाचीन विद्वानोंका कथन है । यह कल्पना साधारण लोगोंकी दृष्टिमें द्रौपदीको साध्वी या एकपतिका सिद्ध करनेके लिये है । इसके लिये हम इसकी स्तुति करते हैं, परंतु इसका आधार कल्पनामात्र तथा असत्य है, अतएव यह श्रद्धेय नहीं हो सकती ।

यदि 'किसने कब क्या, कैसे किया इत्यादिको जाननेके लिये आधार इतिहास है तो उस विषयमें उसीको पूछना चाहिये; निराधार तथा इतिहासकर्तासे विरुद्ध कल्पना प्रामाणिक कैसे हो सकती है ? इतिहासस्थित जो आचरण, वेदादि शास्त्रोंके वचनसे विरुद्ध हो, वह अवश्य ही अनादरयोग्य तथा अनाचरणीय तो हो सकता है, परंतु वेदादिसे विरुद्धता दीखनेपर भी इतिहासमें परिवर्तन करना कहाँतक उपयुक्त हो सकता है ? उसी इतिहासमें धर्मप्राण युधिष्ठिरकी द्यूतक्रीड़ा भी देखी गयी है, उसमें **'अक्षैर्मा दीव्यः'** (ऋ० १० । ३४ । १३) यह वेदविरोध भी है । तो क्या वहाँ आलङ्कारिता ही सिद्ध कर दी जाय ? ऐसा करनेपर तो इतिहासका रूप ही विरूप हो जायगा, और बड़ी अव्यवस्था हो जायगी । इस प्रकार तो सम्पूर्ण इतिहास ही अलङ्काररूप बन जायगा, जैसा कि कई पाश्चात्त्य और पाश्चात्त्य भावावेशित भारतीय विद्वान् बनाया करते हैं ।

वस्तुतः जैसे व्याकरणमें उदाहरण और प्रत्युदाहरण भी हुआ करते हैं, उत्सर्ग और अपवाद भी हुआ करते हैं, वैसे ही वेदके भाष्यरूप पुराणेतिहासमें भी वेदादिके सिद्धान्तों-के उदाहरण-प्रत्युदाहरण तथा उत्सर्ग एवं अपवाद भी हुआ करते हैं । तभी तो 'गौतमधर्मसूत्र' में कहा गया है—**'दृष्टो धर्मव्यतिक्रमः साहसं च पूर्वेषाम् । न तु दृष्टोऽर्थो वरो दौर्बल्यात् ॥'** (१ । २) इसी प्रकार 'आपस्तम्बधर्मसूत्र'में भी कहा गया है—**'दृष्टो धर्मव्यतिक्रमः साहसं च पूर्वेषाम्'** (२ । १३ । ७), **'तेषां तेजोविशेषेण प्रत्यवायो न विद्यते'** (२ । १३ । ८), **'तदन्वीक्ष्य प्रयुञ्जानः सीदत्यवरः'** (२ । १३ । ९) । इतिहास आचरणके लिये सर्वथा आदर्श नहीं है । इसीलिये इतिहास देखकर अपना आचरण नहीं बनाया जा सकता । आचरणका निर्माण तो धर्मशास्त्रका अनुसरण करके ही किया जाता है । इतिहास तो मुख्यतः लोकमें घटी घटनाओं-का वर्णन प्रस्तुत करता है, लोकव्यवहार-व्यवस्था धर्मशास्त्रके अधीन रहा करती है । इसीलिये न्यायदर्शनमें कहा गया है—**यज्ञो मन्त्रब्राह्मणस्य (वेदस्य), लोकवृत्तम् इतिहासपुराणस्य । लोकव्यवहारव्यवस्थापनं धर्मशास्त्रस्य विषयः ॥ तत्र एकेन न सर्वं व्यवस्थाप्यते, इति यथाविषयम् एतानि प्रमाणानि इन्द्रियादिवत्** इति (४ । १ । ६२) । इसीलिये **'वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः'** (मनु० २ । १२) यहाँपर सत्पुरुषोंके आचारको तीसरे पदमें रखा गया है । धर्मलक्षणमें पूर्व-पूर्व ही पर-परकी अपेक्षा बलवान् होता है । अतः अर्वाचीन विद्वानोंका यह प्रयास व्यर्थ है । तथापि उनसे उपक्षित विषयपर भी विचार किया जाता है । वे लोग—

कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे ।
(१ । १९० । २)

—इस पद्यमें 'भुज्' धातुको परस्मैपद देखकर केवल उसके आधारपर कल्पनाका महल खड़ा करते हैं, परंतु उसका मूल शिथिल है, इसीलिये उस कल्पनाप्रासादको पाठकगण शीघ्र ही गिरता देखेंगे ।

उनका अभिप्राय यह है कि—

'कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे'

यहाँपर भुङ्क्त यह परस्मैपद है । **'भुजोऽनवने'** (पा० १ । ३ । ६६) इस पाणिनिके सूत्रसे 'पालन' अर्थमें ही परस्मैपद होता है, खाने तथा उपभोग अर्थमें तो आत्मनेपद होता है । जैसे कि **'वृद्धो जनो दुःखशतानि भुङ्क्ते'** यहाँपर 'भुज' धातुका आत्मनेपदमें उपभोग अर्थ है । **'ओदनं भुङ्क्ते'** यहाँपर खाना अर्थ है, इस कारण दोनों स्थलोंमें आत्मनेपद हुआ है, परंतु **'महीं भुनक्ति'** इस परस्मैपदमें तो भुज् धातुका पालन अर्थ है, इस प्रकार प्रकृत 'महाभारतके' पद्यमें भी **'भुङ्क्त'** यह परस्मैपदमें लोटके मध्यम पुरुषके बहुवचनका प्रयोग है । तब कुन्तीका यह अभिप्राय था कि 'तुम सब मिलकर इस द्रौपदीरूप गृहलक्ष्मीको 'भुङ्क्त' अर्थात् पालो, उसकी रक्षा करो । यहाँ उपभोग अर्थ नहीं हो सकता, अन्यथा 'भुङ्ग्ध्वम्' इस प्रकार आत्मनेपद होना चाहिये था ।

इस आशयपर हम विचार करते हैं । श्रीपाणिनिने अपनी 'अष्टाध्यायी' तथा 'गणपाठ'में उनके सहपाठी श्रीकात्यायनने अपने वार्तिकपाठमें जहाँ-तहाँ व्यास, शुक (४ । ३ । ९७) वासुदेव, अर्जुन (४ । ३ । ९८), युधिष्ठिर (८ । ३ ।

९५), साम्ब, गद, प्रद्युम्न, राम (४ । १ । ९६), अनिरुद्ध, नकुल, सहदेव (४ । १ । ११४) आदि महाभारतीय पात्रोंका नाम ग्रहण किया है। महान्‌ ˙˙महाभारत (६ । २ । ३८) इस अपने सूत्रमें महाभारतका भी स्पष्ट नाम लिया है । इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वेदव्यास आदि पाणिनिसे पूर्वकालीन थे । इसके अतिरिक्त पाणिनीय व्याकरणसे पूर्व भी अन्य व्याकरण थे, यह बात अष्टाध्यायीमें उपलभ्यमान गार्ग्य, शाकटायन आदि नामोंसे जानी जाती है ।

इससे स्पष्ट है कि अन्य व्याकरणमें पाणिनिसे विरुद्ध प्रयोग भी सम्भव है । इस प्रकार पाणिनिसे पूर्वकालीन मुनियोंकी पुस्तकोंमें भी अपाणिनीय प्रयोग हो सकते हैं, यह स्वाभाविक है । वे प्रयोग अशुद्ध नहीं माने जाते; किंतु यदि कोई अपाणिनीय प्रयोग पाणिनिसे अनुकूल न दिखायी पड़े तो वहाँ आर्ष मानकर उसका समाधान कर देना पड़ता है । परंतु जहाँ पाणिनिसे पूर्वोत्पन्न किसीके ग्रन्थमें बहुत स्थलोंपर पाणिनिसे विरुद्ध प्रयोग दिखलायी पड़े, तो वहाँ अनुमान करना पड़ता है कि तब पाणिनिसे अन्य कोई व्याकरण रहा हो, जहाँ पाणिनिका वह नियम स्वीकृत न किया गया हो अथवा वहाँ अनियम कर दिया गया हो । इसीलिये श्रीव्यास-के लिये माहेन्द्र व्याकरणके अवलम्बनको बतानेवाला एक पद्य प्रसिद्ध है—

यान्युज्जहार माहेन्द्राद् व्यासो व्याकरणार्णवात् ।
तानि किं पदरत्नानि सन्ति पाणिनिगोष्पदे ॥

इससे स्पष्ट सिद्ध है कि पाणिनीय व्याकरणमें पर्याप्त न्यूनता है, यद्यपि उसकी शैली असाधारण है । पाणिनिसे पूर्वकालीन श्रीव्यासने ऐन्द्र-व्याकरणका आश्रय लिया, उसमें इस प्रकारके बहुत-से प्रयोग थे, जो पाणिनिव्याकरणसे सिद्ध नहीं होते, यह उक्त पद्यसे प्रतीत होता है ।

फलतः पाणिनिसे पूर्वकालीन श्रीवेदव्यासके बनाये हुए 'महाभारत'में भी पाणिनिके नियमसे विरुद्ध प्रयोग अवश्य हो सकते हैं । जैसे कि—'महाभारत' शान्तिपर्वमें—

ततो मामाह भगवानास्यं स्वं विवृतं कुरु ।
विवृतं च ततो मेऽऽस्यं प्रविष्टा च सरस्वती ॥
(३१८ । ७)

यहाँ 'मेऽऽस्यम्'का 'मे आस्यम्' यह छन्द है । यहाँपर **'एङः पदान्तादति'** (६ । १ । १०९) इस पाणिनिके सूत्रसे 'मेऽऽस्यम्'की सिद्धि कभी नहीं हो सकती; क्योंकि यहाँपर सामने 'ह्रस्व अकार' इष्ट है, किंतु उक्त पदमें दीर्घ आकार है, इससे स्पष्ट है कि श्रीपाणिनिके पूर्वज श्रीव्यासजीने इस संधिको या तो अन्य व्याकरणसे सिद्ध किया होगा, अथवा निरङ्कुशतावश उससे विरुद्ध प्रयोग किया होगा । इसी प्र[illegible] प्रकृत विषयमें भी जानना चाहिये ।

श्रीपाणिनिने 'भुज्' धातुको 'खाने' तथा 'उपभोग' अ[illegible] में ही आत्मनेपद किया है, 'पालन' अर्थमें तो उसने भु[illegible] धातुको परस्मैपद ही किया है, परंतु पाणिनिसे पूर्वकाली[illegible] महाभारतमें तो स्वाभाविकतावश उस नियमकी अवहेलना [illegible] सकती है, इस कारण उसमें भुज्धातुमें खाने तथा उपभो[illegible] अर्थमें आत्मनेपद भी हो सकता है, परस्मैपद भी । तो-

कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे ।

—इसमें जो कि 'भुजोऽनवने' इस पाणिनि-सूत्रके [illegible] 'पालन-रक्षण' अर्थ ही किया जाता है, वह ठीक नहीं; क्यों[illegible] पाणिनिसे पूर्वकालीन 'महाभारत'में उस नियमका अनुव[illegible] कैसे होगा ?

इसके अतिरिक्त **'छन्दोवत् कवयः कुर्वन्ति'** यह व्याकर[illegible] की परिभाषा भी प्रसिद्ध है । वेदमें उपग्रह (परस्मै[illegible] आत्मनेपद) का व्यत्यय भी विख्यात ही है, तभी [illegible] कवि श्रीव्यासजीने 'भुङ्ग्ध्वम्'के स्थान 'भुङ्क्त' [illegible] जोड़ दिया है । अन्य बात यह है कि अर्थमें दृष्टि रखनेवा[illegible] का शब्दहष्टिमें उतना आदर भी नहीं हुआ करता । इतिह[illegible] पुराण 'अर्थप्रधान' प्रसिद्ध है, वेद 'शब्दप्रधान' त[illegible] काव्य 'रस-प्रधान' प्रसिद्ध है । देखिये इसमें 'काव्यप्रकाश'[illegible] आरम्भ । इसी कारण अर्थदृष्टि रखनेवाले नैयायिकोंके [illegible] भी अतिशयोक्तिगर्भित यह प्रवाद प्रसिद्ध है—

'अस्माकूणां नैयायिकेषाम् अर्थरि तात्पर्यम् न [illegible] शब्दरि', 'अस्माकूणामिति कथम् ? गुरूणामिति पथम् [illegible] नैयायिकेषामिति कथम् ? सर्वेषामिति पथम् ? शब्द[illegible] कथम् ? छन्दसि इति पथम् । पथम्—इति कथम् ? क[illegible] इति पथम् ।'

फलतः अर्थतात्पर्यवाले 'महाभारत'के वचनमें भी '[illegible] **समेत्य भुङ्क्त'** इसका अर्थ व्याकरणका विरोध होनेपर [illegible] खाने वा उपभोग अर्थात् उपयोगमें हो सकता है ।

इसमें अन्य प्रमाण भी हैं । वह यह कि महाभार[illegible] कारको जहाँ 'भुज्' धातुका खाना वा उपभोग अर्थ विवक्षि[illegible] होता है, वे वहाँपर पाणिनिके अनुसार केवल आत्मनेपद न[illegible] करते, किंतु परस्मैपद भी करते हैं, आत्मनेपद भी जैसे कि—

यथावदुक्तं प्रचकार साध्वी ते चापि सर्वे बुभुजुस्तदन्नम् ।
(१९४ । ७ [illegible]

यहाँपर भुज् धातुका परस्मैपद है । 'तदन्नम्' इस अ[illegible] पदकी संनिधिसे कोई भी पुरुष यहाँ 'पालन' अर्थ नहीं क[illegible] सकता, किंतु खाना वा उपभोग अर्थ ही करना पड़ेगा

पाणिनिके अनुसार तो यहाँ 'बुभुजिरे' प्रयोग हो सकता है, परंतु वैसा नहीं है—यह प्रत्यक्ष ही है। इससे हमारी कही बात ठीक सिद्ध हुई। इसी प्रकार **'भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे'** यहाँ परस्मैपद होनेपर भी रक्षण अर्थ नहीं है, किंतु खाना वा उपभोग–उपयोग अर्थ है। इससे स्पष्ट है कि श्रीव्यास-जी खाने वा उपयोग अर्थमें जहाँ-तहाँ आत्मनेपद भी देते हैं, परस्मैपद भी। इससे परस्मैपदमें भी भुज् धातुका भक्षण वा उपभोग अर्थ सम्भव है। इस प्रकारके महाभारतके अन्य भी प्रयोग दिखलाये जा सकते हैं।

हमारे पास केवल यही अमोघ अस्त्र नहीं है कि श्रीव्यास-जी पाणिनिसे विरुद्ध प्रयोग भी करते हैं, प्रत्युत उसमें प्रकरण भी हमारे पक्षका अनुग्राहक है। **'यत्परः शब्दः स शब्दार्थः'** यह न्याय भी प्रसिद्ध है। शब्द जिस उद्देश्यसे प्रयुक्त किया जाता है, वही उसका अर्थ हुआ करता है। तब वहाँ ग्रन्थकारको भी पालन अर्थ इष्ट नहीं है, उस वाक्यका प्रयोग करनेवाली कुन्तीको भी वहाँ पालन अर्थ इष्ट नहीं है, कुन्तीके वाक्यके अर्थको जाननेवाले युधिष्ठिर आदिको भी वहाँ पालन अर्थ इष्ट नहीं है, और फिर 'पालन' अर्थ करनेसे वैसा आशय बतानेवालोंकी कोई इष्ट-सिद्धि भी नहीं है—यह आगेके विवेचनसे सिद्ध हो जायगा।

पूर्वपक्षवाले सज्जन अपने पक्षकी पुष्टिमें—

कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे।

(१९० । २)

इस पाठको तो उद्धृत करते हैं, परंतु उसका पूर्वापर प्रकरण स्पष्टतया नहीं दिखलाते, जिससे अर्थका अनर्थ हो जाता है। अब वह प्रकरण दिखलाया जाता है, जिससे पूर्वपक्ष असिद्ध हो जाता है। आदिपर्वके १९० वें अध्यायका यह प्रथम पद्य है—

गत्वा तु तां भार्गवकर्मशालां पार्थौ पृथां प्राप्य महानुभावौ।
तां याज्ञसेनीं परमप्रतीतौ भिक्षेत्यथावेदयतां नराग्र्यौ ॥ १॥

इसका आशय यह है कि भीमसेन और अर्जुन द्रौपदीको अपने साथ लाकर प्रतिदिनकी तरह कहने लगे कि—मातः! हमलोग भिक्षा लाये हैं। 'प्रतिदिनकी तरह' कहनेका यह आशय है कि—वे प्रतिदिन भिक्षा लाकर कुन्तीको दिया करते थे, जैसे कि—

चेरुर्भैक्षं तदा ते तु सर्व एव विशाम्पते।
निवेदयन्ति स्म तदा कुन्त्या भैक्षं सदा निशि।

(१ । १५६ । ४-५)

पूर्व उद्धृत पद्यके आगे ही यह पद्य है—

कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे।

(१९० । २)

इसका यह अर्थ है कि—कुन्ती कुटीके अंदर थी, उसने भिक्षा लेकर आये हुए पुत्रों–भीम-अर्जुनको नहीं देखा, इस कारण उनके साथ लायी हुई विशिष्ट भिक्षा द्रौपदीको भी नहीं देखा, इसलिये वह सदाकी भाँति भिक्षा जानकर [क्योंकि वह कुन्ती भी उनको भिक्षाके लिये गये हुए और बहुत देर बीत जानेपर भी उनको न आया देखकर उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। जैसे कि—

अनागच्छत्सु पुत्रेषु भैक्षकालेऽभिगच्छति।

(१८९ । ४४)]

—उनको सदाकी तरह कहने लगी कि तुम सब मिलकर **'भिक्षां भुङ्क्त'** भिक्षाका भोग—खाओ वा उपभोग करो।

क्या यहाँपर कोई मान सकता है कि कुन्तीको यहाँपर प्रतिदिन आनेवाली भिक्षाकी 'रक्षा' अभीष्ट थी? नहीं-नहीं, किंतु भिक्षाका उसको पूर्वकी भाँति उपभोग–उपयोग ही इष्ट था। इसके बाद उक्त पद्यका उत्तरार्ध यह है, जिसे पूर्वपक्षवाले जनताकी दृष्टिमें नहीं लाते—

पश्चाच्च कुन्ती प्रसमीक्ष्य कृष्णां कष्टं मया भाषितमित्युवाच ॥

(१९० । २)

इसका यह अर्थ है कि—जब कुन्तीने भिक्षाके रूपमें द्रौपदीको कुटीसे बाहर आकर देखा, तो पछताकर कहने लगी—'हा खेद! मैंने यह क्या कह दिया?' यदि उस कुन्तीको वस्तुतः ही 'भुङ्क्त' का अर्थ पालो अभीष्ट होता, तब उसे पछतानेका क्या अवसर था?

आगे तो इससे भी स्पष्ट कहा है—

साधर्मभीता परिचिन्तयन्ती तां याज्ञसेनीं परमप्रतीताम्।
पाणौ गृहीत्वोपजगाम कुन्ती युधिष्ठिरं वाक्यमुवाच चेदम् ॥

(१९० । ३)

कुन्ती अधर्मके भयसे भीत हो गयी। द्रौपदी बहुत प्रसन्न थी। कुन्ती देवी द्रौपदीका हाथ पकड़कर युधिष्ठिरके पास गयी और उनसे कहा। इस पद्यमें **'सा कुन्ती अधर्मभीता'** यह पद भी 'भुङ्क्त' का 'पालो' यह अर्थ हटा रहा है, अन्यथा वह यदि अपने पुत्रोंको द्रौपदीके पालनार्थ कहना चाहती थी, तब यहाँ 'अधर्म' क्या था? भिक्षाका वा द्रौपदीका सबके द्वारा पालन अधर्म नहीं था। अथवा—यदि कुन्तीको भिक्षाका भी 'रक्षण' इष्ट था, फिर द्रौपदीको देखकर उसका भी 'रक्षण' अर्थ इष्ट था, तो उसे अनृत-भाषणरूप अधर्मसे कोई भय नहीं था; क्योंकि यह एक प्रसिद्ध न्याय है—**'यत्परः शब्दः स शब्दार्थः'** शब्द जिस लक्ष्यसे कहा गया है, वही उसका अर्थ हुआ करता है।

इससे स्पष्ट है कि—कुन्तीको 'भुङ्क्त'का 'संरक्षण'अर्थ

नहीं, किंतु उपभोग-उपयोग अर्थ ही इष्ट था । यदि भिक्षा साधारण होती, तब तो सबके द्वारा उसका उपभोग-उपयोग करनेपर भी कोई अधर्म नहीं था, अपितु धर्म ही था, परंतु जब उस कुन्तीने भिक्षारूपमें द्रौपदीको देखा, तब सोचा कि—यदि इस द्रौपदीका सभी उपभोग-उपयोग करें, अर्थात् सभी उसके पति हो जायँ, तब तो अधर्म ही होगा; क्योंकि सुना जाता है—

'एकस्य बह्व्यो जाया भवन्ति, नैकस्या बहवः सहपतयः ।

(गोपथब्रा० ३ । २०; ऐत० ब्रा० ३ । २३)

यदि मैं (कुन्ती) 'भुङ्क्त' यह भिक्षाके लिये कहकर द्रौपदी-रूप भिक्षाके लिये अन्य प्रयोगको—चाहे वह समान आकार-का पर भिन्नार्थक हो—करूँगी, तो असत्यका प्रसंग हो जानेसे अधर्म होगा; क्योंकि 'अर्थभेदसे ही शब्दभेद हुआ करता है । शब्दभेद हो जानेपर दो बार भिन्न-भिन्न बातें हो जानेसे असत्य उपस्थित हो जाता है । इस प्रकार असमंजसमें पड़ी हुई कुन्ती ही 'भुङ्क्त' इस शब्दका उपभोग अर्थ सिद्ध कर रही है—यह अत्यन्त स्पष्ट है ।

इसी कारण आगे उसने युधिष्ठिरके सामने स्वयं अपना प्रमाद स्वीकार किया है । जैसे कि—

इयं तु कन्या द्रुपदस्य राज्ञः तवानुजाभ्यां मयि संनिविष्टा ।
यथोचितं पुत्र मयापि चोक्तं समेत्य भुङ्क्तेति नृप प्रमादात् ॥

(१९० । ४)

कुन्तीने कहा—'युधिष्ठिर ! यह द्रुपदराजकन्या द्रौपदी है । तुम्हारे छोटे भाई भीम और अर्जुनने इसे भिक्षा कहकर मुझे समर्पित किया और मैंने भी भूलसे अनुरूप उत्तर दे दिया कि तुम सब मिलकर इसको उपभोग करो । यहाँपर 'प्रमादात्' यह शब्द 'भुङ्क्त'का उपभोग अर्थ ही कुन्तीको विवक्षित था, 'रक्षण' अर्थ नहीं—यह स्पष्ट कह रहा है; क्योंकि किसी स्त्रीकी रक्षार्थ आज्ञा देना प्रमाद नहीं हो सकता । उपभोग अर्थ होनेपर तो एक स्त्रीके साथ बहुतोंका उपभोग अशास्त्रीय होनेसे उस कुन्तीकी दृष्टिमें प्रमाद स्पष्ट ही है; क्योंकि वह पाण्डवोंके गत जन्मका वृत्त नहीं जानती थीं । इसलिये वह उसे अधर्म जानती हुई युधिष्ठिरको फिर कहने लगी—

मया कथं नानृतमुक्तमद्य भवेत् कुरूणामृषभ ब्रवीहि ।

'कुरुश्रेष्ठ ! बताओ, अब मेरी बात झूठी न हो ।' 'ब्रवीहि' यह प्रयोग भी पाणिनिसे विरुद्ध है—यह बात भी पूर्वपक्षियोंको याद रखनी चाहिये ।—

'पाञ्चालराजस्य सुतामधर्मो न चोपवर्तेत न विभ्रमेच्च ॥

(१९० । ५)

जिससे इस पाञ्चालराजकन्याको न तो पाप लगे, न ... योनिमें भटकना पड़े । इस कुन्तीके वाक्यसे भी हमारा ... सिद्ध होता है ।

ग्रन्थकारको भी यही उपभोग अर्थ 'भुङ्क्त' का ... है; क्योंकि वह अपने पात्रके द्वारा अपने अभिलषित अर्थ ही कहलवाता है । अथवा ग्रन्थकारका अपना अभि... अर्थ हो ही क्या सकता है ? उसे तो इतिहासके सम्पा... होनेसे वही लिखना है जो कि इतिहासमें हो चुका है । 'इति ह आस—इतिहासः' हो चुके हुएका नाम इतिहास है । तब वह उसके परिवर्तनमें अधिकारी ही कैसे हो सकता है ? इस प्रकार पूर्व समयमें द्रौपदीका पाँचों पाण्डवोंके साथ विवाह हुआ, तभी तो इतिहासके सम्पादक श्रीकृष्णद्वैपायनने उसमें ग्रन्थबद्ध किया ।

अब फिर प्रकरणपर आना चाहिये । युधिष्ठिर आदि भी मातासे कहे हुए 'भुङ्क्त' पदका उपभोग ही अर्थ ... है । इसीलिये युधिष्ठिरने द्रुपदको कहा था—

सर्वेषां महिषी राजन् द्रौपदी नो (—अस्माकं पञ्चा... भविष्यति ।
एवं प्रव्याहृतं पूर्वं मम मात्रा विशाम्पते ॥

(१९४ । ...

एष नः समयो राजन् रत्नस्य सहभोजनम् ।
न च तं हातुमिच्छामः समयं राजसत्तम ॥
सूक्ष्मो धर्मो महाराज नास्य विद्मो वयं गतिम् ।
न मे वागनृतं प्राह नाधर्मे धीयते मतिः ।
एवं चैव वदत्यम्बा मम चैतन्मनोगतम् ॥

(१९४ । २५, २९-...

'राजन् ! द्रौपदी हम सभी भाइयोंकी पटरानी है । मेरी माताने पहले ही हम सब लोगोंको ऐसी ही ... दे रक्खी है । महाराज ! हमलोगोंमें यह शर्त हो चुकी कि दानको हम सब बाँटकर एक साथ उपभोग करेंगे । राजसत्तम ! हम अपनी उस शर्तको छोड़ना नहीं चाहते । महाराज ! धर्मका स्वरूप अति सूक्ष्म है । हम उसकी गति नहीं जानते ।××मेरी वाणी कभी मिथ्या नहीं बोलती । मेरी बुद्धि कभी अधर्ममें नहीं लगती । हमारी माताने ऐसा ही करनेकी आज्ञा दी है और मेरे मनमें भी यही उचित जँचता है ।' 'मम चैतन्मनोगतम्' की व्याख्या 'सतां हि **संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः'** । (अभि... शाकुन्तल १ । २३) इन कालिदासके शब्दोंमें समझना चाहिये ।

इस प्रकार युधिष्ठिरने श्रीव्यासजीको भी कहा था—

गुरोर्हि वचनं प्राहुर्धर्म्यं धर्मज्ञसत्तम ।
गुरूणां चैव सर्वेषां माता परमको गुरुः ॥

(१९५ । ...

'धर्मज्ञश्रेष्ठ व्यासजी ! गुरुजनोंकी आज्ञाको धर्मसंगत बताया गया है और समस्त गुरुओंमें माता परम गुरु मानी गयी है ।

सा चाप्युक्तवती वाचं भैक्षवद् भुज्यतामिति ।
तस्मादेतदहं मन्ये परं धर्मं द्विजोत्तम ॥
(१९५ । १७)

हमारी उस माताने कहा है कि तुम सब लोग भिक्षाकी भाँति इसका उपभोग करो, अतः द्विजश्रेष्ठ ! हम सबके साथ होनेवाले विवाहको हम परमधर्म मानते हैं ।

यह वचन युधिष्ठिरने जो कहा, उसका कारण यह है कि—**'आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया'** (रघुवंश १४ । ४६) **'अमीमांस्या गुरवः'** (चाणक्यसूत्र ४२१) अर्थात् गुरुओं-की बातपर विचार नहीं करना चाहिये । यदि कोई उनकी आज्ञा अनुचित भी है, तो उसका उत्तरदायित्व उनपर होगा, उसका पाप-पुण्य उन्हें ही होगा, हमें नहीं । इसीलिये 'तैत्तिरीयोपनिषद्'में कहा है—**'मातृदेवो भव'** (१ । ११ । १२) ।

इससे पूर्व युधिष्ठिरने जो कि—

त्वया जिता फाल्गुन याज्ञसेनी
त्वयैव शोभिष्यति राजपुत्री ।
प्रज्वाल्यतामग्निरमित्रसाह
गृहाण पाणिं विधिवत् त्वमस्याः ॥
(१९० । ७)

अर्जुनको यह कहा था कि द्रौपदीको तुम ही जीत लाये हो, अतः तुम ही इससे विवाह करो, यह कथन अर्जुनकी परीक्षाके लिये हो सकता है । तभी तो अर्जुनने **'मातृदेवो भव'** (तै० १ । ११ । २) इस वैदिक आदेशके अनुसार कहा था कि—

'मा मां नरेन्द्र त्वमधर्मभाजं
कृथा न धर्मोऽयमशिष्टदृष्टः ।
भवान् निवेश्यः प्रथमं ततोऽयं
भीमो महाबाहुरचिन्त्यकर्मा ॥
अहं ततो नकुलोऽनन्तरं मे
पश्चादयं सहदेवस्तरस्वी ।
(१९० । ८-९)

अर्थात् हम सब ही माताकी आज्ञाके अनुसार इसके स्वामी बनेंगे । इस प्रकार अर्जुनकी परीक्षाके समाप्त होनेपर युधिष्ठिरने भी स्वयं इसका अनुमोदन किया और कहा—

सर्वेषां द्रौपदी भार्या भविष्यति हि नः शुभा ॥
(१९० । १६)

'कल्याणमयी द्रौपदी हम सब लोगोंकी भार्या बनेगी ।' कुन्तीने भी युधिष्ठिरकी तरह ही श्रीव्यासदेवको कहा—

एवमेतद् यथा प्राह धर्मचारी युधिष्ठिरः ।
अनृतान्मे भयं तीव्रं मुच्येऽहमनृतात् कथम् ॥
(१९५ । १८)

धर्मका आचरण करनेवाले युधिष्ठिरने जैसा कहा है, वह ठीक है । मुझे झूठसे बड़ा भय लगता है । बताइये—मैं झूठसे कैसे बचूँगी । इससे स्पष्ट है कि—'भुङ्क्त' का ग्रन्थकारके मतमें, कुन्तीके मतमें तथा युधिष्ठिर आदिके मतमें समान ही 'उपभोग' अर्थ है । पूर्व-पक्षवालोंके अनुसार 'रक्षण' अर्थ माननेपर भी कोई लाभ नहीं, तब तो वह द्रौपदी सब पाण्डवोंसे मिलकर ही संरक्षणीय ही हो जायगी । उसके साथ **'प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे'** इस पूर्वपक्षवालोंसे सम्मत माताकी आज्ञाको सूचित करनेवाले वचनके अनुसार अर्जुन भी विवाह नहीं कर सकेगा । वह भी सारी आयु उसे पाल ही सकता है, न उसका उपयोग कर सकता है, न उससे पुत्र ही उत्पन्न कर सकता है; क्योंकि कुन्तीका यह आदेश अर्जुनके लिये कुछ विशेषता नहीं बतलाता, किंतु सभीका द्रौपदीके साथ समान ही व्यवहार कहता है ।

अथवा यदि कुन्ती पाण्डवोंको **'भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे'** (१९३ । २) यह वचन न कहती, तो क्या अर्जुनके साथ विवाही हुई भी उसकी रक्षा सभी भाई न करते ? अवश्य करते । इस कारण पूर्वपक्षवालोंकी यह कल्पना कोई महत्त्व नहीं रखती, अतः उसका यह कल्पना-प्रासाद यहाँ गिर पड़ा है, यह पाठकोंने देखा होगा ।

पूर्वपक्षवालोंने 'तैत्तिरीय'के प्रमाणसे पत्नीको 'गृहलक्ष्मी' बताया है, तब जब उनके मतके अनुसार कुन्ती द्रौपदीको सबकी 'गृहलक्ष्मी' बनाना चाहती है और उसके पालनका आदेश देती है, जब पूर्वपक्षवालोंके अनुसार युधिष्ठिर आदि पाँचों प्रत्येकमें पञ्चभावसे रहते थे, तो वह भी सबकी वास्तविक पत्नी थी, वे भी उसके वास्तविक पति सिद्ध हुए, क्योंकि पूर्वपक्षके अनुसार पाँचोंका पञ्चत्व एक दूसरेमें है ।

जो कि यह कहा जाता है कि कल्पना करनेवालोंने मूलमें स्वसम्मत भाव मिला दिये सो यह बात प्रमाणहीन है, नहीं तो; महाभारतमें अग्निसे प्रकट हुई द्रौपदीको भी कल्पित मान लेना पड़ेगा । द्रौपदीकी तरह अन्य स्त्रियाँ भी कुरुवंश-में उस समय तीन-चार पतियोंवाली क्यों नहीं दिखलायी गयीं ? दुर्योधनकी स्त्री भानुमती भी सौ भाइयोंकी स्त्री क्यों नहीं बतायी गयी ? इससे स्पष्टतया यह **'अपवाद'** है ।

इधर पद्यका—

कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे।
(१९० । २)

इसका पूर्वार्ध वास्तविक मानकर—

'पश्चाच्च कुन्ती प्रसमीक्ष्य कृष्णां कष्टं मया भाषितमित्युवाच।' (१९० । २)

उसके उत्तरार्धको काल्पनिक मानना पूर्वपक्षवालोंका अर्धजरतीय न्यायका अवलम्बन करना है। यदि पूर्वार्ध ही अनालङ्कारिक वा अप्रक्षिप्त वा वास्तविक है, इसीलिये उद्धृत किया जाता है, उसीसे अपने पक्षकी पुष्टि समझी जाती है, तो वह भी हमारे पक्षकी परिपुष्टि करता है—यह बात विज्ञ पाठक देखें।

कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ प्रोवाच भुङ्क्तेति समेत्य सर्वे।

यही पूर्वपक्षसम्मत पूर्वार्ध है। इसमें **'कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ'** ये पद साभिप्राय हैं। कुटीमें होनेसे, और पुत्रों (भीम, अर्जुन) को न देखनेसे ही कुन्तीने उक्त प्रमाद किया, यह बात उक्त पदोंसे सिद्ध होती है, नहीं तो, **'कुटीगता सा' 'पुत्रौ अनवेक्ष्य'** इन पदोंके कहनेकी आवश्यकता ही नहीं थी; क्योंकि इन पदोंके असाभिप्राय होनेसे अपुष्ट दोष उपस्थित हो जाता है। इधर इस पद्यसे पूर्वके पद्यमें प्रतिदिनकी भिक्षाका संकेत किया गया है, उधर इस पद्यमें कुन्तीके कुटीमें होनेसे उसके द्वारा पुत्रोंको न देखना कहा है, तब उस भिक्षाका कुन्तीद्वारा कहे हुए 'भुङ्क्त' इस पदसे प्रतिदिनकी तरह 'उपभोग' अर्थ ही अभीष्ट है, 'संरक्षण' अर्थ नहीं। प्रतिदिनकी भिक्षाका 'संरक्षण नहीं होता था, किंतु परस्पर यथाविभाग उपभोग ही किया जाता था।

हाँ, यदि कुन्तीके द्वारा पुत्रोंका अनवेक्षण न होकर अवेक्षण-दर्शन होता, भिक्षाकी विलक्षणताका भी उसे ज्ञान होता, तब कुन्ती अवश्य यह न कहती। अतः 'भुज्' धातु यहाँ 'पालनार्थक है' तुम सब मिलकर इस द्रौपदीरूप गृहलक्ष्मीको पालो, यह कुन्तीका अभिप्राय था, यह पक्ष सिद्ध नहीं हुआ। इसमें उसी पूर्वपक्षवालोंसे उद्धृत, अप्रक्षिप्त तथा अनालङ्कारिक पद्यके **'कुटीगता सा त्वनवेक्ष्य पुत्रौ'** इस प्रथम पादमें आये हुए **'कुटीगता' 'अनवेक्ष्य पुत्रौ'** ये ग्रन्थकारके पद प्रमाण हैं।

तात्पर्य यह है कि—यदि कुन्ती कुटीसे बाहर होती, भिक्षाको भी वह देख लेती, तब तो कुन्तीको 'उपभुङ्क्त' वही अर्थ विवक्षित होता, जो पूर्वपक्षवाले करते हैं, पर अब जब कुन्ती कुटीमें है, उसने पुत्रोंके साथकी भिक्षा भी नहीं देखी, तब किसी भी युक्तिसे कुन्तीका वह अभिप्राय कल्पित नहीं हो सकता। उसी कारण पूर्वपक्षवालोंको बतलाना इस अभिप्रायको दिखलानेके लिये अर्थ 'करनेके अवसरपर अपने दिये हुए इस पद्यका प्रथमपाद लोकदृष्टिसे छिपाना पड़ जाता है। प्रथमपादके सामने रखनेपर वे अपने कहे हुए उक्त अभिप्रायको कदापि नहीं निकाल सकते। पूरे श्लोकके चार पादोंमें उन्हें केवल दूसरा पाद ही अपना अभिप्रेत अर्थ सिद्ध करनेके लिये लोकदृष्टिमें रखना पड़ता है। अब इस पादके शेष तीन पाद कौन-से हैं—यह बताना उनका कर्तव्य रह जाता है।

कई अन्य महाशयोंका यह अभिप्राय है कि—'जब अर्जुनने मत्स्यवेध किया था, तब धर्मसे वह द्रौपदीका पति हो गया, तब युधिष्ठिरका अनुजवधूके साथ सम्बन्ध कैसे युक्त हो सकता है?' इसपर जानना चाहिये—यदि मत्स्यवेधनमात्रसे अर्जुन पति तथा द्रौपदी पत्नी होती, तो उसके बाद विवाहकी आवश्यकता क्यों होती? जैसे कि युधिष्ठिरने कहा था कि "त्वया जिता पाण्डव याज्ञसेनी"

प्रज्वाल्यतामग्निरमित्रसाह गृहाण पाणिं विधिवत् त्वमस्याः
(१९१ । ७)

इससे स्पष्ट है कि विवाह ही पति-पत्नीत्वका साधक होता है। वह कुन्तीके पूर्ववचनसे द्रौपदीका सब पाण्डवोंसे भिन्न-भिन्न हुआ, केवल अर्जुनसे ही नहीं हुआ। तब वह पत्नी भी पाँचोंकी हुई, एकमात्र अर्जुनकी नहीं।

एक यह भी प्रश्न सम्भव है कि—'विवाहिता कन्या नहीं रह जाती, तब युधिष्ठिर आदिसे विवाहित हुई, उसका अकन्या होनेसे भी भीम आदिसे विवाह कैसे हुआ?' इसपर यह जानना चाहिये कि यह अपवादस्थल है; क्योंकि—वह विवाहित भी पुनः कन्याभावको प्राप्त कर लेती थी। जैसे कि 'महाभारत'में कहा गया है—

'क्रमेण चानेन नराधिपात्मजाः' (भीमार्जुननकुलसहदेवाः)
वरस्त्रियास्ते जगृहुस्तदा करम्।
अहन्यहन्युत्तमरूपधारिणो महारथाः कौरववंशवर्धनाः।
(१ । १९७ । १३)

इदं च तत्राद्भुतरूपमुत्तमं
जगाद देवर्षिरतीतमानुषम्।
महानुभावा किल सा सुमध्यमा
बभूव कन्यैव गते गतेऽहनि॥
(१ । १९७ । १४)

क्रमसे कौरववंशकी वृद्धि करनेवाले, उत्तम शोभा धारण करनेवाले महारथी राजकुमार पाण्डवोंने एक-एक दिन

सुन्दरी द्रौपदीका पाणिग्रहण किया। देवर्षि नारदने वहाँ घटित हुई इस अद्भुत उत्तम और अलौकिक घटनाका वर्णन किया है कि 'सुन्दर कटिप्रदेशवाली महानुभावा द्रौपदी प्रतिबार विवाहके दूसरे दिन कन्याभावको प्राप्त हो जाती थी।'

दिव्यदृष्टि श्रीव्यासजीने अग्निसे उत्पन्न दिव्य कन्या द्रौपदीके कन्यात्वको दिव्यदृष्टिसे देख लिया, अतएव उन्होंने वैसा लिखा। तब इस प्रकार अलौकिक होनेसे द्रौपदीका विवाह सामान्य विवाहका विषय नहीं, अतः यह अपवादस्थल ही जानना चाहिये। न तो यह दूसरेसे अनुकरणीय ही है और न यह प्रथा ही उस समय प्रचलित थी।

यह जो कहा जाता है कि 'कृष्णा तो प्रतियोगितामें जीती गयी थी, भिक्षाकी तरह नहीं माँगी गयी थी। तब धर्मभीरु एवं सत्यवादी अर्जुन अथवा भीम द्रौपदीको 'भिक्षा' शब्दसे कैसे कह सकते थे?' इसपर जानना चाहिये कि क्षत्रिय होनेसे उन्हें भिक्षाका अधिकार ही नहीं था, तब वे भिक्षाके लिये ही कैसे जाते थे? वस्तुतः यहाँ रहस्य यह है कि पाण्डवोंने लाक्षागृहसे अपने-आपको बचाकर तब दुर्योधनको प्रतारित करनेके लिये ब्राह्मणका रूप धारण कर लिया था। ब्राह्मण-रूपको ही प्रसिद्ध करनेके लिये वे भिक्षाका अभिनय करते थे, जिस किसी भी लायी हुई वस्तुको 'भिक्षा' शब्दसे पुकारा करते थे। इसीलिये 'महाभारत'में कहा है—

तत्र भैक्षं समाजह्रुर्ब्राह्मणीं वृत्तिमाश्रिताः।
तान् सम्प्राप्तांस्तथा वीरान्जज्ञिरे न नराः क्वचित्॥
(१।१८४।७)

वहाँ ब्राह्मणवृत्तिका आश्रय ले वे भिक्षा माँगकर लाते थे। इस प्रकार वहाँ पहुँचे हुए पाण्डववीरोंको कोई भी मनुष्य पहचान न सके। यहाँ स्पष्ट है कि उन्होंने भिक्षाको अपने छिपानेका साधन बनाया था। ब्राह्मणरूपकी प्रसिद्धिमें ही अर्जुन आदिने द्रौपदीको प्राप्त किया था। भार्गवकी कर्मशालामें प्राप्त होकर जनदृष्टिमें अपने-आपको ब्राह्मण परिचायित करनेके लिये ही जैसे वे प्रतिदिन 'हम भिक्षा लाये हैं' यह कहा करते थे, वैसे ही द्रौपदीके लानेके दिन भी कुटीसे बाहर ही उन्होंने ऊँचे स्वरसे 'हम भिक्षा लाये हैं' यह कहा। यह सब कुछ '**चारैः पश्यन्ति राजानः**' इस नीतिसे राजा दुर्योधनकी दृष्टिमें (क्योंकि वे लोग भी वहाँ उपस्थित थे) अपने छिपानेके लिये था। तभी दुःशासनने भी पीछेसे कहा था—

यद्यसौ ब्राह्मणो न स्याद् विन्देत द्रौपदीं न सः।
(२०२।११)

अर्थात् यदि अर्जुनने ब्राह्मणका रूप धारण न किया होता, तब वह द्रौपदीको न पा सकता।

अर्जुन 'धर्मभीरु' तथा सत्यवादी'—ये दो विशेषण अपने पक्षके सिद्ध करनेके लिये ही दिये गये मालूम होते हैं। परंतु अर्जुन आदि इस अपने ब्राह्मणत्वको परिचायित करनेके लिये आपत्कालकी नीतिके अनुसार सर्वत्र असत्य ही बोलते थे। तभी जब ब्राह्मणवेषधारी अर्जुनने लक्ष्यवेध करके द्रौपदीको जीता था, तब कर्ण आदि-आदि उससे युद्ध करने लगे। उस समय कर्णने उससे पूछा कि—'तुम ब्राह्मण हो वा कोई अन्य?'

तमेवंवादिनं तत्र फाल्गुनः (अर्जुनः) प्रत्यभाषत।
ब्राह्मणोऽस्मि युधां श्रेष्ठ सर्वशस्त्रभृतां वरः।
(१।१९२।२०-२१)

सर्वशस्त्रभृतां वरः। (१।१९०।२०-२१)

यहाँपर बताना चाहिये कि—'धर्मभीरु' और 'सत्यवादी' अर्जुनने अपने आपको ब्राह्मण सत्य कहा वा असत्य?

ए[illegible]ुक्तस्तु राधेयो युद्धात् कर्णो न्यवर्तत।
ब्राह्मं तेजस्तदाजय्यं मन्यमानो महारथः॥
(१८९।२२-२३)

यह असत्य भाषण अपने ब्राह्मणत्वके परिचायित करनेके लिये दुर्योधनकी दृष्टिमें (क्योंकि वे लोग भी वहाँ उपस्थित थे) अपने-आपको छिपानेके लिये था। जब द्रौपदीको जीतकर वे घरमें ले गये, तब कुटियासे बाहर ही उन्होंने ऊँचे स्वरसे (क्योंकि कुन्ती उस समय अंदर थी) 'भिक्षा लानेके' शब्दका उच्चारण किया, तब अनुसंधानके लिये आये हुए लोगोंने उन्हें 'भिक्षा' शब्दसे वास्तविक ब्राह्मण माना। सायंकाल वे फिर भिक्षा माँगनेके लिये गये। जैसे कि—

सायं च भीमस्तु रिपुप्रमाथी
जिष्णुर्यमौ चापि महानुभावौ।
भैक्षं चरित्वा तु युधिष्ठिराय
निवेदयाञ्चक्रुरदीनसत्त्वाः॥
(१।१९१।३)

सन्ध्या होनेपर शत्रुओंको मथ डालनेवाले भीमसेन, अर्जुन और महानुभाव नकुल-सहदेवने भिक्षा लाकर युधिष्ठिरको निवेदन की। यह सुनकर संदेहमें पड़े हुए द्रुपदने भी उनसे पूछा—

कथं जानीम भवतः क्षत्रियान् ब्राह्मणानुत।
(१।१९४।२

जहाँ इस प्रकरणसे कर्मसे वर्णव्यवस्था हटती है, वहाँ द्रौपदीको 'भिक्षा' शब्दसे कहनेपर भी प्रकाश पड़ता है ।

जो यह कहा जाता है कि—'द्रुपद अर्जुनको ही द्रौपदीको देना चाहता था, यही जानकर युधिष्ठिरने लक्ष्यवेध नहीं किया, नहीं तो, वह भी समर्थ था और बड़ा भाई होनेसे अधिकारी भी था, सो यह बात भी ठीक नहीं प्रतीत होती, प्रत्युत पूर्वपक्षसे उपस्थापित पद्यसे भी विरुद्ध है। 'महाभारतमें यह संकेत ही नहीं दिया गया कि युधिष्ठिर आदि इस विषयमें द्रुपदकी अभिलाषा जानते थे'—

यज्ञसेनस्य कामस्तु पाण्डवाय किरीटिने ।
कृष्णां दद्यामिति सदा न चैतद् विवृणोति सः ॥

(१ । १८४ । ८)

इस पद्यके चौथे पादमें तो यह बताया है कि—द्रुपद अपनी उक्त अभिलाषाको किसीके आगे प्रकट नहीं करते थे । यही बात—

अयं हि कामो द्रुपदस्य राज्ञो
हृदि स्थितो नित्यमनिन्दिताङ्गः ।
यदर्जुनो वै पृथुदीर्घबाहु-
र्धर्मेण विन्देत सुतां ममैताम् ॥

(१ । १९२ । १९)

इस पद्यमें भी 'हृदि स्थितः' इस पदसे अप्रकट, द्रुपदके हृदयस्थित मनोरथको युधिष्ठिर कैसे जान गये, कर्ण आदि क्यों न जान सके—इस प्रकार यह पद्य उद्धरण करनेवालोंके ही पक्षको ही काट रहा है ।

इधर युधिष्ठिरके लिये 'समर्थ' यह पद भी महाभारतसे विरुद्ध है । युधिष्ठिरने जो कि लक्ष्यवेध नहीं किया, उसमें कारण उसका असामर्थ्य ही था । इसलिये श्रीद्रोणाचार्यने भी वैसी सामर्थ्य न होनेसे युधिष्ठिरको इस परीक्षामें अनुत्तीर्ण कर दिया था । जैसे कि—

नैतच्छक्यं त्वया वेद्धुं लक्ष्यमित्येव कुत्सयन् ।

(१३१ । ७७)।

अर्जुनने जो कि इसमें साहस किया था, उसका कारण उसकी सामर्थ्य थी—यह द्रोणाचार्यकी परीक्षामें १३५ अध्यायमें स्पष्ट है, इस कारण अर्जुनने ही लक्ष्यवेध किया था ।

यत् पार्थिवै रुक्मसुनीथवक्रै
राधेयदुर्योधनशल्यशाल्वैः ।
तदा धनुर्वेदपरैर्नृसिंहैः
कृतं न सज्यं महतोऽपि यत्नात् ॥

(१ । १८७ । १९)

इस प्रकार जिस धनुषको कर्ण तथा दुर्योधनादि डोरीसे नहीं जोड़ सके, तब उनसे न्यूनशक्तिवाले युधिष्ठिरकी भला उस लक्ष्यभेदमें क्या शक्ति थी ?

इधर यह भी जानना चाहिये कि यदि द्रौपदीकी पञ्चपतिकी कथा कल्पनामात्र या असत्य होती, तो असत्यका मूल स्थिर नहीं हुआ करता । उसके लिये 'महाभारत' या अन्य ग्रन्थमें कोई संकेत होता, अथवा कहीं असङ्गति पड़ती, पर कहीं भी असंगति नहीं दीखती । 'प्रत्युत द्रौपदीका पञ्चपतित्व अन्य प्रकरणोंमें कई बार आवृत्ति किया गया है । इस कारण यहाँ अवैयासिकता भी नहीं है । तात्पर्यनिर्णायक लिङ्गोंमें उपक्रम, उपसंहार तथा अभ्यास आदि मुख्य हुआ करते हैं, अभ्यासका अर्थ है पुनः-पुनः आवृत्ति । तो द्रौपदीका पञ्चपतित्व महाभारतमें बहुत बार आवृत्त हुआ है । उसके विवाहके उपक्रममें उसका पञ्चपतित्व बतलाया ही जा चुका है, अब उपसंहारमें भी उसका संकेत देखना चाहिये । (क) महाप्रस्थानमें जब पाण्डव हिमालयकी ओर गये, तब मार्गमें सबसे पूर्व द्रौपदी गिरी । भीमसेनने उसका कारण पूछा '(महाप्रस्थानिकपर्व २ । ३–५) । तब युधिष्ठिरने बताया—

पक्षपातो महानस्या विशेषेण धनंजये ।
तस्यैतत्फलमद्यैषा भुङ्क्ते पुरुषसत्तम ॥

(महा० २ । ६)

इसका पक्षपात अर्जुनमें अधिक था—इसलिये गिरी है । यहाँ द्रौपदीका पञ्चपतित्व स्पष्ट है । यदि अर्जुन ही एकमात्र उसका पति होता, पाँचों पाण्डव नहीं, तब उसका अर्जुनमें पक्षपात उचित ही था । पाँचोंकी पत्नी होनेपर तो उसका एकके साथ पक्षपात अनुचित होनेसे गिरना सोपपत्तिक है । तब द्रौपदीका पाँचोंकी पत्नी होना महाभारतके तात्पर्यका विषय सिद्ध हुआ ।

इस प्रकार जहाँ उपक्रम-उपसंहारमें उसका पञ्चपतित्व स्पष्ट है, वैसे ही अन्य प्रकरणोंमें भी उसकी बहुत आवृत्ति हुई है । दिङ्मात्र प्रदर्शन किया जाता है । (ख) नारदजीने पाँचों पाण्डवोंको कहा था—

पाञ्चाली भवतामेका धर्मपत्नी यशस्विनी ।
यथा वो नात्र भेदः स्यात् तथा नीतिर्विधीयताम् ॥

(आदिपर्व २०७ । १८)

'यह यशस्विनी पाञ्चाली आप पाँचोंकी एक पत्नी है, जिस प्रकार आपलोगोंमें परस्पर भेद—फूट न हो जाय, वैसी नीति कर लें ।' यदि यह पाँचोंकी पत्नी न होती, तो नारदजीका यह कथन व्यर्थ था । (ग)

ते (पाण्डवैः) लब्धा द्रौपदी भार्या द्रुपदश्च सुतैः सह।
सहायः पृथिवीलाभे वासुदेवश्च वीर्यवान् ॥
(सभापर्व ४८ । ४)

'उन पाँचोंने पत्नीरूपमें द्रौपदीको प्राप्त किया है' यह शकुनिने दुर्योधनको पाण्डवोंकी स्त्री द्रौपदीके लिये कहा है।

(घ) द्यूतक्रीड़ाके समय शकुनिने युधिष्ठिरको कहा—

अस्ति ते वै प्रिया राजन् ग्लह एकोऽपराजितः।
पणस्व कृष्णां पाञ्चालीं तयाऽऽत्मानं पुनर्जय ॥
(२ । ६५ । ३२)

यदि द्रौपदी एकमात्र अर्जुनकी पत्नी होती तो शकुनि युधिष्ठिरको द्रौपदीका दाँव लगानेके लिये न कह सकता। युधिष्ठिरके भी उसके पति होनेसे वह उससे स्वेच्छा व्यवहार कर सकता है, तब उसका पञ्चपतित्व स्पष्ट हो गया। महाभारतकी यह प्रसिद्ध घटना कभी आलङ्कारिक नहीं हो सकती।

(ङ) द्रौपदीने जुएमें हारकर दुर्योधनके दास्यसे अपने-आपको छुड़ानेके लिये भीष्म आदिसे पूछा कि 'जब युधिष्ठिर द्यूतमें पहले अपने-आपको हार गये थे, तब उनको मुझे दाँवपर लगानेका क्या अधिकार था ? इसमें आप व्यवस्था दीजिये।' तब श्रीभीष्मने उत्तर दिया कि—

न धर्मसौक्ष्म्यात् सुभगे विवेक्तुं
शक्नोमि ते प्रश्नमिमं यथावत्।
अस्वाम्यशक्तः पणितुं परस्वं
स्त्रियाश्च भर्तुर्वशतां समीक्ष्य ॥
(२ । ६७ । ४७)

'पति स्वयं पराजित होकर स्त्रीका स्वामी न होनेसे उसे दावमें नहीं लगा सकता, अथवा स्त्री सभी अवस्थाओंमें भर्ताके अधीन होती है और भर्ता स्वयं पराजित होकर भी स्त्रीमें स्वामित्व होनेसे उसे दाव लगा सकता है—यह मैं धर्मकी सूक्ष्मतावश व्यवस्थापित नहीं कर सकता।' इस भीष्म-वचनसे भी द्रौपदी युधिष्ठिरकी भी स्त्री सिद्ध होती है। तब एकमात्र अर्जुन ही उसका पति 'महाभारत' को इष्ट नहीं।

(च)—

तथा ब्रुवन्ती करुणं सुमध्यमा
भर्तॄन् कटाक्षैः कुपितानपश्यत्।
सा पाण्डवान् कोपपरीतदेहान्
संदीपयामास कटाक्षपातैः ॥
(२ । ६७ । ४२)

वैशम्पायनके इस वचनमें क्रोधमें भरे हुए द्रौपदीने अपने पतियोंकी ओर तिरछी दृष्टिसे देखा'……। 'सा भर्तॄन् पाण्डवान्' इस पदसे द्रौपदी पाँचोंकी पत्नी ग्रन्थकारको सम्मत सिद्ध होती है।

(छ)—

साधारणी च सर्वेषां पाण्डवानामनिन्दिता।
जितेन पूर्वं चानेन पाण्डवेन (युधिष्ठिरेण) कृतः पणः॥
(२ । ६८ । २३)

एतत् सर्वं विचार्याहं मन्ये न विजितामिमाम्।
(२ । ६८ । २४)

विकर्णके इस वचनसे द्रौपदी सब पाण्डवोंकी समान पत्नी सिद्ध होती है।

(ज) कर्णने कहा था—

एको भर्ता स्त्रिया देवैर्विहितः कुरुनन्दन।
इयं (द्रौपदी) त्वनेक (पञ्च) वशगा बन्धकीति विनिश्चिता॥
(२ । ६८ । ३५)

अस्याः सभामानयनं न चित्रमिति मे मतिः।
(२ । ६८ । ३६)

यदि द्रौपदी एकमात्र अर्जुनकी पत्नी होती, पाँचोंकी नहीं, तो कर्णको ऐसी निन्दा करनेका साहस न होता।

(झ) दुर्योधनने द्रौपदीको कहा था—

तिष्ठत्वयं प्रश्न उदारसत्त्वे
भीमेऽर्जुने सहदेवे तथैव।
पत्यौ च ते नकुले याज्ञसेनि
वदन्त्वेते वचनं त्वत्प्रसूतम् ॥
(२ । ७० । ३)

न विब्रुवन्त्यार्यसत्त्वा यथावत्
पतींश्च ते समवेक्ष्याल्पभाग्यान्।
(२ । ७० । ६)

यहाँपर तृतीय पद्यमें दुर्योधन द्रौपदीको सम्बोधित करके 'पति' शब्दका सम्बन्ध युधिष्ठिरके साथ करके युधिष्ठिरको उसका ज्येष्ठ पति बताता है और छठे पद्यमें 'ते पतीन्' इससे उसे पाँचोंकी पत्नी बता रहा है। इससे भी प्रकृतकी पुष्टि हो रही है।

(ञ) द्रौपदीने (२ । ७१ । २९-३० पद्यमें) अपनेमें युधिष्ठिरसे उत्पन्न हुए प्रतिविन्ध्य नामक पुत्रकी दासपुत्रता हटानेके लिये धृतराष्ट्रसे वर माँगा, फिर (७१ । ३२ पद्यमें) अवशिष्ट चार पाण्डवोंके दास्य हटानेके लिये दूसरा वर माँगा।

इससे स्पष्ट है कि वह केवल अर्जुनकी स्त्री नहीं थी, अपितु युधिष्ठिर आदि सबकी पत्नी थी ।

(ट)—

महाप्राज्ञः सौमकिर्यज्ञसेनः
कन्यां पाञ्चालीं पाण्डवेभ्यः प्रदाय ।
अकार्षीद् वै सुकृतं नेह किंचित्
क्लीबाः पार्थाः पतयो याज्ञसेन्याः ॥

(२ । ७७ । १०)

यहाँ द्रौपदीको दुःशासनने पाँचों पाण्डवोंकी पत्नी बताया है ।

(ठ)—

कुन्ती वनवासके गमनके समय द्रौपदीको उपदेश देती है—

वत्से शोको न ते कार्यः प्राप्येदं व्यसनं महत् ।
स्त्रीधर्माणामभिज्ञासि शीलाचारवती तथा ॥

(२ । ७९ । ४)

न त्वां सन्देष्टुमर्हामि भर्तॄन् प्रति शुचिस्मिते ।

यहाँके 'भर्तॄन्' इस बहुवचनसे द्रौपदी पाँचोंकी समान पत्नी सिद्ध होती है ।

इस प्रकार 'महाभारतमें अन्यत्र भी पुनः-पुनः आवृत्ति-रूप अभ्याससे तथा उपक्रम-उपसंहार आदिसे स्पष्ट हो जाता है कि महाभारतकारको द्रौपदी पाँचों पाण्डवोंकी वास्तविक ही पत्नी अभिप्रेत है, एकमात्र अर्जुनकी नहीं । जब पूर्वपक्षानुसार युधिष्ठिर आदि पाँचों प्रत्येकमें पञ्चभावसे थे, तब सबकी गृह-लक्ष्मी द्रौपदी भी उनकी वास्तविक पत्नी और वे भी सब उसके वास्तविक पति सिद्ध हुए, अन्यथा यदि पूर्वपक्षप्रोक्त व्युत्पत्तिके अनुसार अर्जुन ही पञ्चपाण्डवात्मक था, तो अर्जुनसे अतिरिक्त चार पाण्डवोंको भी आलङ्कारिक मानना पड़ेगा, पर पूर्वपक्षीको भी यह इष्ट नहीं । वैसे ही वह एक अर्जुनकी ही स्त्री थी, दूसरोंसे केवल 'पालनीय' थी, दूसरे उसके संरक्षक थे, वास्तविक पति नहीं, यह बात सिद्ध न हो सकी । इस कारण प्रत्येकसे द्रौपदीके पाँच पुत्र उत्पन्न होनेका वर्णन भी काल्पनिक सिद्ध नहीं हो सका (१ । २२३ । ७८–८०–८६) ।

इसके अतिरिक्त उस कालके लोग 'नैकस्यै बहवः सह-पतयः' इस सिद्धान्तके भी जाननेवाले थे । यह सिद्धान्त उस समय अपरिचित नहीं था । तभी द्रुपद आदिने स्वयं भी कहा था ।

एकस्य बह्व्यो विहिता महिष्यः कुरुनन्दन ।
नैकस्या बहवः पुंसः ।

(यह भी अपाणिनीय प्रयोग है ।)

श्रूयन्ते पतयः क्वचित् ।

(१ । १९४ ।

लोकवेदविरुद्धं त्वं नाधर्मं धर्मविच्छुचिः ।
कर्तुमर्हसि कौन्तेय कस्मात् ते बुद्धिरीदृशी ॥

(१ । १९४ ।

—तथापि धर्मभीरु पाण्डवोंका उसके अनुसरण... कारण है, वह है—

आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया ।

(रघुवंश १४ ।

इस अर्थको बतानेवाले 'मातृदेवो भव' इस प्रबल... आदर्शका पालन । दूसरा कारण यह है कि—पाँचों... पूर्वजन्ममें एक थे, तो वहाँ प्रेरणा भी वैसी होनी थी ।

जो यह कहा जाता है कि—'शेष सब रावणके दस... की तरह कुम्भकर्णकी छः मासकी नींदकी तरह... काल्पनिक है' इसपर यह जानना चाहिये कि रावण... सिर भी वास्तविक थे, तथा कुम्भकर्णकी छः मासकी नीं... वास्तविक थी, इसपर अन्य किसी निबन्धोंमें विचार... तब द्रौपदीको साध्वी अथवा एक पतिका सिद्ध करनेके... बताया गया उपाय कल्पित ही सिद्ध हुआ है, उसमें... प्राचीन या अर्वाचीनकी सहमति नहीं । जो कि नि... उत्पन्न होनेसे 'न कुलमस्य' इस व्युत्पत्तिसे अर्जुनको... माना जाता है, यह भी संगत नहीं जान पड़ता । क्या... का यह नाम इसी कारण था ? नियोगसे उत्पन्न भी कु... नहीं हुआ करते । क्या एकमात्र नकुल ही नियोगोत्प... यदि सभी, तो सभीको नकुल—कुलरहित क्यों नहीं कहा... क्यों क्षत्रिय वा कुरु माना गया । वस्तुतः यहाँ नि... साध्य है, क्योंकि धर्म, इन्द्र, वायु आदि मनुष्य नहीं...

अब हम महाभारतके अभिप्रायानुसार द्रौपदीको... पतिका एवं साध्वी सिद्ध करनेका प्रयत्न करते हैं, ... तो कहीं प्रक्षिप्तता बतानी पड़ती है, न आलङ्कारि... और न कहीं असङ्गति ही पड़ती है । विज्ञ पाठकगण ... प्रकारकी भी परीक्षा करें ।

पूर्वपक्षकी भाँति द्रुपदका भी यही आक्षेप था कि...

'अधर्मोऽयं मम मतो विरुद्धो लोकवेदयोः ।
न ह्येका विद्यते पत्नी बहूनां द्विजसत्तम ।'

(१९८ । ...

राजा द्रुपद योगविद्याके तत्त्वज्ञ ही नहीं थे, ... नहीं थी । वहाँपर योगिराज श्रीमान् व्यासजी उप...

गये। उन्होंने कुन्तीसे कहा कि—तुमने जो सब पुत्रोंको अज्ञानसे कहा था कि—जो वस्तु तुम लाये हो, उसको 'समेत्य भुङ्क्त' विभक्त करके इकट्ठे उपभुक्त करो, तब एकके साथ द्रौपदीके विवाहमें तुम्हारा कथन अनृत—असत्य हो जायगा और अनृतमें दोष होगा। पर तुम डरो नहीं। तुम अनृतभाषणके दोषसे मुक्त हो जाओगी। क्योंकि—द्रौपदीके साथ पाँच पाण्डवोंका विवाह अनिवार्य है। (१।९५।१९-२०)

इस विषयमें विज्ञ पाठक यह याद रखें कि—

आत्मनो वै शरीराणि बहूनि भरतर्षभ।
कुर्याद् योगी बलं प्राप्य तैश्च सर्वैर्महीं चरेत्।
प्राप्नुयाद् विषयान् कैश्चित् कैश्चिदुग्रं तपश्चरेत्।
संक्षिपेच्च पुनस्तानि सूर्यो रश्मिगणानिव॥

यह पद्य वेदान्तदर्शन (१।३।२७) शाङ्करभाष्यमें तथा अन्य ग्रन्थोंमें भी मिलता है। मार्कण्डेयपुराणमें भी कहा है—

योगीश्वरः शरीराणि कुर्वन्ति बहुलान्यपि। (५।२५)

'योगदर्शन' में भी कहा है—

प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकचित्तम् एकमनेकेषाम्। (४।५)

इन प्रमाणोंमें योगीकी अनेक शरीरोंके बनानेमें तथा उनसे अनेक कार्य करनेमें शक्ति बतायी गयी है। इसके अनुसार कोई पुरुष ब्रह्मचर्याश्रममें पूर्व-प्रारब्धके योगसे योग-सिद्धिको प्राप्त करके अपने एक शरीरके अनेक शरीर बना ले और वह एक उत्तम कन्याके साथ विवाह कर ले, तो उस एकके अनेक शरीरोंके साथ एक कन्याके विवाह करनेपर वह विवाह एक पुरुषके साथ ही सम्पन्न हुआ माना जायगा। वे आपाततः देखनेसे तो अनेक पुरुष हैं, परंतु वास्तवमें वह एक ही पुरुष है। आशा है योगसिद्धि माननेवाले आस्तिकों-को इसमें कोई भी आक्षेपका अवसर न होगा।

आर्य-समाजके स्वामी श्रीदयानन्दजीके लिये उनके जीवनचरित्रमें एक घटना मिलती है। श्रीमद्दयानन्दप्रकाशके अन्तिम प्रकरणमें लिखा है—'उन्हीं श्रीगुरुदत्तने क्या देखा कि एक ओर तो परम धामको पधारनेके लिये प्रभु परमहंस पलंगपर बैठे प्रार्थना कर रहे हैं, और दूसरी ओर वे व्याख्यान देनेके वेशमें सुसज्जित उसी कमरेकी छतके साथ लगे बैठे हैं। इस आत्मयोगके प्रत्यक्ष प्रमाणको पाकर पण्डित महाशय गुरुदत्तका चित्तस्फटिक आस्तिक भावोंकी प्रभासे चमचमा उठा (पृ० ५३०)। जब आजकलके अशक्तिमय समयमें भी यह योगशक्ति मानी जाती है, तो प्राचीनकालके शक्तिमय समयमें योगप्रक्रियाकी उन्नति न हो, ऐसा नहीं माना जा सकता।

यदि एकके अनेक अंश उससे अभिन्न न माने जायँ, हमारे एक शरीरमें भी हाथ-पाँव आदि अनेकों अंग हैं, तब उन सबके साथ हो रहा हुआ एक कन्याका विवाह भी अनेकोंके साथ हुआ माना जाय। परंतु ऐसा नहीं है। इसके अनुसार श्रीवेदव्यासने 'महाभारत' के आदिपर्वमें १९ अध्याय-में पञ्च-इन्द्रोपाख्यान सुनाया है, जिसका अभिप्राय यह है कि एक ही इन्द्रदेवने पाँच पाण्डवोंका रूप धारण किया है। उसी इन्द्रकी दिव्यलक्ष्मी दूसरे जन्ममें राजा द्रुपदके घर द्रौपदीके रूपमें प्रकट हुई है। इन्द्रदेव भी पाँच रूपोंमें प्रकट हुए हैं। जब योगी मनुष्य भी पूर्वकथित प्रमाणसे तथा **'योगी खलु ऋद्धौ अणिमादिसिद्धौ प्रादुर्भूतायां विकरणधर्मा (इन्द्रियाणां विशिष्टसामर्थ्यवान्) निर्माय सेन्द्रियाणि शरीरान्तराणि'** (३।२।१९) इस 'न्यायदर्शन' के प्रमाणसे बहुत-से रूप और बहुतसे शरीर बना सकते हैं, तो स्वभावसिद्ध योगी देवताओंके लिये तो क्या कहना ?

यही बात ब्रह्मसूत्रकी व्याख्या करते हुए श्रीस्वामी शंकराचार्यचरणोंने भी कही है—**'आत्मनो वै शरीराणि बहूनि भरतर्षभ।'** ... **'इत्येवंजातीयका स्मृतिरपि प्राप्ताणिमाद्यैश्वर्याणां योगिनामपि युगपदनेकशरीरयोगं दर्शयति, किमु वक्तव्यम् आजन्मसिद्धानां देवानाम्। अनेकरूपप्रतिपत्तिसम्भवाच्च एकैका देवता बहुभी रूपैरात्मानं प्रविभज्य'** ...। (१।३।२७)।

इस प्रकार इन्द्रदेवताके विषयमें उसके द्वारा बहुत शरीर धारण करनेके सम्बन्धमें भी जान लेना चाहिये। इसीलिये 'महाभाष्य' में भी इन्द्रदेवताके लिये कहा गया है—

एक इन्द्रो नैकस्मिन् क्रतुशते आहूतो युगपत् सर्वत्र भवति (१।२।६४)

अर्थात् एक ही इन्द्र सैकड़ों यज्ञोंमें बुलाया जाता हुआ एक दम सर्वत्र होता है। इस प्रकार वेदमें भी इन्द्रके अनेक शरीर धारण करनेका वर्णन आता है। जैसे कि—

'इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते' (ऋ० ६।४७।१८)
'रूपं रूपं मघवा इन्द्रः, बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं परि स्वाम्' (ऋ० ३।५३।८)

इस प्रकार निरुक्तमें देवताके बहुत रूपधारण दिखलाये हैं—

'महाभाग्याद् देवतायाः' (७।४।८)

भाग्य अणिमा आदि ऐश्वर्योंका नाम है।

इस प्रकार एक ही इन्द्र पाँच पाण्डवोंके रूपमें था। इन्द्रका अंश अर्जुन है, यह तो सुप्रसिद्ध ही है। उसके इधर दो बड़े भाई हैं, इधर दो छोटे भाई। तो इन्द्र ही युद्धमें स्थिर होनेसे 'युधिष्ठिर' नामवाला हुआ। शत्रुओंके लिये भयानक होनेसे 'भीम' वा भयानक सेनावाला होनेसे 'भीम-सेन' हुआ। मनुष्यकुलवाला न होनेसे 'नकुल' हुआ।

इन्द्रज्येष्ठा अस्मान् अवन्तु देवाः (यजुः ३३ । ५०)

इस प्रकार देवोंके सहित होनेसे 'सहदेव' नामका हुआ। युधिष्ठिरका वह 'धर्म' रूपसे, भीमका 'वायुरूपसे', नकुल-सहदेवका 'अश्विनीकुमार' रूपसे उत्पादक हुआ। इसीलिये वेदमें कहा है—

इन्द्रः सर्वा देवताः (शतपथ० ३ । ४ । २ । २)
'इन्द्रो वै सर्वे देवाः' (शत० १३ । २ । ७)

यहाँपर इन्द्रको सर्वदेवमय कहा है। इस प्रकार स्वर्गकी लक्ष्मी द्रौपदीरूपमें संसारमें प्रकट हुई। इस भाँति एक द्रौपदीका विवाह एक ही इन्द्रकी पाँच व्यक्तियोंसे जो हुआ, वह वास्तवमें एक ही इन्द्रसे हुआ। तब द्रौपदीके पातिव्रत्यमें अथवा पाण्डवोंकी धर्मप्राणतामें अथवा उनके चरित्रमें कोई भी त्रुटि नहीं पड़ती, क्योंकि पति वस्तुतः एक है।

इसीलिये मार्कण्डेय पुराणमें भी—

कस्माच्च पाण्डुपुत्राणामेका सा द्रुपदात्मजा।
पञ्चानां महिषी कृष्णा सुमहानत्र संशयः॥
(४ । ३२)

पाँच पाण्डवोंकी एक ही रानी द्रौपदी कैसे हुई? यह शङ्का करके वहाँ उत्तर दिलवाया गया है—

तेजोभागैस्ततो देवा अवतेरुर्दिवो महीम्।
प्रजानामुपकारार्थं भूभारहरणाय च॥
यदिन्द्रदेहजं तेजस्तन्मुमोच स्वयं वृषः।
कुन्त्यां जातो महातेजास्ततो राजा युधिष्ठिरः॥
बलं मुमोच पवनस्ततो भीमो व्यजायत।
शक्रवीर्यार्पितश्चैव जज्ञे पार्थो धनंजयः॥
उत्पन्नौ यमलौ माद्र्यां शक्ररूपौ महाद्युती।
पञ्चधा भगवान् इत्थमवतीर्णः शतक्रतुः॥
तस्योत्पन्ना महाभागा पत्नी कृष्णा हुताशनात्।
शक्रस्यैकस्य सा पत्नी कृष्णा नान्यस्य कस्यचित्।
योगीश्वराः शरीराणि कुर्वन्ति बहुलान्यपि॥
(५ । २५)

इसका यह भाव है कि योगीश्वर अपने शरीर बहुत बना लिया करते हैं। इन्द्रने भी अपने एक शरीरके कई अंश बना लिये, जिन्हें धर्म, वायु तथा स्वयं इन्द्रने कुन्तीमें तथा अश्विनीकुमारोंने माद्रीमें रखकर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन और नकुल-सहदेवको उत्पन्न किया।

बात स्पष्ट हो गयी, तब **'नैकस्यै बहवः सहपतयः।'** (गोपथ० २ । ३ । २०)

यह विरोध सिद्ध नहीं हुआ; क्योंकि वास्तवमें पति एक ही था। व्यावहारिक बाहरी भिन्नतामें उन्होंने जनताके हि[त] बाहरी नियमोंका भी यथावत् पालन किया। इस प्रकार [के] विषयमें ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कहा है—

पञ्चेन्द्राश्च हरेरंशा भविष्यन्ति प्रियास्तव।
(१५१ ।
स्वर्गलक्ष्मीर्महेन्द्राणां सा च पश्चाद् भविष्यति॥
अर्जुनाय ददौ राजा कन्यायाश्च स्वयंवरे।
पप्रच्छ मातरं वीरो वस्तु प्राप्तं मयाधुना॥
तमुवाच स्वयं माता गृहाण भ्रातृभिः सह।
शम्भोर्वरेण पूर्वं च परत्र मातुराज्ञया॥
द्रौपद्याः स्वामिनस्तेन हेतुना पञ्च पाण्डवाः।
चतुर्दशानामिन्द्राणां पञ्चेन्द्राः पञ्च पाण्डवाः॥
(श्रीकृष्णखण्ड ११५ ।

यहाँपर बताया गया है कि इन्द्रके चौदह भेद हैं, उनमें पाँच इन्द्रके रूप पाँच पाण्डव बने, स्वर्गकी [लक्ष्मी] द्रौपदी बनी। पूर्वजन्ममें महादेवके वरके कारण इस [जन्ममें] माताकी आज्ञासे द्रौपदीके पाँच पाण्डव पति बने। वस्तुतः इ[न्द्र] एक ही थे, द्रौपदी उन्हीं इन्द्रदेवकी स्वर्गकी लक्ष्मी थी। [जैसे] एक सूर्य मासोंकी उपाधिके भेदसे बारहकी संख्या[में माना] जाता है, वैसे ही एक इन्द्र चौदह प्रकारका माना जा[ता है]। जैसे एकके अनेक अंश भिन्न-भिन्न नहीं माने जाते, [वैसे] पाण्डव भी कथनमात्रमें पाँच थे, वस्तुतः एक ही इन्द्र [थे]। इससे द्रौपदी तथा पाण्डवोंके चरित्रमें कोई त्रुटि नहीं आ[ती]।

फलतः द्रौपदीको एक पतिका तथा साध्वी सिद्ध क[रनेका] यही वास्तविक प्रकार है। इस प्रकारमें न कहीं प्रक्षि[प्तता] माननी पड़ती है, न कहीं कोई असङ्गति पड़ती है, [न] यहाँ बलात् कोई कृत्रिमता करनी पड़ती है। पूर्व[के] प्रकारमें तो बहुत स्थलोंमें असंगति जान पड़ती [है]; बहुत स्थलोंमें 'महाभारत' के इतिहासका रूप परि[वर्तन] करना पड़ जाता है। जहाँ सर्वथा निर्मूलता हो [जाती] है। कहीं उस पक्षमें प्रक्षिप्तता वा स्वेच्छामात्रसे आलङ्का[रिकता] माननी पड़ जाती है। प्रत्युत उस पक्षको स्वीकार क[रनेपर] उसके सिद्ध करनेके लिये दिये गये महाभारतीय पद्य भ[ी उस] पक्षसे स्वयं विद्रोह करने लग जाते हैं, तब हमें निर्मूल [पक्षके] आश्रयणकी क्या आवश्यकता है? द्रौपदीके बाहर दे[खनेमें] पाँच पति थे। पर वस्तुतः वह पाँच रूप बने हुए ए[क] इन्द्रकी पत्नी थी। इस विषयमें पाश्चात्त्य संस्कृति प्र[भावित] पौरस्त्यों तथा शुद्ध पौरस्त्योंके अभिप्रायमें तार[तम्यका] विश्लेषण अपनी सूक्ष्म बुद्धिद्वारा कर लिया होगा।



शरणागत अर्जुन

अस्त्रकौशल (आदि० १३४।१८–२५)। रङ्गभूमिमें कर्णको इनकी फटकार (आदि० १३५ । १८)। कर्णसे लड़नेके लिये रङ्गभूमिमें इनका उद्यत होना (आदि० १३५।२१)। इनके द्वारा मन्त्रियोंसहित द्रुपदकी पराजय और उन्हें बंदी बनाकर द्रोणाचार्यको सौंपना (आदि० १३७।६३)। इनका द्रुपदकी 'अहिच्छत्रा' नगरीको जीतकर उसे द्रोणाचार्यको गुरुदक्षिणाके रूपमें देना (आदि० १३७। ७७)। 'ब्रह्मशिर' नामक अस्त्रकी परम्परा तथा उसके उपयोगका नियम बतलाकर द्रोणाचार्यका अर्जुनको विरोधी होनेपर अपने साथ भी लड़नेके लिये वचनबद्ध करना (आदि० १३८ । ९–१५)। इनके द्वारा यवनराज, सौवीरनरेश विपुल और सुमित्रके वध आदि पराक्रमका धृतराष्ट्रद्वारा चिन्तन (आदि० १३८ । २०–२३)। हिडिम्बके साथ युद्ध होते समय भीमसेनकी सहायताके लिये इनका उद्यत होना (आदि० १५३।१८-१९)। द्रौपदीको इन्हें समर्पित करनेके लिये द्रुपदका संकल्प तथा लाक्षागृहमें इनकी मृत्यु होनेका समाचार सुनकर द्रुपदका शोक (आदि० १६६ । ५६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ४९३)। चित्ररथ गन्धर्वको इनकी फटकार और इनके द्वारा गङ्गा आदि नदियोंकी महिमा (आदि० १६९।१६–२४)। युद्धमें इनके द्वारा चित्ररथपर आग्नेयास्त्रका प्रहार और उसकी मूर्छा (आदि० १६९।३१–३३)। चित्ररथको इनका जीवन-दान (आदि० १६९ । ३७)। चित्ररथके साथ इनकी मित्रता (आदि० १६९।३८–५८)। चित्ररथसे इन्हें 'चाक्षुषी' विद्या एवं दिव्य अश्वोंकी प्राप्ति (आदि० १६९ । ४३–४६)। इनपर चित्ररथके आक्रमणका कारण (आदि० १६९ । ६०)। चित्ररथपर इनकी विजयका कारण (आदि० १६९ । ७१)। किसी श्रोत्रिय ब्राह्मणका पुरोहितरूपमें वरण करनेके लिये इनको चित्ररथकी सलाह (आदि० १६९ । ७४)। चित्ररथको इनके द्वारा आग्नेयास्त्रका दान (आदि० १८२। ३)। पाञ्चाल-यात्राके समय मार्गमें अर्जुन आदि पाण्डवोंसे व्यासजीकी भेंट (आदि० १८४ । २)। द्रुपदनगरमें अर्जुन आदि पाण्डवोंका मातासहित एक कुम्भकारके घरमें ठहरना (आदि० १८४।६)। द्रौपदीके स्वयंवरमें इन्हें लक्ष्यवेधके लिये उद्यत देखकर इनके सम्बन्धमें ब्राह्मणोंके ऊहापोह (आदि० १८७।२–१६)। स्वयंवरमें इनका लक्ष्यवेध और द्रौपदीका इनके गलेमें जयमाला डालना (आदि० १८७ । २१–८७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। स्वयंवरमें आये हुए राजाओंके साथ ब्राह्मणवेशमें युद्ध करते समय श्रीकृष्णद्वारा बलरामजीको इनका परिचय देना (आदि० १८८ । २०)। स्वयंवरमें कर्णसे इनका युद्ध और इनके द्वारा उसकी पराजय

(आदि० १८९ । १०–२२)। द्रौपदीके विषयमें इनकी युधिष्ठिरसे बातचीत (आदि० १९० । ८–१०)। द्रौपदीके साथ इन (पाण्डवों) का विधिपूर्वक विवाह (आदि० १९७ । १३)। ब्राह्मणके गोधनकी रक्षाके लिये इनका आयुधागारमें प्रवेश और वनवास (आदि० २१२ । १९–३५)। हरिद्वारमें उलूपीद्वारा इनका नागलोकमें आकर्षण (आदि० २१३ । १३)। इनके द्वारा उलूपीके गर्भसे 'इरावान्' का जन्म (आदि० २१३ । ३६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। इनका मणिपूर जाकर चित्राङ्गदासे विवाह (आदि० २१४ । १५–२६)। इनके द्वारा चित्राङ्गदाके गर्भसे बभ्रुवाहनका जन्म (आदि० २१४ । २७)। इनका दक्षिणके तीर्थोंमें जाना और वर्गा आदि अप्सराओंका ग्राह-योनिसे उद्धार करना (आदि० २१५ एवं २१६ अध्यायोंमें)। पुनः मणिपुरसे आकर इनके द्वारा चित्राङ्गदाको आश्वासन और राजसूय-यज्ञमें आनेका आदेश (आदि० २१६ । २३–३१)। इनका गोकर्णतीर्थकी ओर जाना (आदि० २१६ । ३४)। प्रभास-क्षेत्रमें इनसे श्रीकृष्णकी भेंट (आदि० २१७ । ३-४)। रैवतक पर्वतपर इनका रातभर श्रीकृष्णके साथ विश्राम (आदि० २१७ । ८)। श्रीकृष्णके साथ इनका द्वारका-गमन (आदि० २१७ । १५)। सुभद्राहरणके विषयमें इनके लिये श्रीकृष्णकी सम्मति (आदि० २१८ । २१–२३)। सुभद्रासे विवाहके लिये इनको युधिष्ठिरकी सम्मति (आदि० २१८ । २५)। इनके द्वारा सुभद्राका हरण (आदि० २१९ । ७)। इनसे युद्ध करनेके लिये वृष्णिवंशियोंकी तैयारी (आदि० २१९ । १६–१९)। सुभद्रासे इनका विधिपूर्वक विवाह (आदि० २२० । १३)। पुष्करतीर्थमें इनके द्वारा वनवासके शेष समयका यापन (आदि० २२० । १४)। सुभद्राको गोपीवेशमें सजाकर उसे द्रौपदीके पास इनका भेजना (आदि० २२० । १९)। श्रीकृष्णके साथ इनका यमुनामें जलविहार (आदि० २२१ । १४–२०)। खाण्डववनको जलानेके लिये इनसे ब्राह्मणरूपधारी अग्निकी प्रार्थना (आदि० २२२ । ५–११)। इनका अग्निदेवसे दिव्य धनुष और रथ आदि माँगना (आदि० २२३ । १५–२१)। अग्निका इनको गाण्डीव धनुष, अक्षय तरकस एवं दिव्य रथ देना (आदि० २२४ । ६–१४)। खाण्डव-दाहके समय इन्द्र आदि देवताओंके साथ इनका भयानक युद्ध (आदि० २२६ अ०में)। इनके द्वारा तक्षक नागकी पत्नीका वध (आदि० २२६ । ६–८)। अश्वसेन (नाग) को इनका शाप (आदि० २२६ । ११)। इनसे इन्द्र आदि देवताओंकी पराजय तथा इन्द्रका स्वर्गको लौटना (आदि० २२६ । १३–२३)। मयासुरको इनका अभयदान

(आदि० २२७ । ४४) । इन्द्रद्वारा इन्हें समस्त दिव्यास्त्र प्रदान करनेका आश्वासन (आदि० २३३ । १०–१२) । अर्जुन और मयासुरकी बातचीत (सभा० १ । २–८) । मयासुरद्वारा इनको देवदत्त नामक शङ्खकी भेंट (सभा० ३ । २१) । जरासंधको जीतनेके विषयमें युधिष्ठिरको उत्साह दिलानेके लिये वीरोचित उद्गार (सभा० १६ । ७–१७) । श्रीकृष्ण और भीमसेनके साथ अर्जुनकी मगध-यात्रा (सभा० २० अ०में) । इनका दिग्विजयके लिये प्रस्थान (सभा० २५ । ७) । इनके द्वारा कुलिन्द आदि देशोंपर विजय तथा भगदत्तकी पराजय (सभा० २६ अ०में) । अन्तर्गिरि, उलूकपुर, मोदापुर आदि देशोंपर इनकी विजय (सभा० २७ अ०में) । किम्पुरुष, हाटक तथा उत्तर कुरुपर विजय प्राप्त करके इनका इन्द्रप्रस्थ लौटना (सभा० २८ अ०में) । राजसूयके बाद अर्जुनका द्रुपदको कुछ दूर पहुँचाना (सभा० ४५ । ४८) । कर्ण और उसके अनुगामियोंको तथा समस्त विपक्षियोंको मारनेके लिये अर्जुनकी प्रतिज्ञा (सभा० ७७ । ३२–३६) । वनयात्राके समय अर्जुनका बालू उड़ाते हुए जानेका रहस्य (सभा० ८० । ५–१५) । इनके द्वारा श्रीकृष्णका स्तवन (वन० १२ । ११–४३) । इनके द्वारा द्रौपदीको आश्वासन (वन० १२ । १३३) । इनका वनमें साथ गये हुए प्रजावर्गको आश्वासन (वन० २३ । १३-१४) । द्वैतवनमें निवास करनेके लिये युधिष्ठिरको इनकी सलाह (वन० २४ । ५–११) । तपके लिये प्रस्थान और इन्द्रकीलपर इनकी इन्द्रसे भेंट, बातचीत तथा इन्हें इन्द्रका वरदान (वन० ३७ । ३७–५८) । इनकी चार मासतक उग्र तपस्या (वन० ३८ । २२–२७) । इनके द्वारा मूक दानवका वध (३९ । ७–१६) । किरातरूपधारी भगवान् शङ्करके साथ इनका युद्ध (वन० ३९ । ३२–६४) । इनके द्वारा शिवजीकी स्तुति (वन० ३९ । ७४–८२) । इनकी पाशुपतास्त्रके लिये महादेवजीकी प्रार्थना (वन० ४० । ८) । इन्हें पाशुपतास्त्रकी प्राप्ति (वन० ४० । २१) । इन्हें यमद्वारा दण्डास्त्रकी प्राप्ति (वन० ४१ । २५-२६) । वरुणद्वारा पाश-अस्त्रकी प्राप्ति (वन० ४१ । ३१-३२) । कुबेरद्वारा अन्तर्धानास्त्रकी प्राप्ति (वन० ४१ । ४१) । इन्द्रका इन्हें स्वर्गमें चलनेका आदेश (वन० ४१ । ४३-४४) । अर्जुनके चिन्तन करनेपर मातलिद्वारा इन्द्रके रथका आनयन और उसपर बैठकर इनका स्वर्गलोकके लिये प्रस्थान (वन० ४२ । १०—३१) । स्वर्गलोकमें पहुँचनेपर इनका महान् स्वागत तथा इन्द्रसभामें पहुँचकर इनका इन्द्रदेवसे मिलना (वन० ४३ । ८—१५) । इन्द्रभवनमें इन्हें अस्त्र और संगीतकी शिक्षा (वन० ४४ । ३—११) । अर्जुनके सत्कारके लिये इन्द्रका चित्रसेनद्वा[रा] उर्वशीको संदेश एवं आदेश (वन० ४५ अ०में) । उर्वशीका कामपीड़ित होकर अर्जुनके पास जाना औ[र] अपने आनेका कारण बताना (वन० ४६ । २२–३५) । अर्जुनका उर्वशीका प्रस्ताव सुनकर दोनों हाथोंसे आँ[खें] बंद कर लेना और इसकी ओर देखनेका कारण ब[ताते] हुए उसे 'पूरुवंशकी जननी' कहना, साथ ही उसे अ[पने] लिये कुन्ती, माद्री और शचीका स्थान देना (वन० ४६ । ३६—४७) । उनके अस्वीकार करनेपर उर्वशी[का] इन्हें शाप देकर लौट आना (वन० ४६ अ०में) । अर्जुनको इन्द्रका आश्वासन (वन० ४६ । ५५-५९) । इनकी युधिष्ठिरकी रक्षाके लिये महर्षि लोमशसे प्रा[र्थना] (वन० ४७ । ३२-३३) । इन्द्रलोकसे लौटकर इन[का] गन्धमादन पर्वतपर भाइयोंसे मिलना (वन० १६[४ ।] ४) । इनके द्वारा अपनी तपस्या-यात्रा और पाशुपतास्त्र[की] प्राप्तिका वर्णन (वन० १६७ अ०में) । इनका इन्द्र[-] लोकमें प्राप्त हुई अस्त्रशिक्षा आदिका वृत्तान्त बता[ना] (वन० १६८ अ०में) । निवातकवचोंके सा[थ] अपने युद्धका वर्णन (वन० १६९ अ०से १[७२] अ० तक) । अपने द्वारा हिरण्यपुरवासी पौलोमों औ[र] कालकेयोंके वधका वृत्तान्त बताना (वन० १[७३] अ०में) । इनका भाइयोंको दिव्यास्त्रोंका प्र[दर्शन] दिखानेके लिये उद्यत होना (वन० १७५ । ७) । गन्धर्वोंके हाथसे कौरवोंको छुड़ानेके लिये अर्जुनकी प्रति[ज्ञा] (वन० २४३ । २१) । अर्जुनका गन्धर्वोंसे दुर्योधन[को] छोड़नेके लिये कहना और न छोड़नेपर उनके ऊ[पर] बाण बरसाना (वन० २४४ । १२—२१) । इनके द्वा[रा] चित्रसेन गन्धर्वकी पराजय (वन० २४५ । १—२६) । जयद्रथके अनुगामी पाँच सौ पर्वतीय महारथियोंका [वध] (वन० २७१ । ८) । सौवीरदेशके बारह राजकुमारों[का] वध (वन० २७१ । २७) । शिबि, इक्ष्वाकु, त्रि[गर्त] और सिन्धुदेशके क्षत्रियोंका विनाश (वन० २७[१ ।] २८) । द्वैतवनमें पानी लानेके लिये जाना और सरोव[रके तटपर] मूर्च्छित होना (वन० ३१२ । २२–३२) । अर्जुन[का] युधिष्ठिरको अज्ञातवासके लिये कुछ उपयोगी रा[य देना और अपना] नाम बताना (विराट० १ । १२-१३) । विराटनग[रमें] 'बृहन्नला' नामसे रहनेकी बात बताना (विराट० २ । २[४–] २७) । नपुंसक वेषमें राजा विराटके पास जाना और उ[नसे] अपने यहाँ रखनेके लिये प्रार्थना करना (विरा[ट०] ११ । २–९) । बृहन्नलारूपमें इनका द्रौपदीसे अ[पना] मनोगत दुःख प्रकट करना (विराट० २४ । २३—२[५]) । अपने आप (बृहन्नला) को सारथि बनानेके लिये द्रौप[दीके] द्वारा इनका उत्तरको कहलाना (विराट० ३६ । १०–१[२])

उत्तरका सारथि बनकर युद्धके लिये प्रस्थान (विराट० ३७ । २७) । भयभीत होकर भागते हुए उत्तरको दौड़कर पकड़ना (विराट० ३८ । ४०) । उत्तरको समझा-बुझाकर अपना सारथि बनाकर रथपर चढ़ाना (विराट० ३८ । ४६—५१) । शमीवृक्षसे अस्त्र उतारनेके लिये उत्तरको आदेश देना (विराट० ४० । ३) । उत्तरको पाण्डवोंके दिव्यायुधोंका परिचय देना (विराट० ४३ अ०में) । उत्तरकुमारसे अपने भाइयोंका परिचय देना तथा अपने दस नामोंकी पृथक्-पृथक् व्याख्या करना (विराट० ४४ । १३—२२) । उत्तरसे अपनी नपुंसकताका कारण बताना (विराट० ४५ । १३ के बाद दाक्षिणात्य पाठ १५ तक) । अपने अस्त्रोंका स्मरण करना और आनेपर उनसे वार्तालाप (विराट० ४५ । २७-२८) । इनका शङ्ख बजाना और डरे हुए उत्तरको धीरज देना (विराट० ४६ । ८—२३) । बाणोंद्वारा आचार्य द्रोणको प्रणाम करना और युद्धकी आज्ञा माँगना (विराट० ५३ । ७) । कौरवसेनापर आक्रमण करके विराटकी गौओंको लौटा लेना (विराट० ५३ । २४-२५) । कर्णपर आक्रमण (विराट० ५४ । ४-५) । इनके द्वारा विकर्णकी पराजय (विराट० ५४ । ९-१०) । राजा शत्रुंतपका वध (विराट० ५४ । ११—१३) । कर्णके भाई संग्रामजित्का वध (विराट० ५४ । १८) । कर्णकी पराजय (विराट० ५४ । १९—३६) । कौरवसेनाका संहार करके उसे खदेड़ देना (विराट० ५५ । १—३८) । उत्तरको कौरववीरोंका परिचय देकर कृपाचार्यके पास जाना (विराट० ५५ । ४१—६०) । कृपाचार्यको रथहीन और घायल करना (विराट० ५७ । ३६—३८) । द्रोणाचार्यके साथ युद्ध और उन्हें घायल करना (विराट० ५८ अ०में) । अश्वत्थामाके साथ युद्ध और उनके बाणोंको समाप्त कर देना (विराट० ५९ । १—१५) । कर्णके साथ पुनः युद्ध और उसे घायल करके खदेड़ना (विराट० ६० अ०में) । उत्तरके हतोत्साह होनेपर उसे आश्वासन देकर भीष्मके पास जाना और उनका ध्वज काट गिराना (विराट० ६१ । १३—३५) । दुःशासनको घायल करना (विराट० ६१ । ४०) । विकर्णको रथसे नीचे गिराना (विराट० ६१ । ४२) । दुःसह और विविंशतिको घायल करना (विराट० ६१ । ४५) । रणभूमिमें रक्तकी नदी प्रकट कर देना (विराट० ६२ । १७—२१) । समस्त कौरव महारथियोंको पराजित करना (विराट० ६३ । १—१४) । भीष्मके साथ अद्भुत युद्ध और उन्हें घायल करके युद्धसे विमुख करना (विराट० ६४ अ० में) । पुनः उनके द्वारा विकर्णकी पराजय (विराट० ६५ । १०) । दुर्योधनकी पराजय (विराट० ६५ । १३) । सम्मोहनास्त्रके द्वारा इनका सभी कौरव महारथियोंको मोहित कर देना (विराट० ६६ । ८—११) । युद्ध बंद होनेपर इनके द्वारा भीष्म आदि श्रेष्ठ पुरुषोंका अभिवादन एवं सम्मान (विराट० ६६ । २५-२६) । दुर्योधनके मुकुटका खण्डन (विराट० ६६ । २७) । उत्तरसे अपना रहस्य न खोलनेके लिये कहना (विराट० ६७ । ९-१०) । उत्तराको कौरव महारथियोंके वस्त्र देना (विराट० ६९ । १६) । विराटको युधिष्ठिरका परिचय देना (विराट० ७० । ९—२८) । अन्य चारों पाण्डवों और द्रौपदीका परिचय देना (विराट० ७१ । ३—१०) । उत्तरद्वारा अर्जुनके पराक्रमका वर्णन (विराट० ७१ । १९—२१) । उत्तराको पुत्रवधूके रूपमें स्वीकार करना (विराट० ७२ । ७) । युद्ध न करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको ही सहायकरूपमें स्वीकार करना (उद्योग० ७ । २१) । हस्तिनापुरको लौटते हुए संजयसे कौरवोंको संदेश देना (उद्योग० ३२ अध्यायके आदिमें दाक्षिणात्य पाठ) । संजयद्वारा इनकी वीरताका वर्णन (उद्योग० ५० । २६—२८) । कौरवोंसे संधिके विषयमें श्रीकृष्णके समक्ष अपने विचार प्रकट करना (उद्योग० ७८ अ० में) । आधा राज्य लेकर ही संधि स्वीकार करनेके लिये श्रीकृष्णसे कहना (उद्योग० ८३ । ५१—५३) । इनके द्वारा धृष्टद्युम्नको प्रधान सेनापति बनानेका प्रस्ताव (उद्योग० १५१ । १९—२५) । युद्धके लिये कही गयी श्रीकृष्णकी बातोंका समर्थन (उद्योग० १५४ । २५-२६) । अपने पराक्रमका वर्णन करके रुक्मीकी सहायताको अस्वीकार करना (उद्योग० १५८ । २७—३५) । उलूकसे दुर्योधनके संदेशका उत्तर (उद्योग० १६२ । ३७—४४) । उलूकसे दुर्योधनके संदेशका उत्तर (उद्योग० १६३ । ३—२३) । युधिष्ठिरके पूछनेपर त्रिलोकीको पलक मारते नष्ट करनेकी अपनी शक्ति बताना (उद्योग० १९४ । १०-११) । युधिष्ठिरकी आज्ञासे इनके द्वारा अपनी सेनाका वज्रव्यूहनिर्माण (भीष्म० १९ । ७) । 'श्रीकृष्णकी कृपासे विजय होती है' ऐसा कहकर युधिष्ठिरको आश्वासन (भीष्म० २० । ७—१७) । इनके द्वारा दुर्गादेवीका स्तवन और वरप्राप्ति (भीष्म० २३ । ४—१९) । इनका श्रीकृष्णसे दोनों सेनाओंके बीचमें रथ खड़ा करनेके लिये कहना (भीष्म० २५ । २१) । स्वजनोंको देखकर मोहग्रस्त हो युद्धसे खेद, धर्म-नाशका भय और दोष प्रकट करते हुए धनुष त्यागकर बैठ जाना (भीष्म० २५ । २६—४७) । किंकर्तव्यविमूढ़ होकर श्रीकृष्णसे अपने कर्तव्यके विषयमें शिक्षा देनेके लिये प्रार्थना करते हुए युद्ध न करनेका निश्चय करके बैठ

जाना (भीष्म० २६ । ४–९)। अर्जुनका भगवान्से गीताके उपदेश सुनना (भीष्म० २६ । ११ से ४२ अ० तक)। अर्जुनका भगवान्से स्थितप्रज्ञ पुरुषके लक्षण पूछना (भीष्म० २६ । ५४)। ज्ञान और कर्मकी श्रेष्ठताके विषयमें अर्जुनकी शङ्का (भीष्म० २७ । १-२)। बलात्कारसे पाप करानेमें हेतु क्या है, इस विषयमें इनका प्रश्न (भीष्म० २७ । ३६)। भगवान् श्रीकृष्णका जन्म आधुनिक मानकर अर्जुनका संदेह करना (भीष्म० २८ । ४)। संन्यास और निष्काम कर्मयोगकी श्रेष्ठताके विषयमें प्रश्न (भीष्म० २९ । १)। योगभ्रष्ट पुरुषकी गतिके सम्बन्धमें अर्जुनका प्रश्न और संशय-निवारणके लिये भगवान्से प्रार्थना (भीष्म० ३० । ३७–३९)। ब्रह्म, अध्यात्म और कर्मादिके विषयमें इनके सात प्रश्न (भीष्म० ३२ । १-२)। अर्जुनद्वारा भगवान्की स्तुति और उनके प्रभावका वर्णन करते हुए उनकी विभूतियोंको जाननेकी इच्छा प्रकट करना तथा भगवच्चिन्तनके विषयमें सात प्रश्न करके योगशक्ति और विभूतियोंको विस्तारसे कहनेके लिये प्रार्थना करना (भीष्म० ३४ । १२–१८)। अपने मोहकी निवृत्ति मानते हुए अर्जुन-द्वारा भगवद्वचनोंकी प्रशंसा एवं विश्वरूप देखनेकी इच्छा प्रकट करके उस रूपका दर्शन करानेके लिये भगवान्से प्रार्थना (भीष्म०३५ । १–४)। अर्जुनका भगवान्के विश्वरूपका दर्शन और स्तुति करना (भीष्म० ३५ । १५–३१)। भयभीत अर्जुनद्वारा भगवान्की स्तुति और चतुर्भुजरूपका दर्शन करानेके लिये प्रार्थना (३५ । ३५–४६)। साकार-निराकारके उपासकोंमें कौन श्रेष्ठ है, यह जाननेके लिये अर्जुनका प्रश्न (भीष्म० ३६ । १)। गुणातीत पुरुषके विषयमें अर्जुनके तीन प्रश्न (भीष्म० ३८ । २१)। शास्त्रविधिको त्यागकर श्रद्धासे पूजन करने-वाले पुरुषोंकी निष्ठाके विषयमें इनका प्रश्न (भीष्म० ४१ । १)। संन्यास और त्यागका तत्त्व जाननेके लिये अर्जुनका प्रश्न (भीष्म० ४२ । १)। अर्जुन और श्रीकृष्णके प्रभावका कथन (भीष्म० ४२ । ७८)। कवच उतारकर पैदल ही कौरव-सेनाकी ओर जाते हुए युधिष्ठिरसे उधर जानेका कारण पूछना (भीष्म० ४३ । १६)। प्रथम दिनके युद्धमें इनका भीष्मके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । ८–११)। भीष्मके साथ घोर युद्ध (भीष्म० ५२ अ०में)। दूसरे दिनके युद्धमें अद्भुत पराक्रम दिखाते हुए कौरवसेनाको खदेड़ देना (भीष्म० ५५ । १७–३५)। भीष्मको मारनेके लिये उद्यत हुए श्रीकृष्णको रोककर उनसे कर्तव्य-पालनके लिये प्रतिज्ञा करना (भीष्म० ५९ । १०१–१०३)। इनके द्वारा कौरवसेनाकी पराजय और तीसरे दिनके युद्धकी समाप्ति (भीष्म० ५९ । १११–१३२)। भीष्मके साथ द्वैरथ युद्ध (भीष्म० ६० । २५–२९)। भीष्मके साथ

घमासान युद्ध (भीष्म० ७१ अ०में)। अश्वत्थामाके सा… युद्ध (भीष्म० ७३ । ३–१६)। इनके द्वारा त्रिगर्तराज सुश… की पराजय और कौरवसेनामें भगदड़ (भीष्म० ८२ । १… इनका अद्भुत पराक्रम (भीष्म० ८५ । १–८)। इनके द्वा… रथसेनाका संहार (भीष्म० ८९ । ३५–३८)। इरावान्के व… इनके दुःखपूर्ण उद्गार (भीष्म० ९६ । २–१२)। दुर्योधन… प्रति भीष्मद्वारा इनके पराक्रमका वर्णन (भीष्म० ९८ । … १५)। द्रोणाचार्य और सुशर्माके साथ युद्ध (भीष्म० १०… ६–२३)। इनके द्वारा त्रिगर्तोंकी पराजय (भीष्म० १०४ । … ८)। श्रीकृष्णके चेतावनी देनेपर भीष्मके साथ यु… (भीष्म० १०६ । ४२–५४)। भीष्मको मारनेके लिये उ… श्रीकृष्णसे कर्तव्यपालनके लिये प्रतिज्ञा करना (भीष्म० १०… ७०–७५)। भीष्मवधके लिये उद्यत न होना (भीष्म० १०… ९१–९५ के बादतक)। श्रीकृष्णके समझानेपर भी… वधके लिये उद्यत होना (भीष्म० १०७ । १०३–१०६)। भी… वधके लिये शिखण्डीको प्रोत्साहन देना (भीष्म० १०८ । … ६०)। इनके भयसे पीड़ित होकर कौरवसेनाका पला… (भीष्म० १०९ । १३-१४)। दुःशासनके साथ इनका द्वन्द्व… (भीष्म० ११० । २८–४६; १११ । ५७-५८)। इ… अद्भुत पुरुषार्थ (भीष्म० ११४ अ०में)। भगद… साथ अर्जुनका द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ११६ । ५६–६० … भीष्मके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ११६ । ६२–७८)। भी… साथ घोर युद्ध और उन्हें मूर्छित करना (भीष्म० ११७ । … ६४)। दुःशासनके साथ युद्ध (भीष्म० ११७ । १२–१… शिखण्डीको आगे करके भीष्मपर आक्रमण (भीष्म० ११… ३७–५४)। भीष्मको रथसे गिराना (भीष्म० ११९ । ८… बाणशय्यापर सोये हुए भीष्मको तीन बाण मारकर त… देना (भीष्म० १२० । ४५)। दिव्यास्त्रद्वारा भीष्मके … शीतल जलकी धारा गिराना (भीष्म० १२१ । २४-२… धृतराष्ट्रद्वारा इनकी वीरताका वर्णन (द्रोण० १० । … २८)। नरस्वरूपमें इनकी महिमाका वर्णन (द्रोण० ११ । … ४२)। द्रोणाचार्यद्वारा पकड़े जानेके भयसे भीत युधि… को आश्वासन (द्रोण० १३ । ७–१४)। द्रोणाचार्यके … युद्ध और उनकी सेनाको पराजित करना (द्रोण० १६ । … ५१)। युधिष्ठिरकी रक्षाका भार सत्यजित्को … (द्रोण० १७ । ४४)। संशप्तकोंके साथ युद्ध और सुध… वध (द्रोण० १८ । २२ तथा १९ अ०में)। इनके … संशप्तकोंका वध (द्रोण० २७ । १८–२६)। सुश… भाईका वध और सुशर्माकी पराजय (द्रोण० २८ । ८–… भगदत्तके साथ युद्ध (द्रोण० २८ । १४–३० से २… तक)। श्रीकृष्णसे वैष्णवास्त्रका रहस्य पूछना (… २९ । २१–२४)। इनके द्वारा भगदत्तके हाथी सुप्र… का वध (द्रोण० २९ । ४३)। अर्जुनके द्वारा भगदत्त…

(द्रोण० २९ । ४७–५०) । वृषक और अचलका वध (द्रोण० ३०।११) । इनका शकुनिकी मायाका नाश करते हुए उसे परास्त करना (द्रोण० ३० । १५–२८) । कर्णके साथ युद्ध (द्रोण० ३२।५२–६२) । इनके द्वारा कर्णके तीन भाइयोंका वध (द्रोण० ३२ । ६०-६१) । अभिमन्युकी मृत्युपर विलाप (द्रोण० ७२ । १९–६५) । भाइयोंपर क्रोध प्रकट करना (द्रोण० ७२ । ७६–८३) । युधिष्ठिरके मुखसे अभिमन्युवधका वृत्तान्त सुनकर मूर्छित होना (द्रोण० ७३ । १६-१७) । जयद्रथवधकी प्रतिज्ञा करना (द्रोण० ७३ । २०–४९) । श्रीकृष्णसे जयद्रथवधके विषयमें वीरोचित वचन कहना (द्रोण० ७६ अ० में) । श्रीकृष्णसे पुत्रवधू उत्तरासहित सुभद्राको समझानेके लिये कहना (द्रोण० ७७ । ९-१०) । इनके द्वारा शङ्करजीका निशीथ-पूजन (द्रोण० ७९ । १–४) । (अर्जुनका स्वप्न–) स्वप्नमें श्रीकृष्णका आना और उनकी सम्मतिसे उनके साथ शिवजीके पास जाकर प्रणाम करना (द्रोण० ८० । २–४९) । इनके द्वारा भगवान् शिवकी स्तुति (द्रोण० ८० । ५५–६४) । भगवान् शिवसे दिव्यास्त्रकी याचना (द्रोण०८१।३) पाशुपतास्त्रकी प्राप्ति और श्रीकृष्णसहित शिविरको लौटना (स्वप्नकी समाप्ति) (द्रोण० ८१ । २१–२४) । पाण्डवसभामें अपना स्वप्न सुनाना(द्रोण०८४ । ६) । श्रीकृष्ण और सात्यकिके साथ रणयात्रा (द्रोण०८४ । २१) । सात्यकिको युधिष्ठिरकी रक्षाका भार सौंपना (द्रोण०८४ । २७–३४) । युद्धके आरम्भमें इनके द्वारा शङ्खनाद (द्रोण० ८८ । २०) । दुर्मर्षणकी गजसेनाका संहार (द्रोण० ८९ अ० में) । इनका दुःशासनके साथ युद्ध और उसका पलायन (द्रोण० ९० अ०में) । इनके द्वारा द्रोणाचार्यका सम्मान (द्रोण० ९१ । ३–६) । द्रोणाचार्यके साथ युद्ध और उन्हें छोड़कर आगे बढ़ना (द्रोण० ९१ । ११–३२; ९२ । ६–१४) । कृतवर्माके साथ युद्ध (द्रोण० ९२ । १६–२६) । श्रुतायुधके साथ युद्ध (द्रोण० ९२ । ३५–४३) । काम्बोजराज सुदक्षिणके साथ युद्ध और उसका वध (द्रोण० ९२ । ६१–७१) । श्रुतायु और अच्युतायुके साथ इनका युद्ध और उन दोनोंका वध (द्रोण०९३ । ७–२४) । इनके द्वारा नियुतायु और दीर्घायुका वध (द्रोण०९३ । २९) । म्लेच्छसेनाका संहार (द्रोण० ९३ । ३१–५९) । श्रुतायु और अम्बष्ठके साथ युद्ध और अम्बष्ठका वध (द्रोण० ९३ । ६०–६९) । विन्द-अनुविन्दका वध (द्रोण० ९९ । २५-२९) । संग्रामक्षेत्रमें इनका सरोवर प्रकट करना(द्रोण०९९ ।५९) । रणक्षेत्रमें बाणमय गृहका निर्माण (द्रोण० ९९ । ६२) । श्रीकृष्णके प्रोत्साहन देनेपर दुर्योधनको मारनेके लिये उद्यत होना (द्रोण० १०२ । १९–२१ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) दुर्योधनके साथ युद्ध और उसे परास्त करना (द्रोण० १०३ । २१–३२) । इनका कौरव महारथियोंके साथ घोर युद्ध (द्रोण०१०४ अ०में) । इनके ध्वजका वर्णन (द्रोण० १०५। ८-९) । इनका नौ महारथियोंके साथ युद्ध (द्रोण० १०५। ३३–३८) । कर्ण और अश्वत्थामाको खदेड़ना(द्रोण० १३९ । ११२–१२१) । सात्यकिको देखकर अर्जुनकी चिन्ता (द्रोण० १४१ । २६–३७) । श्रीकृष्णकी प्रेरणासे भूरिश्रवाकी दाहिनी भुजा काटना (द्रोण० १४२ । ७२) । भूरिश्रवाको उत्तर देना (द्रोण० १४३ ।१६–३२) । इनका सात कौरव महारथियोंके साथ युद्ध (द्रोण० १४५ अ०में) । इनके द्वारा कर्णकी पराजय(द्रोण० १४५ । ८३) । कौरवसेनाका भीषण संहार (द्रोण १४६ अ० में) । इनके द्वारा जयद्रथका सिर काटकर उसे बाणद्वारा उसके पिता वृद्धक्षत्रकी गोदमें डालना (द्रोण० १४६ । १२२–१२७) । कृपाचार्य और अश्वत्थामाको युद्धमें पराजित करना(द्रोण०१४७।९–११) । कृपाचार्यके मूर्च्छित होनेपर विलाप करना (द्रोण० १४७।१३–२७) । भीमसेनको कटुवचन सुनानेके कारण कर्णको फटकारना (द्रोण०१४८ । ८–२२) । कर्णपुत्र वृषसेनके वधकी प्रतिज्ञा करना (द्रोण०१४८ । १९-२०) । कर्णके साथ युद्ध करके उसे पराजित करना(द्रोण०१५९।६२–६४) । द्रोणाचार्यके साथ युद्ध और कौरवसेनाको खदेड़ना (द्रोण० १६१ अ०में) । इनके द्वारा राक्षसराज अलम्बुषकी पराजय(द्रोण०१६७ । ४७) । शकुनि और उलूककी पराजय (द्रोण० १७१ । ३८–४०) । कर्णके पराक्रमसे भयभीत हुए युधिष्ठिरसे प्रेरित हो इनका श्रीकृष्णसे अपना कर्तव्य पूछना (द्रोण० १७३ । २९–३४) । घटोत्कचको कर्णके साथ युद्ध करनेके लिये आदेश देना(द्रोण० १७३ । ६०–६२) । घटोत्कचवधसे प्रसन्न हुए श्रीकृष्णसे उनकी प्रसन्नताका कारण पूछना (द्रोण० १८० । ६–१०) । जरासंध आदिके वधके विषयमें श्रीकृष्णसे प्रश्न करना (द्रोण० १८१ । १) । उभयपक्षके सैनिकोंको सो जानेके लिये आदेश देना (द्रोण० १८४ । २६–२८) । द्रोणाचार्यके साथ घोर युद्ध करना(द्रोण०१८८ । २४-५३) । श्रीकृष्णसे सात्यकिकी प्रशंसा करना (द्रोण०१९१ । ४८–५३) । अश्वत्थामाके क्रोध और गुरुहत्याके भीषण परिणामका वर्णन करना (द्रोण०१९६ । २६–५३) । नारायणास्त्र, गौ और ब्राह्मणके सामने गाण्डीव रख देनेकी बात कहना (द्रोण० १९९ । ५३) । व्यासजीसे अपने आगे-आगे चलनेवाले त्रिशूलधारी पुरुषके विषयमें प्रश्न करना (द्रोण० २०२ । ४–८) । युधिष्ठिरके आदेशसे अर्धचन्द्रव्यूह बनाकर कर्णके साथ युद्ध करनेके लिये प्रस्थान (कर्ण० ११ । २८) । अश्वत्थामाके साथ घोर युद्ध और उसे परास्त करना (कर्ण० १६ अ०से १७ वें अ० तक) । इनके द्वारा हाथीसहित दण्डधारका वध (कर्ण० १८ । १३) । इनके द्वारा हाथीसहित दण्डका वध (कर्ण० १८ । १९) । संशप्तकोंका भीषण संहार (कर्ण० १९ । २–२६) ।

सुशर्माके छः भाइयों (सत्यसेन, चन्द्रदेव, मित्रदेव, श्रुतंजय, सौश्रुति और मित्रवर्मा) का वध(कर्ण० २७ । १२–२५) । कौरवसेनाकासंहार (कर्ण० ३० । १५–३६) । युधिष्ठिरके आदेशसे कर्णपर आक्रमण (कर्ण० ४६ । ३७) । इनके द्वारा संशप्तकोंका संहार (कर्ण० ४७ अ०में) । सुशर्माके साथ युद्ध और दस हजार संशप्तकोंका वध (कर्ण० ५३ अ०में) । संशप्तकोंका संहार और सुदक्षिणके भाईका वध(कर्ण० ५६।१००–११७) । अश्वत्थामाके साथ युद्ध और उसे परास्त करना (कर्ण० ५६ । १२१–१४२) । श्रीकृष्णसे युधिष्ठिरको देखनेके लिये उनके पास चलनेका आग्रह (कर्ण० ५८ । ३–७) । धृष्टद्युम्नको अश्वत्थामाके चंगुलसे छुड़ाना और अश्वत्थामाको पराजित करना (कर्ण० ५९ । ५४–६१) । इनके द्वारा अश्वत्थामाकी पराजय (कर्ण० ६४ । ३१-३२) । श्रीकृष्णके साथ युधिष्ठिरके पास जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम करना (कर्ण० ६५ । १७) । अबतक कर्णके न मारे जानेका कारण युधिष्ठिरसे बतलाते हुए उसके वधकी प्रतिज्ञा करना (कर्ण०६७ अ०में) । युधिष्ठिरका वध करनेको उद्यत होना (कर्ण० ६९ । ९–१५) । श्रीकृष्णसे अपनी प्रतिज्ञा-पूर्तिका उपाय पूछना (कर्ण० ६९ । ६७–७५) । 'तू' शब्द कहकर युधिष्ठिरको कटुवचन सुनाना (कर्ण० ७० । २–२१) । युधिष्ठिरका अपमान करनेके कारण आत्महत्याके लिये तलवार खींचना (कर्ण० ७० । २३) । युधिष्ठिरसे क्षमायाचना(कर्ण०७० । ३८-३९) । युधिष्ठिरसे कर्ण-वधकी प्रतिज्ञा करना (कर्ण० ७० । ४०-४१) । युधिष्ठिरके चरणोंमें प्रणिपात और कर्ण-वधकी प्रतिज्ञा करना (कर्ण० ७१ । ३५–३८) । कर्ण-वधके लिये मार्गमें जाते समय चिन्तामग्न होना (कर्ण० ७२ । १६-१७) । श्रीकृष्णसे इनके वीरोचित उद्गार (कर्ण० ७४ अ०में) । इनके द्वारा कौरवसेनाका भीषण संहार (कर्ण० ७७ । ५–२०) । श्रीकृष्णसे कर्णके पास चलनेके लिये कहना (कर्ण० ७९ । ७–१२) । इनके द्वारा कौरवसेनाका विध्वंस (कर्ण० ७९ । ७१–९० से ८० अ० तक; ८१ । ५–२०) । कौरवोंको ललकारते हुए वृषसेनका वध (कर्ण० ८५ । ३७) । युद्धके लिये इनका कर्णके सम्मुख उपस्थित होना (कर्ण० ८६ । २३) । कर्णवधके लिये श्रीकृष्णसे वार्तालाप (कर्ण० ८७ । १०५–११७) । कर्णके साथ इनका द्वैरथ युद्ध (कर्ण० ८९ अ०से ९० अ० तक) । इनके द्वारा राजकुमार सभापतिका वध (कर्ण० ८९ । ६४) । कर्णके सर्पमुख बाणसे इनके किरीटका गिरना (कर्ण० ९० । ३३) । इनके द्वारा कर्णका वध (कर्ण० ९१ । ५०) । रथसेनाका विध्वंस (कर्ण० ९३ । ४२–४६) । अश्वत्थामाके साथ युद्ध (शल्य० १४ अ०में) । श्रीकृष्णके समक्ष दुर्योधनके दुराग्रहकी निन्दा (शल्य० २४ । १६–५०) । कौरवोंकी रथसेनाका संहार (शल्य० २५ । १–१४) । दुर्योधनको मारनेके विषयमें श्रीकृष्णसे वार्तालाप (शल्य० २७ । १३–२७) । सत्यकर्मा, सत्येषु और पैंतालीस पुत्रोंसहित सुशर्माका वध (शल्य० २७ । ३८–४८) । श्रीकृष्णसे भीमसेन और दुर्योधनके बलाबलके विषयमें पूछना (शल्य० ५८ । २) । भीमसेनको अपनी जाँघ ठोंककर संकेत करना (शल्य० ५८ । २१) । युद्धके पश्चात् इनके रथका दग्ध होना (शल्य० ६२ । १३) । श्रीकृष्णसे अपने रथके दग्ध होनेका कारण पूछना (शल्य० ६२ । १६-१७) । अश्वत्थामासे भीमसेनकी रक्षाके लिये श्रीकृष्णके साथ जाना (सौप्तिक० १३ । ६) । अश्वत्थामाका अस्त्र-शान्त करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग (शल्य० १४ । ५-६) । व्यासजीको देखकर अपना अस्त्र लौटा लेना (सौप्तिक० १५ । २–४) गान्धारीके शापके भयसे श्रीकृष्णके पीछे छिपना (स्त्री० १५ । ३१) । धनकी महत्ता दिखाते हुए राजधर्म-पालनके लिये युधिष्ठिरको समझाना (शान्ति० ८ अ०में) युधिष्ठिरको समझाते हुए गृहस्थधर्मके पालनपर जोर देना (शान्ति० ११ अ०में) । युधिष्ठिरसे इनके द्वारा राजधर्मकी महत्ताका वर्णन करना (शान्ति० १५ अ०में) । राजा जनक और उनकी रानीका दृष्टान्त देकर युधिष्ठिरको संन्यास लेनेसे रोकना (शान्ति० १८ अ०में) । युधिष्ठिरसे क्षत्रिय-धर्मकी प्रशंसा करना (शान्ति० २२ अ०में) । युधिष्ठिरका शोक दूर करनेके लिये श्रीकृष्णसे प्रार्थना करना (शान्ति० २९ । २-३) । अर्जुनको युधिष्ठिरका शत्रुओं तथा दुष्टोंके दमनका कार्य सौंपना (शान्ति० ४१ । १३) । युधिष्ठिरका इन्हें रहनेके लिये दुःशासनका भवन देना (शान्ति० ४४ । ८-९) । युधिष्ठिरके पूछनेपर त्रिवर्गमें अर्थकी प्रधानता बताना (शान्ति० १६७ । ११–२०) । श्रीकृष्णसे उनके नामोंकी व्युत्पत्ति पूछना (शान्ति० ३४१ । ५–७) । श्रीकृष्णसे पुनः गीताका ज्ञान पूछना (आश्व० १६ । ५–७) । श्रीकृष्णसे परब्रह्मके स्वरूपके विषयमें प्रश्न करना (आश्व० ३५ । १) । श्रीकृष्णके प्रति इनके प्रशंसासूचक वचन (आश्व० ५२ । ६–२४) । श्रीकृष्णकी द्वारका-यात्राके लिये युधिष्ठिरसे आज्ञा माँगना (आश्व० ५२ । ४२-४३) । व्यासजीके समझानेसे पुत्रशोकसे निवृत्त होकर संतोष-लाभ करना (आश्व० ६२ । १८) । धन लानेके विषयमें पाँचों भाइयोंमें बातचीत; और भाइयोंके साथ जाकर इनका हिमालयसे मरुत्तका धन ले आना (आश्व० ६३ अ०से ६५ अ० तक) । अर्जुनकी

अश्वरक्षाके लिये नियुक्ति (आश्व० ७२ । १६)। सेनासहित अर्जुनका अश्वकी रक्षाके लिये उसके पीछे-पीछे पैदल ही जाना (आश्व० ७३ । ७-८)। अर्जुनके द्वारा त्रिगर्तोंकी पराजय, सूर्यवर्माकी हार, केतुवर्माका वध, धृतवर्माका घायल होना आदि (आश्व०७४ अ०में)। प्राग्ज्यौतिषपुरमें भगदत्तके पुत्र वज्रदत्तकी पराजय तथा उसके हाथीका विनाश (आश्व० ७६ । १७–१९)। अर्जुनका सैन्धवोंके साथ युद्ध और दुःशलाके अनुरोधसे उसकी समाप्ति (आश्व० ७७-७८ अ०)। अर्जुन और बभ्रुवाहनका युद्ध तथा अर्जुनकी मृत्यु (आश्व०७९ अ०में)। उलूपीके प्रयत्नसे संजीवनी मणिके द्वारा अर्जुनका पुनर्जीवन (आश्व० ८० अ०में)। उलूपीसे उसके और चित्राङ्गदाके युद्धस्थलमें आनेका कारण पूछना (आश्व० ८१ । १में)। अर्जुनकी पराजयका रहस्य तथा उलूपी और चित्राङ्गदासे विदा लेकर उनका पुनः अश्वके पीछे जाना (आश्व० ८१ अ०में)। अर्जुनद्वारा मगधराज मेघसंधिकी पराजय (आश्व० ८२ अ०में)। शकुनि-पुत्रकी पराजय, शकुनिकी स्त्रीके अनुरोधसे अर्जुनका युद्ध बंद कर देना (आश्व० ८४ अ०में)। श्रीकृष्णका युधिष्ठिरसे अर्जुनका संदेश कहना (आश्व० ८६ । ९–२१)। अर्जुनके विषयमें श्रीकृष्ण-युधिष्ठिरकी बातचीत, अर्जुनके दूत तथा अर्जुनका हस्तिनापुरमें आना (आश्व० ८७ । १–२२)। धृतराष्ट्रके श्राद्ध और दानके लिये धन माँगनेपर अर्जुनकी सहमति तथा भीमसेनके अस्वीकार करनेपर अर्जुनका उन्हें समझाना (आश्रम० ११-१२ अ०)। यादवोंसहित इनका वनमें जाकर धृतराष्ट्र और माता कुन्ती आदिके दर्शन करना तथा व्यासजीके द्वारा मृत व्यक्तियोंका आवाहन होनेपर उन सबसे मिलना, हस्तिनापुरको लौटना तथा धृतराष्ट्र आदिके दग्ध होनेके समाचारसे दुखी होना और उनके श्राद्ध आदि करना (आश्रम० २३–३९ अ०तक)। अर्जुनका दारुकके साथ द्वारका जाना, श्रीकृष्णपत्नियोंसे मिलना और उन्हें धीरज बँधाकर वसुदेवके पास जाना (मौसल० ५ अ०में)। अर्जुनसे मिलकर वसुदेवका विलाप करना और उनके लिये कहे गये श्रीकृष्णका संदेश सुनाना (मौसल० ६ अ०में)। 'अब पाण्डवोंके भी परलोकगमनका समय आ गया है, हम यहाँके लोगोंको इन्द्रप्रस्थ ले जायँगे'—ऐसा वसुदेवसे कहकर अर्जुनका दारुक तथा मन्त्रियोंको यात्राकी तैयारीके लिये आदेश देना तथा रातमें श्रीकृष्णभवनमें ठहरना (मौसल० ७ । १–१४)। वसुदेवका परलोकवास और अर्जुनद्वारा उनका दाह-संस्कार एवं वृष्णिवंशी कुमारोंद्वारा जलदान (मौसल० ७ । १५–५७)। अर्जुनका यादव-विनाशस्थलमें जाकर छोटे-बड़ेके क्रमसे सबका दाह करना, फिर श्रीकृष्ण-बलरामके शरीरोंका अनुसंधान कराकर उनका भी दाह-संस्कार करना (मौसल० ७ । २८–३१)। अर्जुनका श्रीकृष्णपत्नियों तथा द्वारकावासियोंको लेकर इन्द्रप्रस्थकी ओर प्रस्थान (मौसल० ७ । ३२)।मार्गमें लुटेरोंका आक्रमण और अर्जुन आदिका उनसे स्त्रियोंकी रक्षा करनेमें असमर्थ होना। शेष व्यक्तियोंको लेकर जाना। मार्तिकावतमें कृतवर्माके पुत्रको सरस्वतीके तटपर सात्यकिके पुत्रको उन प्रदेशोंका राजा बनाना और वज्रको इन्द्रप्रस्थमें अभिषिक्त करना (मौसल० ७ । ५१–७२)। अर्जुनका व्यासजीसे बीती बातें बताना और व्यासजीका उन्हें आश्वासन देते हुए पाण्डवोंको महाप्रस्थानके लिये प्रेरित करना (मौसल० ८ अ०में) अर्जुनका भाइयोंसहित महाप्रस्थान और मार्गमें अग्निदेव और भाइयोंके कहनेसे गाण्डीव धनुषको जलमें डाल देना (महाप्रा० १ । १–४२)। मार्गमें अर्जुनका गिरना और युधिष्ठिरका उनके गिरनेका कारण बताना (महाप्रा० २ । १८–२२)। अर्जुनका भगवान् श्रीकृष्णके पार्षदरूपसे दर्शन (स्वर्गा० ४ । ४)।

महाभारतमें आये हुए अर्जुनके नाम—ऐन्द्रि, भारत, भीमानुज, भीमसेनानुज, बीभत्सु, बृहन्नला, शाखामृगध्वज, शक्रज, शक्रनन्दन, शक्रसूनु, शक्रात्मज, शक्रसुत, श्वेताश्व, श्वेतहय, श्वेतवाह, श्वेतवाहन, देवेन्द्रतनय, धनंजय, गाण्डीवभृत्, गाण्डीवधन्वा, गाण्डीवधारी, गाण्डीवी, गुडाकेश, इन्द्ररूप, इन्द्रसुत, इन्द्रात्मज, इन्द्रावरज, जय, जिष्णु, कपिध्वज, कपिकेतन, कपिप्रवर, कपिवरध्वज, कौन्तेय, कौरव, कौरवश्रेष्ठ, कौरव्य, कौरवेय, किरीटभृत्, किरीटमाली, किरीटवान्, किरीटी, कृष्ण, कृष्णसारथि, कुन्तीपुत्र, महेन्द्रसूनु, महेन्द्रात्मज, नर, पाकशासनि, पाण्डव, पाण्डवेय, पाण्डुनन्दन, पार्थ, पौरव, फाल्गुन, प्रभञ्जनसुतानुज, सव्यसाची, सुरसूनु, तापत्य, त्रिदशेश्वरात्मज, वानरध्वज, वानरकेतन, वानरकेतु, वानरवर्यकेतन, वासवज, वासवनन्दन, वासवात्मज, वासवि, विजय आदि।

अर्जुनकी पत्नियोंके नाम—द्रौपदी, उलूपी, चित्राङ्गदा और सुभद्रा।

इनके पुत्रोंके नाम क्रमशः—श्रुतिकीर्ति, इरावान्, बभ्रुवाहन और अभिमन्यु।

(२) हैहयराज कार्तवीर्य, यमसभाके एक सदस्य (सभा० ८ । ११)। (विशेष देखिये कार्तवीर्य) (३) यमसभामें बैठनेवाले एक राजा (सभा० ८ । १७)।

अर्जुनक—एक व्याध; इसका गौतमी, सर्प, मृत्यु और कालके साथ संवाद (अनु० १ । २१-६८)।

अर्जुनवनवासपर्व—आदिपर्वका अवान्तर पर्व अध्याय २१२ से २१७ तक।

अर्जुनाभिगमनपर्व—वनपर्वका अवान्तर पर्व, अध्याय १२ से ३७ तक।

अर्थ—धर्मद्वारा श्रीदेवीसे उत्पन्न (शान्ति० ५९ । १३२)।

अर्धकीलतीर्थ—दर्भीमुनिके द्वारा प्रकट किया हुआ एक तीर्थ (वन० ८३ । १५३)।

अर्बुक–एक देश, जिसे सहदेवने जीता था (सभा० ३१ । १४) ।

अर्बुद–(१) गिरिव्रजनिवासी एक नाग (सभा० २१ । ९) । (२) आबू पर्वत (वन० ८२ । ५५) ।

अर्यमा–बारह आदित्योंमें एक, माता अदिति और पिता कश्यप हैं (आदि० ६५ । १५; शान्ति० २०८ । १५) ।

अर्वावसु–एक प्राचीन ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १०) । अर्वावसुकी तपस्याद्वारा परावसुकी ब्रह्महत्याके पापसे मुक्ति । अर्वावसुद्वारा सूर्यसम्बन्धी रहस्यमय वेदमन्त्रका अनुष्ठान तथा इससे संतुष्ट हुए सूर्यदेवताका अर्वावसुको मनोवाञ्छित वरदान (वन० १३८ अ० में) । हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें इनका श्रीकृष्णसे भेंट करना (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दाक्षि० पाठ) । उपरिचरके यज्ञमें इनका सदस्यताग्रहण (शान्ति० ३३६ । ७) । ब्रह्मतेजसे सम्पन्न, लोकस्रष्टा तथा रुद्र आदिके समान प्रभावशाली ऋषियोंमें इनकी गणना (अनु० १५० । ३०–३२) ।

अलकनन्दा–देवलोककी गङ्गा । गङ्गाजी जब देवलोकमें विचरण करती हैं, तब इनका नाम अलकनन्दा होता है और जब पितृलोकमें बहती हैं, तब ये वैतरणी कहलाती हैं तथा इस लोकमें आकर इनका नाम गङ्गा होता है (आदि० १६९ । २२) । गढ़वाल जिलेकी अलकनन्दा नामवाली नदी—जो विष्णुगङ्गा (धवलगङ्गा या धौली) और सरस्वती नामक छोटी नदियोंकी संयुक्त धारासे बनी है । यह गङ्गाकी सहायक नदी है (हिंदी महाभारत परिशिष्ट पृष्ठ ६) ।

अलका–कुबेरकी नगरी और पुष्करिणी (आदि० ८५ । ९; सभा० १० । ८) ।

अलम्बतीर्थ–एक दिव्य तीर्थ, जहाँ गरुड़जी कच्छप और हाथीको लेकर गये (आदि० २९ । ३९) ।

अलम्बुष–(१) कौरवपक्षका योद्धा एक महारथी राक्षसराज, जो राक्षस ऋष्यशृङ्गका पुत्र था (उद्योग० १६७ । ३३; द्रोण० १०६ । १६) । प्रथम दिनके युद्धमें घटोत्कचके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । ४२–४५) । सात्यकिद्वारा इसकी पराजय (भीष्म० ८२ । ४४–४५) । इरावान्‌के साथ युद्ध और इसके द्वारा उनका वध (भीष्म० ९० । ५६–७६) । अभिमन्युके साथ युद्ध और द्रौपदीपुत्रोंकी पराजय (भीष्म० १०० । ३१–५४) । अभिमन्युद्वारा इसका पराजित होना (भीष्म० १०१ । २८-२९) । सात्यकिके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० १११ । १–६) । घटोत्कचके साथ युद्ध (द्रोण० १४ । ४६-४७; २५ । ६१-६२) । कुन्तिभोजके साथ युद्ध (द्रोण० ९६ । १८–२०) । भीमसेनके साथ युद्ध (द्रोण० १०६ । १६-१७) । भीमसेनके साथ मायामय युद्ध और उनसे परास्त होकर भागना (द्रोण० १०८ । १३–४२) । इसका दूसरा नाम 'शालकटंकट' था । यह घटोत्कचद्वारा मारा गया (द्रोण० १०९ । २२-३१) । (२) कौरवपक्षका एक श्रेष्ठ राजा, जो सात्यकिद्वारा मारा गया (द्रोण० १४० । १८) । (३) एक राक्षसराज, जो अर्जुनसे पराजित हो युद्धका मैदान छोड़कर भाग गया (द्रोण० १६७ । ३७–४७) । (४) एक राक्षस, जटासुरका पुत्र; इसका दुर्योधनसे युद्धके लिये आज्ञा माँगना (द्रोण० १७४ । ६–८) । घटोत्कचके हाथसे युद्धमें मारा जाना (द्रोण० १७४ । ३७-३८) ।

अलम्बुषा–एक अप्सरा, जो महर्षि कश्यप और प्राधाकी पुत्री थी (आदि० ६५ । ४९) । इसने अर्जुनके जन्मोत्सवपर अन्य अप्सराओंके साथ आकर नृत्य किया (आदि० १२२ । ६१) । इसने महर्षि दधीचको मोहित किया (शल्य० ५१ । ७-८) ।

अलर्क–(१) काशी और करूषके अधिपति । ये बड़े सत्यप्रतिज्ञ थे (वन० २५ । १३) । ये यमराजकी सभाके एक सदस्य हैं (सभा० ८ । १८) । इन्होंने राज्य और धनको त्यागकर धर्मका आश्रय लिया, मांस-भक्षणका निषेध किया (अनु० ११५ । ६४) । अपनी इन्द्रियोंपर विजय पानेका प्रयत्न और इन्द्रियोंद्वारा उत्तर (आश्व० ३० । ५–२५) । ध्यानयोगद्वारा इन्हें परमसिद्धिकी प्राप्ति (आश्व० ३० । २८-२९) । (२) एक भयंकर कीट, जिसने कर्णकी जाँघमें काटा था (शान्ति० ३ । १३) ।

अलाताक्षी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६।८) ।

अलायुध–एक राक्षस, जो बकासुरका भाई और कौरवपक्षका योद्धा था। (द्रोण० ९५ । ४६; १७६ । ६) इसका घटोत्कचके साथ युद्ध (द्रोण० ९६ । २७-२८) भीमसेनके साथ युद्ध करनेके लिये इसका दुर्योधनसे आज्ञा माँगना (द्रोण० १७६ । ६–१०) । भीमसेनके साथ घोर युद्ध (द्रोण० १७७ अ०में) । घटोत्कचद्वारा वध (द्रोण० १७८ । ३१) ।

अलोलुप–धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ६७ । १०३) भीमसेनद्वारा इसका वध (कर्ण० ८४ । ६) ।

अवगाह–एक वृष्णिवंशी योद्धा (द्रोण० ११ । २७) ।

अवन्ती–(अवन्ति) भारतका एक जनपद—मालवा तथा उसकी राजधानी उज्जयिनी । (यह स्थान शिप्रा नदीके तटपर है और सात मोक्षदायिनी पुरियोंमेंसे एक है) (स

३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८०२; भीष्म० ९ । ४३) ।

अवभृथ–यज्ञान्त-स्नान (सभा० ४५ । ४०) ।

अवसान–एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ जानेसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है (वन० ८२ । १२८) ।

अवाकीर्ण–सरस्वतीतटवर्ती एक तीर्थ (शल्य० ४१ । १–३०) ।

अवाचीन–पूरुवंशीय राजा जयत्सेनके द्वारा विदर्भकुमारी सुश्रवाके गर्भसे उत्पन्न एक राजा, इनके द्वारा विदर्भराज-कुमारी मर्यादाके गर्भसे 'अरिह' की उत्पत्ति हुई (आदि० ९५ । १७-१८) ।

अविकम्पन–एक प्राचीन नरेश, जिन्हें ज्येष्ठ मुनिसे सात्वत धर्मकी प्राप्ति हुई (शान्ति० ३४८ । ४७) ।

अविक्षित्–(१) एक सम्राट्, महाराज मरुत्तके पिता (द्रोण० ५५ । ३७) । ये अङ्गिराके यजमान थे । इनके अनुपम गुणोंका वर्णन (आश्व० ४ । १७–२२) । (२) कुरुके उनकी पत्नी वाहिनीके गर्भसे उत्पन्न पाँच पुत्रोंमें जो अश्ववान् थे, उन्हींका दूसरा नाम अविक्षित् भी था (आदि० ९४ । ५०–५२) ।

अविज्ञातगति–'अनिल' नामक वसुके द्वारा शिवाके गर्भसे उत्पन्न पुत्र, इसके भाईका नाम 'मनोजव' था (आदि० ६६ । २५) ।

अविन्ध्य–एक बुद्धिमान् वृद्ध एवं श्रेष्ठ राक्षस, जिसने सीताजीको आश्वासन देनेके लिये अशोकवाटिकामें त्रिजटा-को भेजा था (वन० २८० । ५६-५७) । इसका सीताजीको मारनेके लिये उद्यत हुए रावणको समझाकर रोकना (वन० २८९ । २८–३२) । लङ्का-विजयके पश्चात् सीताजीको लेकर श्रीरामके पास आना (वन० २९१ । ६-७) ।

अविमुक्त–वाराणसीका मध्यभाग—अविमुक्त क्षेत्र; यहाँ प्राणोत्सर्ग करनेवालेको मोक्ष प्राप्त होता है (वन० ८४ । ७८-७९) ।

अव्यय–धृतराष्ट्र-कुलमें उत्पन्न हुआ एक सर्प, जो जनमेजय-के नागयज्ञमें दग्ध हुआ था (आदि० ५७ । १६) ।

अशनि–एक दिव्य महर्षि, जिन्होंने श्रीकृष्णके हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें उनसे भेंट की थी (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

अशोक–(१) भीमसेनका सारथि । इसका कलिङ्गराज श्रुतायुके साथ युद्ध करते समय रथहीन भीमके पास रथ पहुँचाना (भीष्म० ५४ । ७०-७१) । (२) एक क्षत्रिय राजा, जो अश्वनाम विख्यात असुरके अंशसे प्रकट हुआ था (आदि० ६७ । १४) । यही कलिंगराज चित्राङ्गदकी कन्याके स्वयंवरमें गया था (शान्ति० ४ । ७) ।

अशोकतीर्थ–शूर्पारक क्षेत्रके अन्तर्गत एक तीर्थ (वन० ८८ । १३) ।

अशोकवनिका–लङ्कापुरीकी सुप्रसिद्ध अशोकवाटिका, जहाँ सीताजी रखी गयी थीं (वन० २८० । ४१–४२) ।

अश्मक–(१) महाराज कल्माषपादके क्षेत्रज पुत्र । महर्षि वसिष्ठके द्वारा कल्माषपादकी पत्नी मदयन्तीके गर्भसे इनकी उत्पत्ति हुई (आदि० १७६ । ४७) । इनका अश्मक नाम होनेका कारण (आदि० १७६ । ४६) । इनके द्वारा 'पौदन्य' नगरका निर्माण (आदि० १७६ । ४७) । (२) (गोदावरी और माहिष्मतीके बीचका) एक देश (भीष्म० ९ । ४४) । (३) अश्मक देशका राजा, पाण्डव-पक्षका योद्धा, जो कर्णद्वारा जीता और बाँधा गया था (कर्ण०) । सम्भवतः इसीने राजा युधिष्ठिरको बछड़ेसहित दस हजार दुधारू गौएँ दी थीं (सभा० ५१ दाक्षिणात्य पाठ) । (४) एक ऋषिका नाम (शान्ति० ४७ । ५) ।

अश्मकी–यादव-वंशमें उत्पन्न एक राजकुमारी, प्राचिन्वान्-की स्त्री । इसके गर्भसे संजात नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई (आदि० ९५ । १३) ।

अश्मकदायाद (अश्मकपुत्र)–एक कौरवपक्षीय योद्धा, जो अभिमन्युद्वारा मारा गया था (द्रोण० ३७ । २२–२३) ।

अश्मपृष्ठ–गयामें स्थित प्रेतशिला तीर्थ । यहाँ पिण्ड देनेसे ब्रह्महत्या दूर होती है (अनु० २५ । ४२) ।

अश्मा–एक प्राचीन मुनि । प्रारब्धकी प्रबलता बताते हुए इनका जनकके प्रश्नका उत्तर देना (शान्ति० २८ । ५–५७) ।

अश्व–कश्यपपत्नी दनुके पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६५ । २४) ।

अश्वकेतु–गान्धारराजका पुत्र, जो कौरवपक्षका योद्धा था और अभिमन्युद्वारा मारा गया था (द्रोण० ४८ । ७) ।

अश्वग्रीव–कश्यपपत्नी दनुके पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६५ । २४) ।

अश्वतर–(१) एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १०) । (२) अश्वतर नागसे उपलक्षित प्रयागका एक तीर्थ (वन० ८५ । ७६) ।

अश्वतीर्थ–एक प्राचीन तीर्थ, जो कन्नौजके पास गङ्गाके तटपर स्थित है (वन० ९५ । ३) । इसके प्राकट्यका वर्णन (अनु० ४ । १७) ।

अश्वत्थामा–(१) कृपीके गर्भसे उत्पन्न द्रोणाचार्यका पुत्र (आदि० ६३ । १०७; १२९ । ४७) । इसका जन्म शिव, यम, काम तथा क्रोधके सम्मिलित अंशसे हुआ था (आदि० ६७ । ७२) । इसका अश्वत्थामा नाम होनेका कारण (आदि० १२९ । ४८-४९) । इसका आटेके पानीको दूध समझकर पीना और प्रसन्न होना (आदि० १३० । ५४) । कौरवराजकुमारोंके साथ इसका भी अपने पितासे अध्ययन (आदि० १३१ अध्याय) । युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें इसका पदार्पण (सभा० ३४ । ८) । कर्ण और दुर्योधनको फटकारते हुए इसका अर्जुनके विषयमें अपना उद्गार प्रकट करना (विराट० ५० अध्याय) । अर्जुनके साथ युद्ध और बाणोंसे खाली हो जानेपर इसका उनके समक्ष नीचा देखना (विराट० ५९ । १–१५) । दुर्योधनसे दस दिनमें पाण्डवसेनाको नष्ट करनेकी शक्तिका कथन (उद्योग० १९३ । १९) । प्रथम दिनके युद्धमें इसका शिखण्डीके साथ द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ४५ । ४६–४८) । दूसरे दिनके युद्धमें शल्य और कृपके साथ रहकर इसका धृष्टद्युम्न और अभिमन्युसे युद्ध करना (भीष्म० ५५ । २–७) । अर्जुनके साथ जूझना (भीष्म० ७३ । ६–१६) । इसके द्वारा शिखण्डीकी पराजय (भीष्म० ८२ । ३४–३८) । अनूप-नरेश नीलकी पराजय (भीष्म० ९४ । ३५-३६) । सात्यकिके प्रहारसे इसका मूर्छित होना (भीष्म० १०१ । ४६-४७) । विराट और द्रुपदके साथ द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ११० । १६) । विराट और द्रुपदके साथ द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० १११ । २२–२७) । सात्यकिके साथ द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ११६ । ९–१२) । प्रतिविन्ध्यके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । २९–३१) । इसके द्वारा राजा नीलका वध (द्रोण० ३१ । २४-२५) । इसका अभिमन्युको घायल करना (द्रोण० ३७ । २४–३१) । इसके ध्वजका वर्णन (द्रोण० १०५ । १०-११) । अर्जुनके बाणोंसे व्याकुल होकर अश्वत्थामाका भागना (द्रोण० १३९ । १२१–१२३) । अर्जुनके साथ युद्ध (द्रोण० १४५ अध्याय) । अर्जुनके साथ युद्ध और इसकी पराजय (द्रोण० १४७ । ११) । इसके द्वारा अंजनपर्वाका वध (द्रोण० १५६ । ८९-९०) । इसके द्वारा सुरथ, शत्रुंजय, बलानीक, जयानीक और जयाश्वका वध (द्रोण० १५६ । १८०-१८१) । इसके द्वारा राजा श्रुताह्वका वध (द्रोण० १५६ । १८२) । इसके द्वारा हेममाली, पृषध्र और चन्द्रसेनका वध (द्रोण० १५६ । १८३) । इसके द्वारा कुन्तिभोजके दस पुत्रोंका वध (द्रोण० १५६ । १८३) । घटोत्कचके साथ युद्धमें इसे पराजित करना (द्रोण० १५६ । १८४–१८६) । इसका कर्णको मारनेके लिये उद्यत होना (द्रोण० १५९ । ३–९) । अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये उद्यत दुर्योधनको रोकना (द्रोण० १५९ । ८४-८५) । दुर्योधनको उपालम्भपूर्ण आश्वासन (द्रोण० १६० । २–१७) । धृष्टद्युम्नके साथ युद्धमें सेनासहित उसे पराजित करना (द्रोण० १६० । ४१–५३) । इसके द्वारा घटोत्कचकी पराजय (द्रोण० १६६ । १८) । दुर्योधनसे कौरव सेनाके भागनेका कारण पूछना (द्रोण० १९३ । २९-३२) । कृपाचार्यसे अपने पिताके वधका समाचार सुनकर कुपित होना (द्रोण० १९३ । ६८–७०) । इसका दुर्योधनके समक्ष क्रोधपूर्ण उद्गार और नारायणास्त्रको प्रकट करना (द्रोण० १९४ अध्याय) । दुर्योधनको अपनी प्रतिज्ञा सुनाना (द्रोण० १९९ । ५–७) । इसके द्वारा नारायणास्त्रका प्रयोग (द्रोण० १९९ । १५) । पुनः नारायणास्त्र प्रकट करनेमें अश्वत्थामाका अपनी असमर्थता दिखाना (द्रोण० २०० । २७–२९) । धृष्टद्युम्नको परास्त करना (द्रोण० २०० । ४३-४४) । इसके द्वारा मालवनरेश सुदर्शनका वध (द्रोण० २०० । ८३) । इसके द्वारा पौरव वृद्धक्षत्रका वध (द्रोण० २०० । ८४) । इसके द्वारा चेदिदेशके युवराजका वध (द्रोण० २०० । ८५) । भीमसेनके साथ घोर युद्ध और उनको पराजित करना (द्रोण० २०० । ८७–१२८) । इसके द्वारा आग्नेयास्त्रका प्रयोग (द्रोण० २०१ । १६-१७) । श्रीकृष्ण और अर्जुनको आग्नेयास्त्रसे मुक्त देखकर सब कुछ मिथ्या कहते हुए उसका युद्धस्थलसे भागना (द्रोण० २०१ । ४५–४७) । मार्गमें व्यासजीसे भेंट और उनसे श्रीकृष्ण तथा अर्जुनपर आग्नेयास्त्रका प्रभाव न होनेका कारण पूछना (द्रोण० २०१ । ५०–५५) । कर्णको सेनापति बनानेकी सलाह देना (कर्ण० १० । १२–१७) । भीमसेनके साथ घोर युद्ध और मूर्छित होना (कर्ण० १५ अध्याय) । अर्जुनके साथ घोर युद्ध और पराजित होना (कर्ण० अ० १६ से १७ अ० तक) । पाण्ड्यनरेश मलयध्वजका वध (कर्ण० २० । ४६) । पाण्डव महारथियोंको परास्त करके युधिष्ठिरको भगा देना (कर्ण० ५५ अध्याय) । अर्जुनके साथ युद्धमें पराजित होना (कर्ण० ५६ । १२१–१४२) । धृष्टद्युम्नके वधकी प्रतिज्ञा करना (कर्ण० ५७ । ७–१०) । धृष्टद्युम्नको पराजित करके उसे जीते-जी खींचना (कर्ण० ५९ । ३९–५३) । अर्जुनद्वारा पराजित होना (कर्ण० ५९ । ६०-६१) । अर्जुनद्वारा पराजित होना (कर्ण० ६४ । ३१-३२) । पाण्डवोंके साथ संधि करनेके लिये दुर्योधनसे अनुरोध (कर्ण० ८८ । २१–२९) । दुर्योधनके पूछनेपर सेनापतिके लिये शल्यका नाम प्रस्तावित करना (शल्य० ६ । १५

२१) । अर्जुनके साथ युद्ध (शल्य० १४ अध्याय) । इसके द्वारा पाञ्चाल-महारथी सुरथका वध (शल्य० १४। ४३) । द्वैपायन सरोवरपर जाकर दुर्योधनके सामने सोमकोंके वधकी प्रतिज्ञा करना (शल्य० ३० । १९–२२) । सेनासहित युधिष्ठिरके वहाँ पहुँचनेपर हट जाना (शल्य० ३० । ६३) । दुर्योधनकी अवस्थापर विषाद करना (शल्य० ६५ । १३–२०) । पाञ्चालोंके वधकी प्रतिज्ञा करना (शल्य० ६५। ३४–३७) । सेनापति-पदपर अभिषिक्त हो दुर्योधनको हृदयसे लगाकर युद्धके लिये प्रस्थित होना (शल्य० ६५ । ४४) । उल्लूका कौवोंपर आक्रमण देखकर इसके मनमें क्रूर संकल्पका उदय होना (सौप्तिक० १ । ४५-५६) । कृतवर्मा और कृपाचार्यसे सलाह लेना (सौप्तिक० १ । ५९–६९) । कृतवर्मा और कृपाचार्यको अपना क्रूरतापूर्ण निश्चय बताना (सौप्तिक० ३ अध्याय) । कृपाचार्यके समझानेपर उन्हें उत्तर देना (सौप्तिक० ४। २२–३४) । कृपाचार्यके समझानेपर उन्हें उत्तर देना (सौप्तिक० ५ । १८–२९) । कृपाचार्य और कृतवर्माको अपना निश्चय बताना (सौप्तिक० ५ । ३४–३७) । पाण्डवोंके शिबिरद्वारपर एक अद्भुत पुरुषसे युद्ध और शस्त्रोंके अभावमें चिन्तित होकर भगवान् शिवकी शरण लेना (सौप्तिक० ६ अध्याय) । इसके द्वारा भगवान् शिवकी स्तुति (सौप्तिक० ७ । २–१२) । इसके सामने अग्निवेदी और भूतगणोंका प्राकट्य (सौप्तिक० ७ । १३–१५) । इसके द्वारा भगवान् शिवको आत्मसमर्पण (सौप्तिक० ७ । ५२) । भगवान् शिवद्वारा इसे खड्गकी प्राप्ति (सौप्तिक० ७ । ६६) । इसके द्वारा रातमें सोये हुए पाञ्चालों, सोमकों और द्रौपदी-पुत्रोंका संहार (सौप्तिक० ८ । १७–१३२) । दुर्योधनकी दशा देखकर विलाप करना (सौप्तिक० ९ । १९–४६) । दुर्योधनको पाञ्चालों और द्रौपदी-पुत्रोंके मारे जानेकी खबर सुनाना (सौप्तिक० ९ । ४८–५२) । श्रीकृष्णका इसके द्वारा अपनेसे सुदर्शनचक्र माँगनेकी चर्चा करना (सौप्तिक० १२ अध्याय) । पाण्डवोंके वधके लिये ऐषीकास्त्रका प्रयोग (सौप्तिक० १३ । १९–२२) । व्यासजीसे अपना अस्त्र लौटानेमें अपनी असमर्थता बताना (सौप्तिक० १५ । १३–१८) । व्यासजीके कहनेसे अपनी मणि अलग रखकर पाण्डवोंके गर्भपर अस्त्र छोड़ना (सौप्तिक० १५ । २८–३५) । अपने अस्त्रको उत्तराके गर्भपर गिरनेका संकल्प करना (सौप्तिक० १६ । ६-७) । श्रीकृष्णसे अभिशप्त हो पाण्डवोंको मणि देकर अश्वत्थामाका वनको प्रस्थान (सौप्तिक० १६ । २०) । धृतराष्ट्रसे मिलकर इसका व्यासाश्रमकी ओर जाना (स्त्री० ११।२१) ।

महाभारतमें आये हुए अश्वत्थामाके नाम–आचार्यनन्दन, आचार्यपुत्र, आचार्यसुत, आचार्यतनय, आचार्यसत्तम, द्रौणि, द्रौणायनि, द्रोणपुत्र, द्रोणसूनु, गुरुपुत्र, गुरुसुत, भारताचार्यपुत्र ।

(२) मालवनरेश इन्द्रवर्माका हाथी, जो भीमसेनद्वारा मारा गया था (द्रोण० १९० । १५) ।

अश्वनदी–कुन्तिभोज देशकी एक नदी, जो चर्मण्वतीमें मिली है । इसीमें कुन्तीने शिशु कर्णको पिटारीमें बंद करके छोड़ा था (वन० ३०८ । २२) ।

अश्वपति–(१) कश्यपपत्नी दनुके पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६५ । २४) । (२) मद्रदेशके राजा । संतान-प्राप्तिके लिये इनकी तपस्या और सावित्रीकी आराधना (वन० २९३। १–८) । इनकी सावित्री देवीसे वर-याचना (वन० २९३ । १४) । इन्हें सावित्री नामकी कन्या प्राप्त हुई (वन० २९३ । २३) । इनका सावित्रीको स्वयं वर खोजनेके लिये भेजना (वन० २९३ । ३३) । नारदजीसे सत्यवान्के गुण-दोषके विषयमें प्रश्न (वन० २९४ । १४) । राजर्षि द्युमत्सेनसे सावित्रीको पुत्रवधू बनानेके लिये प्रार्थना (वन० २९५ । १०–१२) । इन्हें मालवीके गर्भसे सौ पुत्रोंकी प्राप्ति (वन० २९९ । १३) ।

अश्वबन्ध–घोड़ोंको वशमें करनेवाला सवार (विराट० ३।३) ।

अश्वमेध–प्राचीन देश । इस देशके राजाका नाम रोचमान था, जिसे दिग्विजयके समय भीमसेनने बलपूर्वक जीत लिया था (सभा० २९।८) ।

अश्वमेधदत्त–शतानीककी पत्नी विदेहराजकुमारीके गर्भसे उत्पन्न पुत्र (आदि० ९५।८६) ।

अश्वमेधपर्व–आश्वमेधिकपर्वका एक अवान्तरपर्व (१—१५ अध्यायतक) ।

अश्वरथा–गन्धमादनपर्वतके नीचे आर्ष्टिषेणके आश्रमके पास बहनेवाली एक नदी (वन० १६०।२१) ।

अश्ववती–तीनों समय स्मरण करनेयोग्य नदियोंमेंसे एक (अनु० १६५।२५) ।

अश्ववान्–भरतवंशी महाराज कुरुके प्रथम पुत्र । इनकी माताका नाम 'वाहिनी' था । इनका दूसरा नाम 'अविक्षित्' था । इनके परीक्षित्, शबलाश्व, आदिराज, विराज, शाल्मलि, उच्चैःश्रवा, भयङ्कर तथा जितारि नामके आठ पुत्र थे (आदि० ९४।५०–५३) ।

अश्वशङ्कु–कश्यपपत्नी दनुके पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७।१०) ।

अश्वशिरःस्थान–एक पवित्र स्थान, स्वप्नमें शिवजीके पास जाते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन यहाँ गये थे (द्रोण० ८०।३२) ।

अश्वशिरा–(१) कश्यपपत्नी दनुके पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६५।२३) । (२) नरनारायणाश्रमके पास वैहायसकुण्डपर वेदपाठी भगवान् हयग्रीव (शान्ति० १२७।३) ।

अश्वसेन–तक्षकनागका पुत्र (आदि० २२६।५)। खाण्डव-वन-दाहके समय इसकी माताका अर्जुनद्वारा वध (आदि० २२६।८)। इन्द्रद्वारा इसकी रक्षा (आदि० २२६।९)। अर्जुनद्वारा इसे आश्रयहीनताका शाप (आदि० २२६।११)। कर्णद्वारा छोड़े गये सर्पमुख बाणमें प्रविष्ट होकर इसका अर्जुनके किरीटको दग्ध करना (कर्ण० ९०।३३)। कर्णद्वारा अस्वीकार किये जानेपर इसका अर्जुनपर आक्रमण (कर्ण० ९०।५०)। श्रीकृष्णद्वारा परिचय पाकर अर्जुनद्वारा इसका वध (कर्ण० ९०।५४)।

अश्वहृदय–घोड़ोंका हर्ष एवं उत्साह बढ़ानेवाला एक मन्त्र (द्रोण० १६।१८ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)।

अश्वातक–एक देश (भीष्म० ५१।१५)।

अश्विनीकुमार–नासत्य और दस्र नामक दो भाई, जो देवताओंके अन्तर्गत हैं। त्वष्टाकी पुत्री संज्ञाने अश्विनीरूप धारण करके भगवान् सूर्यके अंशसे अन्तरिक्षमें इन्हें उत्पन्न किया। ये संज्ञाकी नाकसे निकले हैं (आदि० ६६। ३५; अनु० १५०। १७-१८)। ये ब्रह्मा आदि अन्य देवताओंके क्रमसे स्वयं भी अण्डसे उत्पन्न हुए (आदि० १।३४)। आयोदधौम्यके शिष्य उपमन्युके द्वारा इनकी स्तुति (आदि० ३।५७–६८)। इनके द्वारा उपमन्युको वरदान (आदि० ३।७३)। इन्होंने माद्रीके गर्भसे नकुल और सहदेवको उत्पन्न किया (आदि०९५।६३)। ये देवताओंके साथ विमानपर बैठकर द्रौपदीका स्वयंवर देखने आये थे (आदि० १८६।६)। खाण्डववन-दाहके समय श्रीकृष्ण-अर्जुनसे युद्धके लिये आये हुए देवताओंमें ये भी थे (आदि० २२६।३३)। इन्होंने सुकन्यासे अपनेको पतिरूपमें वरण करनेका आग्रह करके उसके सतीत्वकी परीक्षा ली (वन० १२३।१०)। अपनेको देवताओंका श्रेष्ठ वैद्य बताया (वन० १२३।१२)। इनके द्वारा च्यवनको यौवनदान तथा सुकन्याद्वारा पतिकी पहचान (वन० १२३।१३–२१)। च्यवन मुनिके प्रभावसे इनका शर्यातिके यज्ञमें सोमपान (वन०अ०१२४से अ०१२५।१०)। इन अश्विनीकुमारोंने मान्धाताको पिताके पेटसे बाहर निकाला (द्रोण० ६२।४)। इनके द्वारा स्कन्दको वर्धन और नन्दन नामक दो पार्षद प्रदान (शल्य० ४५।३८)। इन्हें घीकी आहुति तथा उसके दानसे अधिक प्रसन्नता होती है (अनु० ६५।७)। आश्विनमासमें ब्राह्मणको घी दान करनेवाले पुरुषको अश्विनीकुमार रूप देते हैं (अनु० ६५।१०)। इक्कीस तथा उन्तीस दिनोंपर एक समय भोजन करनेवालोंको अश्विनीकुमारोंके लोककी प्राप्ति होती है (अनु० १०७। ९५, १२६)। कीर्तनीय नामोंमें नाम-निर्देश (अनु० १५०।८१)।

अश्विनीकुमारतीर्थ–जिसमें स्नान करनेसे रूपकी प्राप्ति होती है (वन० ८३।१७)।

अश्विनीतीर्थ–यहाँ स्नान करनेसे मनुष्य रूपवान् होता है (अनु० २५।२१)।

अष्टक–एक प्राचीन राजर्षि (आदि० ८६। ५)। ये राजा ययातिके दौहित्र थे (आदि० ८९। १३)। अष्टक और राजा ययातिका संवाद (आदि० अ० ८८से९२ अ०)। ययातिकी पुत्री माधवीके गर्भसे विश्वामित्रद्वारा इनकी उत्पत्ति हुई थी (उद्योग० ११९। १८)। इनके द्वारा ययातिको अपने पुण्यफलका दान (उद्योग० १२२।१३-१४)। ययाति एवं शिबि आदि राजाओंके साथ इनका स्वर्गगमन (उद्योग० ९३। १६ के बाद दा० पाठ)। स्वर्ग जाते समय इनके द्वारा शिबिकी श्रेष्ठताके विषयमें ययातिसे प्रश्न (उद्योग० ९३। १७)। देवर्षि नारदद्वारा इनके स्वर्गसे प्रथम गिरनेका वर्णन (वन० १९८। ४-५)। इनके महाराज प्रतर्दनद्वारा खड्गकी प्राप्ति (शान्ति० १६६। ८०)। अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर इनका शपथ (अनु० ९४। ३६)। प्रातः-सायं स्मरण करने योग्य तथा पापनाशक राजाओंमें अष्टककी भी गणना (अनु० १६५। ५६)।

अष्टजिह्व–स्कन्दके सैनिकोंमेंसे एक (शल्य० ४५। ६२)।

अष्टवसु–गणदेवता। धर्मद्वारा दक्षकी विभिन्न कन्याओंसे उत्पन्न। इनकी संख्या आठ है, जिनके नाम इस प्रकार हैं—धर, ध्रुव, सोम, अह, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास (आदि० ६६। १७—२०)। पुराणोंमें इनके नामोंके सम्बन्धमें मतभेद पाया जाता है। जैसे विष्णुपुराणके अनुसार—आप, ध्रुव, सोम, धर्म, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास (विष्णु० १। १५)। भागवतके अनुसार—द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु और विभावसु (भागवत ६। ६) हरिवंशके अनुसार—आप, धर, ध्रुव, सोम, अनिल, अनल, प्रत्यूष तथा प्रभास (१।३)। इससे परस्पर कोई विरोध नहीं समझना चाहिये; क्योंकि एक व्यक्तिके अनेक नाम हो सकते हैं और विभिन्न स्थानोंमें उसे अलग-अलग नामोंसे कहा जा सकता है। इन सबका विशेष परिचय उन-उन नामोंमें देखना चाहिये। गङ्गाके गर्भसे शान्तनुद्वारा इन सबका जन्म (आदि० ९८। १२) वसिष्ठके द्वारा इन सबको मनुष्ययोनिमें जन्म लेनेका शाप (आदि० ९९। ३२)। प्रार्थना करनेपर 'द्यो'के अतिरिक्त इन सबको यथाशीघ्र शापसे मुक्त होनेका वसिष्ठजीद्वारा आश्वासन (आदि० ९९। ३८-३९)। इनके द्वारा परशुरामजीसे युद्ध करते समय भीष्मको प्रस्वापास्त्रका दान (उद्योग० १८३। ११—१३)। मृत्युके लिये

विचार करते हुए भीष्मके विचारका समर्थन (भीष्म० ११९ । ३७)।

अष्टविवाह–ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस तथा पैशाच—ये आठ विवाह (आदि० ७३।८-९)।

अष्टकपाल–आठ कपालोंद्वारा संस्कारपूर्वक तैयार किया हुआ पुरोडाश (शान्ति० २२१ । २४)।

अष्टावक्र–महर्षि कहोडके द्वारा उद्दालककुमारी सुजाताके गर्भसे उत्पन्न एक मुनि। पिताके अध्ययनमें बालकका दोष निकालना (वन० १३२ । ८—१०)। इनका राजा जनकके यज्ञमें जाना (वन० १३२ । २३)। द्वारपाल-से वार्तालाप (वन० १३३ । ५—१६)। राजा जनकसे प्रश्नोत्तर (वन० १३३ । २०—३०)। बंदीके साथ शास्त्रार्थ करके उसे हराना (वन०१३४।१–२१)। समङ्गामें स्नान करनेसे इनके अङ्गोंका सीधा होना (वन० १३४।३९) महर्षि वदान्यसे उनकी कन्या माँगना (अनु० १९।११)। वदान्यके कहनेसे इनका उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान (अनु० १९ । २७)। कुबेरके भवनमें विश्राम (अनु० १९ । ४०-४१)। नारी-रूपधारिणी उत्तर दिशाके साथ संवाद (अनु० १९ । ७३ से २१ । ११ तक)। वदान्य ऋषिसे अपना सब समाचार कहना (अनु० २१ । १५-१६)। वदान्यकी कन्या सुप्रभाके साथ इनका विवाह (अनु० २१ । १८)।

अष्टावक्रतीर्थ–इसमें तर्पण करके बारह दिनोंतक निराहार रहनेसे नरमेधयज्ञका फल मिलता है (अनु० २५ । ४१)।

असमञ्जा–सगर और शैव्यासे उत्पन्न एक इक्ष्वाकुवंशी राजा, जो प्रजाके बालकोंको सरयू नदीमें फेंक देता था। प्रजाकी आर्त पुकारसे पिघलकर सगरने मन्त्रीद्वारा असमञ्जाको निकलवा दिया (वन० १०७। ४३; शान्ति० ५७ । ७–९)।

असिक्नी–भारतवर्षके पंजाब प्रान्तकी एक नदी, चन्द्रभागा या चिनाव (भीष्म० ९ ।२३)।

असित–(१) एक राजा (द्रोण० ६२ । ११; शान्ति० २९ । ८८)। (२) एक ऋषि (शान्ति० ४७ । ७)।

असितदेवल–एक प्रसिद्ध ऋषि। महाभारतमें अनेक स्थलों-पर इनका नाम आया है। इन्होंने पितरोंको पंद्रह लाख श्लोकवाला महाभारत सुनाया था (आदि० १ । १०७)। इन्होंने जनमेजयके सर्पसत्रमें सदस्यता ग्रहण की थी (आदि० ५३ । ८)। राजा युधिष्ठिरके अभिषेककालमें व्यास और नारदजी आदिके साथ ये भी उपस्थित थे (सभा० ५३ । १०)। इन्होंने अञ्जनपर्वतपर युधिष्ठिरको उपदेश दिया (सभा० ७८ । १५)। आदित्यतीर्थकी महिमाके प्रसङ्गमें इनके चरित्रका वर्णन (शल्य० ५० अध्याय)। जैगीषव्य मुनिसे समताके विषयमें इनका प्रश्न (शान्ति० २२९ । ५)। नारदजीके सृष्टिविषयक प्रश्नका उत्तर (शान्ति० २७५ । ४–३९)। शिवमहिमा-के विषयमें इनका युधिष्ठिरसे अपना अनुभव बताना (अनु० १८ । १७-१८)।

असितध्वज–कश्यप और विनताके एक पुत्र, जो अर्जुनके जन्मोत्सवमें पधारे थे (आदि० १२२ । ७३)।

असितपर्वत–आनर्तदेशमें नर्मदाके तटपर स्थित एक पर्वत (वन० ८९ । ११)।

असिता–एक अप्सरा, जो अर्जुनके जन्मोत्सवमें आयी थी (आदि० १२२ । ६३)।

असिपत्रवन–एक नरक, जिसके मायामयस्वरूपका युधिष्ठिर-को दर्शन कराया गया था (स्वर्गारोहण० २ । २३)। यमलोकका असिपत्र नामक वन (शान्ति० ३२१। ३२)।

असिलोमा–कश्यपपत्नी दनुके पुत्रोंमेंसे एक(आदि० ६५।२३)।

असुरा–कश्यप और प्राधाकी आठ पुत्रियोंमेंसे एक (आदि० ६५ । ४१)।

अस्ताचल–पश्चिम दिशाका एक पर्वत (उद्योग० ११० । ६)।

अस्ति–मगधनरेश जरासंधकी पुत्री। कंसकी पत्नी। सहदेव-की बहिन। इसकी दूसरी बहिनका नाम 'प्राप्ति' था। वह भी कंसकी ही पत्नी थी (सभा० १४ । २९–३२)।

अहंयाति–पूरुवंशी राजा संयाति तथा रानी वराङ्गीके पुत्र। इनके द्वारा भानुमतीके गर्भसे सार्वभौम नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई (आदि० ९५ । १४-१५)।

अह–धर्मपुत्र। आठ वसुओंमेंसे एक। इसकी माताका नाम 'रता' है (आदि० ६६ । १७–२०)।

अहः (या अहन्)–एक तीर्थ, जिसमें स्नान करनेसे सूर्य-लोककी प्राप्ति होती है (वन० ८३ । १००)।

अहर–कश्यप और दनुके पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६५ ।२५)।

अहल्या–महर्षि गौतमकी पत्नी। इनका उत्तङ्कसे गुरुदक्षिणा-के रूपमें सौदासकी रानीके कुण्डल माँगना (आश्व० ५६ । २९)। गौतम ऋषिसे उत्तङ्कके कल्याणके लिये कहना (आश्व० ५६ । ३४)। इन्द्रद्वारा इनकी धर्षणा (शान्ति० ३४२ । २३)।

अहल्याह्रद–महर्षि गौतमके तपोवनमें अहल्याह्रद नामक तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको परमगति प्राप्त होती है (वन० ८४ । १०९)।

अहिच्छत्र–उत्तर पाञ्चालवर्ती राज्य। यह द्रोणाचार्यके अधिकारमें था। इसे आचार्य द्रोणने अर्जुनद्वारा द्रुपदको पराजित करके प्राप्त किया था (आदि० १३७। ७३–७६)।

अहिच्छत्रा–एक प्राचीन नगरी, जो अहिच्छत्र राज्यकी राजधानी थी। अर्जुनने द्रुपदको जीतकर इसे गुरुदक्षिणामें द्रोणाचार्यको दिया था (आदि० १३७। ७३–७७)।

अहिता–भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी (भीष्म० ९। २१)।

अहिर्बुध्न्य—ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक। ये सुवर्णके रक्षक हैं (उद्योग० ११४। ४)। ग्यारह रुद्रोंमें इनके नाम अनेक स्थलोंपर आये हैं जैसे (शान्ति० २०८। १९-२०)।

अहोवीर्य–वानप्रस्थ-धर्मका पालन करनेवाले एक मुनि (शान्ति० १४४। १७)।

आ

आकर्ष—'आकर्ष' नामक देश तथा वहाँके निवासी (सभा० ३४। ११)।

आकाशजननी–परकोटेमें बने हुए छोटे-छोटे छिद्र, जिसके रास्ते तोपोंसे गोलियाँ छोड़ी जाती हैं (शान्ति० ६९। ४३)।

आकृति–सुराष्ट्र देशका राजा। कौशिकाचार्य सहदेवद्वारा इनकी पराजय (सभा० ३१। ६१)।

आकृतीपुत्र–'आकृती' नामवाली माताका पुत्र रुचिपर्वा। पाण्डव-पक्षीय योद्धा, जो भगदत्तके द्वारा मारा गया (द्रोण० २७। ५०–५२)।

आक्रोश–महोत्थ देशका राजा, जिसे नकुलने जीता था (सभा० ३२। ५-६)।

आग्निवेश्य–एक प्राचीन महर्षि, जिन्होंने बृहस्पतिसे कवच तथा उसे बाँधनेकी विद्या (मन्त्रयुक्त विधि) प्राप्त की, जो धनुर्वेदके आचार्य और द्रोणाचार्यके गुरु थे (द्रोण० ९४। ६७-६८)।

आग्रायण–भानु (मनु) नामक अग्निके चौथे पुत्र (वन० २२१। १३)।

आग्रेय–एक गणतन्त्र राज्य, जिसे कर्णने जीता था (वन० २५४। १९-२१)।

आङ्गरिष्ठ–प्राचीन नरेश। अपने द्वारा मोहवश पाप हो जानेके कारण उसके प्रायश्चित्तके विषयमें कामन्दक मुनिसे राजाका प्रश्न (शान्ति० १२३। १३-१४)।

आङ्गिरसी–एक ब्राह्मणकी पतिव्रता पत्नी। राक्षसभावापन्न कल्माषपादद्वारा इसके पतिका भक्षण। इसके द्वारा कल्माषपादको पत्नी-समागम करते ही मृत्यु होने एवं वशिष्ठद्वारा पुत्र प्राप्त होनेका शाप (आदि० १८१। १६-२२)।

आङ्घ्रिक–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४। ५४)।

आजगर–अजगर वृत्तिसे रहनेवाले एक मुनि, जिनके साथ प्रह्लादका संवाद हुआ था (शान्ति० १७९। २)।

आजगरपर्व वनपर्वका एक अवान्तरपर्व (१७६ से १८ अध्याय तक)।

आजगरव्रत–आजगर मुनिद्वारा आचरित अवधूत (शान्ति० १७९। १८–३६)।

आजगव–महाराज मान्धाताका धनुष (वन० १२६। ३४)। महाराज पृथुका धनुष (द्रोण० ६९। १३) अर्जुनके गाण्डीव धनुषका नामान्तर (द्रोण० १४ ९४)।

आजमीढ़–अजमीढ़वंशमें उत्पन्न होनेवाले, कौरव (आदि० १७२। ५० के बाद दाक्षिणात्य पाठ)।

आजानेय–घोड़ोंकी एक उत्तम जाति (वन० २० १०)।

आञ्जनककुल–गजराजोंकी सेनाका नाम। सात्यकि वर्णन (द्रोण० ११२। १७-१८)।

आटवीपुरी–एक प्राचीन नगर, जिसे माद्रीकुमार सहदे जीता था (सभा० ३१। ७२)।

आडम्बर–धाताद्वारा स्कन्दको दिये गये पाँच पार्षदोंमेंसे (शल्य० ४५। ३९)।

आतक–कौरव्यकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमे सर्पसत्रमें जला था (आदि० ५७। १३)।

आत्मा–(१) दिवः पुत्र आदि विवस्वान्‌के पुत्रों रूपोंमेंसे एक (आदि० १। ४२) (२) नित्य, नाशी, एक, शुद्ध-बुद्ध आत्मा एवं परमात्मा(भीष्म० ११–३०)।

आत्रेय–(१) एक प्राचीन ऋषि, जो जनमेजयके के सदस्य थे (आदि० ५३। ८)। (२) वामदेवका शिष्य (वन० १९२। ४६)। (भारतवर्षका एक जनपद (भीष्म० ९। ६८) (४) एक परम प्राचीन महर्षि। इनके द्वारा शि निर्गुण ब्रह्मका उपदेश दिया गया (अनु० ३)।

आत्रेयी–एक नदी (सभा० ९। २२)।

आथर्वण–एक मुनि। स्वप्नमें श्रीकृष्णसहित शिवजीके जाते हुए अर्जुन इनके स्थानपर गये थे (द्रोण० ३२)।

आदित्य–(१) इनकी संख्या बारह है। इनके पि नाम कश्यप और माताका नाम अदिति है। इन

सबसे बड़े और विष्णु (वामन) सबसे छोटे हैं (आदि० ६६ । ३६)। (२) एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३६)।

आदित्यकेतु–धृतराष्ट्रके पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १०२)। भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ८८ । २८)।

आदित्यतीर्थ–सरस्वतीतटवर्ती एक प्राचीन तीर्थ (शल्य० ४९ । १७) । इसकी विशेष महिमा (शल्य० अध्याय ५०)।

आदित्यपर्वत–हिमालयका एक शिखर, शिवजीका निवास-स्थान (शान्ति० ३२७ । २२)।

आदिपर्व–महाभारतका पहला पर्व ।

आदिराज–पूरुवंशीय महाराज कुरुके पौत्र तथा अविक्षित्के पुत्र (आदि० ९४ । ५२)।

आदिष्टी–जिन्हें गुरुने नियत वर्षोंतक ब्रह्मचर्यव्रत-पालनका आदेश दिया हो (अनु० २२ । १७)।

आद्यकठ–एक प्राचीन ऋषि, जो राजा उपरिचरके यज्ञके एक सदस्य थे (शान्ति० ३३६ । ९)।

आनन्द–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६५)।

आनर्त–एक प्राचीन देश, जिसे अर्जुनने जीता था (सभा० २६ । ४)।

आनुशासनिकपर्व–महाभारतका एक पर्व ।

आन्ध्र–दक्षिणका एक देश, जिसे सहदेवने दूतोंद्वारा ही वशमें कर लिया था (सभा० ३१ । ७१)।

आपगा–नदी एवं तीर्थ, जहाँ एक ब्राह्मणको भोजन करानेसे कोटि ब्राह्मणोंको भोजन करानेका फल प्राप्त होता है (वन० ८३ । ६८)।

आपद्धर्मपर्व–शान्तिपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १३१ से १७३ तक)।

आपव–(१) वसिष्ठ मुनिका नामान्तर (आदि० ९९ । ५)। (२) एक प्राचीन ऋषि । अग्निके साथ आकर कार्तवीर्यद्वारा अपने आश्रमके जलाये जानेपर इनका राजाको शाप देना (शान्ति० ४९ । ४२-४३)।

आपस्तम्ब–एक प्रसिद्ध ऋषि । इनके द्वारा राजा द्युमत्सेनको आश्वासन (वन० २९८ । १८)।

आपूरण–एक प्रमुख नाग, कश्यपका वंशज (आदि० ३५ । ६; उद्योग० १०३ । १०)।

आप्त–एक प्रमुख नाग, कश्यपका वंशज (आदि० ३५ । ८; उद्योग० १०३ । १२)

आभीर–(१) सिन्धु और सरस्वती-तटवर्ती आभीर गण-तन्त्रके निवासी, जिन्हें नकुलने जीता था (सभा० ३२ । ९-१०)। समुद्रतटवर्ती गृहोद्यान तथा सिन्धुके उस पार (आभीर देशमें) निवास करनेवाली आभीर जातिके लोग । ये लोग युधिष्ठिरके यहाँ भेंट लेकर आये थे (सभा० ५१ । ११–१३)। मार्कण्डेयजीका कहना है कि कलियुगमें आभीर, शक आदि म्लेच्छगण भारतवर्षके विभिन्न भागोंके राजा होंगे (वन० १८८ । ३५-३६)। शूर आभीरगण द्रोणनिर्मित गरुडव्यूहमें ग्रीवाके स्थानमें खड़े किये गये थे (द्रोण० २० । ६)। शूद्रों और आभीरोंसे द्वेष होनेके कारण विनशनतीर्थमें सरस्वती नदी अदृश्य हो गयी थी (शल्य० ३७ । १-२)। आभीर पहले क्षत्रिय थे । परशुरामजीके भयसे पर्वतोंकी गुफाओंमें छिप गये और अपने कर्म छोड़ बैठे; अतः उनकी संतानें शूद्रत्वको प्राप्त हुई (आश्व० २९ । १६)। इन्हीं आभीरोंने द्वारकावासिनी स्त्रियोंको साथ लेकर जाते हुए अर्जुनपर डाका डाला था (मौसल० ७। ४७–६३)। (२) आभीर देश (भीष्म० ९ । ४७-६७)।

आमरथ–भारतवर्षका एक जनपद (भीष्म० ९ । ५४)।

आयाति–नहुषके पुत्र । ययातिके भ्राता (आदि० ७५ । ३०)।

आयु–(१) पुरूरवाके द्वारा उर्वशीके गर्भसे उत्पन्न एक राजा, जिन्होंने स्वर्भानवीके गर्भसे नहुष आदिको जन्म दिया (आदि० ७५ । २४)। इन्हें पुरूरवासे खड्गकी प्राप्ति (शान्ति० १६६ । ७४)। इन्होंने तपोबलसे ही समाजमें प्रतिष्ठा प्राप्त की (शान्ति० २९६ । १५)। इनके द्वारा मांस-भक्षणका निषेध (अनु० ११५ । ५९)। (२) एक मण्डूकराज, जो सुन्दरी सुशोभनाका पिता था । इसने इक्ष्वाकुवंशी राजा परीक्षित्को अपनी कन्या अर्पित की थी (वन० १९२ । ३२–३५)। मण्डूकोंको मारनेका आदेश रोकनेके लिये इसकी राजासे प्रार्थना (वन० १९२ । २७)। इसके द्वारा अपनी कन्याको शाप (वन० १९२ । ३५)।

आयोदधौम्य–एक प्रसिद्ध ऋषि । इनके आरुणि, उपमन्यु तथा वेद नामके तीन प्रसिद्ध शिष्य थे (आदि० ३ । २१)। हस्तिनापुर जाते हुए श्रीकृष्णसे मार्गमें इनका मिलना (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)।

आरणेयपर्व–वनपर्वका एक अवान्तरपर्व (अध्याय ३११ से ३१५ तक)।

आरालिक–मतवाले हाथियोंको वशमें करनेवाला गजशिक्षक (विराट० २ । ९)।

आरुणि–(१) आयोदधौम्य ऋषिके शिष्य । पाञ्चालदेश-निवासी । इनकी गुरुभक्ति, इनको गुरुका आशीर्वाद तथा

इनका उद्दालक नामसे प्रसिद्ध होना (आदि० ३ । २२–३२) । (२) धृतराष्ट्र नागके कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । १९) । (३) कश्यप और विनताके पुत्र (आदि० ६५ । ४०) । (४) एक कौरवपक्षीय महारथी वीर, जिसने शकुनिके साथ होकर अर्जुनपर हमला किया था (द्रोण० १५६ । १२२) ।

आरुषी–मनुकी पुत्री, च्यवन मुनिकी पत्नी । इसके पुत्रका नाम था 'और्व' । ये अपनी माके ऊरुसे प्रकट हुए, अतः 'और्व' कहलाये (आदि० ६६ । ४६) ।

आरोचक–भारतवर्षका एक जनपद और वहाँके निवासी (भीष्म० ५१ । ७) ।

आर्चीक–सैन्धवारण्यसे आगे मनीषी पुरुषोंका निवासभूत एक पर्वत (वन० १२५ । १६) ।

आर्जव–सुबलपुत्र शकुनिका भाई, इरावान्‌द्वारा इसका वध (भीष्म० ९० । २७–४६) ।

आर्तायनि–ऋतायनके पुत्र शल्य, इनके पूर्वज श्रेष्ठ थे और सदा सत्य ही बोलते थे; इसलिये ये 'आर्तायनि' कहे गये हैं (शल्य० ३२ । ५६) ।

आर्तिमान्–सर्पभय निवारण करनेवाला एक मन्त्र (आदि० ५८ । २३–२६) ।

आर्यक–एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । ७) । ये शूरसेनके मातामह थे, इन्होंने भीमको रसपान करानेके लिये वासुकिसे प्रार्थना की (आदि० १२७ । ६४–६८) । अपने पौत्र सुमुखके साथ मातलिकी कन्याके विवाहके प्रसङ्गमें इनकी नारदसे बातचीत (उद्योग० १०४ । १३–१७) ।

आर्या–शिशुकी माता । सप्त मातृकाओंमेंसे एक (वन० २२८ । १०) ।

आर्यावर्त–भारतवर्षका नामान्तर अथवा एक भारतीय प्रदेश (शान्ति० ३२५ । १५) । (स्मृतियोंके अनुसार विन्ध्य तथा हिमालयके बीचका भूभाग आर्यावर्त है ।)

आर्ष्टिषेण–एक राजर्षि, इनके द्वारा युधिष्ठिरको प्रश्नरूपमें उपदेश मिला (वन० १५६ । १६; वन० १५९ अध्याय) । पृथूदक तीर्थमें तप करके इन्होंने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था (शल्य० ३९ । ३६) । इनकी तपस्याका वर्णन (शल्य० ४० । ३–९) । सरस्वती नदीके लिये इन ऋषिका आशीर्वाद, यहाँ स्नान करनेवालेको अश्वमेधका फल प्राप्त होगा, यहाँ सर्पोंसे भय न होगा तथा थोड़े ही समयतक इस तीर्थके सेवनसे महान् फलकी प्राप्ति होगी (शल्य० ४० । ७–८) ।

आर्ष्टिषेण-आश्रम–एक तीर्थ, यहाँ स्नान करनेवालेको पापोंसे छुटकारा मिल जाता है (अनु० २५ । २५) ।

आलम्ब–एक प्राचीन ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४ । १४) ।

आलम्बायन–इन्द्रके सखा, आलम्ब गोत्रीय चारुशीर्ष आलम्बायन नामसे प्रसिद्ध हुए हैं (अनु० १८ । ५) ।

आवर्तनन्दा–एक तीर्थ, इसका सेवन करनेवाले पुरुष नन्दनवनमें स्वर्गीय सुख प्राप्त होता है (अनु० २५ । ४३) ।

आवशीर–पूर्वदिशाका एक भारतीय जनपद, जिसे कर्णने दिग्विजयके समय जीता था (वन० २५४ । ९) ।

आवसथ्य–महान् तेजःपुञ्जसे सम्पन्न एक अग्नि (वन० २२१ । ५) ।

आवह-वायुके सात भेदोंमेंसे दूसरा (शान्ति० ३२८ । ३७) ।

आशावह–(१) दिवःपुत्र आदि बारह सूर्योंमेंसे एक (आदि० १ । ४२) । (२) एक वृष्णिवंशी राजकुमार, जो द्रौपदीके स्वयंवरमें उपस्थित था (आदि० १८५ । १९) ।

आश्रमवासपर्व–आश्रमवासिक पर्वका एक अवान्तर पर्व (१ से २८ अध्याय तक) ।

आश्रमवासिकपर्व–महाभारतका एक पर्व ।

आश्राव्य–इन्द्रसभामें विराजमान होनेवाले एक ऋषि (सभा० ७ । १८) ।

आश्वलायन–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५४) ।

आषाढ़–(१) एक क्षत्रिय राजा, जो क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ५९-६३) । इन्हें पाण्डवोंकी ओरसे रणनिमन्त्रण प्राप्त हुआ था (उद्योग० ४ । १७) । (२) एक मासका नाम, आषाढ़ मासमें एक समय भोजन करनेवाला पुत्र और धन-धान्यसे सम्पन्न होता है (अनु० १०६ । २६) । (३) भगवान् शिवका नाम (अनु० १७ । १२१) । (४) एक नक्षत्रका नाम, पूर्वाषाढ़ा-उत्तराषाढ़ा । इसमें उपवास करके कुलीन ब्राह्मणको दधि दान करनेवाला पुरुष गोधनसम्पन्न कुलमें जन्म पाता है (अनु० ६४ । २५-२६) ।

आसुरायण–विश्वामित्रके एक ब्रह्मवादी पुत्र (अनु० ४ । ५६) ।

आसुरि–एक प्राचीन ऋषि, जो कपिल-सांख्यदर्शनके आचार्य एवं पञ्चशिखके गुरु थे । इन्होंने मुनियोंको ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया था (शान्ति० २१८ । १०–१४) ।

आस्तीक–एक ऋषि, जो यायावर कुलके जरत्कारु ऋषिके पुत्र थे । इनकी माताका नाम भी जरत्कारु था (आदि०

१३ । १०-११; १५ । ३; ४८ । ९-११) । इनका जन्म (आदि० ४८ । १७) । इनका च्यवन मुनिसे अध्ययन (आदि० ४८ । १८)। 'आस्तीक' नाम होनेका कारण (आदि० ४८ । २०)। नागराज वासुकिके भवनमें इनका पालन (आदि० ४८ । २१) । नागराज वासुकिको इनका आश्वासन (आदि० ५४ । १७–२५) । इनका जनमेजयके यज्ञ-मण्डपमें आगमन (आदि० ५४ । २६-२७) । इनके द्वारा यजमान, ऋत्विज आदिकी स्तुति (आदि० ५५ । १–१६) । इनको राजा जनमेजयका वरदान (आदि० ५६ । १७) । आस्तीकका राजासे 'तुम्हारा यज्ञ बंद हो और इसमें सर्प न गिरने पावें' यह वर माँगना (आदि० ५६ । २१–२६) । इनके द्वारा तक्षककी प्राणरक्षा (आदि० ५८ । १–१०) । अश्वमेध-यज्ञमें सदस्य होनेके लिये जनमेजयद्वारा इनसे प्रार्थना (आदि० ५८ । १५-१६) । 'मेरे आख्यानका पाठ करनेवालोंको सर्पोंसे कोई भय न हो'—ऐसा इनका सर्पोंसे वर माँगना (आदि० ५८ । २१) । आस्तीकका व्यासजीकी महत्ता बताते हुए जनमेजयकी प्रशंसा करना (आश्रम० ३६ । १२–१६) । सर्पोंको संकटसे छुड़ाकर आस्तीकका प्रसन्न होना (स्वर्गा० ५ । ३२) ।

आस्तीकपर्व–महाभारतके आदिपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १३ से ५८ तक) ।

आहुक*–यदुवंशी राजा उग्रसेनका नामान्तर (उद्योग० १२८ । ३८-३९; अनु० १४ । ४१) । इनकी पुत्री 'सुतनु' के साथ अक्रूरका विवाह (सभा० १४ । ३३) । आहुकके सौ पुत्र थे (सभा० १४ । ५६) । आहुक और अक्रूरके पारस्परिक वैरसे श्रीकृष्णकी चिन्ता (शान्ति० ८१ । ८–११) । आहुक (उग्रसेन) के आदेशसे नगरमें यह घोषणा की गयी कि द्वारकामें कोई मदिरा न बनावे; जो नशीली वस्तु तैयार करेगा, उसे शूलीपर चढ़ा दिया जायगा (मौसल० १ । २८–३१) ।

आहुति–(१) एक क्षत्रिय, जो जारूथी नगरीमें श्रीकृष्णसे पराजित हुआ था । इसी नगरीमें शिशुपाल आदिकी भी पराजयका उल्लेख मिलता है । (वन० १२ । ३०) । (२) नारायणका एक नाम (शान्ति० ३३८ । ९२) ।

इ

इक्षुमती–कुरुक्षेत्रमें या उसके निकट बहनेवाली एक नदी, जहाँ तक्षक और अश्वसेन—ये दो नाग रहा करते थे (आदि० ३ । १४१) ।

इक्षुला–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवर्षके लोग पीते हैं (भीष्म० ९ । १७) ।

इक्ष्वाकु–(१) वैवस्वत मनुके दस पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ७५ । १५; अनु० २ । ५) । एक जापक ब्राह्मणके साथ इनका संवाद (शान्ति० १९९ । ३९–११७) । इनकी सद्गतिका वर्णन (शान्ति० २०० । २६) । इनके द्वारा मांस-भक्षण-निषेध (अनु० ११५ । ६६) । इनके सौ पुत्र थे (अनु० २ । ५) । इनके स्वर्गवासके पश्चात् इन्हींके पुत्र शशाद राजा हुए (वन० २०२ । १)। (२) वैवस्वत मनुके प्रपौत्र एवं क्षुपके पुत्र; इनके भी सौ पुत्र थे, जिनमें सबसे बड़ा विंश था (आश्व० ४ । २–५) । इन्हें अपने पिता क्षुपद्वारा खड्गकी प्राप्ति हुई थी (शान्ति० १६६ । ७३) ।

इध्मवाह–दृढस्युका दूसरा नाम, ये अगस्त्यके पुत्र थे । ये इध्म (समिधा) का भार वहन करनेसे 'इध्मवाह' कहलाये (वन० ९९ । २७) ।

इन्द्र–(१) कश्यपसे उनकी पत्नी अदितिके गर्भसे जो बारह आदित्य उत्पन्न हुए, उनमें इन्द्र प्रमुख हैं (आदि० ६५ । ११–१६; ७५ । १०-११) । ये वज्रधारी, वृत्र-हन्ता, पुरंदर तथा तीनों लोकोंके स्वामी हैं (आदि० ३ । १४८-१४९) । देवश्रेष्ठ और सहस्राक्ष हैं (आदि० २५ । ९–१३) । तक्षकद्वारा अपहृत हुए मदयन्तीके कुण्डलोंकी प्राप्ति करानेमें इन्होंने उत्तङ्ककी सहायता की (आदि० ३ । १३१) । उत्तङ्कद्वारा इनकी स्तुति (आदि० ३ । १४६–१४९) । समुद्रमन्थनसे इन्हें ऐरावतकी प्राप्ति हुई (आदि० १८ । ४०) । कद्रूद्वारा इनकी स्तुति (आदि० २५ । ७–१७) । इनके द्वारा की हुई वर्षासे सर्पोंकी प्रसन्नता (आदि० २६ अ०में) । इनके द्वारा वालखिल्य ऋषियोंका अपमान (आदि० ३१ । १०) । गरुड़के ऊपर इनका वज्रप्रहार और उनसे मित्रता स्थापित करनेकी इच्छा (आदि० ३३ । १८–२५) । इन्द्र और गरुड़की मित्रता (आदि० ३४ । १) । सर्पोंसे छलपूर्वक अमृतका अपहरण (आदि० ३४ । ८–२०) । इन्द्रका तक्षकको आश्वासन (आदि० ५३ । १५–१७) । इनके द्वारा कुन्तीके गर्भसे अर्जुनकी उत्पत्ति (आदि० ६३ । ११६) । इनका ब्राह्मणका रूप धारण करके कर्णसे कवच-कुण्डल माँगना (आदि० ६७ । १४४-१४५) । विश्वामित्रका तप भङ्ग करनेके लिये मेनका अप्सराको भेजना (आदि० ७१ । २१–२६) । वायुका रूप धारण करके इनके द्वारा

* कहीं-कहीं 'आहुक' को उग्रसेनका पिता कहा गया है; परंतु महाभारतमें इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है । इसके विपरीत उद्योग० १२८ । ३८-३९ में आहुक उग्रसेनको एक व्यक्ति बताया गया है ।

जलक्रीड़ा करती हुई देवयानी आदि कन्याओंके वस्त्रोंका सम्मिश्रण (आदि० ७८ । ४) । इनका ययातिके साथ वार्तालाप और उन्हें स्वर्गसे नीचे गिराना (आदि० ८८ । १–५) । पाण्डुद्वारा इन्द्रकी आराधना तथा इन्द्रका उन्हें वरदान (आदि० १२२ । २६-२७) । कुन्तीद्वारा इनका आवाहन तथा इनके द्वारा अर्जुनका जन्म (आदि० १२२ । ३५) । 'जानपदी' नामक अप्सराको भेजकर इनका शरद्वान् ऋषिकी तपस्यामें विघ्न डालना । (आदि० १२९ । ६) । शिवजीद्वारा इनका हिमालयकी गुफामें अवरोध और मनुष्यलोकमें अर्जुनरूपमें जन्म लेनेके लिये इन्हें आदेश (आदि० १९६ । ९–२६) । पाण्डवोंके निवासके लिये खाण्डवप्रस्थमें दिव्यनगरके निर्माणहेतु इनको श्रीकृष्णकी मानसिक प्रेरणा तथा खाण्डवप्रस्थमें दिव्य नगरका निर्माण करनेके लिये इनका विश्वकर्माको आदेश (आदि० २०६।२८ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ५९३) । तिलोत्तमाके रूपसे मोहित होकर इनका सहस्रनेत्र होना (आदि० २१० । २७) । खाण्डव-वनकी रक्षाके लिये इनका श्रीकृष्ण तथा अर्जुनके साथ युद्ध (आदि० २२६ अ० में) । इनके द्वारा तक्षकके पुत्र अश्वसेनकी रक्षा (आदि० २२६ । ९) । अर्जुन-द्वारा इनकी पराजय (आदि० २२७ । २३) । श्रीकृष्ण तथा अर्जुनको इनका वरदान (आदि० २३३ । १०–१२) । नारदजीद्वारा इनकी दिव्य सभाका युधिष्ठिरके प्रति वर्णन (सभा० ७ अ० में) । भगवान् श्रीकृष्ण-द्वारा इनका मानमर्दन, इनके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णका 'गोविन्द' नामकरण (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८०१) । नरकासुरको मारनेके लिये इनकी श्रीकृष्णसे प्रार्थना (पृष्ठ ८०६ दा० पाठ) । इनका सुरभिसे वार्तालाप (वन० ९ । ६–१६) । इनके द्वारा अर्जुनको दिव्यास्त्र देनेकी स्वीकृति (वन० ३७ । ५७-५८) । इनका अर्जुनको स्वर्गमें चलनेका आदेश (वन० ४१ । ४३–४५) । इनके द्वारा चित्रसेनको अर्जुनके लिये संगीतविद्याकी शिक्षा देनेका आदेश (वन० ४४ । ८) । इनका अर्जुनकी प्रसन्नताके लिये चित्रसेनको उर्वशीके पास भेजना (वन० ४५ । २) । उर्वशीके शाप देनेपर इनके द्वारा अर्जुनको आश्वासन (वन० ४६ । ५५–५८) । इनका नर-नारायणकी महिमा बतलाते हुए लोमश मुनिको युधिष्ठिरके पास संदेश देनेके लिये भेजना (आदि० ४७ । ७–३१) । इनका नलद्वारा दमयन्तीको संदेश देना (वन० ५५ । ६) । इनके द्वारा दमयन्ती-स्वयंवरमें राजा नलको वर-प्रदान (वन० ५७ । ३५-३६) । इनका कलियुगको नलके प्रति अन्याय करनेसे रोकना (वन० ५८ । ११-१२) । इनके द्वारा वृत्रासुरका वध (वन० १०१ । १४-१५) । इनका महर्षि च्यवनपर वज्र-प्रहार करनेको उद्यत होना (वन० १२४ । १७) । मदासुरसे डरे हुए इन्द्रका अश्विनीकुमारोंको सोमपानका अधिकारी बनाना (वन० १२५ । २-३) । इनका युवनाश्वकुमार मान्धाताको अँगुली पिलाना (वन० १२६ । ३०; द्रोण० ६२ । ७-८) । इनका बाज बनकर उशीनरसे कबूतरके बराबर तौलकर मांस माँगना (वन० १३१ । २३-२४) । इनके द्वारा राजा उशीनरको वर-प्रदान (वन० १३१ । ३०-३१) । इनका यवक्रीतको वर-प्रदान (वन० १३५ । ४१-४२) । नरकासुरको मारनेके लिये इनकी विष्णुसे प्रार्थना (वन० १४२ । २४) । इनके द्वारा गन्धमादन पर्वतपर युधिष्ठिरको आश्वासन (वन० १६१ । १३-१४) । हिरण्यपुरके विनाशके उपलक्ष्यमें इनके द्वारा अर्जुनका अभिनन्दन (वन० १७३ । ७२–७५) । इनका महर्षि बकसे चिरजीवियोंके सुख-दुःखके विषयमें प्रश्न (वन० १९३ अ० में) । बाजरूपसे राजा शिबिसे वार्तालाप तथा उनसे कबूतरके बराबर मांस माँगना (वन० १९७ । २०) । इनके द्वारा केशी दानवकी पराजय और देवसेनाका उद्धार (वन० २२३ । १५) । देवसेनाके साथ ब्रह्माके पास जाना (वन० २२४ । २१-२२) । स्कन्दद्वारा पराजित होकर इनका शरणमें जाना (वन० २२७ । १७-१८) । स्कन्दको देवसेनापति-पदपर अभिषिक्त करना (वन० २२९ । २३) । स्कन्दको देवसेनाके साथ पाणिग्रहणके लिये कहना (वन० २२९ । ४८) । रावणके पुत्र इन्द्रजित्के द्वारा इनकी पराजयकी चर्चा (वन० २८८ । ३) । कर्णसे उसका कवच-कुण्डल माँगना (वन० ३१० । ४) । कर्णको अपनी अमोघ शक्ति देना (वन० ३१० । २३) । त्रिशिराको तपसे डिगानेके लिये अप्सराओंको भेजना (उद्योग० ९ । ९–१२) । इनके द्वारा त्रिशिराका वध (उद्योग० ९ । २२–२४) । त्रिशिराके सिर काटनेके लिये इनके द्वारा बढ़ईको वरदान (उद्योग० ९ । ३७) । त्रिशिराके वधसे लगी हुई ब्रह्महत्याका विभाजन (उद्योग० ९ । ४३ के बाद दाक्षि० पाठ) । इनका वृत्रासुरके मुखसे बाहर निकलना (उद्योग० ९ । ५४) । भगवान् विष्णुके कहनेसे वृत्रासुरके साथ इनकी मैत्री (उद्योग० १० । ३२) । इनके द्वारा वृत्रासुरका वध (उद्योग० १० । ३९) । इनका ब्रह्महत्याके भयसे जलमें छिपना (उद्योग १० । ४६) । इनके द्वारा ब्रह्महत्याका विभाजन (उद्योग० १३ । १९) । इनका प्रकट होकर पुनः नहुषके भयसे अन्तर्धान होना (उद्योग० १३ । २१-२२) । इनका लोकपालोंको उनका अधिकार प्रदान

करना (उद्योग० १६ । ३१–३४) । अगस्त्यजीसे नहुषके पतनका वृत्तान्त पूछना (उद्योग० १७ । ६)। इनका महर्षि अङ्गिराको वरदान (उद्योग० १८ । ७)। स्वर्गमें आकर इन्द्रपदपर प्रतिष्ठित होना (उद्योग० १८ । ९)। मातलिके जामाता नागकुमार सुमुखको भगवान् विष्णुकी आज्ञासे दीर्घायु बनाना (उद्योग० १०४ । २८)। शिवद्वारा दिव्यकवचकी प्राप्ति, उससे सुरक्षित होकर इनका वृत्रको मारना तथा मन्त्र और विधिसहित वह कवच अङ्गिराको देना (द्रोण० ९४ । ६४–६६)। इन्द्रके लिये विश्वकर्माद्वारा विजय नामक धनुषका निर्माण तथा इन्द्रका उसे परशुरामको समर्पण करना (कर्ण० ३१ । ४२–४४)। त्रिपुरोंसे भयभीत होकर इनका देवताओंसहित ब्रह्माके पास जाना (कर्ण० ३३ । ३७–४०)। कर्ण और अर्जुनके द्वैरथ-युद्धमें अर्जुनकी विजयके लिये इनका सूर्यसे विवाद (कर्ण० ८७ । ५७–५९)। इन्द्रके अनुरोधसे ब्रह्मा और शिवजी-के द्वारा अर्जुनकी विजय घोषणा (कर्ण० ८७ । ६८–७३)। नमुचिके वधसे संकटमें पड़े हुए इन्द्रका अरुणासङ्गममें स्नान करनेसे उद्धार (शल्य० ४३ । ४३–४५)। इनके द्वारा स्कन्दको 'उत्क्रोश' और 'पञ्चक' नामक दो अनुचर-प्रदान (शल्य० ४५ । ३५-३६)। स्कन्दको शक्ति नामक अस्त्र और घण्टाका दान (शल्य० ४६ । ४४-४५)। इनके द्वारा भरद्वाजकन्या श्रुतावतीकी परीक्षा और उसे वर-प्रदान (शल्य० ४८ । २–५८)। इन्द्रतीर्थमें सौ यज्ञ करनेसे इनका 'शतक्रतु' नाम होना (शल्य० ४९ । २–४)। कुरुक्षेत्रकी भूमि जोतते हुए राजर्षि कुरुके साथ इनका संवाद (शल्य० ५३ । ५–१५)। पक्षीरूपसे आकर इनका तपस्वियोंको गृहस्थ-धर्मका उपदेश (शान्ति० ११ । ११—२६)। इनका रन्ति-देवको वरदान (शान्ति० २९ । १२०-१२१)। बृहस्पतिजीसे समस्त प्राणियोंके लिये प्रिय होनेका उपाय पूछना (शान्ति० ८४ । २)। अम्बरीषके पूछनेपर इनका उनके सेनापति सुदेवकी सद्गतिका कारण बताना (शान्ति० ९८ । ११ के बाद दाक्षि० पाठ से १३ तक)। अम्बरीषके पूछनेपर इन्द्रका उनसे रणयज्ञका वर्णन करना (शान्ति० ९८ । १५—५०)। बृहस्पति-जीसे विजय-प्राप्तिके उपाय पूछना (शान्ति० १०३ । ४-५)। प्रह्लादके पास शीलकी शिक्षाके लिये शिष्य-रूपसे निवास और वररूपसे उसकी प्राप्ति (शान्ति० १२४ । २८—६२)। विरूपाक्षको राजधर्माके शापकी कथा सुनाना (शान्ति० १७३ । ८–१०)। राजधर्माके कहनेसे गौतमको जीवन-दान देना (शान्ति० १७३ । १२-१३)। आत्महत्याके लिये उद्यत काश्यपको सियारके रूपमें प्रकट होकर समझाना (शान्ति० १८० अ० में)। प्रह्लादके साथ इनका ज्ञानविषयक संवाद (शान्ति० २२२ । ९—३७)। ब्रह्मासे बलिका पता पूछना (शान्ति० २२३ । ३–७)। बलिपर आक्षेप (शान्ति० २२३ । १४—२५; शान्ति० २२४ । २–४)। लक्ष्मीके साथ संवाद और उनकी सुप्रतिष्ठा (शान्ति० २२५ । ५—२९)। बलिको जीवित चले जानेकी आज्ञा देना (शान्ति० २२५ । ३३–३६)। नमुचिसे उसके श्रीहीन होनेपर भी दुःखित न होनेका कारण पूछना (शान्ति० २२६ । ३)। राजलक्ष्मीसे भ्रष्ट होनेपर भी बलिसे शोक न करनेका कारण पूछना (शान्ति० २२७ । १४—१९)। बलिका उत्तर सुनकर उसकी बातोंका समर्थन और उसे अभय-दान (शान्ति० २२७ । ८९—११६)। नारदजीके साथ लक्ष्मीका दर्शन (शान्ति० २२८ । १६–१८)। असुरोंको त्यागकर आनेके विषयमें लक्ष्मीसे प्रश्न (शान्ति० २२८ । २८)। लक्ष्मीको साथ लेकर अमरावतीमें प्रवेश (शान्ति० २२८ । ८९)। इनके द्वारा अपनी पत्नी अहल्याकी धर्षणाकी गौतमद्वारा चर्चा (शान्ति० २६६ । ४७—५१)। इनका वृत्रासुरके साथ युद्ध और मोहित होना (शान्ति० २८१ । १३—२१)। देवताओं और ऋषियोंके प्रोत्साहनसे इनके द्वारा वृत्रासुरका वध (शान्ति० २८२ । ९)। ब्रह्म-हत्याके भयसे भागना और कमलनालमें छिपना (शान्ति० २८२ । ११–१८)। ब्रह्माद्वारा इन्हें ब्रह्महत्यासे छुटकारा प्राप्त होना (शान्ति० २८२ । ५६)। अहल्यापर बलात्कारके कारण गौतमके शापसे इन्द्रकी दाढ़ी-मूँछ हरी हो गयी और विश्वामित्रके शापसे इन्हें अपना अण्डकोश खो देना पड़ा, जिससे भेड़ेके अण्डकोश जोड़े गये (शान्ति० ३४२ । २३)। इन्हें दुहरी ब्रह्महत्या लगी (शान्ति० ३४२ । ४२)। नारदजीसे अद्भुत घटनाके विषयमें इनका प्रश्न करना (शान्ति० ३५२ । ७–९)। एक तोतेके साथ संवाद (अनु० ५ । १३–२८)। राजर्षि भङ्गास्वनको स्त्री बना देना (अनु० १२ । ५–१०)। भङ्गास्वनके दो सौ पुत्रों-में फूट डालना (अनु० १२ । २९–३१)। भङ्गास्वनपर प्रसन्न होकर वर देना (अनु० १२ । ४२-४३)। मतङ्ग-को तपस्यासे विरत करनेके प्रसंगमें उसके साथ संवाद (अनु० २७ । २७ से २९ । १२ तक)। मतङ्गको वरदान देना (अनु० २९ । २४-२५)। शम्बरासुरसे व्यवहारके विषयमें प्रश्न (अनु० ३६ । ३)। महर्षि देवशर्माकी पत्नी रुचिको प्रलोभन देना और विपुलद्वारा फटकार पाना (अनु० ४१ । ७–२६)। बृहस्पतिजीसे

उत्तम दानके विषयमें पूछना (अनु० ६२ । ५३)। ब्रह्माजीसे गोलोक और गोदानके विषयमें प्रश्न (अनु० ७२ । ६-१२) । ब्रह्माजीसे दूसरेकी गौका अपहरण करनेके फलके सम्बन्धमें प्रश्न (अनु० ७४ । १) । ब्रह्माजीसे गोलोककी श्रेष्ठताके विषयमें प्रश्न (अनु० ८३ । १३-१४) । कार्तिकेयको भेंट समर्पित करना (अनु० ८६ । २५) । अगस्त्यजीको अपना परिचय देकर कमलकी चोरीका कारण बताना (अनु० ९४ । ४७-४९) । मातलिके पूछनेपर सबके वन्दनीय पुरुषका परिचय देना (अनु० ९६ । २२ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ १७८३) । धृतराष्ट्रके रूपमें इनके द्वारा गौतमनामक ब्राह्मणके हाथीका अपहरण कर लिये जानेपर इनके साथ संवाद (अनु० १०२ । ७-६१) । महर्षि विद्युत्प्रभको पापसे छूटनेका उपाय बताना (अनु० १२५ । ४८-५०) । बृहस्पतिजीसे धर्मके विषयमें जिज्ञासा (अनु० १२५ । ५९) । अश्विनीकुमारोंके निमित्त च्यवनके साथ संघर्ष (अनु० १५६ । १६-३१) । पञ्चशिखावाले बालकके रूपमें शिवजीपर वज्र प्रहार करते समय इनकी बाँहका स्तम्भित होना और शिवजीकी कृपासे पुनः इनका संकटमुक्त होना (अनु० १६० । ३३-३६) । बृहस्पतिजीको मरुत्तका यज्ञ करानेसे रोकना (आश्व० ५ । १८-२१) । बृहस्पतिजीसे उनकी चिन्ताका कारण पूछना (आश्व० ९ । १-५) । अग्निको दूत बनाकर मरुत्तके पास संदेश भेजना (आश्व० ९ । ८) । गन्धर्वराज धृतराष्ट्रको दूत बनाकर मरुत्तके पास भेजना (आश्व० १० । २) । मरुत्तपर वज्र-प्रहार करनेको उद्यत होना (आश्व० १० । ८) । मरुत्तके यज्ञमें जाना (आश्व० १० । २०) । यज्ञमण्डपकी व्यवस्था करना (आश्व० १० । २६-३०) । इनके द्वारा शरीरस्थ वृत्रासुरका संहार (आश्व० ११ । १९) । चाण्डालरूपसे उत्तङ्कको अमृत पिलानेके लिये प्रकट होना (आश्व० ५५ । १८-१९) । मुनिके इनकार करनेपर अन्तर्धान होना (आश्व० ५५ । २२) । ब्राह्मणका रूप धारण करके उत्तङ्ककी सहायता करना (आश्व० ५८ । ३२-३३) । उत्तङ्क मुनिके डंडेमें वज्रास्त्रका संयोग करना (आश्व० ५८ । ३५) । इनके द्वारा स्वर्गमें श्रीकृष्णका स्वागत (मौसल० ४ । २८) । इन्द्रका युधिष्ठिरको अपने रथपर बैठकर सदेह स्वर्ग चलनेके लिये कहना और उनके आश्रितवात्सल्यकी परीक्षा करना (महाप्रस्था० ३ । १-२९) । धर्मप्रेरित इन्द्रके द्वारा युधिष्ठिरकी पुनः परीक्षा—देवदूतद्वारा उन्हें मायामय नरकका दर्शन करवाना (स्वर्गा० २ अ०में) ।

महाभारतमें आये हुए इन्द्रके नाम—अदितिनन्दन, आखण्डल, अमरश्रेष्ठ, अमराधिप, अमरराज, अमरेश, अमरेश्वर, अमरेन्द्र, अमरोत्तम, असुरार्दन, असुरसू... बलभित्, बलहन्, बलहन्ता, बलजित्, बलनाशन, ब... निषूदन, बलसूदन, बलवृत्रघ्न, बलवृत्रहन्, बलवृत्रनि... दन, बलवृत्रसूदन, भूतभव्येश, शचीपति, शक्र, शम्ब... हन्, शम्बरपाकहन्, शतक्रतु, शतमन्यु, दशशता... दशशतनयन, दशशतेक्षण, दैत्यनिबर्हण, दैत्यासुरनिबर्ह... दानवशत्रु, दानवघ्न, दानवारि, दानवसूदन, देवश्रे... देवदेव, देवाधिप, देवगणेश्वर, देवपति, देवराज, देवरा... देवेश, देवेन्द्र, हरि, हरिश्मश्रु, हरिहय, हरिमान्, ह... वाहन, ईश्वर, जगदीश्वर, काश्यप, कौशिक, किरीटी, कुरु... कोत्तम, लोकत्रयेश, लोकेश्वरेश्वर, मघवा, महेन्द्र, म... त्पति, मरुत्वान्, सुकुटी, नमुचिघ्न, नमुचिहन्, पाकशास... पर्जन्य, पुरन्दर, पुरुभूत, पूषानुज, पुष्करेक्षण, सहस्र... सहस्राक्ष, सहस्रलोचन, सहस्रनयन, सहस्रनेत्र, सर्वदान... सूदन, सर्वदेवेश, सर्वलोकामर, सुरश्रेष्ठ, सुराधिप, सु... गणेश्वर, सुरपति, सुरपुङ्गव, सुरराट्, सुरराज, सुरारिह... सुरर्षभ, सुरसत्तम, सुरेश, सुरेश्वर, सुरेन्द्र, सुरोत्त... त्रैलोक्यपति, त्रैलोक्यराज, त्रिभुवनेश्वर, त्रिदशाधि... त्रिदशाधिपति, त्रिदशेश, त्रिदशेश्वर, त्रिदशेन्द्र, त्रिदि... श्वर, त्रिलोकराज, त्रिलोकेश, वज्रभृत्, वज्रधर, वज्रध... वज्रधृक, वज्रहस्त, वज्रपाणि, वज्रायुध, वज्री, वरद, वास... विबुधश्रेष्ठ, विबुधाधिप, विबुधाधिपति, विबुधेश्वर, विश्व... वृषाकपि, वृत्रशत्रु, वृत्रहन्, वृत्रहन्ता, वृत्रनिषूदन...

(२)पाञ्चजन्यद्वारा बलसे प्रकट किया गया 'इन्द्र' नाम... अग्नि (वन० २२० । ७) ।

इन्द्रकील—हिमालय और गन्धमादनसे आगेका एक पर्व... जिसका अभिमानी देवता कुबेरका उपासक है (सभा... १० । ३२; वन० ३७ । ४२) ।

इन्द्रजित्—राक्षसराज रावणका पुत्र, इसका लक्ष्मणके सा... युद्ध (वन० २८५ । ८) । इसके द्वारा राम-लक्ष्मण... मूर्छित होना (वन० २८८ । २६) । लक्ष्मणद्वारा इस... वध (वन० २८९ । २३) ।

इन्द्रतापन—वरुणकी सभामें उनकी उपासना करनेवा... एक दैत्य (सभा० ८ । १५) ।

इन्द्रतीर्थ—सरस्वती-तटवर्ती एक तीर्थ, जहाँ इन्द्रने सौ य... का अनुष्ठान किया था; इसकी विशेष महिमा (शल्य... ४८ । १८; ४९ । २-५) ।

इन्द्रतोया—गन्धमादनपर्वतके निकट बहनेवाली एक नदी... यहाँ स्नान और तीन रात उपवासका फल अश्वमेध... पुण्य (अनु० २५ । ११) ।

इन्द्रदमन—एक प्राचीन नरेश । इनके द्वारा ब्राह्मणको धन... दान (शान्ति० २३४ । १८) ।

इन्द्रद्युम्न–(१) एक असुरभावापन्न नरेश, जो श्रीकृष्ण-द्वारा मारा गया (वन० १२ । ३२)। (२) एक महर्षि (वन० २६ । २२)। (३) राजा जनकके पिता (वन० १३३ । ४)। (४) एक प्राचीन राजर्षि, जो कीर्ति लोप होनेसे स्वर्गसे भूतलपर गिरे और एक चिरजीवी कच्छपद्वारा अपनी कीर्तिका बखान सुनकर पुनः स्वर्गलोकमें जा पहुँचे थे (वन० १९९ अध्याय)।

इन्द्रद्युम्नसरोवर–(१) गन्धमादन पर्वतके समीपवर्ती सरोवर। यहाँ पत्नियोंसहित पाण्डुका आगमन (आदि० ११८ । ५०)। (२) द्वारकापुरीका एक सरोवर (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ०, पृष्ठ ८१६)।

इन्द्रद्वीप–एक द्वीपका नाम, जिसे पहले सहस्रबाहुने जीतकर अपने अधिकारमें किया था (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७९२)।

इन्द्रपर्वत–विदेहदेशवर्ती एक पर्वत (सभा० ३० । १५)।

इन्द्रप्रस्थ–पाण्डवोंकी राजधानी (वर्तमान दिल्ली)। विश्वकर्माद्वारा इसका निर्माण। इसका 'इन्द्रप्रस्थ' नाम होनेका कारण (आदि० २०६ । २८ के बाद)। व्यास-द्वारा इसके भूभागका शोधन (आदि० २०६ । २९)। इसका विशद वर्णन (आदि० २०६ । २९ के बाद दा० पा०, पृष्ठ ५९५–२०६ । ४९ तक)। (आदिपर्वके २०७, २१८, २२०, २२१ अध्यायोंमें; सभापर्वके १३, २४, ३२, ७३; वनपर्वके ५१, २३३, २३७; विराटपर्वके १८, ५०; उद्योगपर्वके २६, ५५, ९५; भीष्मपर्वके १२१; शान्तिपर्वके १२४ तथा आश्वमेधिकपर्वके १५ अध्यायोंमें भी 'इन्द्रप्रस्थ'का नाम आया है। मौसलपर्व ७ । ७२ में यह कथा आयी है कि अनिरुद्धके पुत्र वज्रको इन्द्रप्रस्थमें यादवोंका राजा बनाया गया था।)

इन्द्रमार्ग–एक प्राचीन तीर्थ। यहाँके स्नानका फल स्वर्गकी प्राप्ति (अनु० २५ । ९)।

इन्द्रलोकाभिगमनपर्व–वनपर्वके अन्तर्गत एक अवान्तर पर्व (अध्याय ४२ से ५१ तक)।

इन्द्रवर्मा–मालवनरेश। पाण्डवपक्षके योद्धा। इनके अश्वत्थामा नामक हाथीका भीमसेनद्वारा वध (द्रोण० १९० । १५)।

इन्द्रसेन–(१) सोमवंशीय महाराज अविक्षित्के पौत्र एवं परीक्षित्के पुत्र (आदि० ९४ । ५५)। (२) पाण्डवोंका सारथि (सभा० ३३ । ३०)। युधिष्ठिर-की आज्ञासे इन्द्रसेनका द्वारकामें भगवान् श्रीकृष्णको बुलानेके लिये जाना और उनसे चलनेका अनुरोध करना (सभा० १३ । ४१-४२)। इसका पाण्डवोंके साथ वन-गमन (वन० १ । ११)। गन्धमादनजाते समय पाण्डवोंका इन्द्रसेनको पुलिन्दराज सुबाहुके यहाँ छोड़ना(वन० १४० । २७)। इसका धात्रेयिकासे द्रौपदीका समाचार पूछना (वन० २६९ । ११–१५)। इन्द्रसेनको द्वारका जानेका आदेश (विराट० ४ । ३)। इन्द्रसेनका द्वारका-गमन (विराट० ४ । ५८)। उपप्लव्य नगरमें अभिमन्युके विवाहमें जाना (विराट० ७२ । २३)। (३) एक कौरवपक्षका योद्धा (द्रोण० १५६ । १२२)।(४) इन्द्रसेन (और इन्द्रसेना) निषधनरेश नलके पुत्र और पुत्री, इनकी माता दमयन्ती थी। दमयन्तीद्वारा नलके जुएमें हारनेकी आशङ्का होनेपर वार्ष्णेयसे इन्द्रसेन और इन्द्रसेनाको कुण्डिन-पुर भेजवाना (वन० ६० । १८–२४)। इन दोनोंकी पुनः राजा नलसे भेंट (वन० ७५ । २४)।

इन्द्रसेना–(१) राजा नलकी पुत्री (देखिये 'इन्द्रसेन और इन्द्रसेना')। (२) नारायणकी कन्या और मुद्गलकी पत्नी, अप्रतिम सुन्दरी होकर भी इसने एक हजार वर्षके बूढ़े पति मुद्गलका अनुसरण किया (वन० ११३ । २४; (विराट० २१ । ११)।

इन्द्राणी–इन्द्रपत्नी शची (देखिये शची)।

इन्द्राभ–भरतवंशीय महाराज कुरुके प्रपौत्र एवं धृतराष्ट्रके सातवें पुत्र (आदि० ९४ । ५९)।

इन्द्रोत–शुनकवंशी ऋषि। राजा जनमेजयको फटकारना (शान्ति० १५० । ९–१९)। राजा जनमेजयसे ब्राह्मणोंके प्रति द्रोह न करनेकी प्रतिज्ञा कराकर उन्हें अपनी शरणमें लेना (शान्ति० १५१ । १०–२१)। राजा जनमेजयको धर्मोपदेश करके उनसे अश्वमेध यज्ञ कराना (शान्ति० १५२ अ०में)।

इरा–(१) कुबेरकी सेवामें रहनेवाली अप्सरा (सभा० १० । ११)। (२) ब्रह्माके सभाभवनमें उनकी उपासना करनेवाली एक देवी (सभा० ११ । ३९)।

इरामा–एक महानदी, जिसे मार्कण्डेयजीने भगवान् बाल-मुकुन्दके उदरमें देखा था (वन० १८८ । १०४)।

इरावती–पञ्चनद प्रदेशकी रावी नदी, जो दिव्यरूप धारण करके अन्य नदियोंके साथ वरुणकी सेवामें उपस्थित होती है (सभा० ९ । १९)। पार्वतीजीने स्त्रीधर्म वर्णन करनेके सम्बन्धमें जिन नदियोंसे सलाह ली थी, उनमें 'इरावती' भी उपस्थित थी (अनु० १४६ । १८)।

इरावान्–अर्जुनके द्वारा नागकन्या उलूपीके गर्भसे उत्पन्न पुत्र (आदि० २१३ । ३६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। प्रथम दिनके युद्धमें श्रुतायुष्के साथ इनका

द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ४५ । ६९–७१) । इनके द्वारा विन्द और अनुविन्दकी पराजय (भीष्म० ८३ । १८–२२) । इनका युद्ध करके शकुनिके पाँच भाइयोंका वध करना (भीष्म० ९० । २७–४६) । अलम्बुषके साथ युद्ध और उसके द्वारा इनका वध (भीष्म० ९० । ५६–७६) ।

इला–(१)वैवस्वत मनुकी पुत्री, पुरुषरूपमें परिणत होनेपर इनका नाम सुद्युम्न हुआ (आदि० ७५ । १६; अनु०१४७ । २६) । [ये दो बार अपने जीवनमें स्त्री होकर पुरुष हुए थे । पहले तो इन्होंने होताओंके दोषसे कन्या होकर ही जन्म लिया था । बादमें वशिष्ठजीकी कृपासे पुरुष हुए और दुबारा इलावृतखण्डमें जाकर महादेवजीके शापसे स्त्री हुए थे । यह कथा श्रीमद्भागवतके नवम स्कन्धमें देखना चाहिये ।] इनके गर्भसे पुरूरवाका जन्म हुआ (फिर ये पुरुष हो गये) । अतः पुरूरवाके पिता और माता दोनों कहे जाते हैं (आदि० ७५ । १८-१९) । इला बुधकी पत्नी और पुरूरवाकी माता थी (अनु० १४७।२७) । (२) एक नदी, जिसने कार्तिकेयको फल-फूलकी भेंट अर्पित की थी (अनु० ८६ । २४) । इला नदी सम्बन्धी तीर्थमें युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंसहित स्नान किया था (वन० १५६ । ८) ।

इलावृतवर्ष–जम्बूद्वीपका मध्यवर्ती भूभाग (सभा० २८ । ६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

इलास्पद–एक प्राचीन तीर्थ, इसमें स्नान करनेसे दुर्गतिका निवारण तथा वाजपेय यज्ञका पुण्यफल सुलभ होता है (वन० ८३ ।७७–७८) ।

इलिल–एक पुरुवंशी राजा । सम्राट् दुष्यन्तके पिता (आदि० ७१ । ७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । इनकी भार्याका नाम 'रथन्तर्या' था (आदि० ७४ । १२५ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । दुष्यन्तके पिता तथा माताके ये नाम दाक्षिणात्य पाठके अनुसार दिये गये हैं । उदीच्य पाठके अनुसार इनके पिताका नाम 'ईलिन' और माताका नाम 'रथन्तरी' था (आदि० ९४ । १६–१८) ।

इल्वल–मणिमती नगरीका निवासी एक दैत्य (वन० ९६ । ४) । एक ब्राह्मणसे रुष्ट होनेके कारण यह ब्राह्मणद्रोही होकर छलसे ब्राह्मणोंकी हत्या किया करता था (वन० ९६ । ५–१३) । इसका अगस्त्यजीसे 'मैं कितना धन दान करना चाहता हूँ ?' यह पूछना (वन० ९९ । १३) । इसके द्वारा श्रुतर्वा, ब्रध्नश्व, त्रसदस्यु और अगस्त्यजीको धनका दान (वन० ९९ । १६) । अगस्त्यजीके हुङ्कारसे इसका भस्म होना (वन० ९९ । १७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

इषुपाद–एक दानव । माता 'दनु' । पिता कश्यप (आदि० ६५।२५) । यही विख्यात पराक्रमी राजा नग्नजित्‌के रूपमें उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । २०-२१) ।

ई

ईजिक–एक देश (भीष्म० ९ । ५२) ।

ईरी–यमराजकी सभामें वैवस्वत यमकी उपासना करनेवाले एक सौ 'ईरी' नामवाले नरेश (सभा० ८ । २३) ।

ईलिन–पूरुवंशी महाराज तंसुके पुत्र । इनकी पत्नीका नाम 'रथन्तरी' था । उसके गर्भसे इनके दुष्यन्त, शूर, भीम, प्रवसु तथा वसु नामक पाँच पुत्र हुए थे (आदि० ९४ । १६–१८) ।

ईश–एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३५) ।

ईशानाध्युषिततीर्थ–एक प्राचीन तीर्थ, जिसके सेवनसे सहस्र कपिलादान और अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है (वन० ८४ । ८-९) ।

ईश्वर–(१) ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक, ब्रह्माजीके पौत्र एवं स्थाणुके पुत्र (आदि० ६६ । ३) । (२) एक राजा, जो क्रोधवश नामक दैत्योंमेंसे किसीके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ६५) । (३) राजा पूरुके द्वारा पौष्टीके गर्भसे उत्पन्न द्वितीय पुत्र, महारथी (आदि० ९४ । ५) । (४) एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३७) ।

उ

उक्थ–(१) परावाणीका उत्पादक एक अग्नि, जिसकी त्रिविध उक्थ-मन्त्रोंद्वारा स्तुति की जाती है (वन० २१९ । २५) । (२) सामवेदका एक विशेष भाग ।

उक्षा–ऋषभकन्दका नाम (वन० १९७ । १७) ।

उग्र–(१) धृतराष्ट्रके पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १०३) । भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ६४ । ३४-३५) । (२) एक यादव राजकुमार, जिसे पाण्डवोंकी ओरसे रणनिमन्त्रण भेजा गया (उद्योग० ४ । १२) । (३) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । १००) । (४) प्रजापति कविके पुत्र (अनु० ८५ । १३३) । (५) एक वर्णसंकर जाति । क्षत्रिय पुरुष और शूद्रा स्त्रीके संयोगसे उत्पन्न बालक (अनु० १४८ । ७) ।

उग्रक–एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । ७) ।

उग्रकर्मा–(१) शाल्व देशका राजा, जो भीमसेनके द्वारा मारा गया (कर्ण० ५ । ४१) । (२) केकय-राजकुमार विशोकका सेनापति, कर्णद्वारा इसका वध (कर्ण० ८२ । ४-५) ।

उग्रतीर्थ–क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे प्रकट हुआ एक क्षत्रिय राजा (आदि० ६७ । ६५) ।

उग्रतेजा–(१) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । ५७) । (२) एक श्रेष्ठ नाग, जो बलरामजीके परमधाम पधारनेके समय उनके स्वागतके लिये आया था (मौसल० ४ । १६) ।

उग्रश्रवा–(१) लोमहर्षणपुत्र; सौति; पौराणिक (आदि० १ । १) । (२) धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ६७ । १००) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १५७ । १९) ।

उग्रसेन–(१) महाराज जनमेजयका एक भाई, जिसने अपने अन्य दो भाइयोंके साथ सरमा-पुत्रको मारा था (आदि० ३ । १-२) (२) 'मुनि'नामवाली कश्यपकी पत्नीका एक पुत्र, देवगन्धर्व (आदि० ६५ । ४२) । यह अर्जुनका जन्मोत्सव देखने गया था (आदि०१२२ । ५५) । विराटनगरमें अर्जुन और कृपाचार्यका युद्ध देखनेके लिये भी इसने पदार्पण किया था (विराट० ५६ । ११-१२) । (३) एक राजा, जो 'स्वर्भानु' नामक असुरके अंशसे प्रकट हुआ था (आदि०६७ । १२-१३) । (४) (चित्रसेन) धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ६७ । १००) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १३७ । २९-३०) । (५) ये वृष्णिवंशके प्रतापी राजा और राजा कुन्तिभोजके फुफेरे भाई थे (आदि० ६७ । १३०; २१६ । ८) । राजा उग्रसेनका दूसरा नाम आहुक था (उद्योग० १२८ । ३८-३९; अनु० १४ । ४१) । इनके मन्त्री वसुदेव थे और पुत्र बलवान् कंस; कंस अपने पिता उग्रसेनको कैद करके मन्त्रियोंके साथ इनका राज्य भोगने लगा (सभा० २२ । ३६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७३१) । उग्रसेनकी सम्मतिसे श्रीकृष्णने भाइयोंसहित कंसको मारकर पुनः उग्रसेनको ही मथुराके राज्यपर अभिषिक्त किया (सभा० पृष्ठ ७३२) । उग्रसेन और वृष्णिवंशको जरासंधसे सदा क्लेश प्राप्त होता था (सभा० पृष्ठ ७३२) । शाल्वके चढ़ाई करनेपर उग्रसेनके द्वारा नगरकी सुरक्षा (वन० १५ । २३) । श्रीकृष्णसे नारदजीकी पूज्यताके विषयमें प्रश्न (शान्ति० २३० । ३) । साम्बके पेटसे पैदा हुआ मुसल उग्रसेनको दिया गया, उसे देखकर ये दुखी हुए और उसे कुटवाकर चूर्ण बनवाकर इन्होंने समुद्रमें फेंकवा दिया, फिर मद्यनिषेधकी आज्ञा जारी की (मौसल० १ । २७-३०) । उग्रसेन मृत्युके पश्चात् विश्वेदेवोंमें मिल गये थे (स्वर्गा० ५ । १७-१८) । (६) सोमवंशीय राजा अविक्षित्के पौत्र तथा परीक्षित्के पुत्र (आदि० ९४ । ५२-५४) ।

उग्रायुध–(१) धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ६७ । ९९) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । २) । (२) पाण्डवपक्षीय एक पाञ्चाल योद्धा, कर्णद्वारा घायल (कर्ण० ५६ । ४४) । (३) कौरवपक्षका एक योद्धा, जो पराक्रमी और आदर्श धनुर्धर था, युद्धक्षेत्रमें मारा गया (शल्य० २ । ३७) । (४) एक दुर्धर्ष चक्रवर्ती नरेश, जिसे भीष्मजीने किसी समय मारा था (शान्ति० २७ । १०) ।

उग्रायुधपुत्र–कौरव-पक्षका एक संशप्तक योद्धा, जिसे अर्जुनने मारा था (कर्ण० १९ । ७) ।

उच्चैःश्रवा–(१) समुद्र-मन्थनके समय समुद्रसे प्रकट हुआ सर्वश्रेष्ठ अश्व, जो देवलोकमें चला गया (आदि० १८ । ३३—३७) । इसके शरीरका रंग कैसा है—इस प्रश्नको लेकर कद्रू एवं विनताका विवाद (आदि० २० । २ से २३ । ३ तक) । (२) पूरुवंशी महाराज कुरुके पौत्र तथा अविक्षित्के छठे पुत्र (आदि० ९४ । ५३) ।

उच्छिख–तक्षककुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । ९) ।

उच्छृङ्ग–विन्ध्यद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक, इसका दूसरा साथी अतिशृङ्ग था (शल्य० ४५ । ४९) ।

उज्जयन–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५८) ।

उज्जयन्त पर्वत–सौराष्ट्र देश (काठियावाड़) के पिण्डारक क्षेत्रके अन्तर्गत एक महान् सिद्धिदायक पर्वत (वन० ८८ । २१) ।

उज्जानक–मानसरोवरसे आगे गन्धमादनके निकट आर्ष्टिषेणके आश्रमके पासका एक तीर्थभूत सरोवर, इसमें स्नान करनेसे पापोंसे छुटकारा मिलता है (वन० १३० । १७; अनु० २५ । ५५) ।

उज्जालक–मरुप्रदेशमें स्थित बालुकामय समुद्र (वन० २०२ । १६) ।

उण्ड्र (या उड्र)–दक्षिण भारतका एक जनपद, जिसे सहदेवने दूतोंद्वारा जीत लिया था (सभा० ३१ । ७१) ।

युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें उण्ड्रनिवासी भेंट लेकर आये थे (वन० ५१ । २२)।

उतथ्य-महर्षि अङ्गिराके मध्यम पुत्र (आदि० ६६ । ५)। महाराज मान्धाताको राजधर्मके विषयमें इनका उपदेश (शान्ति० ९० और ९१ अध्यायोंमें)। सोमकी कन्या भद्राके साथ विवाह (अनु० १५४ । १२)। वरुणद्वारा भद्राका अपहरण किये जानेपर इनका सम्पूर्ण जल पी लेना (अनु० १५४ । २२-२८)।

उत्कल-भारतवर्षका एक जनपद (भीष्म० ९ । ४१)। कर्णने दुर्योधनके लिये इस देशको जीता था (द्रोण० ४ । ८)।

उत्कोचक-एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ महर्षि धौम्य तपस्या करते थे, पाण्डवोंने यहींपर धौम्यमुनिका पुरोहितके रूपमें वरण किया था (आदि० १८२ । २-६)।

उत्क्राथिनी-स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १६)।

उत्क्रोश-इन्द्रद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक, इसके दूसरे साथीका नाम पञ्चक था (शल्य० ४५ । ३५)।

उत्तङ्क-(१) आयोदधौम्यके तीसरे शिष्य वेदके शिष्य (आदि० ३ । ८३)। इनकी गुरुसेवा (आदि० ३ । ८५)। इनके द्वारा गुरुपत्नीकी अवैध आज्ञाका उल्लङ्घन (आदि० ३ । ८७)। गुरुपत्नीके कहनेपर इनका राजा पौष्यके यहाँसे कुण्डल लानेके लिये जाना (आदि० ३ । ९८)। इनके द्वारा अमृतस्वरूप गोमयका भक्षण (आदि० ३ । १०१)। गुरुपत्नीके लिये राजासे कुण्डलकी याचना (आदि० ३ । १०४)। क्षत्राणीके अन्तःपुरमें उपस्थित न होनेकी बात बताकर इनका राजाको उपालम्भ देना (आदि० ३ । १०६)। फिर आचमन आदिसे शुद्ध होनेपर इनको क्षत्राणीका दर्शन होना और उनसे इनका कुण्डल माँगना (आदि० ३ । १११)। इनका राजा पौष्यको अपवित्र अन्न खिलानेके कारण शाप देना (आदि० ३ । ११६)। पौष्यद्वारा इनको अनपत्य होनेका शाप (आदि० ३ । ११७)। कुण्डल लेकर आते समय इनकी क्षपणकरूपधारी तक्षकसे भेंट तथा उसके द्वारा कुण्डलोंका हरण होना (आदि० ३ । १२७)। इनका क्षपणकका पीछा करना एवं क्षपणकका तक्षकरूपमें प्रकट होकर नागलोकमें जाना (आदि० ३ । १२९-१३०)। नागलोक जाते समय इनकी सहायताके लिये इन्द्रका वज्रको आदेश देना (आदि० ३ । १३१)। नागलोकमें जाकर इनके द्वारा तक्षककी स्तुति (आदि० ३ । १४०)। नागलोकमें वस्त्र बुनती हुई दो स्त्रि[यों] तथा चक्र घुमाते हुए छः कुमारों एवं एक दिव्य पुरुष[का] इन्हें दर्शन होना तथा इनका उनकी स्तुति करना (आदि० ३ । १४४-१४९)। इनके द्वारा घोड़ेकी गुदा फूँकने[पर] आगकी लपटोंका प्रकट होना एवं आगसे भयभीत हो[कर] तक्षकका कुण्डल देना (आदि० ३ । १५१-१५३)। नागलोकमें देखे हुए कुमार आदिके विषयमें इनका गु[रुसे] पूछना (आदि० ३ । १६३)। बैल और उसपर [चढ़े] हुए पुरुषके सम्बन्धमें इनकी जिज्ञासा (आदि० ३ । १६५)। गुरुके द्वारा इनके प्रश्नोंका समाधान (आदि० ३ । १६६-१६८)। तक्षकके विनाशहेतु सर्पयज्ञके लि[ये] राजा जनमेजयको सर्पसत्रकी सलाह देना (आदि० ३ । १७८-१८४)। (२) गौतम ऋषिके शिष्य, द्वारका [जाते] समय मार्गमें श्रीकृष्णसे इनकी भेंट और उनसे कौरवों-पाण्ड[वों]का समाचार पूछना (आश्व० ५३ । ८-१४)। कु[पित] होकर इनका श्रीकृष्णको शाप देनेके लिये उद्यत हो[ना] (आश्व० ५३ । २०-२२)। श्रीकृष्णसे अध्यात्मतत्त्व[का] वर्णन करनेके लिये कहना (आश्व० ५४ । १)। [शाप]दानसे निवृत्त होकर इनका श्रीकृष्णसे विश्वरूपका द[र्शन] करानेके लिये प्रार्थना करना (आश्व० ५५ । १-३)। श्रीकृष्णसे जलके लिये वरदान माँगना (आश्व० ५[५ ।] १३)। श्रीकृष्णका इन्हें उत्तङ्क नामक मेघोंसे जल [प्राप्त] होनेका वर देना (आश्व० ५५ । ३५-३७)। इ[नकी] उत्कृष्ट गुरुभक्ति (आश्व० ५६ । २-६)। उत्त[ङ्कका] गुरुके लिये काष्ठका बोझ लाना। उस बोझके साथ [चिपकी] हुई सफेद जटा देखकर वृद्धावस्थाका अनुमान करके इ[नका] रोदन, गुरुपुत्रीका इनके आँसुओंको अपने हाथमें [लेना] और उसका हाथ जलना, गुरुके पूछनेपर 'घर जा[नेकी] आज्ञा न मिलनेसे ही मुझे दुःख हुआ है' यह क[हना] तथा गुरुका इन्हें आज्ञा लेकर घर जानेका आदेश दे[ना]। उत्तङ्कका 'गुरुदक्षिणा क्या दूँ ?' यह पूछना, गु[रुका] बिना दक्षिणाके ही संतोष व्यक्त करके उन्हें पुत्री दे[नेकी] इच्छा व्यक्त करना तथा उत्तङ्कका षोडशवर्षीय युवक हो[कर] उसका पाणिग्रहण करना (आश्व० ५६ । ७-२४)। इनका गुरुपत्नीसे गुरुदक्षिणा माँगनेका आग्रह [और] अहल्याका मदयन्तीके कुण्डल माँगना (आश्व० ५[६ ।] २५-२९)। कुण्डल लानेके लिये सौदासके पास [जाना और] उनके साथ इनका वार्तालाप करना (आश्व० ५७ । [...] १८)। मदयन्तीको राजाका संदेश सुनाकर कु[ण्डल] माँगना (आश्व० ५७ । १९)। राजा सौदाससे [...] लिये संदेशका प्रमाण माँगना (आश्व० ५८ । १)। मदयन्तीको राजाका संदेश सुनाकर कुण्डल [...] सौदासके [...] करना (आश्व० ५८ । ३)।

पुनः इनकी बातचीत (आश्व० ५८ । ४-१६) । इनके वृक्षपर चढ़कर बेल तोड़कर गिराते समय कुण्डलोंकी चोरी (आश्व० ५८ । २४-२६) । इनका डंडेसे साँपकी बाँबी खोदना (आश्व० ५८ । २७-२८) । इन्द्रकी सहायतासे नागलोकमें पहुँचना (आश्व० ५८ । ३६-३८) । अश्वरूप अग्निकी सहायतासे कुण्डल प्राप्त करना (आश्व० ५८ । ५६) । गुरुपत्नीको कुण्डल देना (आश्व० ५८ । ५८) । इनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णुका इन्हें वरदान देना (वन० २०१ । ३०)। इनका अयोध्यानरेश बृहदश्वसे धुन्धुको मारनेके लिये आग्रह करना (वन० २०२ । २२) ।

उत्तमाश्व–भारतवर्षका एक जनपद (भीष्म० ९ । ४१)।

उत्तमौजा–पाण्डवोंका सम्बन्धी । पाञ्चालदेशीय योद्धा (उद्योग० ५७ । ३२) । इनके द्वारा अर्जुनके रथके दाहिने पहियेकी रक्षा (भीष्म० १५ । १९; भीष्म० १९ । २४; भीष्म० ९८ । ४३) । इनके रथके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ८) । अङ्गदके साथ इनका युद्ध (द्रोण० २५ । ३८-३९) । कृतवर्माके साथ युद्ध (द्रोण० ९२ । २७-३२) । दुर्योधनके साथ युद्ध करके इनका पराजित होना (द्रोण० १३० । ३०–४३)। कृतवर्मासे इनकी पराजय (कर्ण० ६१ । ५९) । इनके द्वारा कर्णपुत्र सुषेणका वध (कर्ण० ७५ । १३)। अश्वत्थामाद्वारा इनका वध (सौप्तिक० ८ । ३५-३६)। उत्तमौजा आदिका दाह (स्त्री० २६ । ३४) ।

उत्तर–(१) राजा विराटके पुत्र । इनका विराटके साथ द्रौपदी-स्वयंवरमें आना (आदि० १८५ । ८) । इनका दूसरा नाम 'भूमिंजय' था (विराट० ३५ । ९) । इनके पास गोपाध्यक्षका आना और इन्हें युद्धके लिये उत्साहित करना (विराट० ३५ । ९)। इनके द्वारा अपने लिये सारथि ढूँढ़नेका प्रस्ताव (विराट० ३६ । २)। बृहन्नला नामधारी अर्जुनको सारथि बनाकर इनका युद्धके लिये प्रस्थान (विराट० ३७ । २७) । कौरवोंकी सेना देखकर भयभीत हो रथसे कूदकर भागना (विराट० ३८ । २८) । अर्जुनके समझानेपर इनका सारथि बननेको राजी होना (विराट० ३८ । ५१) । शमीवृक्षसे अर्जुनकी आज्ञाके अनुसार पाण्डवोंके दिव्य धनुष आदि उतारना (विराट० ४१ । ८) । बृहन्नलासे पाण्डवोंके अस्त्रोंके विषयमें प्रश्न करना (विराट० ४२ अध्यायमें) । अर्जुनसे उनके दस नामोंके कारण पृथक्-पृथक् पूछना (विराट० ४४ । १०–१२) । अर्जुनको पहचानकर उनकी शरणमें जाना (विराट० ४४ । २४-२५) । अर्जुनसे उनके नपुंसक होनेका कारण पूछना (विराट० ४५ । १२) । घायल होनेसे हतोत्साह होकर अर्जुनसे सारथ्यके लिये अपनी असमर्थता प्रकट करना (विराट० ६१ । ४–१२) । अर्जुनके आदेशसे कौरव महारथियोंके वस्त्र उतार लेना (विराट० ६६ । १५) । बृहन्नलाको सारथि बनाकर इनका नगरकी ओर प्रस्थान (विराट० ६७ । १४) । उत्तरका नगरमें प्रवेश करके पिता तथा कङ्कके चरणोंमें अभिवादन (विराट० ६८ । ५७) । विराटसे युद्धका समाचार बताना (विराट० ६९ । १–११) । पितासे पाण्डवोंका परिचय देना (विराट० ७१ । १३–१७) । अर्जुनका विशेषरूपसे परिचय देना (विराट० ७१ । १८–२१) । प्रथम दिनके युद्धमें वीरबाहुके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । ७७) । शल्यपर आक्रमण और उनके द्वारा इनका वध (भीष्म० ४७ । ३६–३९) । स्वर्गमें जाकर इनका विश्वेदेवोंमें प्रवेश (स्वर्गा० ५ । १७-१८)। (२) एक राजा, जो अपने बड़ेका अपमान करनेके कारण नष्ट हो गया (सभा० २२ । २४) । (३) एक अग्नि, तीन दिन अग्निहोत्र छूट जानेपर इन्हें अष्टाकपाल चरुकी आहुति देना कर्तव्य (वन० २२१ । २९) । (४) उत्तर भारतका एक जनपद (भीष्म० ९ । ६५) ।

उत्तर उलूक–उत्तर दिशामें स्थित उलूक देश, जिसे अर्जुनने जीता था (सभा० २७ । ११) ।

उत्तर कुरु–जम्बूद्वीपका एक वर्ष (खण्ड), जिसकी सीमातक अर्जुन गये थे और वहाँसे करके रूपमें बहुत धन लाये थे । वह भूमि मनुष्योंके लिये अगम्य है (सभा० २८ । ७–२०) । यह उत्तर कुरुवर्ष नीलगिरिसे दक्षिण तथा मेरुगिरिसे उत्तर है । वहाँ सिद्ध पुरुष निवास करते हैं । वहाँके वृक्ष फल-फूलसे सम्पन्न हैं, फूल सुगन्धित, फल मधुर और सरस हैं । 'क्षीरी' नामवाले वृक्ष वहाँ षड्रसयुक्त अमृतमय दूध देते हैं । कुछ वृक्ष मनोवाञ्छित फल देते हैं । 'क्षीर'के फलोंमें इच्छानुसार वस्त्र और आभूषण भी प्रकट होते हैं । वहाँ मणिमयी भूमि और सोनेकी बालुका है । स्वर्गच्युत पुण्यात्मा वहाँ रहते हैं। वहाँके निवासियोंकी आयु ग्यारह हजार वर्षकी होती है । वहाँ भारुण्ड नामक पक्षी होते हैं, जो मृतकोंकी लाशें उठाकर कन्दराओंमें डालते हैं (भीष्म० ७ । २–१३) ।

उत्तर कोसल–एक भारतीय जनपद, जिसे भीमसेनने जीता था (सभा० ३० । ३) ।

उत्तर ज्योतिष–पश्चिमका एक प्राचीन नगर, जिसे नकुलने जीता था (सभा० ३२ । ११) ।

उत्तर दिशा–गरुडने गालवके समक्ष उत्तर दिशाका

विस्तारपूर्वक वर्णन किया है (उद्योग० १११ अध्याय)। मूर्तिमती उत्तर दिशाके द्वारा अष्टावक्रका स्वागत (अनु० अध्याय १९ से २१)।

उत्तरपाञ्चाल–एक जनपद, जहाँ पृषत्‌की मृत्युके बाद द्रुपदको राजा बनाया गया (आदि० १२९ । ४३)। आगे चलकर उत्तरपाञ्चाल एवं उसकी राजधानी अहिच्छत्रापर द्रोणका अधिकार हो गया। यह प्रदेश गङ्गाके उत्तर तटपर था (आदि० १३७ । ७०–७६)।

उत्तरपारियात्र–एक पर्वत, जहाँ अर्जुनके लिये शुभाशंसा की गयी थी (वन० ३१३ । ८)।

उत्तरमानस–एक तीर्थ, यहाँकी यात्रा करनेसे भ्रूणहत्यारा भी पापसे मुक्त हो जाता है (अनु० २५ । ६०)।

उत्तरा–मत्स्यनरेशकी कन्या, अभिमन्युकी पत्नी और परीक्षित्‌की माता (आदि० ९५ । ८३-८४)। उत्तराकी शिक्षाके लिये अर्जुनने अपनेको रखनेका राजा विराटसे अनुरोध किया। विराटने कहा, तुम उत्तराको नृत्यकी शिक्षा दो। फिर अर्जुनने उत्तराको नृत्य-गीत सिखाना आरम्भ किया (विराट० ११ । ८–१२)। उत्तराका बृहन्नलासे उत्तरका सारथि बननेके लिये कहना (विराट० ३७ । ५–१९)। बृहन्नलासे गुड़िया बनानेके लिये कौरवोंके वस्त्र माँगना (विराट० ३७ । २८-२९)। अभिमन्युके साथ उत्तराका विवाह (विराट० ७२ । ३५)। पतिकी मृत्युके शोकसे दुखी होकर मूर्च्छित होना (द्रोण० ७८ । ३७)। श्रीकृष्णद्वारा उसे आश्वासन (द्रोण० ७८ । ४०–४२)। युद्धस्थलमें अभिमन्युको मरा हुआ देखकर विलाप करना (स्त्री० २० । ४–२८)। अभिमन्युके लिये शोक करना और व्यासजीद्वारा इसका समझाया जाना (आश्व० ६२ । ८–१२)। वनको जाते हुए धृतराष्ट्रके पीछे कुछ दूरतक जानेवाली स्त्रियोंमें उत्तरा भी थी (आश्रम० १५ । १०)।

उत्तरापथ–उत्तर भारत (शान्ति० २०७ । ४३)।

उत्तेजनी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ६)।

उत्पलावन–पंजाबका एक तीर्थ, जहाँ विश्वामित्रने अपने पुत्रके साथ यज्ञ किया था (वन० ८७ । १५)। यहाँ स्नानका फल (अनु० २५ । ३४)।

उत्पलिनी–नैमिषारण्यके समीप बहनेवाली एक नदी, जिसका दर्शन अर्जुनने किया (आदि० २१४ । ६)।

उत्पातक–यहाँ स्नान करके उपवास करनेसे नरमेधके फलकी प्राप्ति होती है (अनु० २५ । ४१)।

उत्सवसंकेत–(१) लुटेरोंके दल, जिनपर अर्जुनने विजय प्राप्त की (सभा० २७ । १६)। (२) दक्षि[ण] दिशाका एक जनपद (भीष्म० ९ । ६१)।

उदपानतीर्थ–सरस्वती नदीके जलमें स्थित एक प्राचीन तीर्थ, इसकी उत्पत्तिकी कथा (शल्य० ३६ अध्याय)।

उदयगिरि–एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ एक दिन संध्योपासन करनेसे बारह वर्षोंतक संध्योपासना करनेका फल मिल[ता] है (वन० ८४ । ९३)।

उदयाचल–उदयगिरि (द्रोण० १८४ । ४७)।

उदरशाण्डिल्य–इन्द्रसभामें विराजमान एक ऋषि (सभा० ७ । १३)।

उदराक्ष–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६३)।

उदानवायु–प्राणवायुके पाँच भेदोंमेंसे एक (वन० २१३ । १२)।

उदापेक्षी–विश्वामित्रका एक ब्रह्मवादी पुत्र (अनु० ४ । ५९)।

उद्दालक–एक ऋषि, जो जनमेजयके सर्पसत्रके सदस्य [थे] (आदि० ५३ । ७)। ये ही आयोदधौम्य ऋषिके शि[ष्य] आरुणि पाञ्चाल हैं, जो आगे चलकर उद्दालक नाम[से] प्रसिद्ध हुए। ये इन्द्रकी सभामें भी उपस्थित होते [थे] (सभा० ७ । १२)। उद्दालकके पुत्रका नाम श्वेतके[तु] और कन्याका नाम सुजाता था। उद्दालकने अपनी क[न्या] सुजाताका ब्याह प्रिय शिष्य कहोडसे किया था, जि[सके] गर्भसे अष्टावक्रका जन्म हुआ था (वन० १३२ । १–९)। उद्दालकके यज्ञमें उनके चिन्तन करने[से] सरस्वती नदीका प्राकट्य हुआ था, उस समय उनकी उ[स] धाराका नाम 'मनोरमा' हुआ था (शल्य० ३८ । २२–२५)। इन्होंने अपने पुत्र श्वेतकेतुको ब्राह्म[णोंके] प्रति उसके कपटपूर्ण व्यवहारके कारण निकाल दिया [था] (शान्ति० ५७ । १०)।

उद्दालकि–प्राचीन ऋषि। नाचिकेतके पिता (अनु० ७१ । २-३)। नाचिकेतपर रुष्ट होकर इनका शाप दे[ना] (अनु० ७१ । ७)। पुत्रशोकसे संतप्त होकर इन[का] पृथ्वीपर गिरना (अनु० ७१ । ९)। मरकर जी[वित] हुए पुत्रसे उसके विषयमें पूछना (अनु० ७१ । १३)।

उद्धव–एक यादव। श्रीकृष्णके सखा एवं मन्त्री। इन[का] परिचय महाभारतमें इस प्रकार है—उद्धवजी द्रौप[दीके] स्वयंवरमें पधारे थे (आदि० १८५ । १८)। ये रैव[तक] पर्वतके उत्सवमें सम्मिलित थे (आदि० २१८ । ११)। बृहस्पतिके शिष्य महाबुद्धिमान् उद्धवजी सुभद्राके [लिये] दहेज लेकर इन्द्रप्रस्थमें गये थे (आदि० २२० । ३[९])। शाल्वके चढ़ाई करनेपर इनके द्वारा द्वारका नग[री]

सुरक्षा (वन० १५ । ९)। वृष्णिवंशियोंसे विदा ले उद्धवजी अपने तेजसे पृथ्वी-आकाशको व्याप्त करते हुए प्रभासक्षेत्रसे अन्यत्र चले गये। वृष्णिकुलके भावी विनाशको जाननेवाले भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें वहाँ नहीं रोका (मौसल० ३ । ११–१३)।

उद्धव–एक राजा, जिन्हें पाण्डवोंकी ओरसे रण-निमन्त्रण भेजा गया (उद्योग० ४ । २३)।

उद्धस–उद्धसदेशीय योद्धा, जिन्हें साथ लेकर नकुल-सहदेव धृष्टद्युम्ननिर्मित क्रौञ्चव्यूहकी बायीं पाँखके स्थानमें खड़े हुए थे (भीष्म० ५० । ५३)।

उद्भिद्–कुशद्वीपके प्रथम वर्ष (खण्ड) का नाम (भीष्म० १२ । १२)।

उद्योगपर्व–महाभारतका एक प्रधान पर्व।

उद्रपारक–धृतराष्ट्र नागके कुलमें उत्पन्न एक सर्प, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें दग्ध हो गया था (आदि० ५७ । १७)।

उद्वह–(१) क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न एक क्षत्रिय राजा (आदि० ६७ । ६४)। (२) वायुके सात भेदोंमेंसे तीसरा (शान्ति० ३२८ । ४०)।

उन्माथ–यमराजद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमें एक। दूसरेका नाम प्रमाथ था (शल्य० ४५ । ३०)।

उन्माद–पार्वतीद्वारा स्कन्दको दिये गये पार्षदोंमेंसे एक (शल्य० ४५ । ५१)।

उन्मुच–दक्षिण दिशामें रहनेवाले एक ब्रह्मर्षि (शान्ति० २०८ । २८)।

उपकीचक–कालेय राक्षसोंके अंशसे उत्पन्न। कीचकके छोटे भाई, कीचकके मारे जानेपर ये द्रौपदीको बाँधकर श्मशानमें ले गये थे। इनकी संख्या १०५ थी; भीमसेन-द्वारा इनका वध (विराट० २३ । ५—२८)।

उपकृष्णक–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५७)।

उपगहन–महर्षि विश्वामित्रका एक ब्रह्मवादी पुत्र (अनु० ४ । ५६)।

उपगिरि–उत्तर दिशाका एक पर्वतीय जनपद (सभा० २७ । ३)।

उपचित्र–धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ६७ । ९५)। (भीष्म० ५१ । ८ में भी इसका नाम आया है)। भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १३६ । २२)।

उपजला–एक नदी, जहाँ यज्ञ करके उशीनरने इन्द्रसे भी ऊँचा स्थान प्राप्त किया था (वन० १३० । ३१)।

उपत्यक–एक भारतीय जनपद, जो पर्वतकी तराईमें स्थित है (भीष्म० ९ । ५५)।

उपनन्द–(१) धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ६७ । ९६)। भीमसेनद्वारा इसका वध (कर्ण० ५१ । १९)। (२) नागलोकका एक नाग (उद्योग० १०३ । १२)। (३) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६४)।

उपप्लव्य–विराट-राज्यका एक उपनगर, जो राजधानीके पास ही था; यहाँ अज्ञातवासके बाद पाण्डवोंने निवास किया था (विराट० ७२ । १४)। (इसका नाम अनेक बार आया है।)

उपमन्यु–(१) आयोदधौम्य ऋषिके शिष्य (आदि० ३ । २२—३३)। इनकी गुरुभक्ति (आदि० ३ । ३५—४९)। इनका आकके पत्ते खानेसे अन्धा होकर कुएँमें गिरना और गुरुकी आज्ञासे इनके द्वारा अश्विनी-कुमारोंकी स्तुति (आदि० ३ । ५०—६८)। इनको अश्विनीकुमारका वरदान (आदि० ३ । ७३)। इनको गुरुदेवका आशीर्वाद (आदि० ३ । ७६-७७)। (२) सत्ययुगके महायशस्वी ऋषि। व्याघ्रपादके पुत्र। धौम्यके बड़े भाई (अनु० १४ । ११-१२; अनु० १४ । ५५)। इनके आश्रमका वर्णन (अनु० १४ । ४५—६३)। श्रीकृष्णका इन्हें प्रणाम करना और उपमन्युका उन्हें पुत्र-प्राप्तिका विश्वास दिलाते हुए महादेवजीकी आराधनाके लिये कहना एवं शिवजीकी महिमा बताना (अनु० १४ । ६४—११०)। इन्होंने बाल्यकालमें मातासे दूध-भात माँगा, माँने आटा घोलकर दोनों भाइयोंको दूधके नाम-पर दे दिया। फिर इन्होंने पिताके साथ किसी यजमानके यहाँ जाकर दूधका स्वाद चखा और घर आकर माँसे कहा, 'तुमने जो दूध कहकर दिया, वह दूध नहीं था।' माँने कहा, 'भगवान् शिवकी कृपाके बिना दूध-भात कहाँ ?' उन्होंने पूछा, 'महादेवजी कौन हैं ?' फिर माताने उनकी महिमा बतायी; जिससे वे शिवाराधनामें प्रवृत्त हुए (अनु० १४ । ११५—१६७)। इनकी तपस्या, शिव-भक्ति, स्तुति-प्रार्थना, शिवदर्शन और वरप्राप्ति (अनु० १४ । १६८—३७७)। इनका श्रीकृष्णसे तण्डिद्वारा की गयी शिव-स्तुतिका वर्णन (अनु० १६ अध्यायमें)। इनके द्वारा श्रीकृष्णसे शिवसहस्रनामस्तोत्रका वर्णन (अनु० १७ अध्यायमें)।

उपयाज–परम शान्त, ब्रह्माके तुल्य प्रभावशाली, संहिताके स्वाध्यायमें तत्पर, कश्यप गोत्रमें उत्पन्न, सूर्यदेवके भक्त एवं सुयोग्य एक श्रेष्ठ महर्षि, जो याजके छोटे भाई थे (आदि० १६६ । ७–१०)। द्रोणविनाशक पुत्रकी प्राप्तिके लिये इनसे द्रुपदकी प्रार्थना और एक अर्बुद धेनु-का प्रलोभन (आदि० १६६ । १०–१२)। इनका द्रुपदकी प्रार्थनाको अस्वीकार करना और अपनी अभीष्ट-

सिद्धिके हेतु याजके समीप जानेके लिये उन्हें आदेश देना (आदि० १६६ । १३–२०) । इनके द्वारा याजकी हीन वृत्तिका वर्णन (आदि० १६६ । १५–१९) । द्रोणविनाशक पुत्रेष्टि-यज्ञमें सहयोग देनेके लिये इनको याजकी प्रेरणा (आदि० १६६ । ३२) । (याज और) उपयाजकी तपस्यासे द्रुपदको द्रौपदी एवं धृष्टद्युम्नकी प्राप्ति (सभा० ८० । ४५) ।

उपरिचरवसु–एक प्राचीन पुरुवंशी राजा, जो नित्य धर्मपरायण थे (आदि० ६३ । १) । इन्द्रकी आज्ञासे उन्होंने चेदिदेशका राज्य स्वीकार किया (आदि० ६२ । २) । इन्द्रके द्वारा इनके प्रति चेदिदेशकी प्रशंसा (आदि० ६३ । ८–११) । देवराजद्वारा इन्हें सर्वज्ञ होनेका वरदान (आदि० ६३ । १२) । इनको देवेन्द्रके द्वारा दिव्य विमान, बाँसकी छड़ी एवं वैजयन्तीमालाकी भेंट (आदि० ६३ । १३–१७) । इनका बाँसकी छड़ीको धरतीमें गाड़कर इन्द्रपूजाकी प्रथा चलाना (आदि० ६३ । १८-१९) । हंसका स्वरूप धारण करके इन्द्रका इनकी की हुई पूजा ग्रहण करना एवं अपनी पूजाका महत्त्व बतलाना (आदि० ६३ । २२–२५) । उपरिचरवसुने चेदिदेशमें ही रहकर इस पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन किया (आदि० ६३ । २८) । इनके बृहद्रथ, प्रत्यग्रह, कुशाम्बु, मावेल्ल तथा यदु नामके पाँच पुत्र थे (आदि० ६३ । ३०-३१) । इनका 'उपरिचर' नाम होनेका कारण (आदि० ६३ । ३४) । इनकी राजधानीके समीप प्रसिद्ध नदी 'शुक्तिमती' बहती थी (आदि० ६३ । ३५) । इनके द्वारा 'कोलाहल' पर्वतपर पैरसे प्रहार (आदि० ६३ । ३६) । इनके द्वारा शुक्तिमतीकी पुत्री 'गिरिका' का पाणिग्रहण (आदि० ६३ । ३९) । पितरोंकी आज्ञाका पालन करनेके लिये हिंसक पशुओंको मारनेके हेतु इनका वनमें जाना (आदि० ६३ । ४१-४२) । श्येनपक्षीके द्वारा अपनी पत्नी गिरिकाके लिये इनके द्वारा अपना वीर्य भेजना (आदि० ६३ । ५४) । बाजोंके पारस्परिक युद्धसे इनके वीर्यका यमुनाजीमें गिर जाना (आदि० ६३ । ५८) । यमुनाजीमें गिरे हुए इनके वीर्यसे मत्स्यरूपधारिणी 'अद्रिका' नामक अप्सराद्वारा 'सत्यवती' एवं 'मत्स्य' राजाका जन्म (आदि० ६३ । ५८–६१) । मछलीके पेटसे उत्पन्न हुए 'मत्स्य' नामक बालकका इनके द्वारा ग्रहण एवं सत्यवतीको मल्लाहके हाथमें सौंपना (आदि० ६३ । ६३–६७) । यमकी सभामें ये विराजमान होते हैं (सभा० ८ । २०) । ये इन्द्रके सखा, नारायणके भक्त, धर्मात्मा, पितृभक्त तथा आलस्यरहित थे, श्रीनारायणदेवके वरसे इन्हें साम्राज्य प्राप्त हुआ था, ये वैष्णवशास्त्रके अनुसार भगवान्का पूजन करते थे, यज्ञशिष्ट अन्नके भोक्ता, सत्यपरायण और अहिंसक थे। इन्होंने सब कुछ भगवान्को समर्पित कर दिया था। इन्हें इन्द्रदेव अपने साथ एक शय्या और आसनपर बिठाते थे (शान्ति० ३३५ । १७–२६) । इनके यज्ञका आरम्भ (शान्ति० ३३६ । ५) । इनके यज्ञकी समाप्ति (शान्ति० ३३६ । ६१) । अजका अर्थ बकरा बतानेके कारण ऋषियोंके शापसे इनका पातालमें प्रवेश (शान्ति० ३३७ । १३–१६) । देवताओंद्वारा इन्हें वर-प्राप्ति (शान्ति० ३३७ । २४–२७) । भगवत्कृपासे गरुड़ने इन्हें आकाशचारी बनाया (शान्ति० ३३७ । ३७) । इनका ब्रह्मलोकगमन (शान्ति० ३३७ । ३८) ।

उपवेणा–एक नदी, जो अग्निकी जननी मानी जाती है (किसी-किसीके मतमें यह सम्भवतः दक्षिणभारतकी कृष्णवेणा या कृष्णा नामक नदीकी एक शाखा है।) (वन० २२२ । २४) ।

उपश्रुति–उत्तरायणकी अधिष्ठात्री देवी । इन्होंने ही कमलनालकी ग्रन्थिमें इन्द्राणीको इन्द्रका दर्शन कराया (आदि० १६६ । ५६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृ० ४८३) । इनकी सहायतासे शचीकी इन्द्रसे भेंट (उद्योग० १४ । १२-१३) ।

उपसुन्द–निकुम्भ दैत्यका पुत्र । सुन्दका भाई । ये दोनों भयंकर और क्रूर हृदयके थे (आदि० २०८ । २-३) । इन दोनों भाइयोंके पारस्परिक प्रेमका वर्णन (आदि० २०८ । ४–६) । त्रिभुवनपर विजय पानेके लिये विन्ध्य पर्वतपर इन दोनोंकी उग्र तपस्या (आदि० २०८ । ७) । इनकी तपस्यामें देवताओंका विघ्न डालना (आदि० २०८ । ११) । इन दोनोंको अपने भाईके अतिरिक्त किसी दूसरेसे न मरनेका ब्रह्माजीद्वारा वरदान (आदि० २०८ । २४-२५) । त्रिभुवनमें इन दोनोंके अत्याचार (आदि० २०९ अध्याय) । तिलोत्तमाके कारण इन दोनों भाइयोंकी एक-दूसरेके हाथसे गदायुद्धमें मृत्यु (आदि० २११ । १९) ।

उपावृत्त–भारतवर्षका एक जनपद (भीष्म० ९ । ४८) ।

उपेन्द्र-भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । ३०) ।

उपेन्द्रा–एक नदी, जिसका जल भारतके लोग पीते हैं (भीष्म० ९ । २७) ।

उमा–पार्वती देवी (वन० ३७ । ३३) । (विशेष 'पार्वती' शब्द देखिये ।)

उम्लोचा–एक अप्सरा, जो अर्जुनके जन्म-महोत्सवपर अन्य अप्सराओंके साथ नाचने-गाने आयी थी (आदि० १२२ । ६५) ।

उरग-एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९।५४)।

उरगा-उत्तर भारतकी एक पर्वतीय राजधानी, जहाँके राजा रोचमानको अर्जुनने परास्त किया था (सभा० २७। १९)।

उर्वरा-कुबेरभवनकी एक अप्सरा, जिसने अन्य नर्तकियोंके साथ अष्टावक्रके स्वागतमें नृत्य किया था (अनु० १९। ४४)।

उर्वशी-(१) एक प्रसिद्ध सर्वश्रेष्ठ अप्सरा (आदि० ७४। ६८; वन० ४३। २९)। उर्वशीके गर्भसे राजा पुरूरवाद्वारा छः पुत्र उत्पन्न हुए-आयु, धीमान्, अमावसु, दृढायु, वनायु और शतायु (आदि० ७५। २४-२५)। यह स्वर्गकी विख्यात ग्यारह अप्सराओंमें ग्यारहवीं है, जिसने अर्जुनके जन्मोत्सवपर गीत गाया था (आदि० १२२। ६६)। कुबेरकी सभामें नृत्य-गान करनेवाली अप्सराओंमें यह भी है (सभा० १०। ११) इसकी अर्जुनके पास जानेके लिये चित्रसेनसे बात (वन० ४५। १४-१६)। इसका कामपीड़ित होकर अर्जुनके पास पहुँचना (वन० ४६। १६)। उर्वशीका अर्जुनके निकट अपने आनेका कारण बताना और अपनी कामविवशता प्रकट करना (वन० ४६। २२-३५)। स्वर्गकी अप्सराओंका किसीके साथ पर्दा नहीं है, उनके साथ सम्पर्कसे दोष नहीं होता, ऐसा कहकर उर्वशीका अर्जुनसे समागमके लिये प्रार्थना करना (वन० ४६। ४२-४४)। कामनापूर्ति न होनेपर इसके द्वारा अर्जुनको शाप (वन० ४६। ४९-५०)। शुकदेवजीकी परमपदप्राप्तिके समय आश्चर्यचकित होना (शान्ति० ३३२। २१-२४)। (२) भगीरथके ऊरुपर बैठनेके कारण गङ्गाजीका एक नाम (द्रोण० ६०। ६)।

उर्वशीतीर्थ-एक तीर्थ, जिसकी यात्रा करके मनुष्य इस भूतलपर पूजित होता है (वन० ८४। १५७)। यहाँ स्नानका फल (अनु० २५। ४६)।

उर्वी-पृथ्वीका नाम, यह नाम पड़नेका कारण (शान्ति० २०८। २८)।

उलूक-(१) शकुनिका पुत्र (उद्योग० ५७। २३)। यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८२। २२)। दुर्योधनके कहनेसे पाण्डवोंके शिविरमें जाकर भरी सभामें दुर्योधनका संदेश सुनाना (उद्योग० १६१ अ० में)। दुर्योधनको पाण्डवोंके संदेश सुनाना (उद्योग० १६३। ५१-५३)। प्रथम दिनके युद्धमें चेदिराजके साथ इसका द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५। ७८-८०)। सहदेवका इसपर आक्रमण (भीष्म० ७२। ५)। अर्जुनद्वारा इसकी पराजय (द्रोण० १७१। ४०)। द्रोणाचार्यके मारे जानेपर युद्धस्थलसे भागना (द्रोण० १९३। १४)। इसके द्वारा युयुत्सुकी पराजय (कर्ण० २५। ९-११)। सहदेवद्वारा इसकी पराजय (कर्ण० ६१। ४३-४४)। नकुलके साथ इसका युद्ध (शल्य० २२। २८-२९)। सहदेवके द्वारा इसका वध (शल्य० २८। ३२-३३)। **महाभारतमें आये हुए इसके नामान्तर**—शाकुनि, कैतव, सौबलसुत और कैतव्य। (२) एक यक्ष (या नाग), जिसके साथ गरुडने युद्ध किया था (आदि० ३२। १८-१९)। (३) उत्तरभारतका एक जनपद, जिसके राजा बृहन्तको अर्जुनने परास्त किया था (सभा० २७। ५)। (४) एक प्राचीन ऋषि, जो विश्वामित्रके पुत्र हैं (अनु० ४। ५१)। ये शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मके पास आये थे (शान्ति० ४७। ११)।

उलूकदूतागमनपर्व-उद्योगपर्वका एक अवान्तरपर्व (अध्याय १६० से १६४ तक)।

उलूकाश्रम-एक तीर्थ (उद्योग० १८६। २६)।

उलूत-एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९। ५४)।

उलूपी-ऐरावत-कुलोत्पन्न कौरव्य नागकी पुत्री (आदि० २१३। १२)। इसके द्वारा अर्जुनका हरिद्वारसे नागलोकमें आकर्षण (आदि० २१३। १३)। अर्जुनद्वारा इसके गर्भसे इरावान्का जन्म (आदि० २१३। ३६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। इसका बभ्रुवाहनको अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये उत्साहित एवं उत्तेजित करना (आश्व० ७९। ११-१२)। संजीवन मणिके द्वारा अर्जुनको जिलाना (आश्व० ८०। ५०-५२)। अर्जुनके पूछनेपर युद्धमें अपने आनेका कारण बताकर उनको मिले हुए शाप और उससे छूटनेका वृत्तान्त बताना तथा उससे विदा लेकर अर्जुनका अश्वके पीछे जाना (आश्व० ८१ अ० में)। बभ्रुवाहन और चित्राङ्गदाके साथ इसका हस्तिनापुर आगमन (आश्व० ८७। २६-२७)। इसके द्वारा कुन्ती और द्रौपदीके चरण छूना, सुभद्रासे मिलना तथा नाना प्रकारके उपहार पाना (आश्व० ८८। १-५)। इसके द्वारा गान्धारीकी सेवा (आश्रम० १। २३)। यह प्रजाके साथ प्रतिकूल बर्ताव नहीं करेगी—ऐसा प्रजाजनोंका विश्वास (आश्रम० १०। ४६)। संजयका ऋषियोंसे इसका परिचय देना (आश्रम० २५। ११)। पाण्डवोंके महाप्रस्थानके पश्चात् उलूपीका गङ्गाजीमें प्रवेश (महाप्र० १। २७)। **महाभारतमें आये हुए उलूपीके नाम**—भुजगात्मजा, भुजगेन्द्रकन्या, भुजगोत्तमा, कौरवी, कौरव्यदुहिता, कौरव्यकुलनन्दिनी, पन्नगनन्दिनी, पन्नगसुता, पन्नगात्मजा, पन्नगेश्वरकन्या, पन्नगी, उरगात्मजा।

उल्मुक–एक वृष्णिवंशी महारथी राजकुमार, जो युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें आया था (सभा० ३४ । १६) । प्रभासक्षेत्रमें पाण्डवोंसे मिलनेके लिये आये हुए वृष्णिवंशियोंमें उल्मुक भी थे (वन० १२० । १९) । धृतराष्ट्रको युद्धमें उल्मुक आदि वृष्णिवंशी वीरोंके आनेकी सम्भावनासे भय (द्रोण० ११ । २८) ।

उशङ्गव–यमराजकी सभामें बैठनेवाले एक राजा (सभा० ८ । २६) ।

उशना–महर्षि (भृगु) के पुत्र शुक्राचार्य, ये असुरोंके उपाध्याय थे । इनका एक नाम उशना भी है (आदि० ६५ । ३६) । (विशेष देखिये शुक्र ।)

उशीनर–(१) एक वृष्णिवंशी एवं पराक्रमी राजकुमार, जो द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । २०) । (२) शिबिदेशके राजा, ये यम-सभाके सदस्य हैं (सभा० ८ । १४) । इनका बाजरूपी इन्द्रको अग्निरूपी कबूतरकी रक्षाके लिये अपना मांस काटकर देना (वन० १३० । २१ से १३१ । २८ तक) । इन्द्र और अग्निद्वारा राजाका अभिनन्दन (वन० १३१ । ३०-३१) । इनका स्वर्गगमन (वन० १३१ । ३२-३३) । इनका गालवको शुल्करूपमें दो सौ घोड़े देकर ययातिकन्या माधवीको स्वीकार करना (उद्योग० ११८ । १५) । इनको महाराज शुनकसे खड्गकी प्राप्ति (शान्ति० १६६ । ७९) । ये शरणागतवत्सल शिबिके पिता थे । माधवीके गर्भसे शिबि नामक पुत्रकी प्राप्ति (उद्योग० ११८ । २०) । इन्हें गोदानसे स्वर्गकी प्राप्ति हुई (अनु० ७६ । २५) । (३) काशिराज वृषादर्भि, इनकी शरणागतरक्षाके प्रसङ्गमें कबूतर और बाजकी कथा (अनु० ३२ अ०में) । ये उशीनर और वृषादर्भि दोनों नामोंसे विख्यात थे और काशी जनपदके राजा थे (अनु० ३२ । २२-३७) । (४) एक देश, जहाँके निवासी सैनिक अर्जुनके द्वारा मारे गये थे (कर्ण० ५ । ४७) । इस देशके वीर सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंमें कुशल और बलशाली होते हैं (शान्ति० १०१ । ४) । उशीनर देशके क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी कृपादृष्टिसे वञ्चित होनेके कारण शूद्र हो गये (अनु० ३३ । २२-२३) ।

उशीरबीज–(१) उत्तराखण्डका एक पर्वत (वन० १३९ । १) । (२) हिमालयके पास उत्तर दिशाका स्थानविशेष, जहाँ महाराज मरुत्तका यज्ञ हुआ था (उद्योग० १११ । २३) ।

उषा–बाणासुरकी पुत्री, इसके साथ गुप्तरूपसे अनिरुद्धका विहार, बाणासुरद्वारा अनिरुद्धका निग्रह तथा श्रीकृष्णद्वारा बाणासुरको जीतकर अनिरुद्ध एवं उषाका द्वारका आनयन (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पा[ठ] पृष्ठ ८२१ से ८२४ तक) ।

उष्ङ्गु–(१) पश्चिम दिशामें निवास करनेवाले एक ऋ[षि] (शान्ति० २०८ । ३०) । (२) भगवान् शि[व]का एक नाम (अनु० १७ । १०५) । (३) यदुवं[शी] वृजिनीवान्के पुत्र । चित्ररथके पिता (अनु० १४७ । २[९]) ।

उष्ट्रकर्णिक–दक्षिण भारतका एक जनपद, जिसे सहदेवने दूतोंद्वारा ही वशमें कर लिया था (सभा० ३१ । ७१) ।

उष्णदेश–क्रौञ्चद्वीपके अन्तर्गत क्रौञ्चपर्वतके निकट मनो[नु]-देशके बाद स्थित एक देश (भीष्म० १२ । २१) ।

उष्णीगङ्ग–एक प्राचीन तीर्थ (वन० १३५ । ७) ।

उष्णीनाभ–एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३४) ।

ऊ

ऊर्जयोनि–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५९) ।

ऊर्णनाभ (**सुदर्शन**)–धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ६७ । ९६) । भीमसेनद्वारा इसका [वध] (द्रोण० १२७ । ६७) ।

ऊर्णायु–एक देवगन्धर्व, जो अर्जुनके जन्मोत्सवमें आ[या] था (आदि० १२२ । ५५) । इसका मेनकाके [प्रति] अनुराग (उद्योग० ११७ । १६) ।

ऊर्ध्वबाहु–दक्षिण दिशामें निवास करनेवाले एक ऋषि, [जो] धर्मराजके ऋत्विज हैं (अनु० १५० । ३४-३५; अनु० १६५ । ४०) ।

ऊर्ध्वभाक्–एक अग्नि, जो बृहस्पतिके पञ्चम पु[त्र हैं] (वन० २१९ । २०) ।

ऊर्ध्वरेता–एक महर्षि, जो युधिष्ठिरका बड़ा सम्मान कर[ते थे] (वन० २६ । २४) ।

ऊर्ध्ववेणीधरा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (श[ल्य०] ४६ । १८) ।

ऊर्व (**और्व**)–एक तेजस्वी भृगुवंशी ऋषि, जि[न्होंने] त्रिलोकीके नाशके लिये एक भयंकर अग्निकी सृष्टि [की] और उसे समुद्रमें डालकर बुझा दिया । ये च्यवनके [पौत्र] और ऋचीकके पिता थे (अनु० ५६ । १–७) ।

ऊष्मप–पितरोंका एक गण, जो यमसभामें यमराजकी उ[पासना] करता है (सभा० ८ । ३०) ।

ऊष्मा–पाञ्चजन्य नामक अग्निके पुत्र (वन० २२१ । ...)

ऋ

ऋक्ष (१)–महाराज अजमीढके द्वारा धूमिनीके [गर्भसे] उत्पन्न । इनके पुत्रका नाम संवरण था, जो कु[रु...]

प्रसिद्ध राजा हुए हैं (आदि० ९४। ३१–३४)। (२) पूरुवंशीय राजा अरिहके द्वारा सुदेवाके गर्भसे उत्पन्न। इनकी पत्नीका नाम 'ज्वाला' एवं पुत्रका नाम 'मतिनार' था (आदि० ९५। २४–२५)।

ऋक्षदेव–शिखण्डीका पुत्र, इसके घोड़े सफेद और लाल रंगके सम्मिश्रणसे पद्मके समान वर्णवाले थे (द्रोण० २३। २४-२५)।

ऋक्षवान्–भारतवर्षके सात कुलपर्वतोंमेंसे एक (भीष्म० ९। ११; वन० ६१। २१)।

ऋक्षा–सोमवंशीय महाराज अजमीढकी पत्नी (आदि० ९५। ३७)।

ऋक्षाम्बिका–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६। १२)।

ऋचीक–(१)-एक महर्षि, जो भृगुकुमार च्यवनके पुत्र थे (वन० ९९। ४२)। ये ही कल्पान्तरमें ही और्वके पुत्र हुए, ये जमदग्निके पिता थे (आदि० ६६। ४५–४७)। इन्होंने शुल्करूपमें महाराज गाधिको देनेके लिये वरुणसे एक हजार अश्वोंकी याचना की थी (वन० ११५। २६–२७)। इनका सत्यवतीके साथ विवाह (वन० ११५। २९)। इनका परशुरामको क्षत्रियोंके वधसे रोकना (वन० ११७। १०; आश्व० २९। २०)। इनका वरुणसे माँगकर सत्यवतीके शुल्करूपमें गाधिको एक हजार श्यामकर्ण घोड़े देना (उद्योग० ११९। ५-६)। गाधिपुत्री सत्यवतीके साथ इनका विवाह (शान्ति० ४९। ७)। इनका पुत्रोत्पत्तिके लिये चरु देना (शान्ति० ४९। ९)। माताके साथ चरुके उलट-फेर हो जानेपर अपनी पत्नी सत्यवतीके साथ संवाद (शान्ति० ४९। १८–२८)। विश्वामित्रके जन्मप्रसंगमें पुनः इस कथाका वर्णन (अनु० ४ अ०में)। ऋचीकको शाल्वराज द्युतिमान्से राज्यका दान प्राप्त हुआ था (अनु० १३७। २३)। (२) विवस्वान्‌के स्वरूपभूत बारह सूर्योंमेंसे एक (आदि० १। ४२)। (३) सम्राट् भरतके पौत्र एवं भुमन्युके पुत्र (आदि० ९४। २४)।

ऋचेयु–पूरुके तीसरे पुत्र रौद्राश्वके द्वारा मिश्रकेशी अप्सराके गर्भसे उत्पन्न प्रथम पुत्र (आदि० ९४। १०)। अन्वग्भानु तथा अनाधृष्टि भी इन्हींके नाम थे, ये महान् विद्वान् तथा चक्रवर्ती सम्राट् थे, इनके पुत्रका नाम 'मतिनार' था (आदि० ९४। ११–१३)।

ऋण–चार प्रकारके ऋण (आदि० ११९। १७)। इन ऋणोंके निराकरणकी आवश्यकता (आदि० ११९। १८–२०)।

ऋत–ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक (अनु० १५०। १२)।

ऋतधामा–भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम (शान्ति० ३४२। ६९)।

ऋतुपर्ण–अयोध्याके एक राजा, जो इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न तथा द्यूतविद्याके मर्मज्ञ थे और जिनके यहाँ नलका सारथि वार्ष्णेय उनके जूएमें पराजित हो जानेपर जाकर रहने लगा (वन० ६६। २१-२२; ६०। २५)। इनके द्वारा बाहुक बने हुए राजा नलकी अपने यहाँ अश्वाध्यक्षके पदपर नियुक्ति (वन० ६७। ५–७)। इनका दमयन्तीके द्वितीय स्वयंवरके लिये विदर्भदेशको प्रस्थान (वन० ७१। २०)। इनका बाहुककी अश्वसंचालन-कलासे प्रभावित होना (वन० ७१। २४)। इनकी गणित-विद्याकी अद्भुत शक्ति (वन० ७२। ७–११)। इनके द्वारा नलको द्यूतहृदयका दान (वन० ७२। २९)। विदर्भनरेश भीमद्वारा इनका आतिथ्य-सत्कार (वन० ७३। २०)। इन्हें नलसे अश्वविद्याकी प्राप्ति तथा इनका अयोध्याको लौटना (वन० ७७। १७–१९)।

ऋतुस्थला–स्वर्गकी प्रधान ग्यारह अप्सराओंमेंसे एक, जिसने अन्य अप्सराओंके साथ अर्जुनके जन्म-महोत्सवमें आकर नृत्य और गान किया था (आदि० १२२। ६५-६६)।

ऋतेयु-पश्चिम दिशानिवासी एक ऋषि, जो वरुणके सात ऋत्विजोंमेंसे एक हैं (अनु० १५०। ३६)।

ऋत्वा–एक देवगन्धर्व, जो अर्जुनके जन्मोत्सवमें उपस्थित हुआ था (आदि० १२२। ५७)।

ऋद्धि–कुबेरकी पत्नी (उद्योग० ११७। ९)।

ऋद्धिमान्–एक महानाग, जो गरुड़द्वारा मारा गया था (वन० १६०। १५)।

ऋभु–ऋभुनामक देवताओंका गण, जो देवताओंद्वारा भी आराधित होता है (वन० २६१। १९; शान्ति० २०८। २२; अनु० १३७। २५)।

ऋषभ–(१) धृतराष्ट्रके कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७। १७)। (२) एक वृषभरूपधारी राक्षस, जो मगधनरेश बृहद्रथद्वारा मारा गया और जिसकी खालसे तीन नगाड़े बनाये गये (सभा० २१। १६)। (३) एक प्राचीन तपस्वी ऋषि, जो पहले कभी ऋषभ-कूटपर रहते थे (वन० ११०। ८)। ये ब्रह्मसभामें ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित होते हैं (सभा० ११। २४)। ऋषभमुनिका सुमित्रको आशाके त्यागका उपदेश (शान्ति० १२५ अध्यायसे १२८ तक)। (४) दक्षिण-समुद्रतटवर्ती एक पर्वत, जहाँ गालव और गरुड़को शाण्डिलीका दर्शन हुआ था (उद्योग० ११२। २२; ११३। १)। पाण्ड्यदेशवर्ती यह पर्वत एक

पवित्र तीर्थ है, जहाँकी यात्रासे वाजपेय यज्ञके फल और स्वर्गलोक सुलभ होते हैं (वन० ८५ । २१)। (५) एक राजा, जिन्हें भारतवर्ष बहुत प्रिय रहा है (भीष्म० ९ । ७) । (६) एक राजा या राजकुमार, जो द्रोणनिर्मित गरुड-व्यूहके हृदयस्थानमें खड़ा किया गया था (द्रोण० २० । १२) । (७) एक दैत्य या दानव (शान्ति० २२७ । ५१)।

ऋषभकूट–एक पर्वत, जहाँ पहले कभी ऋषभ मुनिने तपस्या की थी (वन० ११० । ८) ।

ऋषभतीर्थ–कोसला या अयोध्यामें स्थित एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ उपवास करनेसे सहस्र गोदान और वाजपेय यज्ञका फल मिलता है (वन० ८५ । १०-११) ।

ऋषभद्वीप-सरस्वतीतटवर्ती एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे देवविमान सुलभ होता है (वन० ८४ । १६०) ।

ऋषिक–(१) एक राजर्षि, जो दानवोंके सरदार 'अर्क' के अंशसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ६७ । ३२-३३) । (२) एक उत्तरीय जनपद, जहाँ ऋषिकराजके साथ अर्जुनका भयानक युद्ध हुआ था (सभा० २७ । २५; भीष्म० ९ । ६४) ।

ऋषिकुल्या–एक नदी एवं प्राचीन तीर्थ, जहाँ स्नान करके पापरहित मानव देवताओं और पितरोंकी पूजा करनेसे ऋषिलोकमें जाता है (वन० ८४ । ४८-४९; भीष्म० ९ । ४७) ।

ऋषिगिरि–मगधकी राजधानी गिरिव्रजके समीपवर्ती एक पर्वत, जिसका दूसरा नाम 'मातङ्ग' है (सभा० २१ । २-३) ।

ऋष्यमूक–एक पर्वत, जिसके शिखरपर मार्कण्डेयजीने धनुर्धर श्रीराम और लक्ष्मणका दर्शन किया था (वन० २५ । ९) । यहीं हनुमान्‌जी सुग्रीवके साथ रहे (वन० १४७ । ३०) । इसी ऋष्यमूकसे सटा हुआ पम्पासरोवर है (वन० २७९ । ४४) । श्रीराम और लक्ष्मणका ऋष्यमूकपर जाना तथा सुग्रीवके साथ श्रीरामकी मैत्री (वन० २८० । ९–११) ।

ऋष्यशृङ्ग-(१) महर्षि विभाण्डकके पुत्र । मृगीके पेटसे इनकी उत्पत्ति तथा ऋष्यशृङ्ग नाम पड़नेका कारण (वन० ११० । ३७–३९) । ये कश्यपगोत्री थे और तपस्या तथा इन्द्रियसंयमसे ही प्रतिष्ठित हुए थे (शान्ति० २९६ । १४–१६) । महर्षि ऋष्यशृङ्ग ब्रह्मसभामें बैठकर ब्रह्माजीकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । २३) । अपने आश्रमपर आयी हुई एक वेश्याको ब्रह्मचारी मुनि समझकर इनके द्वारा उसका आतिथ्य-सत्कार (वन० १११ । १३) । वेश्याको ब्रह्मचारी समझकर इनके द्वारा अपने पितासे उसके स्वरूप और आचरणका वर्णन (वन० ११२ अ० में) । इनका राजा लोमपादके यहाँ जाना (वन० ११३ । ८) । लोमपादपुत्री शान्ताके साथ इनका विवाह (वन० ११३ । ११; शान्ति० २३४ । ३४) । महाभारतमें आये हुए ऋष्यशृङ्गके नाम—काश्यप, कश्यपपुत्र और कश्यपात्मज । (२) एक राक्षस, जिसके पुत्रका नाम अलम्बुष था (द्रोण० १०६ । १६) ।

ए

एकचक्र–कश्यप और दनुका पुत्र एक विख्यात दानव (आदि० ६५ । २५) ।

एकचक्रा–एक प्राचीन नगरी, जहाँ कुन्तीदेवी अपने पाँचों पुत्रोंके साथ कुछ कालतक एक ब्राह्मणके यहाँ ठहरी थीं। पाण्डव यहाँ वेदाभ्यास-परायण ब्रह्मचारी बनकर माताके साथ रहते थे (आदि० ६१ । २६-२७) । भीमने यहीं रहकर बकासुरको मारा था (आदि० ६१ । २९) । एकचक्रा नगरीमें पाण्डवोंके जाने, एक मासतक रहने और भीमद्वारा बकासुरके मारे जानेका विस्तृत वृत्तान्त (आदि० १५५ अध्यायसे १६३ अध्यायतक) ।

एकचन्द्रा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ३०) ।

एकचूडा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ५)

एकजट–स्कन्दके एक सैनिकका नाम (शल्य० ४५ । ५८) ।

एकत–एक प्राचीन महर्षि, जो गौतमके पुत्र थे, इनके दो भाई और थे—द्वित और त्रित । ये तेजस्वी महात्मा थे। भी एक बार इन्होंने त्रितसे छल किया । इस कथाका वर्णन (शल्य० ३६ अ० में) । ये पश्चिम दिशाका आश्रय लेनेवाले ऋषि हैं (शान्ति० २०८ । ३१) । इन्होंने उपरिचर वसुके यज्ञमें सदस्यता ग्रहण की (शान्ति० ३३६ । ५-६) । ये तीनों भाई भगवान् नारायणके दर्शनके लिये श्वेतद्वीपमें गये थे । (शान्ति० ३३९ । १२) । इन्होंने अपने भाई त्रितको कुएँमें गिराया था (शान्ति० ३४१ । ४६) । बाणशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीके पास ये भी गये थे (अनु० २६ । ७) । ये तीनों भाई वरुणके सात ऋत्विजोंमें हैं और पश्चिम दिशामें रहते हैं (अनु० १५० । ३६; १६५ । ४२) ।

एकत्वचा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २४) ।



माद्रीपुत्र नकुल

एकपाद–एक जनपद, जहाँके राजा और निवासी मनुष्य युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें आये थे और भीड़के कारण दरवाजेपर रोक दिये गये थे (सभा० ५१ । १७) ।

एकपाद्–भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । ९५) ।

एकरात्रतीर्थ–एक तीर्थ, जहाँ एक रात नियमपूर्वक सत्यवादी होकर रहनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है (वन० ८३ । १८२) ।

एकलव्य–(१)निषादराज हिरण्यधनुका पुत्र । इसका द्रोणाचार्यके पास धनुर्वेदके अध्ययनके लिये आगमन (आदि० १३१ । ३१) । निषादपुत्र होनेके कारण द्रोणद्वारा इसका प्रत्याख्यान (आदि० १३१ । ३२) । आचार्य द्रोणकी मूर्तिमें गुरुभावना करके इसके द्वारा धनुर्विद्याका अभ्यास (आदि० १३१ । ३४) । गुरुभक्तिके कारण इसकी बाणविद्यामें सफलता (आदि० १३१ । ३५) । पाण्डवोंके कुत्तेके मुँहको बाणोंसे भरकर इसका पाण्डवोंको विसयमें डालना (आदि० १३१ । ४१) । पाण्डवों तथा कौरवोंद्वारा इसकी प्रशंसा (आदि० १३१ । ४२) । पाण्डवोंके प्रति इसका अपना परिचय देना (आदि० १३१ । ४५) । इसका द्रोणाचार्यको अपने दाहिने हाथका अँगूठा काटकर गुरुदक्षिणाके रूपमें देना (आदि० १३१ । ५८) । द्रोणाचार्यका अर्जुनके हितके लिये इसका अँगूठा कटवाना (द्रोण० १८१ । १७) । श्रीकृष्णका अर्जुनके प्रति उसके पराक्रमका तथा अपने द्वारा इसके वधके कारणका कथन (द्रोण० १८१ । १८–२१) । निषादराज एकलव्यके श्रीकृष्णद्वारा मारे जानेकी चर्चा (उद्योग० ४८ । ७७; मौसल० ६ । ११) । (२) क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न एक राजा (आदि० ६७ । ६३) । पाण्डवोंकी ओरसे इन्हें रणनिमन्त्रण भेजा गया (उद्योग० ४ । १७) ।

एकलव्यसुत–एकलव्यका पुत्र, जिसने अश्वमेधके अश्वके पीछे जाते हुए अर्जुनके साथ घोर युद्ध किया था । अर्जुनसे पराजित होकर उसने उनका सत्कार किया (आश्व० ८३ । ८–१०) ।

एकशृङ्ग–सात पितरोंमेंसे एक । ये तीन अमूर्त पितरोंके अन्तर्गत हैं । ये सब-के-सब ब्रह्मसभामें ब्रह्माजीकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । ४७-४८) ।

एकहंस तीर्थ–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८३ । २०) ।

एकाक्ष–(१) कश्यप और दनुका पुत्र एक विख्यात दानव (आदि० ६५ । २९) । (२) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५८) ।

एकानङ्गा–यशोदा मैयाकी पुत्री । भगवान् श्रीकृष्णकी बहिन । यह वही कन्या है, जिसके निमित्तसे श्रीकृष्णने कंसका वध किया था (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८२०, कालम २) ।

एडी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १३) ।

एरक–कौरव्य-कुलोत्पन्न एक नाग, जो सर्पसत्रमें जलकर भस्म हो गया (आदि० ५७ । १३) ।

एलापत्र–एक प्रमुख नाग, इसकी माता कद्रू और पिता कश्यप थे । इसके द्वारा माताके शापसे चिन्तित हुए वासुकिको देवताओंके प्रति ब्रह्माजीके द्वारा कहे हुए शापोद्धारके उपायोंका वर्णन (आदि० ३८ । १—१९) ।

(ऐ)

ऐक्ष्वाकी–सम्राट् भुमन्युकी पुत्रवधू एवं सुहोत्रकी पत्नी । महाराज सुहोत्रद्वारा इनके गर्भसे अजमीढ़, सुमीढ़ तथा पुरुमीढ़ नामक तीन पुत्र हुए थे (आदि० ९४ । २४–३०) ।

ऐरावत–(१) समुद्रमन्थनके समय प्रकट हुआ एक हाथी, जो इन्द्रके अधिकारमें है (आदि० १८ । ४०) । यह क्रोधवशाकी पुत्री भद्रमनाका पुत्र है और यही देवताओंका हाथी है (आदि० ६६ । ६२-६३) । (यही पूर्व दिशाका दिग्गज है ।) ऐरावत आदि चार दिग्गज पुष्कर द्वीपमें भी रहते हैं (भीष्म० १२ । ३३) । (२) कश्यप और कद्रूसे उत्पन्न एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । ५) । इसके कुलमें उलूपीके पिता कौरव्यका जन्म हुआ था (आदि० २१३ । १८) । कश्यपवंशी नागोंमें इसकी गणना (उद्योग० १०३ । ११) । (३) एक असुर, जो भगवान् श्रीकृष्णद्वारा मारा गया (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षि० पाठ, पृष्ठ ८२५, कालम १) ।

ऐरावतखण्ड–शृङ्गवान् पर्वतसे उत्तर समुद्रके निकटका एक वर्ष (भीष्म० ६ । ३७) । धृतराष्ट्रके प्रति संजयद्वारा इसका विशेष वर्णन (भीष्म० ८ । १०–१५) ।

ऐल–इलानन्दन पुरूरवा, जो यमराजकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ८ । १६) । इन्होंने जीवनमें कभी मांस-सेवन नहीं किया था (अनु० ११५ । ६५) । ये सबेरे और सायंकाल स्मरण करनेयोग्य पुण्यात्मा नरेशोंमेंसे एक हैं (अनु० १६५ । ५२) ।

ऐषीक–सौप्तिकपर्वका एक अवान्तर पर्व, अध्याय १० से अध्याय १८ तक ।

(ओ)

ओघरथ–ओघवान्के पुत्र (अनु० २ । ३८) ।

ओघवती-(१) एक नदी (भीष्म० ९ । २२) । कुरुक्षेत्रमें वसिष्ठके आवाहन करनेपर प्रकट हुई सरस्वतीका नाम (शल्य० ३८ । २७) । भीष्मजी ओघवतीके तटपर बाणशय्यापर पड़े थे (शान्ति० ५० । ७) । (२) ओघवान्‌की पुत्री (अनु० २ । ३८) । इसका अग्निपुत्र सुदर्शनके साथ विवाह (अनु० २ । ३९) । अतिथि-सत्कारके लिये ब्राह्मणरूपधारी धर्मको आत्मसमर्पण (अनु० २ । ५७) ।

ओघवान्-(१) कौरवपक्षका एक योद्धा (कर्ण० ५ ४२) । (२) नृगके पितामह (अनु० २ । ३८) ।

ओड्र-एक प्राचीन देश, जहाँके राजा भेंट देनेके लिये युधिष्ठिरके यज्ञमें पधारे थे (सभा० ५१ । २३) ।

(औ)

औक्थ्य-एक साम (वन० १३४ । ३६) ।

औदका-औदका उस स्थानका नाम है, जहाँ नरकासुरने सोलह हजार कन्याओंको कैद कर रक्खा था । नरकासुरका यह अन्तःपुर मणिपर्वतपर बना था । जलकी सुविधासे सम्पन्न होनेके कारण उस स्थानका नाम 'औदका' रक्खा गया था । यह मुर दानवके संरक्षणमें था (सभा० ३८ में दाक्षि० पाठ, पृष्ठ ८०५, कालम १) ।

औदुम्बर-उदुम्बर या औदुम्बर देशके क्षत्रिय राजकुमार, जो युधिष्ठिरके यहाँ भेंट लेकर आये ते (सभा० ५२ । १३) ।

औद्दालक-एक मुनिसेवित तीर्थ, जहाँ स्नान करके मनुष्य पापमुक्त हो जाता है (वन० ८४ । १६१) ।

औरसिक-एक देश, जहाँके योद्धाओंको भगवान् श्रीकृष्णने जीता था (द्रोण० ११ । १६) ।

और्व (ऊर्व)-एक ऋषि, जो च्यवन मुनिके द्वारा मनुपुत्री आरुषीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । ये अपनी माताकी जाँघ फाड़कर प्रकट हुए थे (आदि० ६६ । ४६) । इनके पुत्रका नाम ऋचीक था (आदि० ६६ । ४७) । माताकी जाँघसे इनका प्राकट्य (आदि० १७७ । २४) । इनका और्व नाम होनेका कारण (आदि० १७८ । ८) । इनके द्वारा क्षत्रियोंके नेत्रोंकी दृष्टिशक्तिका अपहरण (आदि० १७७ । २५) । अन्धभावको प्राप्त हुए क्षत्रियोंका इनसे नेत्रोंके लिये प्रार्थना और इनका नेत्रदान (आदि० १७८ । ७) । सम्पूर्ण लोकोंके विनाशके लिये इनका संकल्प और प्रयत्न (आदि० १७८ । ९-१०) । पितरोंद्वारा इनके जगद्विनाशक संकल्पका निवारण (आदि० १७८ । १४—२२) । इनके द्वारा अपनी क्रोधाग्निका बडवानलरूपसे समुद्रमें त्याग (आदि० १७९ । २१) । इनके द्वारा तालजङ्घ-वंशके विनाशकी चर्चा (अनु० १५३ । ११) ।

औशनस-एक सरस्वती-तटवर्ती तीर्थ, जहाँ ब्रह्मा आदि देवता और तपस्वी मुनि रहते हैं (वन० ८३ । १३५) । इसका कपालमोचन नाम पड़नेका कारण और माहात्म्य (शल्य० ३९ । ९—२२) ।

औशिज-(१) एक प्राचीन राजा, जो देवराज इन्द्रके समान पराक्रमी थे (आदि० १ । २२६) । (२) एक प्राचीन धर्मज्ञ मुनि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १७) । ये अङ्गिराके पुत्र हैं (शान्ति० २०८ । २७) ।

औशीनरि (औशीनर)-उशीनरकुमार शिबि, जो यम-राजकी सभामें बैठनेवाले नरेश हैं (सभा० ८ । १४) ।

औशीनरी-उशीनर देशकी एक शूद्रजातीय कन्या, जिसके गर्भसे गौतमने काक्षीवान् आदि पुत्रोंको उत्पन्न किया (सभा० २१ । ५) ।

औष्णीक-एक प्राचीन देश, जहाँके राजा भेंट लेकर युधिष्ठिरके यहाँ आये थे (सभा० ५१ । १७) ।

(क)

कंस-(१) मथुराके महाराज उग्रसेनका पुत्र (सभा० २२ । ३६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । इसके रूपमें कालनेमि दानव ही उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ६७) । जरासंधकी पुत्री उसकी पत्नी थी, जो इसे राजा बना देनेकी शर्तके साथ मिली थी । मन्त्रियोंद्वारा इसका राज्याभिषेक और इसका अपने पिताको कैद करके स्वयं राज्य भोगना । इसके द्वारा देवकीजीका वसुदेवजीके साथ विवाह । आकाशमें देवदूतकी वाणी सुनकर इसका देवकीको मार डालनेके लिये उद्यत होना । इसके द्वारा देवकीके छः शिशुओंका वध (सभा० २२ । ३६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७३१) । कंसका वसुदेवपर कड़ा पहरा । इसके द्वारा वसुदेवकी लायी हुई गोपकन्याको मारनेका प्रयत्न । इसके द्वारा व्रजके गोपोंका सताया जाना (पृष्ठ ७३२) । श्रीकृष्ण-बलभद्रद्वारा सुनामा और मुष्टिकके मारे जानेपर कंसके मनमें भयका आवेश तथा श्रीकृष्णद्वारा कंसका वध (सभा० ३८, पृष्ठ ८०१, कालम २) । कंस अस्त्रज्ञान और बल-पराक्रममें कार्तवीर्यके समान था । इससे समस्त राजाओंको उद्वेग होता था । उसके पास एक करोड़ पैदल सैनिक थे । आठ लाख रथी और उतने ही हाथीसवार थे । बत्तीस लाख घुड़सवारोंकी सेना थी (सभा० ३८, पृष्ठ ८०३) । सभामें विराजमान कंसका श्रीकृष्णके हाथसे मन्त्रियों और परिवारसहित वध

(सभा० अध्याय ३८, दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८०४, कालम १)। (२) एक असुर, जो श्रीकृष्णद्वारा मारा गया। यह उग्रसेनके पुत्र कंससे भिन्न था (सभा० ३८, पृष्ठ ८२५)।

क–(१) प्रजापति (आदि० १ । ३२)। (२) दक्ष-प्रजापतिका एक नाम (शान्ति० २०८ । ७)। (३) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । ९१)।

ककुत्स्थ–इक्ष्वाकुवंशी महाराज शशादके पुत्र, जो अनेनाके पिता थे (वन० २०२ । १-२)।

कक्ष–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४९)।

कक्षक–वासुकिकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । ६)।

कक्षसेन–(१) राजा अविक्षित्के पौत्र तथा परीक्षित्के प्रथम पुत्र (आदि० ९४ । ५४)। ये यम-सभाके सदस्य और सूर्यपुत्र यमके उपासक बताये गये हैं (सभा० ८ । १८)। इनका वसिष्ठको सर्वस्व समर्पण करके स्वर्गलोकगमन (अनु० १३७ । १५)। सायं-प्रातः स्मरण करनेयोग्य पुण्यात्मा नरेशोंमेंसे एक (अनु० १६५ । ५९)। ये न्यायोपार्जित धनके दान और सत्य-भाषणके द्वारा परम सिद्धिको प्राप्त हुए (आश्व० ९१ । ३५-३६)। (२) राजा युधिष्ठिरकी सभामें बैठकर उनकी उपासना करनेवाले एक नरेश (सभा० ४ । २२)।

कक्षसेन-आश्रम–असित नामक पर्वतपर स्थित एक पुण्यदायक आश्रम (वन० ८९ । १२)।

कक्षीवान्–(१) एक प्राचीन राजा, जो व्युषिताश्व-पत्नी भद्राके पिता थे (आदि० १२० । १७)। (२) एक ऋषि, जो अङ्गिराके पुत्र हैं और पूर्व दिशामें निवास करते हैं (शान्ति० २०८ । २७-२८; अनु० १६५ । ३७-३८)। इन्होंने एकाग्रचित्त हो वेदकी ऋचाओंद्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति करके उनकी कृपा एवं तपस्यासे सिद्धि प्राप्त की (शान्ति० २९२ । १५–१७)। ये तपस्यासे अपनी प्रकृतिको प्राप्त हुए (शान्ति० २९६ । १४–१६)। ये महेन्द्रके गुरु, ब्रह्मतेजसे सम्पन्न और लोक-स्रष्टा बताये गये हैं। इनका तेज रुद्र, अग्नि और वसुओंके समान है। ये पृथ्वीपर शुभ कर्म करके देवताओंके साथ आनन्द भोगते हैं। इनका कीर्तन करनेसे इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है (अनु० १५० । ३०—३३)।

कक्षेयु–पूरुपुत्र रौद्राश्वके द्वारा मिश्रकेशी अप्सराके गर्भसे उत्पन्न पुत्र (आदि० ९४ । १०)। ये सायं-प्रातः स्मरणीय राजाओंमेंसे एक हैं (अनु० १६५ । ६)।

कङ्क–(१) एक प्राचीन राजा (आदि० १ । २३२)। (२) एक पक्षी, जो सुरसाकी संतान है (आदि० ६६ । ६९)। (३) वृष्णिकुलके सात महारथी वीरोंमेंसे एक (सभा० १४ । ५९)। यह द्रौपदीके स्वयंवरमें आया था (आदि० १८५ । १९)। युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भी इसका आना हुआ था (सभा० ३४ । १५)। (४) एक जनपद, जहाँके लोग युधिष्ठिरके लिये भेंट लाये थे (सभा० ५१ । ३०; शान्ति० ६५ । १३)। (५) छद्मवेषी ब्राह्मण, अज्ञातवासके समय युधिष्ठिरका बदला हुआ नाम (विराट० १ । २४; विराट० १८ । २५; विराट० ३१ । २१; विराट० ७० । ४)।

कङ्कणा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १६)।

कच–देवगुरु बृहस्पतिके ज्येष्ठ पुत्र (आदि० ७६ । ११)। देवताओंके आग्रह करनेपर इनका संजीवनीविद्या सीखनेके लिये शुक्राचार्यके समीप जाना (आदि० ७६ । १२–१८)। शुक्राचार्यको अपना परिचय देकर एक सहस्र वर्षोंतक ब्रह्मचर्य-पालनके लिये इनका उनसे अनुमति माँगना (आदि० ७६ । २०)। शुक्राचार्यके द्वारा इनका स्वागत (आदि० ७६ । २१)। इनके द्वारा गुरुकुलमें शुक्राचार्य एवं आचार्यपुत्री देवयानीकी आराधना (आदि० ७६ । २२–२५)। इनकी देवयानी-द्वारा एकान्त-परिचर्या (आदि० ७६ । २६)। इनके द्वारा गुरुकी गौओंकी सेवा (आदि० ७६ । २७)। दानवोंका इन्हें मारकर कुत्तों और सियारोंको खिला देना (आदि० ७६ । २९)। इनके वियोगमें देवयानीकी चिन्ता (आदि० ७६ । ३१-३२)। शुक्राचार्यकी संजीवनीके प्रभावसे इनका कुत्तोंके पेट फाड़कर प्रकट होना (आदि० ७६ । ३४)। दानवोंका इन्हें पीसकर समुद्रके जलमें मिला देना (आदि० ७६ । ४१)। देवयानीके पुनः चिन्तित होनेपर शुक्राचार्यके द्वारा इनका पुनः संजीवन (आदि० ७६ । ४२)। दानवोंका इन्हें जलाकर इनकी राखको मदिरामें मिला शुक्राचार्यको पिला देना (आदि० ७६ । ४३)। गुरुके पेटमें मृत-संजीवनी-विद्या सीखकर इनका शुक्राचार्यको जीवित करना (आदि० ७६ । ५८—६२)। इनके द्वारा गुरुकी महिमा एवं उनके अनादरसे हानिका वर्णन (आदि० ७६ । ६३-६४)। देवयानीके आग्रह करनेपर भी इनका उसके साथ विवाह स्वीकार न करना (आदि० ७७ । ६—१५)। इनको देवयानीके द्वारा संजीवनी विद्या सिद्ध न होनेका शाप (आदि० ७७ । १६)। इनके द्वारा देवयानीको ब्राह्मण-जातीय पति न मिलनेका शाप (आदि० ७७ । १९)। स्वर्ग जानेपर इनको देवताओं-द्वारा वरदान (आदि० ७७ । २३)। इनसे संजीवनी-विद्या पढ़कर देवताओंका कृतार्थ होना (आदि० ७८ । १)। बाण-शय्यापर पड़े हुए भीष्मके पास ये भी गये थे (शान्ति० ४७ । ९; अनु० २६ । ८)।

कच्छ–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५६) ।

कच्छपी–नारदजीकी वीणा (शल्य० ५४ । १९) ।

कठ–एक धर्मज्ञ जितेन्द्रिय ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १८) । राजसूय यज्ञमें युधिष्ठिरने इनका सत्कार किया था (सभा० ४५ । ३८ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८४३) । ये सर्पदंशनसे मरी हुई प्रमद्वराको देखने आये थे (आदि० ८ । २५) ।

कणिक–(१) धृतराष्ट्रका एक मन्त्री, जो कूट राजनीति और अर्थ-शास्त्रका पण्डित तथा उत्तम मन्त्रका ज्ञाता ब्राह्मण था (आदि० १३९ । २) । इसके द्वारा धृतराष्ट्र-को कूटनीतिका उपदेश (आदि० १३९ । ५–९२) । (२) भरद्वाजकुलमें उत्पन्न एक कूट-नीतिज्ञ ब्राह्मण, जिसने सौवीरनरेश शत्रुंजयको कूट-नीतिका उपदेश किया था (शान्ति० १४० अ०) ।

कण्टकिनी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६।१६)।

कण्डरीक–एक गोत्रप्रवर्तक ऋषि, जिनके कुलमें प्रतापी राजा ब्रह्मदत्त उत्पन्न हुए थे (शान्ति० ३४२।१०५)।

कण्डु–एक महर्षि, जिनकी पुत्री 'वार्क्षी' ने दस प्रचेताओं-के साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित किया था (आदि० १९५ । १५) ।

कण्डूति–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १४) ।

कण्व–(१) कश्यपगोत्रीय प्राचीन महर्षि, जिनका आश्रम मालिनी नदीके तटपर था (आदि० ७० । २१–२८) । इनके आश्रमका वर्णन (आदि० ७० । २४–२९) । इन्हें मेधातिथिका पुत्र और पूर्व दिशामें रहनेवाला ऋषि बताया गया है (शान्ति० २०८ । २७; अनु० १५१ । ३१; अनु० १६५ । ३८) । इनके द्वारा शकुन्तलाका पालन-पोषण एवं नामकरण (आदि० ७२ । १३–१६) । शकुन्तलाके गान्धर्व विवाहका समर्थन (आदि० ७३ । २६-२७) । इनका शकुन्तलाके प्रति पातिव्रत्य धर्मका उपदेश एवं इसकी महिमाका वर्णन (आदि० ७४ । ९-१०) । शकुन्तलाको पतिगृह पहुँचानेके लिये शिष्योंको इनका आदेश (आदि० ७४ । १०-११) । इनके द्वारा स्त्रियोंको पिताके घरमें अधिक दिनोंतक रहनेका निषेध (आदि० ७४ । १२) । आचार्य बनकर इनके द्वारा राजा भरतके 'गोवितत' नामक अश्वमेध यज्ञका सम्पादन (आदि० ७४ । १३०) । इनका दुर्योधनको समझाते हुए मातलिका उपाख्यान सुनाना (उद्योग० ९७ । १२ से १०५ । ३७ तक) । इन्हें भरतसे दक्षिणारूपमें जाम्बूनद सुवर्णके बने हुए एक हजार कमल प्राप्त हुए थे (द्रोण० ६८ । ११-१२) । (२) प्राचीन युगान्तरके एक प्रसिद्ध तपस्वी महामुनि, जिन्हें ब्रह्माजीने वर दिया था (अनु० १४१ में दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ५९१५) ।

कण्वाश्रम–कण्व मुनिका आश्रम । यह लक्ष्मीद्वारा सेवित तथा लोकपूजित है । यह स्थान धर्मारण्यके अन्तर्गत है । यहाँ प्रवेश करनेमात्रसे मनुष्य पापमुक्त हो जाता है (वन० ८२ । ४५-४६) । प्रवेणी नदीके उत्तरमार्ग-में कण्वका पुण्यमय आश्रम है, जहाँ वरुणस्रोतस् नामक पर्वतपर सूर्यके पार्श्ववर्ती माठर देवताका विजयस्तम्भ सुशोभित है (वन० ८८ । १०-११) । (किसी-किसीके मतमें यह स्थान राजपूतानेमें कोटासे चार मील दक्षिण-पूर्व चम्बल नदीके तटपर स्थित है ।)

कथक–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६७) ।

कदलीवन–सौगन्धिक कमलोंसे भरी हुई कुबेर-पुष्करिणीके तटपर स्थित सुवर्णमय केलोंसे भरा हुआ एक उपवन, जो हनुमान्‌जीका निवासस्थान था (वन० १४६ । ५८) ।

कद्रू–दक्ष प्रजापतिकी एक पुत्री (आदि० ६५ । १३) । यह नागोंकी माता और कश्यपकी पत्नी हैं । कश्यपके वर देनेको उद्यत होनेपर इनके द्वारा उनसे एक हजार नागोंके पुत्ररूपमें पानेकी प्रार्थना (आदि० १६ । ५-८) । पाँच सौ वर्षोंके बाद इनको एक हजार पुत्रोंकी प्राप्ति (आदि० १६ । १५) । इनके द्वारा अपने पुत्रोंको आज्ञापालन न करनेके कारण शाप (आदि० २० । ८) । 'उच्चैःश्रवा घोड़ेका रंग क्या है ?' इस प्रश्नपर कद्रू और विनताका परस्पर विवाद करना । पराजित होनेपर दासी बननेकी शर्त रखना और कद्रूका छलपूर्वक विनताको अपनी दासी बनाना (आदि० २० । २ से २३ । ४ तक) । इनके द्वारा अपने पुत्रोंकी सूर्यके तापसे रक्षाके लिये इन्द्रकी स्तुति (आदि० २५ । ७–१७) । कद्रूकी प्रमुख संतानोंकी नामावली (आदि० ३५ अध्याय) । ये ब्रह्मसभामें ब्रह्माजीकी उपासना करती हैं (सभा० ११ । ४१–४३) । यह स्कन्दग्रहके रूपमें सूक्ष्म शरीर धारण करके गर्भवती स्त्रियोंके गर्भमें प्रवेश कर जाती और वहाँ उस गर्भको खा जाती हैं । इससे वह गर्भिणी सर्प पैदा करती है (वन० २३० । ३७-३८) । इसकी शान्तिका उपाय (वन० २३० । ४३–४५) ।

कध्मोर–प्रातः और सायं स्मरण करनेयोग्य एक राजर्षि (अनु० १६५ । ५३) ।

कनकध्वज–धृतराष्ट्रका पुत्र (कनकाङ्गद) (आदि० ११६ । १४) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । ३) । भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ९६ । २६-२७) ।

कनकाक्ष–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७४) ।

कनकाङ्गद (कनकध्वज)–धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ६७ । १०५) । (देखिये कनकध्वज)

कनकापीड–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६६) ।

कनकायु–धृतराष्ट्रका पुत्र (आदि० ६७ । ९९) । इसका एक नाम करकायु भी था । द्रौपदी-स्वयंवरके अवसरपर इसके इसी नामका उल्लेख है (आदि० १८५ । २) । (इन दोनों नामोंसे भी इसकी मृत्युका उल्लेख नहीं है । सम्भव है, इसका कोई तीसरा नाम भी हो ।)

कनकावती–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ८) ।

कनखल–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करके तीन रात उपवास करनेवाला मनुष्य अश्वमेधयज्ञका फल पाता है (वन० ८४ । ३०; वन० ९० । २२) । यहाँ स्नानका फल (अनु० २५ । १३) ।

कन्दरा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ९) ।

कन्दर्प–कामदेवका एक नाम (वन० ५३ । २८) ।

कन्यकागुण–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५२) ।

कन्याकूप–एक प्राचीन तीर्थ । यहाँ स्नानका फल कीर्तिकी प्राप्ति (अनु० २५ । १९-२०) ।

कन्यातीर्थ–(१) कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक तीर्थ (वन० ८३ । ११२) । (२) पाण्ड्य देशमें दक्षिण समुद्रके तटपर स्थित कन्या या कुमारी नामक तीर्थ; जहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल और पापसे छुटकारा मिलता है (वन० ८५ । २३; वन० ८८ । १४; वन० ९५ । ३) ।

कन्याश्रम–एक तीर्थ, जिसमें तीन राततक उपवास करके नियमित भोजन करनेसे स्वर्गीय सुख सुलभ होता है (वन० ८३ । १८९) ।

कन्यासंवेद्यतीर्थ–एक प्राचीन तीर्थ, जिसके सेवनसे मनुष्यको प्रजापति मनुका लोक प्राप्त होता है (वन० ८४ । १३६) ।

कन्याह्रद–एक तीर्थ, जिसमें निवास करनेसे देवलोककी प्राप्ति होती है (अनु० २५ । ५३) ।

कप–दानवोंका एक दल । इसका स्वर्गपर अधिकार करना (अनु० १५७ । ४) । ब्राह्मणोंद्वारा इसका संहार (अनु० १५७ । १७-१८) ।

कपट–एक दानव । कश्यपपत्नी दनुका पुत्र (भीष्म० ६५ । २६) ।

कपालमोचन–कुरुक्षेत्रमें सरस्वती-तटवर्ती एक तीर्थ, जो सब पापोंसे छुड़ानेवाला है (वन० ८३ । १३७; शल्य० ३९ वाँ अध्याय) ।

कपाली–ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक । ये ब्रह्माजीके पौत्र तथा स्थाणुके पुत्र थे (आदि० ६६ । १–३) ।

कपिञ्जल–एक प्रकारके पक्षी, जो मरे हुए त्रिशिराके वेदपाठी मुखसे उत्पन्न हुए थे (उद्योग० ९ । ४०) ।

कपिञ्जला–एक नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । २६) ।

कपिध्वज–अर्जुनका एक नाम (भीष्म० २५ । २०) ।

कपिल–(१) भगवान् श्रीकृष्ण या विष्णुके पुरातन अवतार महर्षि कपिल, जिन्होंने दृष्टिपातमात्रसे सगर-पुत्रोंको भस्म कर दिया था (वन० ४७ । १८-१९; वन० १०७ । ३२-३३) । ये प्रजापति कर्दमके पुत्र हैं । इनकी माताका नाम देवहूति है । इनका दूसरा नाम 'चक्रधनु' है (उद्योग० १०९ । १७-१८) । शान्ति० ४३ अध्यायमें भी इनकी महिमाका उल्लेख हुआ है । बाणशय्यापर गिरनेके समय भीष्मजीके पास आनेवाले महर्षियोंमें इनका भी नाम आया है (शान्ति० ४७ । ८) । इनका स्यूमरश्मि ऋषिके साथ यज्ञ-विषयक संवाद (शान्ति० २६८ अध्याय) । प्रवृत्ति-निवृत्तिमार्गके विषयमें उन्हीं ऋषिसे संवाद (शान्ति० २६९ अध्याय) । स्यूमरश्मिसे ब्रह्म-प्राप्तिके सम्बन्धमें बातचीत (शान्ति० २७० अध्याय) । इनका शिवमहिमाके विषयमें युधिष्ठिरको अपना अनुभव बताना (अनु० १८ । ४-५) । सात धरणीधर ऋषियोंमेंसे एक ये भी हैं (अनु० १५० । ४१) । इनके शापसे सगर-पुत्रोंके दग्ध होनेकी चर्चा (अनु० १५३ । ९) । (२) भगवान् सूर्यका एक नाम (वन० ३ । २४) । (३) एक नागराज, जिनका कपिलतीर्थ प्रसिद्ध है । कपिलके उस तीर्थमें स्नान करनेसे सहस्र कपिला-दानका फल होता है (वन० ८४ । ३२) । (४) भानु (मनु) नामक अग्निके चतुर्थ पुत्र पूर्वोक्त महर्षि कपिलके ही अवतार या स्वरूप हैं (वन० २२१ । २१) । (५) एक श्रेष्ठ ऋषि, जो शालिहोत्रके पिता थे । इन्होंने उपरिचरके यज्ञकी सदस्यता ग्रहण की थी (शान्ति० ३३६ । ८) । (६) विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५६) । (७) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । ९८) । (८) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । ७०; वन० १४९ । १०९) ।

कपिलकेदारतीर्थ–कपिलका केदाररूप तीर्थ । इसमें स्नान करनेसे महान् पुण्यकी प्राप्ति होती है । उस दुर्लभतीर्थमें जाकर तपस्याद्वारा पाप नष्ट हो जानेसे मनुष्यको अन्तर्धान-विद्याकी प्राप्ति होती है (वन० ८३ । ७२–७४) ।

कपिलतीर्थ–नागराज कपिलका एक तीर्थ, जिसमें स्नान करनेसे सहस्र कपिला-दानका फल प्राप्त होता है (वन० ८४ । ३२) ।

कपिला–(१) दक्ष प्रजापतिकी पुत्री । कश्यपपत्नी (आदि० ६५ । १२) । (२) कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक प्राचीन तीर्थ । यहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८३ । ४७-४८) । (३) एक नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म०

९ । २८) । (४) पञ्चशिखकी माता (शान्ति० २१८ । १५) ।

कपिला गाय–इसकी उत्पत्ति तथा दानका वर्णन (अनु० ७७ अ०; अनु० १३० । १९-२०) ।

कपिलावट–एक तीर्थ, यहाँ उपवाससे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है (वन० ८४ । ३१) ।

कपिलाश्व–महाराज कुबलाश्वके पुत्र । ये तीन भाई धन्धुकी क्रोधाग्निसे बच गये थे । इन्हींसे इक्ष्वाकुवंशी नरेशोंकी वंश-परम्परा चालू हुई (वन० २०४ । ४०) । ये पृथ्वीके उन प्राचीन शासकोंमेंसे हैं, जो इसे छोड़कर स्वर्गको चले गये (शान्ति० २२७ । ५१) ।

कपिलाह्रद–वाराणसीके अन्तर्गत एक तीर्थ, जहाँ स्नानसे राजसूय यज्ञका फल मिलता है (वन० ८४ । ७८) । यहाँ स्नानका फल (अनु० २५ । २५) ।

कपिस्कन्ध–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५७) ।

कपोत–गरुडकी प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १३) ।

कपोत, कपोती और बहेलियेकी कथा–(शान्ति० १४३ अध्यायसे १४९ तक) । कपोतके द्वारा शरणागत अतिथिका सत्कार (शान्ति० १४३ । ४) । बहेलियेको उसके क्रूर-कर्मके कारण सगे-सम्बन्धियोंने भी त्याग दिया था (शान्ति० १४३ । १०–१४) । पक्षियोंके वधसे पत्नीसहित जीविका चलानेवाले उस बहेलियेको एक दिन आँधी-वर्षाके कारण महान् कष्टकी प्राप्ति (शान्ति० १४३ । १८–२५) । सर्दीसे व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिरी हुई एक कपोतीको उठाकर उसने पींजड़ेमें डाल लिया । स्वयं दुखी होकर भी उस पापीने दूसरोंको सताना न छोड़ा (शान्ति० १४३ । २५–२७) । बहेलियेका एक वृक्षके नीचे विश्राम (शान्ति० १४३ । २८–३३) । उसी वृक्षपर रहनेवाले कबूतरद्वारा अपनी प्यारी भार्या कबूतरीका गुणगान तथा पतिव्रता स्त्रीकी प्रशंसा (शान्ति० १४४ । १–१७) । कबूतरीका कबूतरसे शरणागत व्याधकी सेवाके लिये प्रार्थना (शान्ति० १४५ अध्याय) । कबूतरके द्वारा अतिथिसत्कार और अपने शरीरका बहेलियेके लिये परित्याग (शान्ति० १४६ अध्याय) । बहेलियेका वैराग्य (शान्ति० १४७ अध्याय) । कबूतरीका विलाप, अग्निमें प्रवेश तथा उन दोनों कपोतदम्पतिको स्वर्गलोककी प्राप्ति (शान्ति० १४८ अध्याय) । बहेलियेकी तपस्या तथा दावानलमें दग्ध होकर उसका स्वर्गलोकमें जाना । कपोतकी शरणागत-वत्सलता तथा कपोतीके पातिव्रत्यकी अनुकरणीयता । कपोत-कपोतीके इस प्रसंगको श्रवण करनेका फल (शान्ति० १४९ अध्याय) ।

कपोतरोमा–उशीनरकुमार शिबिके पुत्रका नाम । उनका दूसरा नाम 'औद्भिद' था (वन० १९७ । २७-२८) । यमकी सभामें विराजमान होनेवाले नरेशोंमें इनका भी नाम आया है (सभा० ८ । १७) । ये कलिङ्गराज चित्राङ्गदकी कन्याके स्वयंवरमें गये थे (शान्ति० ४ । ६) ।

कबन्ध–एक राक्षस । भगवान् श्रीरामद्वारा इसका वध (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७९१ का दूसरा कालम) । इसका लक्ष्मणको पकड़ना (वन० २७९ । ३०) । लक्ष्मणद्वारा इसका मारा जाना (वन० २७९ । ३८-३९) । शापसे मुक्त होनेपर इसका विश्वावसु गन्धर्वके रूपमें प्रकट हो सीताजीका पता बताना (वन० २७९ । ४२-४३) ।

कमठ–(१) युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान कम्बोजराज (सभा० ४ । २२) । (२) एक ऋषि, जिन्होंने तपस्याद्वारा सिद्धि प्राप्त की थी (शान्ति० २९६ । १४-१६) ।

कमला–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ९) ।

कमलाक्ष–(१) कौरवपक्षका एक महारथी योद्धा, जिसे दुर्योधनने अर्जुनपर आक्रमण करनेके लिये शकुनिके साथ भेजा था (द्रोण० १५६ । १२०–१२३) । (२) तारकासुरका पुत्र । त्रिपुरोंमेंसे रजतमयपुरका अधिपति (कर्ण० ३३ । ५) । शिवजीद्वारा तीनों पुरोंका संहार (कर्ण० ३४ । ११४) । अन्यत्रके वर्णनके अनुसार कमलाक्षके अधिकारमें सुवर्णमय पुर था और शिवजीने तीनों पुरोंको दग्ध किया (द्रोण० २०२ । ६४–८३) ।

कमलाक्षी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ६) ।

कम्प–एक वृष्णिवंशी राजकुमार, जो मृत्युके पश्चात् विश्वेदेवोंमें मिल गया (स्वर्गा० ५ । १६) ।

कम्पन–एक महाबली नरेश, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४ । २२) ।

कम्पना–एक सिद्धसेवित नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । २५) । इसमें स्नान करनेसे पुण्डरीक यज्ञका फल प्राप्त होता है (वन० ८४ । ११६) ।

कम्बल–(१) एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १०) । ये वरुणकी सभामें भी विराजमान होते हैं (सभा० ९ । ९) । मातलिके उपाख्यानमें ये कश्यपके वंशज कहे गये हैं (उद्योग० १०३ । ९) । प्रयागतीर्थमें कम्बल नागका स्थान है, जो ब्रह्माजीकी वेदीके अन्तर्गत है (वन० ८५ । ७६-७७) । (२) कुशद्वीपका चौथा वर्ष (भीष्म० १२ । १३) ।

करंजनिलया–वृक्षोंकी माता अनला या वीरुधा, जो करंज नामक वृक्षपर निवास करती है । यह वरदायिनी तथा

प्राणियोंपर कृपा करनेवाली है; अतः पुत्रार्थी मनुष्य करंज वृक्षपर इसके उद्देश्यसे प्रणाम करते हैं (वन० २३०। ३५–३६)।

करक–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९। ६०)।

करकर्ष–चेदिराजका भ्राता। शरभका छोटा भाई। इन दोनोंको साथ लेकर वे (चेदिराज) पाण्डवोंकी सहायताके लिये आये थे (उद्योग० ५०। ४७)। इसने युद्धके मैदानमें आगे बढ़कर चेकितानको अपने रथपर बिठाकर उनकी रक्षा की (भीष्म० ८४। ३२–३३)।

करकाश–कौरवपक्षका एक योद्धा, जो द्रोणनिर्मित गरुड-व्यूहमें उसकी ग्रीवाके स्थानमें खड़ा किया गया था (द्रोण० २०। ६)।

करट–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९। ६३)।

करतोया–एक तीर्थभूत पवित्र नदी, जो वरुणकी सभामें उपस्थित हो उनकी उपासना करती है (सभा० ९। २२)। यहाँ तीन रात उपवास करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है (वन० ८५। ३)।

करन्धम–एक इक्ष्वाकुवंशी नरेश, जो खनीनेत्रके पुत्र और अविक्षित्‌के पिता थे। इनका प्रथम नाम सुवर्चा था। इन्होंने अपने करका धमन करके (हाथको बजाकर) सेना उत्पन्न किया और शत्रुओंको मार भगाया; इसलिये ये करन्धम कहलाये (आश्व० ४। २–१९)। ये यमराजकी सभामें रहकर भगवान् यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८। १६)।

करभ–एक राजा, जो मगधराज जरासन्धके आगे नतमस्तक रहता था (सभा० १४। १३)।

करभञ्जक–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९। ६९)।

करम्भा–कलिङ्गदेशकी राजकुमारी। पूरुवंशी महाराज अक्रोधनकी पत्नी। देवातिथिकी माता (आदि० ९५। २२)।

करवीर–(१) एक प्रमुख नाग (आदि ३५। १२)। (२) द्वारकाके समीपवर्ती एक वन (सभा० ३८। २९ के बाद, पृष्ठ ८१३, कालम १)।

करवीरपुर–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्मरूप हो जाता है (अनु० २५। ४४)।

करहाटक–दक्षिण भारतका एक देश, जिसे सहदेवने दूतोंद्वारा ही जीता था (सभा० ३१। ७०)।

कराल–एक देवगन्धर्व, जो अर्जुनके जन्मोत्सवके समय आया था (आदि० १२२। ५७)।

करालजनक–मिथिलाके एक राजा, जिन्होंने वसिष्ठजीसे विविध ज्ञानविषयक प्रश्न किये और उनके सदुपदेश सुने (शान्ति० ३०२ अध्यायसे ३०८ अध्याय तक)।

करालदन्त–इन्द्रकी सभामें विराजनेवाले एक महर्षि, जो वहाँ रहकर इन्द्रकी उपासना करते हैं (सभा० ७। १४)।

करालाक्ष–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५। ६१)।

करीति–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९। ४४)।

करीषक–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९। ५५)।

करीषिणी–एक नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९। १७, २३)।

करूष–(१) एक भारतीय जनपद (आधुनिक विद्वानोंकी धारणाके अनुसार बघेलखण्ड और बुन्देलखण्डका कुछ भाग (आदि० १२२। ४०)। (२) करूषराज, जिसकी प्राप्तिके लिये तपस्या करनेवाली वैशाली भद्राका शिशुपालने अपहरण किया था (सभा० ४५। ११)। (३) एक नरेश, जिन्होंने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया (अनु० ११५। ६४)।

करेणुमती–चेदिनरेश शिशुपालकी पुत्री, नकुलकी पत्नी एवं निरमित्रकी माता (आदि० ९५। ७९)।

कर्कखण्ड–पूर्वीय भारतका एक जनपद, जिसे कर्णने दुर्योधनके लिये जीता था (वन० २५४। ८)।

कर्कर–एक प्रमुख नाग (आदि० ३५। १६)।

कर्कोटक–(१) कश्यप और कद्रूकी संतानोंमें प्रमुख एक नाग (आदि० ३५। ५)। ये अर्जुनके जन्मोत्सवमें गये थे (आदि० १२२। ७१)। वरुणकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ९। ९)। दावानलसे दग्ध होनेके भयसे इनका राजा नलको पुकारना, नलके आने पर उनसे नारदजीके शापसे अपने स्थावर-तुल्य होनेका हाल कहना, उनका मित्र होना, राजा नलको डँसकर उनका रूप विकृत करना, उन्हें आश्वासन देना तथा पुनः पूर्वरूपमें परिणत होनेके लिये ओढ़नेके निमित्त दो वस्त्र प्रदान करना (वन० ६६। २—२५)। ये शिवजीके रथके घोड़ोंके केसर बाँधनेकी रस्सी बनाये गये थे (कर्ण० ४। २९)। बलरामजीके स्वधामगमनके समय स्वागतके लिये ये भी गये थे (मौसल० ४। १५)। (२) कर्कोटक देश और वहाँके निवासी (कर्ण० ४४। ४३)।

कर्ण–(१) कुन्तीके गर्भ और सूर्यके अंशसे कवच-कुण्डल-धारी महाबली कर्णकी उत्पत्ति (आदि० ६३। ९८; आदि० ११०। १८)। पहले इसका 'वसुषेण' नाम था; परंतु जब इसने अपने कवच-कुण्डलोंको शरीरसे उघेड़कर इन्द्रको दे दिया, तबसे उसका नाम

'वैकर्तन' हो गया (आदि० ६७ । १४४—१४७)। कुन्तीके द्वारा इसका जलमें परित्याग (आदि० ६७ । १३९; आदि० ११० । २२)। इसे ब्राह्मणके लिये कुछ भी अदेय नहीं था (आदि० ६७ । १४३)। ब्राह्मण-रूपमें याचक होकर आये हुए इन्द्रको इसके द्वारा कवच-कुण्डलका दान एवं प्रसन्न हुए इन्द्रसे इसको 'शक्ति' नामक अमोघ अस्त्रकी प्राप्ति (आदि०६७।१४४–१४६; आदि० ११० । २८-२९)। यह सूर्यदेवका सर्वोत्तम अंश था (आदि० ६७ । १५०)। गङ्गाके प्रवाहमें बहते हुए इस बालक कर्णका अधिरथके हाथमें पहुँचना (आदि० १०० । २३)। अधिरथ तथा उसकी पत्नी राधाका इसको अपना पुत्र बना लेना (आदि० ११० । २३)। इसका 'वसुषेण' नाम होनेका कारण (आदि० ११० । २४)। इसकी सूर्य-भक्ति (आदि० ११० । २५)। इसकी ब्राह्मण-भक्ति (आदि० ११० । २६)। इसका 'कर्ण' और 'वैकर्तन' नाम होनेका कारण (आदि० ११० । ३१)। द्रोणाचार्यके समीप अध्ययनके लिये इसका आगमन (आदि० १३१ । ११)। अध्ययनावस्थामें अर्जुनसे इसकी स्पर्धा (आदि० १३१ । १२)। रङ्गभूमिमें इसकी अर्जुनसे स्पर्धा तथा अस्त्र-कुशलता (आदि० १३५ । ९—१२)। रङ्ग-भूमिमें दुर्योधनद्वारा इसका सम्मान (आदि० १३५ । १३-१४)। अर्जुनद्वारा इसे रङ्गभूमिमें फटकार (आदि० १३५ । १८)। अर्जुनसे लड़नेके लिये इसका रङ्गभूमिमें उद्यत होना (आदि० १३५ । २०)। रङ्गभूमिमें कृपाचार्यका इससे परिचय पूछना और इसका लज्जित होना (आदि० १३५ । ३४)। दुर्योधनद्वारा इसका अङ्गदेशके राजपदपर अभिषेक (आदि० १३५ । ३८)। इसके द्वारा दुर्योधनको अटल मित्रताका वरदान (आदि० १३५ । ४१)। इसका रङ्गभूमिमें अपने पिता अधिरथ-का अभिवादन (आदि० १३६ । २)। भीमसेनद्वारा इसका तिरस्कार (आदि० १३६ । ६)। द्रुपदसे पराजित होकर इसका पलायन (आदि० १३७ । २४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। द्रौपदीके स्वयंवरमें इसका आगमन (आदि० १८५ । ४)। स्वयंवरमें लक्ष्यवेधके लिये उद्यत हुए कर्णको देखकर सूतपुत्र होनेके कारण इसका वरण न करनेके सम्बन्धमें द्रौपदीका वचन (आदि० १८६ । २३)। द्रौपदीके स्वयंवरमें अर्जुनद्वारा इसकी पराजय (आदि० १८९ । २२)। पराक्रमपूर्वक द्रुपदको पराजित कर पाण्डवोंको कैद करनेके लिये इसका दुर्योधनको परामर्श (आदि० २०१ । १—२१)। इसको द्रोणकी फटकार (आदि० २०३ । २६)। राजसूय-दिग्विजयके समय भीमसेनद्वारा इसकी पराजय (सभा० ३० । २०)। युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें रथि-श्रेष्ठ कर्णका आगमन (सभा० ३४ । ७)। यह अङ्ग और वङ्ग देशका राजा था और इसने जरासंधको परास्त किया था (सभा० ४४ । ९–११)। द्यूतके लिये आये हुए राजा युधिष्ठिर कर्णसे भी मिले थे (सभा० ५८ । २३)। द्यूतसभामें कर्ण भी उपस्थित था और द्रौपदीको दावपर लगानेसे बहुत प्रसन्न हुआ था (सभा० ६५ । ४४)। इसके द्वारा विकर्णको फटकारते हुए द्रौपदीके हारे जानेकी घोषणा और द्रौपदी तथा पाण्डवोंके वस्त्र उतार लेनेके लिये दुःशासनको आदेश (सभा० ६८ । २७—३८)। इसका द्रौपदीको दूसरा पति चुन लेनेके लिये कहना और उसे दासी बताना (सभा० ७१ । १—४)। वनमें चलकर पाण्डवोंका वध करनेके लिये दुर्योधनको इसकी सलाह (वन० ७ । १६—२०)। द्वैतवनमें पाण्डवोंके पास चलनेके लिये इसका दुर्योधनको उभाड़ना (वन० २३७ अध्याय)। घोषयात्राका प्रस्ताव बताना (वन० २३८ । १९-२०)। धृतराष्ट्रके आगे घोषयात्राका प्रस्ताव रखना (वन० २३९ । ३–५)। द्वैतवनमें गन्धर्वोंद्वारा इसकी पराजय (वन० २४१ । ३२)। मार्गमें इसके द्वारा दुर्योधनका अभिनन्दन (वन० २४७ । १०—१५)। दुर्योधनको अनशन न करनेके लिये इसका समझाना (वन० २५० अध्याय)। भीष्मद्वारा इसकी निन्दा, इसके क्षोभपूर्ण वचन और इसका दिग्विजयके लिये प्रस्थान (वन० २५३ अध्याय)। इसके द्वारा समूची पृथ्वीपर दिग्विजय और हस्तिनापुरमें इसका स्वागत (वन० २५४ अध्याय)। कर्णका दुर्योधनको यज्ञके लिये सलाह देना (वन० २५५ अध्याय)। कर्णद्वारा अर्जुनके वधकी प्रतिज्ञा (वन० २५७ । १६-१७)। सूर्यके समझानेपर भी इसका कवच-कुण्डल देनेका ही निश्चय रखना (वन० ३०० । २७—३९)। इन्द्रसे शक्ति लेकर ही उन्हें कवच-कुण्डल देनेका निश्चय (वन० ३०२ । १७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। कर्णका कुन्तीके गर्भसे जन्म, कुन्तीका उसे पिटारीमें रखकर अश्वनदीमें बहा देना तथा अमृतसे प्रकट हुए कवच-कुण्डल धारण करनेके कारण इसका नदीमें जीवित रह सकना (वन० ३०८ । ४—७–२७)। पिटारीमें बंद हुए कर्णका अधिरथ और राधाके हाथमें आना (वन० ३०९ । ५-६)। राधाद्वारा कर्णका विधि-पूर्वक पालन (वन० ३०९ । ११-१२)। इसका 'वसुषेण' और 'वृष' नाम पड़नेका कारण (वन० ३०९ । १३-१४)। हस्तिनापुरमें इसकी शिक्षा और दुर्योधनसे मित्रता (वन० ३०९ । १७-१८)। इन्द्रका इन्द्रको उनकी शक्ति माँगना (वन० ३१० । २१)। इन्द्रको

इसके द्वारा कवच-कुण्डल-दान (वन० ३१० । ३८)। पाण्डवोंका पता लगानेके लिये इसकी पुनः गुप्तचर भेजनेकी सलाह (विराट० २६ । ८—१२)। द्रोणाचार्यकी बातोंपर आक्षेप करते हुए अर्जुनसे युद्ध करनेका ही इसका निश्चय (विराट० ४७ । २१–३४)। इसकी आत्मप्रशंसापूर्ण अहङ्कारोक्ति (विराट० ४८ अध्याय)। अर्जुनपर इसका आक्रमण (विराट० ५४ । १९)। अर्जुनसे पराजित होकर युद्धके मुहानेसे भागना (विराट० ५४ । ३६)। अर्जुनके साथ पुनः युद्ध और पराजित होकर भागना (विराट० ६० । २७)। कर्णके कपड़ोंका उत्तरद्वारा उतारा जाना (विराट० ६५ । १५)। द्रुपदके पुरोहितके कथनका समर्थन करनेवाले भीष्मके वाक्योंपर इसका आक्षेप करना (उद्योग० २१ । ९—१५)। इसकी आत्मप्रशंसा (उद्योग० ४९ । २९—३२; उद्योग० ६२ । २—६)। भीष्मजीके आक्षेप करनेपर इसका अस्त्र त्यागकर सभासे प्रस्थान (उद्योग० ६२ । १३)। दुर्योधनके पक्षमें रहनेका निश्चय बताते हुए श्रीकृष्णसे रणयज्ञके रूपकका वर्णन करना (उद्योग० १४१ अध्याय)। इसके द्वारा श्रीकृष्णसे युधिष्ठिरकी विजय और दुर्योधनकी पराजयके लक्षणोंका वर्णन (उद्योग० १४३ । २—४५)। कुन्तीको उत्तर देते हुए उनके चार पुत्रोंको न मारनेकी प्रतिज्ञा (उद्योग० १४६ । ४—२३)। भीष्मजीके जीते-जी युद्ध न करनेकी प्रतिज्ञा (उद्योग० १५६ । २५)। भीष्मकी कटु आलोचना (उद्योग० १६८ । ११—२९)। पाँच दिनमें ही पाण्डवसेनाको नष्ट करनेकी अपनी शक्तिका कथन (उद्योग० १९३ । २०)। श्रीकृष्णके समझानेपर दुर्योधनका ही पक्ष ग्रहण करनेका निश्चय (भीष्म० ४३ । ९२)। भीष्मसे शस्त्र डलवा देनेके लिये दुर्योधनको सलाह देना (भीष्म० ९७ । ७—१३)। बाणशय्यापर पड़े हुए भीष्मके पास जाकर इसका उन्हें प्रणाम करना (भीष्म० १२२ । ४-५)। भीष्मके समझानेपर क्षमा-प्रार्थना करते हुए इसका युद्धका ही निश्चय बताना (भीष्म० १२२ । २३—३३)। कौरवोंद्वारा इसका स्मरण (द्रोण० १ । ३३—४७)। भीष्मके लिये शोक प्रकट करते हुए इसका रणके लिये प्रस्थान (द्रोण० २ अध्याय)। भीष्मकी प्रशंसा करते हुए युद्धके लिये उनसे आज्ञा माँगना (द्रोण० ३ अध्याय)। भीष्मकी आज्ञा पाकर कौरवोंकी सेनामें इसका जाना (द्रोण० ४ । १५)। दुर्योधनके पूछनेपर इसका सेनापतिके लिये द्रोणाचार्यका नाम बताना (द्रोण० ५ । १३—२१)। दुर्योधनसे भीमसेनके स्वभावका वर्णन करते हुए द्रोणाचार्यकी रक्षाके लिये कहना (द्रोण० २२ । १८—२८)। केकय-राजकुमारोंके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । ४२–४४)। अर्जुन, भीमसेन, धृष्टद्युम्न और सात्यकिके साथ युद्ध (द्रोण० ३२ । ५२—७०)। इसका अभिमन्युसे पराजित होना (द्रोण० ४० । १७—३६)। इसका द्रोणाचार्यसे अभिमन्युके वधका उपाय पूछना (द्रोण० ४८ । १८)। इसके द्वारा अभिमन्युके धनुष और ढालका काटा जाना (द्रोण० ४८ । ३२—३९)। इसके ध्वजका वर्णन (द्रोण० १०५ । १२–१४)। भीमसेनके साथ युद्धमें इसका पराजित होना (द्रोण० १२९ । ३३)। भीमसेनके साथ इसका युद्ध और पराजित होना (द्रोण० १३१ से १३८ अध्यायतक)। भीमसेनसे बचनेके लिये इसका रथमें दुबक जाना (द्रोण० १३९ । ७६)। भीमसेनको मूर्च्छित करके इसका धनुषकी नोकसे उन्हें दबाना (द्रोण० १३९ । ९१-९२)। भीमसेनको कटुवचन सुनाना (द्रोण० १३९ । ९५—१०९)। अर्जुनके बाणोंसे आहत होकर इसका दूर हट जाना (द्रोण० १३९ । ११४)। अर्जुनके द्वारा युद्धमें परास्त होना (द्रोण० १४५ । ८३-८४)। दुर्योधनके प्रोत्साहन देनेपर उसे उत्तर देना (द्रोण० १४५ । २५—३३)। सात्यकिके साथ युद्धमें इसकी पराजय (द्रोण० १४७ । ६४-६५)। दुर्योधनद्वारा द्रोणाचार्यपर किये गये दोषारोपणका निराकरण (द्रोण० १५२ । १५—२२)। दुर्योधनसे दैवकी प्रधानताका वर्णन (द्रोण० १५२ । २३–३४)। दुर्योधनको आश्वासन (द्रोण० १५८ । ५–११)। इसके द्वारा कृपाचार्यका अपमान (द्रोण० १५८ । २५–३२; द्रोण० १५८ । ४९—७०)। अर्जुनके साथ युद्धमें इसका पराजित होना (द्रोण० १५९ । ६२–६४)। सहदेवको युद्धमें परास्त करके उनके शरीरमें धनुषकी नोक चुभोकर उन्हें कटु वचन सुनाना (द्रोण० १६७ । २—१८)। सात्यकिके साथ इसका युद्ध (द्रोण० १७० । ३०—४३)। दुर्योधनको इसकी सलाह (द्रोण० १७० । ४६—६०)। इसके द्वारा धृष्टद्युम्नकी पराजय (द्रोण० १७३ । ७)। घटोत्कचके साथ इसका घोर युद्ध (द्रोण० १७५ अध्याय)। इसके द्वारा इन्द्रकी दी हुई शक्तिसे घटोत्कचका वध (द्रोण० १७९ । ५४–५८)। भीमसेनके साथ युद्ध और उन्हें परास्त करना (द्रोण० १८८ । १०–२२)। भीमसेनके साथ युद्ध (द्रोण० १८९ । ५०–५५)। द्रोणाचार्यके मारे जानेपर युद्धस्थलसे भागना (द्रोण० १९३ । १०)। सात्यकिद्वारा इसकी पराजय (द्रोण० २०० । ५३)। संजयद्वारा इसके सेनापतित्व तथा मृत्युका वर्णन (कर्ण० ३ । १७–२१)। अर्जुनद्वारा इसके पुत्र वृषसेनके

वधकी चर्चा (कर्ण० ५ । २३-२४) । सेनापतिके लिये प्रस्ताव करनेपर दुर्योधनको आश्वासन (कर्ण० १० । ४०-४१) । सेनापति-पदपर अभिषेक (कर्ण० १० । ४३) । इसका कौरव-सेनाका मकरव्यूह बनाकर युद्धके लिये प्रस्थान (कर्ण० ११ । १४) । इसके द्वारा पाण्डवसेनाका संहार (कर्ण० २१ । १८–२४) । भागते हुए नकुलके गलेमें धनुष फँसाकर उन्हें पकड़ना और जीवित छोड़ देना (कर्ण० २४ । ४५–५१) । सात्यकिके साथ इसका युद्ध (कर्ण० ३० अध्याय) । दुर्योधनसे अपनी युद्धसम्बन्धी व्यवस्थाके लिये कहना (कर्ण० ३१ । ३५—६९) । शल्यको सारथि बनाकर युद्धके लिये प्रस्थान (कर्ण० ३६ । २४-२५) । इसकी आत्मप्रशंसा (कर्ण० ३७ । १३—३१) । अर्जुनका पता बतानेवालेको पुरस्कार देनेकी घोषणा (कर्ण० ३८ अध्याय) । शल्यको फटकारते हुए मद्रनिवासियोंकी निन्दा करना और उन्हें मारनेकी धमकी देना (कर्ण० ४० अध्याय) । शल्यको फटकारते हुए अपनेको परशुरामजी तथा एक ब्राह्मणद्वारा प्राप्त शापोंकी बात बताना (कर्ण० ४२ अध्याय) । आत्मप्रशंसापूर्वक शल्यको फटकारना (कर्ण० ४३ अध्याय) । इसके द्वारा मद्र आदि बाह्रीक देशवासियोंकी निन्दा करना (कर्ण० ४४ से ४५ अध्यायतक) । इसके द्वारा पाञ्चालोंका संहार (कर्ण० ४६ । २१-२२) । पाण्डव-सेनाका संहार (कर्ण० ४८ । ९–१७) । कर्णपुत्र सुषेण और चित्रसेन-द्वारा पिताके रथके पहियोंकी रक्षा, वृषसेनद्वारा उसके पृष्ठभागकी रक्षा (कर्ण० ४८ । १८-१९) । भीमसेन-द्वारा कर्णपुत्र भानुसेनका वध (कर्ण० ४८ । २७) । कर्णद्वारा युधिष्ठिरपर आक्रमण (कर्ण० ४८ । ६३) । युधिष्ठिरके साथ युद्धमें इसका मूर्च्छित होना (कर्ण० ४९ । २१) । इसके द्वारा युधिष्ठिरके चक्ररक्षक चन्द्रदेव और दण्डधारका वध (कर्ण० ४९ । २७) । युधिष्ठिरको परास्त करके उनका तिरस्कार करना (कर्ण० ४९ । ४८–५९) । भीमसेनद्वारा इसकी पराजय (कर्ण० ५० । ४७) । भीमसेनके साथ इसका घोर संग्राम (कर्ण० ५१ से अध्यायतक) । इसके द्वारा पाञ्चाल, चेदि और केकय-वीरोंका भीषण संहार (कर्ण० ५६ । ३८—६९) । धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध (कर्ण० ५९ । ७–१४) । इसके द्वारा शिखण्डीकी पराजय (कर्ण० ६१ । २३) । युधिष्ठिरको घायल करके युद्धसे विमुख कर देना (कर्ण० ६२ । २९–३१) । इसके द्वारा नकुल, सहदेव और युधिष्ठिरकी भीषण पराजय (कर्ण० ६३ अध्याय) । दुर्योधनकी प्रेरणासे इसका भार्गवास्त्र प्रकट करना (कर्ण० ६४ । ४७) । उत्तमौजाद्वारा कर्णपुत्र सुषेणका वध (कर्ण० ७५ । ९) । इसके द्वारा पाण्डवसेनाका भीषण संहार (कर्ण० ७८ अध्याय) । अर्जुनके पराक्रमके विषयमें शल्यसे वार्तालाप (कर्ण० ७९ । ४९—७०) । अर्जुन और भीमसेनद्वारा खदेड़े हुए धृतराष्ट्र-पुत्रोंको इसका शरण देना (कर्ण० ८१ । ५१) । इसके द्वारा केकयराजकुमार विशोकका वध (कर्ण० ८२ । ३) । केकय-सेनापति उग्रकर्माका वध (कर्ण० ८२ । ५) । सात्यकिद्वारा कर्णपुत्र प्रसेनका वध (कर्ण० ८२ । ६) । इसके द्वारा धृष्टद्युम्नके पुत्रका वध (कर्ण० ८२ । ९) । इसका भीमसेनके भयसे भीत होना (कर्ण० ८४ । ७-८) । अर्जुनद्वारा कर्णपुत्र वृषसेनका वध (कर्ण० ८५ । ३६) । शल्यसे वार्तालाप (कर्ण० ८७ । १०१–१०३) । अर्जुनके साथ द्वैरथ युद्ध (कर्ण० ८९ अध्याय) । कर्णके सर्पमुख बाणसे अर्जुनके किरीटका गिरना (कर्ण० ९० । ३३) । रथका पहिया धँस जानेसे उसे निकालनेके लिये इसका रथसे उतरना और बाण न चलानेके लिये अर्जुनसे अनुरोध करना (कर्ण० ९० । १०५–११६) । अर्जुनद्वारा इसका वध (कर्ण० ९१ । ५०) । कर्णका दाह-संस्कार (स्त्री० २६ । ३६) । ब्राह्मणद्वारा इसे शाप प्राप्त होनेका प्रसंग (शान्ति० २ । २३–२६) । इसे ब्रह्मास्त्रकी प्राप्ति और परशुरामजीका शाप (शान्ति० ३ अध्याय) । कलिङ्गराजकी कन्याका दुर्योधनद्वारा अपहरण होनेपर इसके द्वारा समस्त राजाओंकी पराजय (शान्ति० ४ । १७–२०) । इसके बल–पराक्रमका वर्णन (कर्ण० ५ अध्याय) । इसके द्वारा जरासंधकी पराजय (कर्ण० ५ । ४) । इसके द्वारा मालिनी और चम्पानगरीकी प्राप्ति (कर्ण० ५ । ६-७) । इसके कुण्डलदानकी चर्चा (अनु० १३७ । ९) । कुन्तीका व्यासजीके सम्मुख कर्णके जन्मप्रसङ्गकी चर्चा और इसे देखनेकी इच्छा व्यक्त करना (आश्रम० ३० अध्याय) । कर्ण सूर्यका अंश था (आश्रम० ३१ । १४) । व्यासजीके आवाहन करनेपर कर्णका भी प्रकट होना (आश्रम० ३२ । ९) । स्वर्गमें जाकर इसका सूर्यदेवमें मिल जाना (स्वर्गा० ५ । २०) ।

महाभारतमें आये हुए कर्णके नाम—आधिरथि, आदित्यनन्दन, आदित्यतनय, अङ्गराज, अङ्गेश्वर, अर्कपुत्र, भरतर्षभ, गोपुत्र, कौन्तेय, कुन्तीसुत, कुरूद्वह, कुरुपृतनापति, कुरुवीर, कुरुयोध, पार्थ, पूषात्मज, राधासुत, राधात्मज, राधेय, रविसूनु, सौति, सावित्र, सूर्यज, सूर्यपुत्र, सूर्यसम्भव, सूत, सूतनन्दन, सूतपुत्र, सूतसूनु, सूतसुत, सूततनय, सूतात्मज, वैकर्तन, वैवस्वत, वसुषेण, वृष । (२) धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ६७ । ९५; आदि० ११६ । ३) । भीमसेनद्वारा इसपर आक्रमण

(भीष्म० ७७ । ८) । भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ७७ । १६) ।

कर्णनिर्वाक–वानप्रस्थधर्मका पालन करके स्वर्गको प्राप्त हुए एक ब्रह्मर्षि (शान्ति० २४४ । १८) ।

कर्णपर्व–महाभारतका एक प्रमुख पर्व ।

कर्णप्रावरण–(१) प्राचीन कालके मनुष्योंकी एक जाति, जो दक्षिण समुद्रके तटपर रहती थी । सहदेवने इस जातिके लोगोंको परास्त किया था (सभा० ३१ । ६७)। (जो अपने कानोंसे ही अपने शरीरको ढक लें, उन्हें 'कर्णप्रावरण' कहते हैं । प्राचीन कालमें ऐसी जातिके लोग थे, जिनके कान पैरोंतक लटकते थे ।) इस जातिके लोग युधिष्ठिरको भेंट देनेके लिये आये थे (सभा० ५२।१९)। (२) दक्षिण भारतका एक जनपद । यहाँके योद्धा दुर्योधनकी सेनामें थे (भीष्म० ५१ । १३) ।

कर्णप्रावरणा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २५) ।

कर्णवेष्ट–एक क्षत्रिय राजा, जो 'क्रोधवश' संज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न थे (आदि० ६७ । ६०–६६) । पाण्डवों-की ओरसे इन्हें रणनिमन्त्रण भेजा गया था (उद्योग० ४ । १५) ।

कर्णश्रवा–अजातशत्रु युधिष्ठिरका आदर करनेवाले एक महर्षि (वन० २६ । २३) ।

कर्णाटक–एक दक्षिण भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५९) ।

कर्णिका–ग्यारह विख्यात अप्सराओंमेंसे एक, जिसने अर्जुन-के जन्म-समयमें आकर नाच-गान किया था (आदि० १२२ । ६४–६६) ।

कर्णिकारवन–सुमेरु पर्वतके उत्तर भागमें समस्त ऋतुओंके फूलोंसे भरा हुआ एक दिव्य एवं रमणीय वन (भीष्म० ६ । २४) ।

कर्ता–एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३५) ।

कर्दम–(१) एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १६) । (२) एक प्राचीन ऋषि, जो ब्रह्मसभामें रहकर ब्रह्मा-जीकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । १९) । इक्कीस प्रजापतियोंमें इनका नाम आया है (शान्ति० ३३४ । ३६-३७) । (३) एक राजर्षि, जो विरजाके पौत्र तथा कीर्तिमान्के पुत्र थे। इनके पुत्रका नाम अनंग था (शान्ति० ५९ । ९०-९१) ।

कर्दमिलक्षेत्र–समङ्गाके निकटका एक क्षेत्र, जहाँ राजा भरतका अभिषेक हुआ था (वन० १३५ । १) ।

कर्बट–एक प्राचीन देश, जिसके राजाको भीमसेनने जीता था (सभा० ३० । २४) ।

कल–पितरोंका एक गण । ये ब्रह्मसभामें रहकर ब्रह्माजीकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । ४७) ।

कलविङ्क–(१) एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे अनेक तीर्थोंमें स्नानका फल मिलता है (अनु० २५ । ४३) । (२) एक प्रकारका पक्षी, जिसकी उत्पत्ति मरे हुए त्रिशिराके सुरापायी मुखसे हुई (उद्योग० ९ । ४२) ।

कलश–एक कश्यप-वंशी नाग (उद्योग० १०३ । ११) ।

कलशपोतक–एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । ७) ।

कलशी–एक तीर्थ, जहाँ आचमन करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है (वन० ८३ । ८०) ।

कलशोदर–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७२) ।

कला–कालपरिमाण (शल्य० ४५ । १५) ।

कलाप–एक महातेजस्वी ऋषि, जिनका राजसूय यज्ञके अन्तमें राजा युधिष्ठिरने पूजन किया (सभा० ४५ । ३८ के बाद दाक्षिणात्यपाठ पृष्ठ ८४३, कालम १) ।

कलि–(१) सोलह देवगन्धर्वोंमेंसे एक । कश्यप-पत्नी 'मुनि' के पुत्र (आदि० ६५ । ४४) । ये अर्जुनके जन्म-महोत्सवमें भी पधारे थे (आदि० १२२ । ५७)। (२) सत्ययुग आदिके क्रमसे प्रवृत्त होनेवाला चौथा युग (शान्ति० ६९ । ८१–९२) । इसका इन्द्रके साथ संवाद—दमयन्तीने राजा नलको अपना पति चुन लिया—यह इन्द्रसे सुनकर इसका कुपित होना और उसे दण्ड देनेको उद्यत हो जाना (वन० ५८ । ६) । नलके शरीरमें प्रविष्ट होकर उन्हें राज्यसे वञ्चित करनेका संकल्प करना और इसमें इसकी द्वापरसे सहायताके लिये प्रार्थना (वन० ५८ । १३-१४) । इसका राजा नलके शरीरमें प्रवेश (वन० ५९ । ३) । पुष्करको जूआ खेलनेके लिये तैयार करना (वन० ५९ । ४-५) । नलको दुःख देनेवाले (कलियुग) के लिये दमयन्तीका शाप (वन० ६३ । १६-१७) । कर्कोटक नागके विषसे दग्ध हो कलियुगका बड़े दुःखसे नलके शरीरमें रहना (वन० ६६ । १५-१६) । द्यूत-विद्याका रहस्य जाननेके अनन्तर नलके शरीरसे कलियुग-का निकलना और शापाग्निसे मुक्त होना (वन० ७२ । ३०-३१) । कलिका अपने स्वरूपको प्रकट करना और नलका उसे शाप देनेका विचार करना (वन० ७२ । ३२) । भयभीत एवं कम्पित हुए कलियुगका हाथ जोड़कर राजासे क्रोध रोकनेकी प्रार्थना करना, इन्द्रसेन-जननी दमयन्तीके शापसे अपने पीडित होनेकी चर्चा करना, नलकी शरणमें जाना और नलका कीर्तन करने-वालोंको अपनेसे (कलिसे) भय न होनेकी घोषणा करना और डरकर बहेड़ेके वृक्षमें समा जाना (वन० ७२ ।

३०–३८)। कलियुगका सर्वश्रेष्ठ तीर्थ गङ्गा (वन० ८५ । ८९–९१) । कलियुगका मान (वन० १८८ । २६-२७) । कलियुगके अन्तिम भागमें संसारकी स्थिति (वन० १८८ । ३९–६४) । कलियुग एवं युगान्तमें जगत्की परिस्थिति (वन० १९० । ११–८८); कलिके मनुष्योंकी आयु (शान्ति०२३१ । २५) । कलिके युगधर्मका वर्णन (वन० १४९ । ३३–३८; शान्ति०६९ । ९१–९७; शान्तिपर्वके २३१, २३२, २३८ और ३४० आध्यायोंमें भी कलिधर्मका वर्णन आया है) । मार्कण्डेयजीद्वारा उसके प्रभावका वर्णन (वन० १८८ । २५–८५; वन० १९० । ७–९२) । इस कलियुग-का अंश ही कुरुकुलकलङ्क राजा दुर्योधनके रूपसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ८७; आश्रम० ३१ । १०) । (३) भगवान् सूर्यका एक नाम (वन० ३ । २०) । (४) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । ७९) ।

कलिङ्ग (कालिङ्ग)—(१) दक्षिण भारतका एक प्राचीन देश । तीर्थयात्राके अवसरपर यहाँ अर्जुनका आगमन (आदि० २१४ । ९; भीष्म० ९ । ४६, ६९) । सहदेवने दक्षिण-विजयके समय इसे जीता था (सभा० ३१ । ७१) । इस देशके निवासी युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भेंट लेकर आये थे (सभा० ५२ । १८) । तीर्थयात्राके समय युधिष्ठिर यहाँ गये थे (वन० ११४ । ४) । कर्णने दिग्विजयके समय इसे जीता था (वन० २५४ । ८) । सहदेवने दन्तकूरमें कलिङ्गोंको परास्त किया था (उद्योग० २३ । २४) । दन्तकूरमें श्रीकृष्णने कलिङ्गोंका संहार किया था (उद्योग० ४८ । ७६) । सहदेवने इसे जीता था—इसकी चर्चा (उद्योग० ५० । ३१) । कर्णने इस देशको पहले जीता था (द्रोण० ४ । ८) । द्रोणनिर्मित गरुडव्यूहकी ग्रीवा और पीठके स्थानपर कलिङ्गदेशीय योद्धा स्थित थे (द्रोण० २० । ६–१०) । परशुरामजीके द्वारा इस देशके निवासी परास्त हुए थे (द्रोण० ७० । १२) । कलिङ्गदेशीय योद्धा सात्यकिके साथ लड़े हैं (द्रोण० १४१ । १०-११) । परशुरामजीके डरसे भगे हुए कुछ क्षत्रिय शूद्र हो गये थे—उन्हींमें कलिङ्गोंकी भी गणना है (अनु० ३३ । २२) । (२) कलिङ्ग देशका राजा (सभा० ५१ । ७ के बाद दा० पाठ) । इसका नाम श्रुतायु था (भीष्म० ५४ । ६८-६९) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । १३) । द्रोणनिर्मित व्यूहके दाहिने अङ्गमें स्थित था (द्रोण० ७ । ११) । जयद्रथ-की रक्षामें संलग्न था (द्रोण० ७४ । १७) । भीमसेन-के साथ कलिङ्ग-राजकुमारका युद्ध और उनके द्वारा इसका वध (द्रोण० १५५ । २१–२४) । कलिङ्गराज श्रुतायुको आगे करके कलिङ्गवासियोंने भीमसे लड़ाई की और उनके द्वारा वे मारे गये थे (भीष्म० ५४ । ३–४२) । (शेष देखिये श्रुतायु—) । (३) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६४) ।

कल्कि—भगवान् विष्णुके भावी दशम अवतार, जो कलियुग-के अन्तमें धर्मके शिथिल हो जानेपर प्रकट होंगे, इनका नाम होगा कल्कि विष्णुयशा (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७९६, कालम २; वन० १९० । ९३-९४) । कल्किके स्वरूप और कार्यका वर्णन (वन० १९० । ९३–९७) । इनके द्वारा कलियुगके बाद कृतयुगकी स्थापना (वन० १९१ । १–१४) । भगवान् नारायणका नारदजीसे कल्किको अपना अवतार बताना (शान्ति० ३३९ । १०४) ।

कल्माष—(१) एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । ७) । (२) एक उत्तम अश्व, जिसका रंग चितकबरा था। यह अश्व अर्जुनने दिग्विजयके समय हाटकदेशके निकट-वर्ती गन्धर्वनगरसे प्राप्त किया था (सभा० २८ । ६) ।

कल्माषपाद—एक इक्ष्वाकुवंशी राजा, जो ऋतुपर्णके पौत्र एवं सुदासके पुत्र थे । इनका दूसरा नाम मित्रसह था। सुदासपुत्र होनेसे ये सौदास भी कहलाते थे। इस भूतलपर ये असाधारण तेजसे सम्पन्न थे (आदि० १७५ । १; अनु० ७८ । १–२) । इनका नगरसे निकलकर वनमें मृगयाके लिये जाना, वहाँ इनके द्वारा हिंसक पशुओंका वध (आदि० १७५ । २) । वहाँसे थककर इनका नगरकी ओर लौटना और एक तंग रास्तेपर इनकी शक्ति मुनिसे भेंट (आदि० १७५ । ६–७) । वहाँ मार्ग देनेके प्रश्नको लेकर दोनोंमें विवाद और राजाद्वारा मुनिका तिरस्कार (आदि०१७५ । ८–११) । शक्तिद्वारा इन्हें राक्षस होनेका शाप (आदि० १७५ । १३–१४) । विश्वामित्रकी प्रेरणासे इनके शरीरमें 'किङ्कर' नामक राक्षसका आवेश (आदि० १७५ । २१) । इनके द्वारा रसोइयेको एक तपस्वी ब्राह्मणके भोजनके लिये मनुष्यका मांस देनेकी प्रेरणा (आदि० १७५ । ३१) । ब्राह्मण-द्वारा इन्हें राक्षसस्वभावसे युक्त होनेका शाप (आदि० १७५ । ३५–३६) । इनके द्वारा महर्षि शक्तिका भक्षण (आदि० १७५ । ४०) । विश्वामित्रकी प्रेरणासे इनके द्वारा वशिष्ठके समस्त पुत्रोंका संहार (आदि०१७५।४२) । वशिष्ठपर इनका आक्रमण (आदि० १७६ । १८) । मन्त्रपूत जलसे अभिषिक्त करके वशिष्ठद्वारा इनका उद्धार (आदि० १७६ । २६) । वसिष्ठद्वारा इनको कभी भी ब्राह्मणका अपमान न करनेका आदेश (आदि० १७६ । ३१) । वशिष्ठसे पुत्र प्राप्त करनेके लिये इनकी

प्रार्थना (आदि० १७६ । ३३) । वशिष्ठद्वारा इनकी पत्नीके गर्भसे 'अश्मक' नामक पुत्रका उत्पादन (आदि० १७६ । ४७) । शापग्रस्त-अवस्थामें इनके द्वारा मैथुनके लिये उद्यत हुए ब्राह्मणका भक्षण (आदि० १८१ । १६)। ब्राह्मणपत्नी आङ्गिरसीद्वारा इन्हें अपनी पत्नीके साथ समागम करते ही मृत्यु होने एवं वशिष्ठद्वारा ही पुत्र प्राप्त होनेका शाप (आदि० १८१ । २०) । महर्षि पराशरद्वारा दयावश सौदासकुमार सर्वकर्माकी प्राण-रक्षा (शान्ति० १४९ । ७६–७७) । इनका नाम मित्रसह और इनकी रानीका नाम मदयन्ती था । उसे इन्होंने वशिष्ठकी सेवामें अर्पित की (शान्ति० २३४ । ३०; अनु० १३७ । १८) । इनका वशिष्ठजीसे गौके विषयमें पूछना (अनु० ७८ । ३) । कुण्डलकी याचनाके लिये गये हुए उत्तङ्क मुनिके साथ इनका संवाद (आश्व० ५७ । १–१८; आश्व० ५८ । ४–१६) ।

कल्माषी–एक नदी, जिसके आस-पास भ्रमण करते हुए राजा द्रुपद ब्राह्मणोंकी एक बस्तीमें पहुँचे और याज-उपयाजसे मिले थे (आदि० १६६ । ५–६) । इसीके किनारे निवास करनेवाले भृगुजीने युधिष्ठिरको उपदेश देकर अनुगृहीत किया था (सभा० ७८ । १६) । (आचार्य नीलकण्ठने 'कल्माषी' का अर्थ 'कृष्णवर्णा यमुना' किया है ।)

कल्याणी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ७)।

कवच–इन्द्रसभामें विराजमान होनेवाले एक ऋषि (सभा० ७ । १७ के बाद दाक्षि० पाठ) । ये पश्चिम दिशामें निवास करते हैं (शान्ति० २०८ । ३०) ।

कवची–धृतराष्ट्रका पुत्र (आदि० ६७ । १०३) । भीमसेनद्वारा इसका वध (कर्ण० ८४ । २–६) ।

कवि–(१) महर्षि भृगुके पुत्र (आदि० ६६ । ४२) । अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर शपथ करना (अनु० ९४ । ३२) । (२) बृहस्पतिके पाँचवें पुत्र एक अग्नि, जो बड़वानलरूपसे समुद्रका जल सोखते हैं । शरीरके भीतर ऊपरकी ओर गतिशील होनेके कारण इन्हें 'उदान' और 'ऊर्ध्वभाक्' भी कहा गया है (वन० २१९ । २०) । (३) वरुणके यज्ञमें ब्रह्माजीके शुक्रका हवन होनेसे जो तीन पुरुष प्रकट हुए उनमेंसे एक । शेष दो भृगु और अङ्गिरा थे । ब्रह्माजीने कविको ही अपना पुत्र स्वीकार किया । इस कविके 'कवि, काव्य' आदि आठ पुत्र हुए जो वारुण कहलाते हैं । ये सभी प्रजापति हैं (अनु० ८५ । १३२–१३४) । (४) ब्रह्मपुत्र कविके पुत्र (अनु० ८५ । १३३) । (५) एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३६) ।

कशेरक–कुबेरकी सभामें उपस्थित हो उनकी सेवामें संलग्न रहनेवाले बहुसंख्यक यक्षोंमेंसे एक (सभा० १० । १५) ।

कशेरु–'त्वष्टा' प्रजापतिकी एक सुन्दरी पुत्री, जिसे चौदह वर्षकी अवस्थामें नरकासुर हर लाया था । सोलह हजार निन्यानबे अन्य कुमारियोंके साथ इसका भी भगवान् श्रीकृष्णके साथ विवाह हुआ । इन सब कुमारियोंने भगवान् श्रीकृष्णसे देवर्षि नारद तथा वायुदेवके भविष्य कथनकी सत्यता बताते हुए उनके दर्शनमात्रसे अपनेको कृतकृत्य बताया और उनके प्रति अपनी सकामभावना प्रकट की । फिर भगवान्ने इन्हें अपनाया (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८०४–८११) ।

कशेरुमान् (कसेरुमान्)—एक यवनजातीय असुर, जो श्रीकृष्णद्वारा मारा गया (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८२४, कालम २; वन० १२ । ३२) ।

कश्यप–(१) एक देवर्षि, ब्रह्मर्षि और प्रजापति, जो मरीचि ऋषिके पुत्र और दक्ष प्रजापतिके जामाता हैं (आदि० ६५ । ११) । ये कद्रू और विनताके पति हैं (आदि० १६ । ६) । ब्रह्माजीने इन्हें सर्पोंपर क्रोध न करनेके लिये कहा और उनका विष उतारनेवाली विद्या प्रदान की (आदि० २० । १४-१५) । कश्यपजीका गरुड़से कुशल पूछना और उनके भोजन माँगनेपर एक हाथी और कछुएको खानेके लिये आदेश देना । विभावसु और सुप्रतीक मुनिके वैर और शापकी कथा सुनाकर उन्हींके हाथी और कछुआ होनेकी बात बताना और उनके विशाल शरीर एवं युद्धका वर्णन करना (आदि० २९ । १३—३२) । तपस्यामें लगे हुए पिता कश्यपका गरुड़को दर्शन (आदि० ३० । ११) । इनका पुत्रकी कामनासे यज्ञ करना (आदि० ३१ । ५) । वालखिल्यों-के प्रसादसे इनका विनताके गर्भसे अरुण और गरुड़को जन्म देकर गरुड़को पक्षियोंके 'इन्द्र' पदपर अभिषिक्त करना (आदि० ३१ । १२—१५) । अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु, सिंहिका, क्रोधा, प्राधा, विश्वा, विनता, कपिला, मुनि, कद्रू—ये दक्षकी तेरह कन्याएँ इनकी पत्नियाँ हैं (आदि० ६५ । १२) । इनकी संतानोंका वर्णन (आदि० ६५ । १४—५४) । इनसे देवता और असुर दोनों उत्पन्न हुए (आदि० ६६ । ३४) । इन्होंने ज्येष्ठ पत्नी अदितिके गर्भसे इन्द्र आदि बारह आदित्योंको जन्म दिया (आदि० ७५ । १०) । कश्यप और सुरभिके सहवाससे नन्दिनी नामक गौकी उत्पत्ति (आदि० ९९ । ८—१४) । अर्जुनके जन्म-समयमें उपस्थित हुए सात ऋषियोंमें ये भी थे (आदि० १२२ । ५१) । परशुरामजीका इन्हें समूची पृथ्वी दानमें देना (आदि० १२९ । ६२) । ये ब्रह्माजीकी सभामें विराज-

मान होते हैं (सभा० ११ । १८) । इनका प्रह्लादके पूछनेपर उन्हें प्रश्नका असत्य उत्तर देने या यथार्थ बात जानते हुए भी कुछ उत्तर न देनेके दोष बताना तथा दोनों पक्षोंसे मिले होनेके कारण गवाही न देनेवाले गवाहको प्राप्त हुए दोषका वर्णन करना (सभा० ६८ । ७३–७५) । युधिष्ठिरके साथ तीर्थयात्रा करनेवाले ऋषियोंमें इनका भी नाम आया है (वन० ८५ । ११९) । ब्रह्माजीने यज्ञमें सारी पृथ्वी कश्यपको दान कर दी; इससे पृथ्वीको बड़ा खेद हुआ और वह रसातलको जाने लगी । तब कश्यपजीने अपनी तपस्यासे पृथ्वीको प्रसन्न किया (वन० ११४ । १८—२२) । परशुरामजीका कश्यपको भूमिदान करके स्वयं उनका महेन्द्रपर्वतपर निवास (वन० ११७ । १४) । कश्यपपत्नी अदितिके गर्भसे भगवान्‌का वामन-अवतार (वन० २७२ । ६२) । परशुरामजीसे सम्पूर्ण पृथ्वीको दक्षिणारूपमें लेकर उन्हें पृथ्वीसे बाहर निकल जानेका आदेश देना (द्रोण० ७० । १९–२१) । इनका द्रोणाचार्यके पास जाकर उनसे युद्ध बंद करनेको कहना (द्रोण० १९० । ३५—४०) । स्कन्दके जन्म-समयमें इनका आगमन (शल्य० ४५ । १०) । परशुरामजीसे दक्षिणारूपमें पृथ्वीका दान लेना (शान्ति० ४९ । ६४) । परशुरामजीको राज्यके बाहर भेजना (शान्ति० ४९ । ६५-६६) । रसातलको जाती हुई पृथ्वीको ऊरुओंके सहारे रोकना (शान्ति० ४९ । ७२) । पुरोहितके विषयमें पुरूरवाको उपदेश (शान्ति० ७३ । ७—३२) । कश्यपजीका दूसरा नाम 'अरिष्टनेमि' भी है (शान्ति० २०८ । ८) । इनका भीष्मको वराह-अवतारकी कथा सुनाना (शान्ति० २०९ । ६) । ये मूलभूत कश्यपगोत्रके प्रवर्तक हैं (शान्ति० २९६ । १७-१८) । महर्षि कश्यपके अङ्गोंसे तिलकी उत्पत्ति (अनु० ६६ । १०) । इनका वृषादर्भिसे प्रतिग्रहका दोष बताना (अनु० ९३ । ४०) । अरुन्धतीसे अपने शरीरकी दुर्बलताका कारण बताना (अनु० ९३ । ६५) । यातुधानीसे अपने नामका परिचय देना (अनु० ९३ । ८६) । मृणालकी चोरीके विषयमें शपथ खाना (अनु० ९३ । ११६-११७) । अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर शपथ खाना (अनु० ९४ । १८) । कुबेरके सात गुरुओंमेंसे एक ये भी हैं, ये उत्तर दिशाका आश्रय लेकर रहते हैं, इनके कीर्तनसे कीर्ति और कल्याणकी प्राप्ति होती है (अनु० १५० । ३८-३९) । इनका तपोबलसे पृथ्वीको धारण करना (अनु० १५३ । २) ।

महाभारतमें आये हुए कश्यपजीके नाम—देवर्षि, काश्यप, महर्षि, मारीच, प्रजापति, अरिष्टनेमि आदि ।

(२) एक नाग, जो अर्जुनके जन्म-महोत्सवमें उपस्थित हुआ था (आदि० १२२ । ७१) ।

कहोड—महर्षि उद्दालकके शिष्य और जामाता ! अष्टावक्रके पिता (वन० १३२ । ३—८) । इनका उद्दालकका शिष्य होकर विनीत भावसे उनकी परिचर्यामें संलग्न रहना । इनके द्वारा की गयी सेवाके महत्त्वको समझकर गुरुका इन्हें शीघ्र ही सम्पूर्ण वेद-शास्त्रोंका ज्ञान कराना और अपनी कन्या सुजाताका इनके साथ विवाह कर देना (वन० १३२ । ९) । अपने गर्भस्थ बालकद्वारा अपने अध्ययनकी कटु आलोचना सुनकर इनका उसे आठ अङ्गोंसे वक्र होनेका शाप देना (वन० १३२ । १०-११) । गर्भवती सुजाताका इनसे धनकी याचना करना (वन० १३२ । १५) । इनका जनकके दरबारमें जाना और वहाँ शास्त्रार्थी पण्डित बन्दीसे हारकर जलमें डुबाया जाना (वन० १३२ । १५) । इनका जलसे बाहर आना और अष्टावक्रको समङ्गा नदीमें स्नान करनेका आदेश देना (वन० १३४ । ३२—३९) ।

कहोल—इन्द्रकी सभामें विराजमान होनेवाले एक प्राचीन ऋषि (सभा० ७ । १७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । हस्तिनापुर जाते हुए श्रीकृष्णसे मार्गमें इनकी भेंट (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

काक—एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ ६४) ।

काकी—(१) ताम्राकी लोक-विख्यात पुत्री । इसने उल्लुओंको जन्म दिया (आदि० ६६ । ५६-५७) । (२) शिशुओंकी सात मातृकाओंमेंसे एक (वन० २२८ । १०) ।

काक्षीवान्—गौतम ऋषिके पुत्र । चण्डकौशिक ऋषिके पिता (सभा० १७ । २२; २१ । ५) । ये युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४ । १७) ।

काञ्चन—मेरुद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक, दूसरा मेघमाली था (शल्य० ४५ । ४७) ।

काञ्चनाक्ष—स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५७) ।

काञ्चनाक्षी—नैमिषारण्यमें बहनेवाली सरस्वतीका नाम (शल्य० ३८ । १९) ।

काञ्ची—(मद्राससे ३७ मील दक्षिण-पश्चिममें स्थित एक नगर, जो प्राचीन समयमें चोल राजाओंकी राजधानी था । इस समय इसे 'काञ्जीवरम्' कहते हैं । यह सात मोक्षदायिनी पुरियोंमेंसे एक है ।) यहाँके योद्धा दुर्योधनकी सेनामें विद्यमान थे (उद्योग० १६१ । २१) ।

कात्यायन-इन्द्रकी सभामें विराजमान होनेवाले एक ऋषि (सभा० ७ । १९) ।

कानीन-एक प्रकारका बन्धुदायाद पुत्र (आदि० ११९ । ३३) । (विवाहसे पहले ही जिस कन्याको इस शर्तपर दिया जाता है कि 'इसके गर्भसे उत्पन्न हुआ पुत्र मेरा ही पुत्र समझा जायगा ।' उस कन्याके गर्भसे उत्पन्न पुत्रको 'कानीन' कहते हैं—यह नीलकण्ठकी व्याख्या है।) सर्वसम्मत मत यह है कि नारीकी कन्यावस्थामें (विवाहसे पूर्व) ही जो पुत्र पैदा होता है, वह 'कानीन' कहलाता है । यथा—व्यास, कर्ण, शिवि, अष्टक, प्रतर्दन और वसुमान आदि ।

कान्तारक-एक दक्षिण भारतीय जनपद, जिसके राजाको सहदेवने दक्षिण-विजयके अवसरपर पराजित किया (सभा० ३१ । १३) । (वेणा नदीके तटपर स्थित भूभागको ही 'कान्तारक' कहा गया है—ऐसा आधुनिक विचारकोंका मत है ।)

कान्ति-एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४०) ।

कान्यकुब्ज-गङ्गातटपर बसा हुआ एक प्राचीन नगर, जो राजा गाधिकी राजधानी था (आधुनिक कन्नौज ही प्राचीन कान्यकुब्ज है) । वह राज्य या जनपद भी कान्यकुब्ज नामसे ही विख्यात था (आदि० १७४ । ३; वन० ११५ । २०) । यहाँ विश्वामित्रने इन्द्रके साथ सोमपान किया था (वन० ८७ । १७) । कान्यकुब्जमें राजा गाधिकी कुमारी पुत्री सत्यवतीको अपनी पत्नी बनानेके लिये ऋचीक मुनिने राजासे माँगा था (उद्योग० ११९ । ४) ।

कान्वशिरा-एक जाति, जो पहले क्षत्रिय थी; किंतु ब्राह्मणोंसे डाह रखनेके कारण नीच भावको प्राप्त हो गयी (अनु० ३५ । १७) ।

कापिल-कुशद्वीपका सातवाँ वर्ष (भीष्म० १२ । १४) ।

कापी-एक नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । २४) ।

काम-(१) धर्मके तीन पुत्रोंमेंसे एक, इनकी पत्नीका नाम रति है (आदि० ६६ । ३२-३३) । (२) अनुपम रूपवान् स्वाहापुत्र अग्नि (वन० २१९ । २३) । (३) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । ४२) । (४) कामस्वरूप रुक्मिणीपुत्र प्रद्युम्न (अनु० १४८ । २०-२१) । (५) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । ४५) । (६) एक ऋषिका नाम (अनु० १५० । ४१) ।

कामचरी-स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २३) ।

कामठक (या **कामठ**)-धृतराष्ट्र कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । १६) ।

काम (अथवा कामाख्य) तीर्थ-एक तीर्थ, जहाँ स्नानसे मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है (वन० ८२ । १०५) ।

कामदा-स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २७) ।

कामदेव-भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । ८३) ।

कामन्दक-एक प्राचीन ऋषि, जिन्होंने आङ्गरिष्ठको राजधर्मका उपदेश दिया था (शान्ति० १२३ । १५-२५) ।

कामा-पृथुश्रवाकी पुत्री, जो पूरुवंशी महाराज अयुतनायीकी पत्नी तथा अक्रोधनकी माता थी (आदि० १७७ । २१) ।

काम्पिल्य-दक्षिणपाञ्चालका एक नगर, जो द्रुपदकी राजधानी था (आदि० १३७ । ७३) । विवाहके पश्चात् शिखण्डीका काम्पिल्य नगरमें आगमन (उद्योग० १८९ । १३) । दशार्णराजने एक समय इसके निकट पहुँचकर किसी ब्राह्मणको दूत बनाकर वहाँ भेजा था (उद्योग० १९२ । १४) । प्राचीन कालमें यहीं राजा ब्रह्मदत्त राज्य करते थे, जिनके यहाँ पूजनी नामक चिड़िया थी (शान्ति० १३९ । ५) ।

काम्बोज-(१) पश्चिमोत्तर भारतखण्डका एक जनपद और वहाँके निवासी, जिन्हें अर्जुनने जीता था (सभा० २७ । २३) । युधिष्ठिरके रथमें काम्बोजदेशमें उत्पन्न (काबुली) घोड़े जोते गये थे (सभा० ५३ । ५) । काम्बोजदेशीय म्लेच्छगण कलियुगमें राजा होंगे—यह भविष्यवाणी (वन० १८८ । ३६) । काम्बोज योद्धा दुर्योधनके सैनिक थे (उद्योग० १६० । १०३) । महाभारतकालमें इस देशका राजा सुदक्षिण था, जो महारथी माना गया था (उद्योग० १६६ । १-३) । भीष्मनिर्मित गरुडव्यूहके पुच्छ-स्थानमें काम्बोज खड़े किये गये थे (भीष्म० ५६ । ७) । काम्बोजदेशीय अश्व देखनेयोग्य तथा तोतेकी पाँखके समान रङ्गवाले होते हैं । ऐसे ही घोड़े नकुलके रथमें जुते हुए थे (द्रोण० २३ । ७) । काम्बोज आदि कई देशोंके अश्व पूँछ, कान और नेत्रोंको स्थिर करके वेगसे दौड़नेवाले होते हैं (द्रोण० ३६ । ३६) । (२) काम्बोजराज सुदक्षिण, जो द्रौपदीस्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । १५) । जिसके छोटे भाईका अर्जुनद्वारा वध हुआ था (कर्ण० १५६ । १११) । यह काम्बोजदेशीय घोड़ोंपर सवार हो युद्धके लिये चला था (भीष्म० ७१ । १३) । इसका युद्ध और अर्जुनद्वारा वध (द्रोण० ९२ । ६१-७३) । काम्बोजनरेश सुदक्षिणके वधकी चर्चा (द्रोण०

९४ । ३०) । सुदक्षिणका पिता भी काम्बोज या काम्बोजराज कहलाता था (द्रोण० ९२ । ६१)। (३) काम्बोज देशका एक प्राचीन नरेश, महाराज धुन्धुमारसे इन्हें खड्गकी प्राप्ति हुई (शान्ति० १६६ । ७७)

काम्यकवन–एक वनका नाम, वनवासकालमें पाण्डवोंने यहाँ निवास किया था । यह ऋषि-मुनियोंको बहुत प्रिय था । पाण्डवोंका काम्यकवनमें प्रवेश तथा विदुरजीका वहाँ जाकर उनसे मिलना और बातचीत करना (वन० ५ अ० में)। संजयका काम्यकवनमें जाकर विदुरको बुला ले आना (वन० ६ । ११–१७) । युधिष्ठिर आदिका द्वैतवनसे काम्यकवनमें प्रवेश, काम्यकवनमें पाण्डवोंके पास भगवान् श्रीकृष्ण, मुनिवर मार्कण्डेय तथा नारदजीका आगमन (वन० १८२-१८३ अ० में)। पाण्डवोंका काम्यकवनमें गमन (वन० २५८ अ० में)।

काम्या–एक स्वर्गीय अप्सरा, जो अर्जुनके जन्मोत्सवमें नृत्य करने आयी थी (आदि० १२२ । ६४)।

कायव्य–एक डाकू, निषादपुत्र, जो क्षत्रिय पिता और निषादजातीय मातासे उत्पन्न हुआ था, इसके सदाचारका वर्णन (शान्ति० १३५ । २—९)। लुटेरोंद्वारा सरदार होनेके लिये प्रार्थना करनेपर उसके द्वारा उन्हें धर्मोपदेश (शान्ति० १३५ । १३–२२)।

कायशोधन तीर्थ–कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक तीर्थ, जहाँ जाने और स्नान करनेसे शरीरकी शुद्धि होती है (वन० ८३ । ४२)।

कारन्धम–दक्षिण समुद्रके समीपवर्ती तीर्थ (पाँच नारी तीर्थोंमेंसे एक) (आदि० २१५ । ३) । यहाँ शापवश ग्राह बनकर रहनेवाली अप्सरा (वर्गाकी सखी) का अर्जुनद्वारा उद्धार (आदि० २१५ । २१)।

कारपवन–सरस्वतीनदी-सम्बन्धी एक प्राचीन तीर्थ (शल्य० ५४ । १२)।

कारस्कर–एक निन्द्य एवं त्याज्य देश, जहाँका धर्म दूषित है (कर्ण० ४४ । ४३)।

कारीष–महर्षि विश्वामित्रका एक ब्रह्मवादी पुत्र (अनु० ४ । ५५)।

कारूष– (१) वैवस्वत मनुके छठे पुत्र (आदि० ७५ । १६)। (२) एक प्राचीन देश, जहाँका राजा चोर-डाकुओंको मारनेवाला था । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें उपस्थित हुआ था (आदि० १८५ । १६)।

कार्तवीर्य–हैहयनरेश कृतवीर्यका पुत्र सहस्रबाहु अर्जुन, इसके प्रभाव तथा अत्याचारका वर्णन (वन० ११५ । १२–१४) । पराक्रमी सहस्रबाहुका अग्निदेवको भिक्षा देना (शान्ति० ४९ । ३८)। आपव मुनिद्वारा इसे शापकी प्राप्ति (शान्ति० ४९ । ४३)। परशुरामद्वारा इसकी भुजाओंका उच्छेद (शान्ति० ४९ । ४८)। इसके वंशका संहार (शान्ति० ४९ । ५२-५३)। इसके द्वारा मांसभक्षणनिषेध (अनु० ११५ । ६०)। इसकी दत्तात्रेयजीसे वरयाचना (अनु० १५२ । ७–१०) । वरप्राप्तिके पश्चात् इसके अहंकारयुक्त वचन—ब्राह्मणकी अपेक्षा क्षत्रियकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन (अनु० १५२ । १५–२२) । वायुदेवके कहनेसे इसका ब्राह्मण-की महत्ता स्वीकार करना (अनु० १५७ । २४–२६)। इसका अभिमानवश समुद्रको बाणोंसे आच्छादित करना (आश्व० २९ । ३) । परशुरामजीद्वारा इसका वध (आश्व० २९ । ११)।

महाभारतमें आये हुए कार्तवीर्य अर्जुनके नाम–अनूपपति, अर्जुन, हैहय, हैहयेन्द्र, हैहयाधिपति, हैहयर्षभ, हैहयश्रेष्ठ आदि ।

कार्तस्वर–एक दैत्य, जो कभी इस पृथ्वीका अधिपति था; किंतु इसे छोड़कर चल बसा (शान्ति० २२७ । ५२)।

कार्तिकेय–भगवान् स्कन्दका एक नाम, कृत्तिकाओंने इन्हें स्तन्य-पान कराया, अतः ये कार्तिकेय नामसे प्रसिद्ध हुए (अनु० ८५ । ८१-८२; अनु० ८६ । १३-१४)। (विशेष देखिये स्कन्द)

कार्पासिक–एक प्राचीन देश, जहाँ निवास करनेवाली दासियाँ युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें सेवाकार्य करती थीं (सभा० ५१ । ८)।

कार्ष्णि–एक देवगन्धर्व, जो अर्जुनके जन्मोत्सवमें उपस्थित हुआ था (आदि० १२२ । ५६)।

काल (१)–'ध्रुव' नामक वसुके पुत्र––सबको अपना ग्रास बनानेवाले भगवान् काल (आदि० ६६ । २१)। ये स्कन्दके अभिषेकमें गये थे (शल्य० ४५ । १७)। (२) एक महर्षि, जो इन्द्रकी सभामें उपस्थित हो उनकी उपासना करते हैं (सभा० ७ । १४)।

कालकक्ष–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६९)।

कालकण्ठ–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६९)।

कालकवृक्षीय–एक प्राचीन ऋषि, जो इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । १८)। इनका एक कौएको पिंजड़ेमें बाँधकर साथ लेना और कोसलराज क्षेमदर्शीके सारे राज्यमें वहाँका समाचार जाननेके लिये बारंबार चक्कर लगाना (शान्ति० ८२ । ६-७)। लोगोंको वायसीविद्या सीखनेकी प्रेरणा देते हुए घूम-घूमकर

राजकर्मचारियोंके दुष्कर्मोंको अपनी आँखों देखना (शान्ति० ८२ । ८) । सर्वज्ञ काकके कथनका बहाना लेकर उनका समस्त राजकर्मचारियोंकी चोरीका हाल बताना और राजाको सतत सावधान रहनेके लिये उपदेश देना (शान्ति० ८२ । १२–५७, ६१–६७) । राजा क्षेमदर्शीको इनका वैराग्यपूर्ण उपदेश (शान्ति० १०४ । १२–५४) । राजा क्षेमदर्शीसे राज्यप्राप्तिके विभिन्न उपायोंका वर्णन (शान्ति० १०५ । ५–२५) । क्षेमदर्शीसे संधि करनेके लिये राजा जनकको समझाना (शान्ति० १०६ । ९—१९) ।

कालका–महान् असुरकुलकी कन्या, कालकेयों अथवा कालकंजोंकी माता, इसकी अपने पुत्रोंके लिये तपस्या और ब्रह्माजीसे वरयाचना (अनु० १७३ । ७–११) ।

कालकाक्ष–एक दैत्य, जिसका गरुडद्वारा वध हुआ था (उद्योग०१०५ । १२) ।

कालकीर्ति–मयूरके छोटे भाई सुपर्णनामक असुरके अंशसे उत्पन्न एक क्षत्रिय राजा (आदि० ६७ । ३७) ।

कालकूट–(१) समुद्रसे प्रकट हुआ एक भयानक विष और इसका भगवान् शिवद्वारा पान (आदि० १८ । ४१–४३) । भीमसेनके भोजनमें दुर्योधनद्वारा कालकूट मिलाया गया था (आदि० १२७ । ४५–४८; वन० १२ । ८०) । (२) एक पर्वत, जो पत्नियोंसहित तपस्याके लिये जाते समय राजा पाण्डुको मार्गमें मिला था (आदि० ११८ । ४७-४८) । श्रीकृष्णको इन्द्रप्रस्थसे गिरिव्रज जाते समय मार्गमें कोई कालकूट पर्वत लाँघना पड़ा था (सभा० २० । २६-२७) । यहाँ दुर्योधनकी सेनाका पड़ाव पड़ा था (उद्योग० १९ । ३०) । (३) उत्तराखण्डमें कालकूट पर्वतके आसपासका प्रदेश, जिसे अर्जुनने उत्तर-दिग्विजयके समय जीता था (सभा० २६ । ४) ।

कालकेय (कालखंज)–(कालका अथवा) कालाके पुत्र, हिरण्यपुरनिवासी दानव । इसका अर्जुनके साथ युद्ध और उनके द्वारा इसका संहार (आदि० ६५ । ३५; वन० १७३ । १९–५५; उद्योग० १५८ । ३०; द्रोण० ५१ । १६; कर्ण० ७९ । ६२) । इन सबने वृत्रासुरकी अध्यक्षतामें देवताओंपर चढ़ाई की थी (वन० १०० । ३-४) ।

कालकोटि–नैमिषारण्यके अन्तर्गत एक प्राचीन तीर्थ (वन० ९५ । ३) ।

कालखंज (कालकंज)–असुरवंशकी कन्या कालकाके पुत्र कालकंज या कालखंज कहे गये हैं, ये ही कालकेय भी हैं, इनकी संख्या लाखोंके लगभग थी, इनकी माताने तपस्या करके इनके लिये एक विशाल हिरण्यपुर नामक नगर ब्रह्माजीसे प्राप्त किया था, जिसमें ये देवताओंसे अवध्य एवं सुरक्षित हो निवास करते थे (वन० १०३ । ७–१३) । ये वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते थे (सभा० ९ । १२) । इनके साथ अर्जुनका युद्ध और उनके द्वारा इन दानवोंका संहार (वन० १७३ अध्याय) । अर्जुनने इन्द्रकी आज्ञासे इनका वध किया था (विराट० ४९ । १०; विराट० ६१ । २५; उद्योग० ४९ । १४) । ये भगवान् विष्णुके चरणोंसे उत्पन्न कहे गये हैं (उद्योग० १०० । ५–६) ।

कालघट–एक वेदविद्याके पारंगत ब्राह्मण, जो जनमेजयके सर्पसत्रके सदस्य बने थे (आदि० ५३ । ८) ।

कालञ्जरगिरि–मेधाविक तीर्थका लोकविख्यात पर्वत, जहाँ देवहृदमें स्नानसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८५ । ५६) । इस तीर्थकी महिमाका वर्णन (अनु० २५ । ३५) ।

कालतीर्थ–अयोध्याका एक तीर्थ, जहाँ स्नानसे ग्यारह वृषभदानका फल प्राप्त होता है (वन० ८५ । ११) ।

कालतोयक–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४७) ।

कालद–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६३) ।

कालदन्तक (कालदन्त)–वासुकि-कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । ६) ।

कालनेमि–एक महाबली दानव, जो इस भूतलपर कंस नामसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ६७) ।

कालपथ–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५०) ।

कालपर्वत–(१) लङ्काके समीप समुद्रतटवर्ती एक पर्वत (वन० २७७ । ५४) । (२) एक पर्वत, जो स्वप्नमें श्रीकृष्णसहित शिवजीके पास जाते हुए अर्जुनको मार्गमें मिला था (द्रोण० ८० । ३१) ।

कालपृष्ठ–एक नाग, जो त्रिपुरविनाशके समय शिवजीके रथमें जुते हुए घोड़ोंके केसर बाँधनेके लिये रस्सी बनाया गया था (कर्ण० ३४ । २९–३०) ।

कालमुख–'कालमुख' नामवाली एक विशेष जातिके लोग, जो मनुष्य और राक्षस दोनोंके संयोगसे उत्पन्न हुए थे । सहदेवने दक्षिण-दिग्विजयके समय उन सबपर भी विजय प्राप्त की थी (सभा० ३१ । ६७) ।

कालयवन–एक असुरभावापन्न यवन, जो श्रीकृष्णद्वारा मारा गया था (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८२४, कालम २; द्रोण० ११ । १६–१८) । यह गर्गाचार्यके

तेजसे उत्पन्न एवं अत्यन्त शक्तिशाली असुर था (शान्ति० ३३९ । ९५)।

कालरात्रि–मृत्युकी रातकी अधिष्ठात्री, जिसे सौप्तिक-आक्रमणके समय पाण्डवपक्षके योद्धाओंने प्रत्यक्ष देखा था। उसके स्वरूपका वर्णन (सौप्तिक० ८ । ६९–८४)।

कालवेग–वासुकिकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । ६)।

कालशैल–उत्तराखण्डकी एक पर्वतमाला (वन० १३९ । १)।

काला–दक्ष प्रजापतिकी पुत्री, कश्यपकी पत्नी, कालकेय नामक असुरोंकी माता (आदि० ६५ । १२, ३४–३५)।

कालाप–एक धर्मज्ञ जितेन्द्रिय ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १८)।

कालाम्र–भद्राश्ववर्षके शिखरपर स्थित भद्रशालवनमें सुशोभित एक महान् वृक्ष, जो एक योजन ऊँचा है। उसमें सदा फल-फूल लगे रहते हैं। उसका रस पीकर भद्राश्व-वर्षके स्त्री-पुरुष सदा जवान बने रहते हैं और सिद्ध तथा चारण सदा उस वृक्षके आस-पास रहते हैं (भीष्म० ७ । १४–१८)।

कालिक–पूषाद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक, दूसरेका नाम 'पाणीतक' था (शल्य० ४५ । ४३–४४)।

कालिका–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १४)।

कालिकाश्रम–एक तीर्थ, जहाँ स्नान और तीन रात निवास करनेसे मनुष्य जन्म-मरणके चक्करसे छूट जाता है (अनु० २५ । २४)।

कालिकासंगम–एक तीर्थ, जिसमें स्नान करके तीन रात उपवास करनेवाला मानव सब पापोंसे छूट जाता है (वन० ८४ । १५६)।

कालिकेय–सुबलका पुत्र, जो अभिमन्युद्वारा निहत हुआ था (द्रोण० ४९ । ७)।

कालिङ्ग–कलिङ्ग देशका राजा श्रुतायुध, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होता था (सभा० ४ । २६)। इसीका नाम श्रुतायु भी था (सभा० ५१ । ७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)।

कालिन्दी–कलिन्दगिरिनन्दिनी यमुना। ये अन्य सरिताओं-के साथ स्वयं भी वरुणसभामें पदार्पण करती हैं (सभा० ९ । १८)। (विशेष देखिये यमुना)।

कालिय–एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । ६)। वृन्दावन-में कदम्बवनके पास जो ह्रद था, उसमें प्रवेश करके श्रीकृष्णने कालियनागके मस्तकपर नृत्यक्रीडा की और उसे अन्यत्र चले जानेका आदेश दिया (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८००, कालम १)।

काली–वेदव्यासकी माता सत्यवती (आदि० ६० । २)।

कालीयक–एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १०)।

कालेय–इसी नामसे प्रसिद्ध दैत्यगण (आदि० ६७ । ४७–५५)। इनके द्वारा वसिष्ठ, च्यवन, भरद्वाज आदि मुनियोंके आश्रमोंपर जाकर ऋषियोंका भक्षण (वन० १०२ । ३–६)। देवताओंद्वारा इनका वध (वन० १०५ । १०)। कुछ कालेय पातालमें भाग गये (वन० १०५ । १२)।

कालेहिका–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २३)।

कालोदक–एक तीर्थ जहाँ सौ योजन दूरसे आकर नहानेवाले मनुष्यकी भ्रूणहत्या दूर हो जाती है (अनु० २५ । ६०)। इसमें स्नानसे दीर्घायु प्राप्त होती है (शान्ति० १५२ । १२-१३)।

कावेरी–एक उत्तम तीर्थभूत नदी, जो वरुण-सभामें रहकर उनकी उपासना करती है (सभा० ९ । २०)। (यह दक्षिण भारतकी प्रसिद्ध नदी है। इसके तटपर श्रीरङ्गक्षेत्र, त्रिचनापल्ली तथा कुम्भकोणम् आदि प्रख्यात नगर एवं तीर्थ हैं।) इसमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८५ । २२)।

काव्य–प्रजापति कविके आठ वारुणसंज्ञक पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ८५ । १३३)।

काश–काशके अभिमानी देवता, जो यमकी सभामें धर्म-राजकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । ३२)।

काशि–(१) एक भारतीय जनपद (वर्तमान काशीराज्य तथा वाराणसीमण्डल)। जिसपर पाण्डुने विजय प्राप्त की थी (आदि० ११२ । २९; भीष्म० ९ । ५२)। भीमसेनने काशीमें उस देशके राजाकी कन्या बलन्धराके साथ ब्याह किया (आदि० ९५ । ७७)। भीमसेनने इसपर विजय प्राप्त की (सभा० ३० । ६; उद्योग० ५० । १९)। सहदेवने भी काशिदेशपर विजय पायी थी (उद्योग० ५० । ३१)। इस काशिदेशके महारथी राजा वाराणसीमें रहते थे और पाण्डवपक्षके योद्धा थे (उद्योग० ५० । ४१; उद्योग० १९६ । २)। अर्जुनने भी इस देशको जीतकर अपने वशमें किया था (आदि० १२२ । ४०)। श्रीकृष्णने इस देशको जीता था (द्रोण० ११ । १५)। कर्णने दुर्योधनके लिये इस देशको वशमें किया था (कर्ण० ८ । १९)। काशिदेशपर हर्यश्व राजा हुए, इनके बाद सुदेव, फिर दिवोदास (अनु० ३० ।

१२–१५; उद्योग० ११७ । १) । फिर वृषदर्भ उशीनर भी कभी वहाँके राजा हुए थे (अनु० ३२ । ९) । अम्बा-स्वयंवरके अवसरपर भीष्मने इस देशको जीता था (अनु० ४४ । ३८) । युधिष्ठिरके अश्वमेधका घोड़ा इस देशमें गया था (आश्व० ८३ । ४) । (२) काशीराज्य अथवा जनपदमें रहनेवाले लोग। काशिराज और काशिप्रदेशके योद्धा युधिष्ठिरकी सेनामें थे तथा भीष्मद्वारा मारे और घायल किये गये (भीष्म० १०६ । १८–२०) ।

काशिक–पाण्डवपक्षका एक उदार रथी (उद्योग० १७१ । १५) ।

काशिराज–काशिदेशके राजा, जो 'दीर्घजिह्व' नामक दानवके अंशसे उत्पन्न थे (आदि० ६७ । ४०) । ये युधिष्ठिरके बड़े प्रेमी थे । उपप्लव्य नगरमें अभिमन्युके विवाहमें एक अक्षौहिणी सेनाके साथ इनका शुभागमन हुआ था (विराट० ७२ । १६) । ये बड़े पराक्रमी थे और महाभारत-युद्धमें इन्होंने पाण्डवोंका पक्ष ग्रहण किया था (भीष्म० २५ । ५) ।

काशी–प्रजापति कविके पुत्र । आठ वारुणसंज्ञक पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ८५ । १३३) ।

काशीपुरी–वाराणसी नगरी, जिसे भगवान् श्रीकृष्णने जलाया था (उद्योग० ४८ । ७६) ।

काशीश्वरतीर्थ–कुरुक्षेत्रकी सीमामें अम्बुमती नदीके समीप स्थित एक तीर्थ, जिसमें स्नान करके मनुष्य सब रोगोंसे मुक्त और ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है (वन० ८३ । ५७) ।

काश्मीर (**काश्मीरक**)–एक भारतीय जनपद तथा यहाँके निवासी, दिग्विजयके समय इसे अर्जुनने जीता था (सभा० २७ । १७; भीष्म० ९ । ५३—६७) । इस देशके निवासी राजा युधिष्ठिरके लिये भेंट लाये थे (सभा० ३४ । १२; सभा० ५२ । १४; वन० ५१ । २६) । श्रीकृष्णने भी काश्मीरवासियोंको परास्त किया था (द्रोण० ११ । १६) । परशुरामजीने इन्हें परास्त किया था (द्रोण० ७० । ११) ।

काश्मीरमण्डल–पुण्यमय काश्मीर-प्रदेशका वह स्थान, जहाँ उत्तरके समस्त ऋषि, नहुषकुमार ययाति, अग्नि और काश्यपका संवाद हुआ था (वन० १३० । १०-११) । काश्मीरमण्डलकी चन्द्रभागा (चनाब) और वितस्ता (झेलम) में सात दिन स्नान करनेसे मनुष्य मुनिके समान निर्मल हो जाता है । काश्मीरमण्डलकी जो नदियाँ महानद सिन्धुमें गिरती हैं, उनमें तथा सिन्धुमें स्नान करके मनुष्य मृत्युके पश्चात् स्वर्गगामी होता है (अनु० २५ । ७-८) ।

काश्य–(१) काशीके एक राजा, जो अम्बा, अम्बिका और अम्बालिकाके पिता थे तथा जिनकी उक्त तीनों कन्याओंका भीष्मने अपहरण किया था (आदि० १०२ । ५६, ६४-६५) । (२) काशिराज जो युधिष्ठिरके समय विद्यमान थे और जिन्होंने राजसूय-यज्ञमें युधिष्ठिरके अभिषेकके समय उन्हें धनुष अर्पण किया था (सभा० ५३ । ९) । काश्य तथा अन्य राजाओंके दिये हुए धनको युधिष्ठिर जूएमें हार गये (सभा० ६८ । २) । इन्हें पाण्डवोंकी ओरसे रण-निमन्त्रण भेजा गया था (उद्योग० ४ । १९) । काश्यके पुत्रका नाम अभिभू था (उद्योग० १५१ । ६३; भीष्म० ९३ । १३) । उत्तम रथी नरश्रेष्ठ काश्य (या काशिराज) भीष्म और द्रोणके समान पराक्रमी थे (उद्योग० १७१ । २२) । काश्यका नाम 'सेनाविन्दु' और 'क्रोधहन्ता' था (उद्योग० १७१ । २०–२२) । पाण्डव-सेनाके महाधनुर्धर शूरवीरोंमें काश्य (काशिराज) भी हैं । इन्होंने भी सबके साथ शङ्खनाद किया था (भीष्म० २५ । १७) । धृतराष्ट्रपुत्र जयके साथ इनका युद्ध (द्रोण० २५ । ४५) । वसुदानके पुत्रद्वारा काशिराज (कुमार) अभिभूके वधकी चर्चा (कर्ण० ६ । २३–२४) । (२) एक प्राचीन ऋषि, जो शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीके पास पधारे थे (शान्ति० ४७ । १०) ।

काश्यप–(१) एक प्रसिद्ध मन्त्रवेत्ता ब्राह्मण, जो सर्प-दंशनसे पीड़ित हुए परीक्षित्के प्राण बचानेके लिये आ रहे थे (आदि० ४२ । ३३) । हस्तिनापुर जाते समय इनका मार्गमें तक्षकसे भेंट और तक्षकके डँसनेसे भस्म हुए वृक्षको मन्त्रबलसे पुनः पूर्ववत् हरा-भरा कर देना (आदि० ४२ । ३३ से ४३ । १० तक) । इनका तक्षकसे वार्तालाप करना और उससे यथेष्ट धन पाकर लौट जाना (आदि० ५० । १९–२७) । (२) वसुदेवजीके पुरोहित, जिन्होंने पाण्डवोंके गर्भाधानसे लेकर चूडाकरणतक सारे संस्कार कराये (आदि० १२३ । ३१ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । इनके द्वारा पाण्डुका अन्त्येष्टि-संस्कार सम्पन्न कराया गया (आदि० १२४ । ३१ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । युधिष्ठिरका आदर करनेवाले ऋषियोंमें ये भी थे (वन० २६ । २३) । सिद्ध महर्षिके साथ इनका संवाद (आश्व० १६ । १९ से आश्व० १९ । ५३ तक) । (३) इन्द्रकी सभामें विराजमान होनेवाले एक ऋषि, जो कश्यपके पुत्र हैं (सभा० ७ । १७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । परम धर्मात्मा काश्यपने पृथुके यज्ञमें सदस्यता ग्रहण की थी और अत्रि तथा गौतमके विवादको सभामें उपस्थित किया था (वन० १८५ । २१) । कश्यपपुत्र विभाण्डक, राजधर्मा,

विश्वावसु, इन्द्र, आदित्य, वसु, अन्य देवता तथा कश्यप-कुलमें उत्पन्न समस्त प्रजा काश्यप कही गयी है। (४) कश्यपपुत्र काश्यप नामक अग्नि। यह उन पाँच अग्नियोंमेंसे एक हैं, जिन्होंने तीव्र तपस्या करके पाञ्चजन्यको उत्पन्न किया था (वन० २२० । १–५)। महत्तर नामक अग्नि, जो काश्यपके अंशसे प्रकट हुए थे, वे भी काश्यप कहलाये। इन्हें पाञ्चजन्यने पितरोंके लिये उत्पन्न किया था (वन० २२० । ९)। (५) एक ऋषि-कुमार, जो एक वैश्यके रथके धक्केसे गिरकर आत्महत्या करनेको उद्यत हो गये। शृगालरूपधारी इन्द्रके साथ उनका संवाद (शान्ति० १८० । ६)।

काश्यपद्वीप–एक द्वीप, जो चन्द्रमामें प्रतिबिम्बित खरगोश-की आकृतिमें एक कानके रूपमें दृष्टिगोचर होता है (भीष्म० ६ । ५५)।

काष्ठा–कालपरिमाण (शल्य० ४५ । १५)।

किंजप्य–कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक तीर्थ, जहाँ स्नान और जप करनेसे असीम फल प्राप्त होता है (वन० ८३।७९)।

किंदत्तकूप–एक कूपमय तीर्थ, जहाँ सेरभर तिल दान करनेसे मनुष्य तीनों ऋणोंसे मुक्त होता है (वन० ८३ । ९८)।

किंदम–एक ऋषि, मृगीरूपधारिणी पत्नीके साथ मृगरूप धारण करके मैथुन करते समय इनका पाण्डुके बाणोंसे घायल होना (आदि० ११७ । ६–७)। बाणकी चोट खानेपर इनका मानव-वाणीमें विलाप (वन० ११७ । ८–११)। इनका पाण्डुके साथ संवाद (वन० ११७ । १२–२९)। इनके द्वारा राजा पाण्डुको शाप (वन० ११७ । ३०–३३)। इनका प्राणत्याग (वन० ११७ । ३४)।

किंदान–कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक तीर्थ, जहाँ स्नान और दान करनेसे उसका असीम फल प्राप्त होता है (वन० ८३ । ७९)।

किङ्कर–(१) एक राक्षस, जिसने विश्वामित्रकी प्रेरणासे शापग्रस्त राजा कल्माषपादके शरीरमें प्रवेश किया था (आदि० १७५ । २१)। विश्वामित्रकी प्रेरणासे इसके द्वारा वसिष्ठके समस्त पुत्रोंका संहार (आदि० १७५ । ४१)। (२) राक्षसोंकी एक जाति या वर्ग, जो मयासुरकी आज्ञाके अनुसार आठ हजारकी संख्यामें उपस्थित हो युधिष्ठिरके मयनिर्मित सभाभवनकी रक्षा करते और उसे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर उठाकर ले जाते थे (सभा० ३ । २८; सभा० ४८ । ९)। युधिष्ठिरने धन लानेके लिये हिमालयपर जानेके बाद वहाँ किङ्कर नामक राक्षसोंको भेंट पूजा दी थी (आश्व० ६५ । ६)। (३) यमराजके दण्डका नाम। वे अन्तकालमें इससे प्राणियोंका संहार करते हैं (कर्ण० ५६ । १२०)।

किङ्किणीकाश्रम–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे स्वर्गलोक-की प्राप्ति होती है (अनु० २५ । २३)।

कितव–एक प्राचीन जातिके लोग, जो नाना प्रकारकी भेंट-सामग्री लेकर राजा युधिष्ठिरके यहाँ आये थे (सभा० ५१ । १२)।

किन्नर–गन्धर्वविशेष (सभा० १० । १४)।

किम्पुना–एक तीर्थस्वरूपा पवित्र नदी, जो वरुणकी सभामें रहकर उनकी उपासना करती है (सभा० ९।२०)।

किम्पुरुष–(१) धवलगिरिसे आगे हिमालयके उत्तर भागमें विद्यमान एक देश, जो द्रुमपुत्रसे सुरक्षित था। इसे अर्जुनने जीता था (सभा० २८ । १–२)। (२) एक जाति, जो पुलहकी संतान हैं (आदि० ६६ । ८)। किम्पुरुषोंने समुद्रपानका अद्भुत दृश्य देखनेके लिये अगस्त्यजीका अनुसरण किया था (वन० १०४ । २१)। कुबेरके क्रीडास्थलरूप सरोवरकी रक्षामें किम्पुरुष भी तत्पर रहते थे (वन० १५३ । ९)। कुबेर लंका छोड़कर किम्पुरुषोंके साथ गन्धमादनपर आकर रहने लगे (वन० २७५ । ३३)। ये दक्ष-कन्याओंकी संतति हैं (शान्ति० २०७ । २५)। युधिष्ठिरके अश्वमेधयज्ञमें किम्पुरुष भी थे (आश्व० ८८ । ३७)। (३) जम्बूद्वीपका एक खण्ड, जिसे किम्पुरुषवर्ष एवं हैमवत भी कहते हैं। शुकदेवजी इसे लाँघकर भारतवर्षमें पहुँचे थे (शान्ति० ३२५ । १३–१४)।

किरात–एक भारतीय जनपद (भीष्म० २ । ५१, ५७)।

किरीटी–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७१)।

किर्मीर–एक राक्षस, जो नरकासुरका भ्राता और काम्यक-वनका रहनेवाला था। इसका भीमसेनसे युद्ध (वन० ११ । ४४–६४)। भीमसेनद्वारा इसका वध (वन० ११ । ६७)।

किर्मीरवधपर्व–वनपर्वके एक अवान्तर पर्वका नाम (वन-पर्वका ग्यारहवाँ अध्याय)।

किष्किन्धागुहा–दक्षिण भारतमें धारवाड़ जिलेका एक पर्वतीय स्थान, जहाँ प्राचीन कालमें वानरराज वालि-सुग्रीव रहा करते थे। यहाँ सहदेवने मैन्द और द्विविदको जीता था (सभा० ३१ । १७)। इसी किष्किन्धामें श्रीरामने वालीको मारा और सुग्रीवको वहाँका स्वामी बनाया (वन० २८० । १५–३९)।

कीचक–मत्स्यनरेश विराटका साला और सेनापति एक महाबली वीर, जो द्रौपदीको देखकर काममोहित हो

गया था (विराट० १४ । ४–१०; विराट० १८ । ७)। यह रानी सुदेष्णाका भाई था (विराट० १५ । ७; विराट० २१ । २९)। यह 'सूतपुत्र' कहा जाता था (विराट० १४ । ४७)। कालेय नामक दैत्योंमें सबसे बड़ा जो 'बाण' था, वही कीचकरूपमें उत्पन्न हुआ था। इसके छोटे भाई भी कालेय ही थे (विराट० १६ अध्यायमें पृष्ठ १८९३)। इसके छोटे भाई एक सौ पाँच थे, जो उपकीचक कहलाते थे। वे सभी भीमसेन-के द्वारा मारे गये थे (विराट० २३ । ३२-३३)। सूतराज केकयकी बड़ी रानी मालवीके गर्भसे कीचक और इसके भाई उत्पन्न हुए (विराट० १६ अध्यायमें दा० पाठ, पृष्ठ १८९३)। इसका सुदेष्णासे द्रौपदीका परिचय पूछना (विराट० १४ । ७–२३)। द्रौपदीसे प्रेम-याचना करना (विराट० १४ । ४०–४५)। द्रौपदी-को प्राप्त करनेके लिये इसका सुदेष्णासे अनुरोध (विराट० १५। २)। द्रौपदीका केश पकड़ना और उसे लात मारना (विराट० १६ । १०)। संकेतानुसार द्रौपदीसे मिलनेके लिये इसका रातके समय नृत्यशालामें जाना (विराट० २२ । ४०)। वहीं रातहीमें भीमसेनके साथ युद्ध और उनके द्वारा इसका वध (विराट० २२ । ५२–८२)। इसने अपने जीवनमें त्रिगर्तराज सुशर्माको बारंबार हराया था (विराट० २५ और ३० अध्याय)।

कीचकवधपर्व–विराटपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १४ से २४ तक)।

कीटक–क्रोधवशसंज्ञक दैत्योंके अंशसे उत्पन्न एक राजा (आदि० ६७ । ६०)।

कीर्ति–दक्ष प्रजापतिकी एक पुत्री और धर्मराजकी स्त्री (आदि० ६६ । १४)। कीर्तिकी अधिष्ठात्री देवी (वन० ३७ । ३३)।

कीर्तिधर्मा–युधिष्ठिरका सम्बन्धी और सहायक क्षत्रिय वीर (द्रोण० १५८ । ३९)।

कीर्तिमान्–(१) नारायणके मानसिक पुत्र विरजाके आत्मज, जो पाँचों विषयोंसे ऊपर उठकर मोक्षमार्गका अवलम्बन करने लगे (शान्ति० ५९ । ९०)। (२) एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३१)।

कुकुण–एक कश्यपवंशी नाग (उद्योग० १०३ । १०)।

कुकुर–(१) यदुवंशी 'कुकुर' नामक नरेशसे प्रचलित हुई वंशपरम्परा । इस वंशके क्षत्रिय भगवान् श्रीकृष्ण-की आज्ञाके अनुसार चलकर शत्रुओंको बंदी बनाते और मित्रोंको आनन्दित करते थे (उद्योग० २८ । ११)। कुकुर और अन्धकवंशके लोग मौसल–युद्धमें परस्पर जूझते हुए एक-दूसरेपर मतवाले होकर टूटते थे (मौसल० ३ । ४२)। (२) एक कश्यपवंशी नाग (उद्योग० १०३ । १०)। (३) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६०)।

कुक्कुटिका–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (भीष्म० ४६ । १५)।

कुक्कुर–(१) एक धर्मज्ञ, जितेन्द्रिय ऋषि, जो युधिष्ठिर-की सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १८)। (२) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४२)।

कुक्षि–(१) एक सुप्रसिद्ध दानवराज, जो मेरुगिरिके समान तेजस्वी और विशाल 'पार्वतीय' नामक राजा हुआ (आदि० ६७ । ५६) । (२) रैभ्यका पुत्र, जो शुद्ध, सुव्रत और धर्मात्मा दिक्पाल था (शान्ति० ३४८ । ४२-४३)।

कुञ्जर–(१) एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १५)। सौवीर देशका एक राजकुमार, जो जयद्रथका अनुगामी था (वन० २६५ । १०) । अर्जुनद्वारा इसका वध (वन० २७१ । २७)।

कुञ्जल–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७६)।

कुठर–एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १५)। बलराम-जीके नागरूपमें समुद्रकी ओर पधारते समय उनके स्वागतमें यह भी आया था (मौसल० ४ । १५)।

कुठार–धृतराष्ट्रकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । १५)।

कुणिगर्ग–एक महायशस्वी और शक्तिशाली ऋषि, जिनकी कन्या ब्याह न करके तपस्यामें संलग्न हो वृद्ध हो गयी और अन्तमें अपनी तपस्याका आधा भाग देकर उसने एक ऋषिके साथ अपना विवाह-संस्कार सम्पन्न किया (शल्य० ५२ । ३)।

कुणिन्द–एक द्विज-मुख्य (ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय नरेश), जिन्होंने राजसूय यज्ञमें युधिष्ठिरको दिव्य शङ्खकी भेंट दी थी (सभा० ५१ । ७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)।

कुण्ड–'कुण्ड' नामवाले एक विद्वान् ब्राह्मण ऋषि, जो जनमेजयके सर्पसत्रके सदस्य हुए थे (आदि० ५३ । ८)।

कुण्डज (कुण्डभेदि)–धृतराष्ट्रका पुत्र (आदि० ६७। १०५) । भीमसेनद्वारा 'कुण्डभेदि' नामसे इसका वध (भीष्म० ९६ । २६)।

कुण्डधार–(१) धृतराष्ट्रका एक पुत्र, भीमसेनद्वारा इसका वध, इसका दूसरा नाम कुण्डोदर था (भीष्म० ८८ । २३)। (२)वरुणकी सभामें उपस्थित होनेवाला

एक नाग (सभा० ९ । ९) । (३) एक मेघ, अपने भक्त ब्राह्मणके लिये यक्षराज मणिभद्रसे इसकी प्रार्थना (शान्ति० २७१ । १९–२०) । ब्राह्मणके लिये धर्मका वरदान दिलाना (शान्ति० २७१ । २४–२६) । तपःसिद्ध हुए ब्राह्मणसे मिलकर अन्तर्धान होना (शान्ति० २७१ । ५२) ।

कुण्डभेदी–धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ६७ । १०४) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १२७ । ६०) ।

कुण्डल–(१) कौरवकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । १३) । (२) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६३) ।

कुण्डलाहरणपर्व–वनवासके एक अवान्तर पर्वका नाम (अध्याय ३०० से ३१० तक) ।

कुण्डली–(१) गरुडकी संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । ९) । (२) एक नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । २१) । (३) धृतराष्ट्रका एक पुत्र, इसका दूसरा नाम 'कुण्डाशी' था (यह नाम आदि० ६७ । ९७ में आया है) । भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ९६ । २४) । (४) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । ११०) ।

कुण्डारिका–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १५) ।

कुण्डाशी–धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ११६ । १४) । 'कुण्डली' नामसे भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ९६ । २४) ।

कुण्डिक–सोमवंशी महाराज कुरुके प्रपौत्र एवं धृतराष्ट्रके प्रथम पुत्र (आदि० ९४ । ५८) ।

कुण्डिन–(१) पूरुवंशी महाराज कुरुके प्रपौत्र एवं धृतराष्ट्रके पञ्चम पुत्र (आदि० ९४ । ५८) । (२) 'कुण्डिन' नामसे प्रसिद्ध पुर या नगर, जो विदर्भदेशकी राजधानी था (वन० ६०, ७३, ७७ अ० में; उद्योग० १५८ अ० में) ।

कुण्डीविष–एक भारतीय जनपद(भीष्म० ५० । ५०) ।

कुण्डीवृष–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ५६ । ९) ।

कुण्डोदपर्वत–एक तीर्थभूत पर्वत, जहाँ राजा नलको जल और शान्ति मिली (वन० ८७ । २५) ।

कुण्डोदर–(१) एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १६) । (२) धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० (६७ । ९७) । 'कुण्डधार' नामसे भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ८८ । २३) । (३) पूरुवंशी महाराज कुरुके पौत्र एवं जनमेजयके छठे पुत्र (आदि० ९४ । ५५) ।

कुतप–श्राद्धमें प्रशस्तकाल (दिनके आठवें भागमें जब सूर्यका ताप घटने लग जाता है, उस समयका नाम कुतप है । उसमें पितरोंके लिये दिया हुआ दान अक्षय होता है (आदि० ९३ । १३ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । (यह काल बारह बजेके बाद आता है ।)

कुनदीक–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५८) ।

कुन्तल–(१) दक्षिण भारतीय कुन्तल जनपदके निवासी (सभा०३४ । ११; उद्योग० १४० । २६) । कुन्तलदेशीय योद्धा (भीष्म० ५१ । १२; कर्ण० २० । १०) । (२) दक्षिण भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५२–५९) ।

कुन्ति–(१) कुन्ति देशके निवासी राजा और योद्धा (सभा० १४ । २६) । (२) एक भारतीय जनपद (सभा० १४ । २७; भीष्म० ९ । ४०–४३) ।

कुन्तिभोज–(१) एक क्षत्रिय राजा, जो शूरसेनके फुफेरे भाई थे (आदि० ६७ । १३०) । शूरसेनद्वारा इनके लिये अपनी पुत्री पृथाको गोद देना (आदि० ६७ । १३१) । सहदेवद्वारा दक्षिण-दिग्विजयके समय उनपर आक्रमण और इनका सहर्ष उनके शासनको स्वीकार करना (सभा० ३१ । ६) । ये युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें पधारे थे (सभा० ३४ । १२) । इनका दुर्वासाकी सेवाके लिये अपनी पुत्री कुन्तीको उपदेश (वन० ३०३ । १३–२९) । (२) कुन्तिभोजके पुत्र भी इसी नामसे प्रसिद्ध थे; इनका दूसरा भाई पुरुजित् था । ये दोनों पाण्डवोंके मामा थे (कर्ण० ६ । २२) । महाभारत प्रथम दिनके युद्धमें कुन्तिभोज और इनके पुत्रका विन्द और अनुविन्दके साथ युद्ध (भीष्म० ४५ । ७२–७६) । धृष्टद्युम्ननिर्मित क्रौञ्चव्यूहमें नेत्रके स्थानमें कुन्तिभोज और शैव्य खड़े किये गये थे (भीष्म० ५० । ४७) । मकरव्यूहमें कुन्तिभोज और शतानीक पैरोंके स्थानमें खड़े थे (भीष्म० ७५ । ११) । इनके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ४६) । अलम्बुषके साथ युद्ध (द्रोण० १६ । १८३) । अश्वत्थामाद्वारा इनके दस पुत्र मारे गये (द्रोण० ९६ । १८–२०) । अर्जुनके मामा कुन्तिभोज और पुरुजित्के द्रोणद्वारा मारे जानेकी चर्चा (कर्ण० ६ । १२) ।

कुन्ती–शूरसेनकी पुत्री, राजा कुन्तिभोजकी (दत्तक) कन्या पृथा (आदि० ६३ । ९८; आदि० १०९ । ५) । ये सिद्धि नामक देवीके अंशसे उत्पन्न हुई थीं (आदि० ६७ । १६०) । शूरसेनद्वारा इनका कुन्तिभोजके लिये गोदरूपमें दान (आदि० ११० । ३) । पिता कुन्तिभोजके घरमें देवताओं तथा अतिथियोंकी पूजा-सत्कारके लिये इनकी नियुक्ति (आदि० ११० । ४) ।

इनके द्वारा महर्षि दुर्वासाकी परिचर्या एवं संतुष्ट हुए महर्षिद्वारा इनको मन्त्रका उपदेश (आदि० ६७। १३३-१३४; आदि० ११० । ६) । कौतूहलवश इनके द्वारा सूर्यका आवाहन (आदि० ६७। १३६; आदि० ११० । ८) सूर्यद्वारा इनको अपने साथ समागमके लिये आदेश (आदि० ११० । १३)। इनका सूर्यसे क्षमायाचना करते हुए उनके प्रस्तावको अस्वीकार करना (आदि० ११० । ११-१६)। दोषोंके अस्पर्शका आश्वासन एवं दिव्यपुत्रका प्रलोभन देकर इनके साथ सूर्यका समागम (आदि० ११०। १६-१८)। इनके गर्भसे कर्णका जन्म (आदि० ६७। १३७; आदि० ११० । १८) । सूर्यदेवका इनको पुनः कन्यात्व प्रदान करना (आदि० ११० । २०)। माता-पिता आदि बान्धवोंके भयसे इनके द्वारा नवजात शिशुका जलमें परित्याग (आदि० ६७ । १३९; आदि० ११० । २२) इनके द्वारा स्वयंवरमें पाण्डुका वरण और पिताद्वारा इनका विधिपूर्वक पाण्डुके साथ विवाह (आदि० १११ । ८-९) । संन्यासके लिये कृतसंकल्प हुए पाण्डुसे वानप्रस्थाश्रममें रहनेके लिये इनका हठ (आदि० ११८ । २७-३०) । इनको किसी श्रेष्ठ पुरुषके सम्पर्कसे पुत्रोत्पादन करनेके लिये पाण्डुका आदेश (आदि० ११९ । ३७) । परपुरुषसे संतानोत्पादनके विषयमें इनका विरोध तथा व्युषिताश्व एवं भद्राका उदाहरण देकर अपने मानसिक संकल्पसे ही पुत्रोत्पादनके लिये पाण्डुसे इनकी प्रार्थना (आदि० १२० । १—३७) । इनका दुर्वासासे प्राप्त हुए मन्त्रकी महिमा बताकर किसी देवताके आवाहनके लिये पाण्डुसे आज्ञा माँगना (आदि० १२१ । १०–१६) । धर्मराजके आवाहनके लिये इनको पाण्डुका आदेश (आदि० १२१ । १७–२०) । इनके द्वारा धर्मका आवाहन और उनके द्वारा इनके गर्भसे युधिष्ठिरका जन्म (आदि० १२२ । ७) । वायुदेवका आवाहन और उनके द्वारा इनके गर्भसे भीमकी उत्पत्ति (आदि० १२२ । १४) । इन्द्रका आवाहन और उनके द्वारा इनके गर्भसे अर्जुनका जन्म (आदि० १२२ । ३५) । इनके द्वारा तीनसे अधिक संतानोत्पादनका निषेध (आदि० १२२ । ७७-७८) । माद्रीके गर्भसे पुत्रकी उत्पत्तिके लिये इनसे पाण्डुका आग्रह (आदि० १२३ । ९—३४) । इनकी कृपासे माद्रीको पुत्रलाभ (आदि० १२३ । १५-१६) । पाण्डुके निधनपर इनका करुण विलाप (आदि० १२४ । १६–२३) । कुन्तीका मूर्च्छित होकर गिरना, माद्रीके उठानेपर विलाप करना तथा शतशृङ्गनिवासी ऋषियोंद्वारा इनको आश्वासन (आदि० १२४ । २२ के बाद दा० पाठ) । पतिके साथ सती होनेके लिये इनका माद्रीसे अनुरोध (आदि० १२४ । २३-२४) । बच्चोंकी रक्षाके हेतु सती न होनेके लिये इनसे माद्रीकी प्रार्थना (आदि० १२४ । २८) । पाण्डवोंके अल्पवयस्क होनेके कारण इनसे सती न होनेके लिये शतशृङ्गनिवासी ऋषियोंका अनुरोध, पतिके शवके साथ चितारोहणके लिये इनसे माद्रीका आज्ञा माँगना (आदि० १२४ । २८ के बाद दा० पाठ) । माद्रीको सती होनेके लिये इनकी आज्ञा (आदि० १२४ । २९) । ऋषियोंका कुन्ती और पाण्डवोंको लेकर हस्तिनापुर जाना (आदि० १२५ अ०) भीमके नागलोक चले जानेपर इनकी चिन्ता तथा विदुरद्वारा इनको आश्वासन (आदि० १२८ । ११—१८) । रङ्गभूमिमें कर्ण और अर्जुनके युद्धके लिये उद्यत होनेपर इनकी मूर्च्छा तथा विदुरद्वारा इनको आश्वासन (आदि० १३५ । २७-२८) । कुन्तीसहित पाण्डवोंकी वारणावतयात्रा (आदि० १४४ अ०) । इनके सहित पाण्डवोंका लाक्षागृहसे निकल जाना (आदि० १४७ अ०) । अधिक थक जानेके कारण माता कुन्तीको भीमसेनका अपनी पीठपर बिठाकर ले जाना (आदि० १४७ । २०-२१) । भीमको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये इनसे हिडिम्बाकी प्रार्थना (आदि० १५४ । ४–१५) । हिडिम्बाकी मनोरथपूर्तिके लिये उनका युधिष्ठिरसे अनुरोध (आदि० १५४ । १५ के बाद दा० पाठ) । कामपीड़ित हिडिम्बाको पुत्रदान करनेके लिये इनका भीमको आदेश (आदि० १५४ । १८ के बाद दा० पाठ) । एकचक्रा नगरीके समीप इनको व्यासका आश्वासन (आदि० १५५ । १२) । इनका ब्राह्मण-परिवारके विषयमें भीमसेनसे वार्तालाप (आदि० १५६ । ११–१५) । ब्राह्मणद्वारा इनसे बकासुरके वृत्तान्तका कथन (आदि० १५९ । २–१७) । ब्राह्मण-परिवारको इनका आश्वासन (आदि० १६० । १–३) । भीमद्वारा बकवध-वृत्तान्तको गुप्त रखनेके लिये इनका ब्राह्मणसे अनुरोध (आदि० १६० । १६-१७) । ब्राह्मण-परिवारको दुःखसे मुक्त करने एवं अत्याचारी बकासुरके विनाशके लिये इनका भीमको आदेश (आदि० १६० । २०) । इनके इस आदेशका युधिष्ठिरद्वारा प्रतिवाद (आदि० १६१ । ५) । युधिष्ठिरके प्रति इनके द्वारा कृतज्ञताकी प्रशंसा (आदि० १६१ । १४) । इनके द्वारा युधिष्ठिरके प्रति भीमके बाहुबलकी श्रेष्ठताका प्रतिपादन (आदि० १६१ । १५–१८) । इनको पुत्रोंसहित पाञ्चालदेश जानेके लिये आगन्तुक ब्राह्मणकी प्रेरणा (आदि० १६६ । ५६ के बाद दा० पाठ) । पाञ्चालदेश चलनेके लिये इनका युधिष्ठिरको परामर्श

(आदि० १६७ । ८) । इनके द्वारा द्रौपदीरूप भिक्षाका मिलकर उपभोग करनेके लिये पाण्डवोंको उपदेश (आदि० १९० । २) । द्रुपदके रनिवासमें इनका सम्मान (आदि० १९३ । ९) । व्यासजीके पूछनेपर द्रौपदीके विवाहके सम्बन्धमें इनका निर्णय (आदि० १९५ । १८) । इनके द्वारा द्रौपदीको आशीर्वाद एवं शिक्षा (आदि० १९८ । ४) । विदुरका द्रुपदके भवनमें आकर कुन्ती, द्रौपदी तथा पाण्डवोंके लिये नाना प्रकारके रत्न और धन भेंट करना (आदि० २०५ । १४) विदुरजीका महलमें जाकर कुन्तीके चरणोंमें प्रणाम करना । कुन्तीका 'किसी तरह मेरे पुत्रोंके प्राण बचे हैं' ऐसा कहकर दुःख प्रकट करना, विदुरजीको ही उनके जीवनका रक्षक बताकर उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना और भविष्यमें क्या होगा—इसके लिये शोकाकुल होना । विदुरका उन्हें पुनः आश्वासन देना और उन सबको साथ लेकर हस्तिनापुर जाना (आदि० २०६ । ९ के बाद दा० पाठसहित ११ तक) । गान्धारीका कुन्ती और द्रौपदीको राजा पाण्डुके महलमें ठहरानेके लिये विदुरको आदेश देना (आदि० २०६ । २२ के बाद दाक्षि० पाठ) । इन्द्रप्रस्थमें श्रीकृष्णका कुन्तीसे जानेके लिये विदा माँगना और कुन्तीका उन्हींको अपना तथा अपने पुत्रोंका रक्षक बताकर सदा सुधि बनाये रखनेके लिये उनसे प्रार्थना करना (आदि० २०६ । ५१ के बाद दा० पाठ) । अर्जुनका सुभद्रासहित आकर माता कुन्तीको प्रणाम करना । कुन्तीका सुभद्राको हृदयसे लगाकर उसका मस्तक सूँघना (आदि० २२० । १४–२१) । विदुरका कुन्तीको अपने घरमें रखनेके लिये पाण्डवोंसे कहना और पाण्डवोंका उनके अनुरोधको स्वीकार करना (सभा० ७८ । ५–८) । द्रौपदीका कुन्तीसे वनगमनके लिये विदा लेना और कुन्तीका उसे आश्वासन देते हुए जानेकी आज्ञा तथा कर्तव्यका उपदेश दे स्वयं भी पुत्रोंके पीछे विलाप करती हुई जाना (सभा० ७९ । १–२९) । विदुरका कुन्तीको आश्वासन देना (सभा० ७९ । ३१) । कुन्तीका दुर्वासाकी सेवाके लिये उद्यत होना (वन० ३०४ । १–११) । इनकी सेवासे प्रसन्न होकर दुर्वासाका इन्हें मन्त्र प्रदान करना (वन० ३०५ । २०) । इनके द्वारा सूर्यदेवका आवाहन (वन० ३०६ । ७) । इनकी सूर्यदेवसे कवच-कुण्डलविभूषित पुत्रकी माँग (वन० ३०७ । १७) । इनका नवजात शिशुको पिटारीमें रखकर नदीमें छोड़ देना (वन० ३०८ । २२) । श्रीकृष्णके मिलनेपर उनसे पाण्डवोंका समाचार पूछकर इनका विलाप करना (उद्योग० ९० । ५–९०) । श्रीकृष्णद्वारा पाण्डवोंको उत्साहवर्धक संदेश देना और विदुलोपाख्यान सुनाकर उन्हें युद्धके लिये उत्तेजित करना (उद्योग० १३२ । ५ से उद्योग० १३७ । २३ तक) । विदुरकी बातोंसे चिन्तित होकर इनका कर्णके पास जाना (उद्योग० १४४ । २६) । कर्णको अपना प्रथम पुत्र बताते हुए उसे पाण्डवपक्षमें मिल जानेके लिये प्रेरित करना (उद्योग० १४५ अध्याय) । कुन्तीका पाण्डवोंसे मिलना और द्रौपदीको आश्वासन देना (स्त्री० १५ । ३३–३८) । कर्णको भी जलाञ्जलि देनेके लिये कहना और पाण्डवोंके सामने कर्णका अपने गर्भसे जन्म लेनेका रहस्य प्रकट करना (स्त्री० २७ । ७–१३) । कर्णके लिये चिन्तित युधिष्ठिरको समझाना (शान्ति० ६ । ४–८) । इनके द्वारा अभिमन्युवधके शोकसे पीड़ित सुभद्रा और उत्तराको आश्वासन (आश्व० ६१ । ३३–४०) । इनकी उत्तराके मृत बालकको जिलानेके लिये श्रीकृष्णसे प्रार्थना (आश्व० ६६ । १४–२६) । इनके द्वारा गान्धारीकी सेवा (आश्रम० १ । २३-२४) । वनमें जाती हुई गान्धारी तथा धृतराष्ट्रके साथ इनका भी जाना । ये आगे-आगे गान्धारीका हाथ पकड़े जाती थीं (आश्रम० १५ । १–९) । पाण्डवोंके अनुरोध करनेपर भी कुन्तीका वनमें जानेसे न रुकना । युधिष्ठिरका सहदेवका ख्याल रखने, कर्णको याद रखने तथा द्रौपदी एवं भीमसेन आदिका भी प्रिय करनेका आदेश देना (आश्रम० १६ । ७–१६) । युधिष्ठिर आदि पुत्रोंका लौट चलनेके लिये अत्यन्त आग्रह तथा द्रौपदी और सुभद्राका अपने पीछे-पीछे आना देखकर आँसू पोंछती हुई कुन्तीका पाण्डवोंको उनके अनुरोधका उत्तर देना (आश्रम० १६ । १७ से १७ अध्यायतक) । धृतराष्ट्र और गान्धारीके समझानेपर भी कुन्तीका न लौटना तथा गान्धारी और धृतराष्ट्र आदिके साथ उनका गङ्गातटपर निवास (आश्रम० १८ । ४–१६) । वनमें कुन्तीके पास उनके पुत्रोंका आना । कुन्तीका रोते हुए सहदेवको हृदयसे लगा लेना (आश्रम० २४ । ७–१०) । कुन्तीका उन पुत्रहीन दम्पतिको अपने साथ खींचकर लाना (आश्रम० २४ । १२) । कुन्तीका व्यासजीसे कर्णके जन्मका गुप्त रहस्य बताकर अपने उस पुत्रके दर्शनकी इच्छा प्रकट करना (आश्रम० २९ । ४९ से ३० । १८ तक) । युधिष्ठिर और सहदेवका कुन्तीसे उनकी सेवाके लिये वनमें रहनेकी इच्छा प्रकट करना और कुन्तीका उन्हें हृदयसे लगाकर तपस्यामें विघ्न न पड़े, इसके लिये लौट जानेका आदेश देना (आश्रम० ३६ । २८–४२) । कुन्तीकी वनमें कठोर तपस्या । एक मासतक उपवास करके एक दिन भोजन करना (आश्रम० ३७ ।

१४)। कुन्तीका ध्यान लगाकर बैठना और दावाग्निमें जलकर भस्म हो जाना (आश्रम० ३७ । ३१–३२)। कुन्तीकी हड्डियोंका गङ्गामें डाला जाना और उनके लिये श्राद्धकार्य सम्पादित होना (आश्रम० ३९ अध्याय)। कुन्ती और माद्री दोनों पत्नियोंके साथ राजा पाण्डुका महेन्द्रभवनमें जाना (स्वर्गा० ५ । १५)।

कुन्द–धाताद्वारा स्कन्दको दिये गये पाँच पार्षदोंमेंसे एक (शल्य० ४५ । ३९)।

कुन्दापरान्त–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४९)।

कुपट–एक दानव, कश्यपपत्नी दनुका पुत्र (आदि० ६५ । २६)।

कुबेर–पुलस्त्यकुमार विश्रवा मुनिके पुत्र, जो राक्षसोंके राजा थे, लङ्कामें निवास करते थे। नरयान (पालकी) पर चढ़नेके कारण 'नरवाहन' तथा राजाओंके भी राजा होनेसे 'राज-राज' कहलाते थे। इनके पिता विश्रवा इनपर कुपित थे। पिताके क्रोधको जानकर इन्होंने उनकी सेवा और प्रसन्नताके लिये तीन राक्षस-कन्याओंको नियुक्त कर दिया था (आदि० २७५ । १–३)। इनकी पत्नीका नाम भद्रा है (आदि० १९८ । ६)। इनका उत्तर दिशामें कैलासपर यक्षों और राक्षसोंके आधिपत्यपर अभिषेक किया गया (वन० १११ । १०-११)। ब्रह्माजीसे वरदान पाकर रावणका कुबेरको जीतना, इन्हें लङ्कासे निष्कासित करना और इनके पुष्पक विमान-को छीन लेना। फिर कुबेरद्वारा रावणको शाप (वन० २७५ । ३२–३५)। खाण्डवदाहके समय युद्धमें श्रीकृष्ण और अर्जुनपर प्रहार करनेके लिये इन्होंने गदा हाथमें ली थी (आदि० २२६ । ३२)। नारदजीद्वारा इनकी दिव्य सभाका वर्णन (सभा० १० अध्याय)। इनके द्वारा अर्जुनको अन्तर्धानास्त्रका दान (वन० ४१ । ३८)। इनकी गन्धमादनपर पाण्डवोंसे भेंट और युधिष्ठिर तथा भीमसेनको सान्त्वना (वन० १६१ । ४३–५१)। इनका अपनेको अगस्त्यसे शाप मिलनेकी कथाका युधिष्ठिरके प्रति वर्णन (वन० १६१ । ५४–६२)। इनके द्वारा युधिष्ठिर और भीमसेनको उपदेश और सान्त्वना (वन० १६२ अध्याय)। इनका श्रीरामके लिये अभिमन्त्रित जल भेजना (वन० २८९ । ९)। स्थूणा-कर्णको स्त्री ही बने रहनेका शाप देना (उद्योग० १९२ । ४५–४७)। यक्षोंके अनुरोधसे उसके शापका अन्त बताना (उद्योग० १९२ । ५०)। कुबेर शुक्राचार्यसे एक चौथाई धन पाकर उसमेंसे सोलहवाँ भाग मनुष्योंके लिये अर्पित करते हैं (भीष्म० ६ । २३)। पृथ्वीदोहन-के समय ये दोग्धा थे (द्रोण० ६९ । २४)। कुबेरकी सरस्वतीके तटपर तपस्या, कुबेरतीर्थकी उत्पत्ति तथा कुबेरको अनेक वरोंकी प्राप्ति। कुबेरने वहाँ धनका आधिपत्य, रुद्रदेवके साथ मित्रता, देवत्व, लोकपालत्व, नलकूबर नामक पुत्र तथा पुष्पकविमान प्राप्त किये (शल्य० ४७ । २८–३१)। महाराज मुचुकुन्दके साथ युद्ध और वार्तालाप (शान्ति० ७४ । ४–१८)। उशनाद्वारा अपने धनका अपहरण होनेपर इनका शिवजी-की शरणमें जाना (शान्ति० २८९ । १२)। इनके द्वारा अष्टावक्र मुनिका स्वागत-सत्कार (अनु० १९ । ३७–५०)।

महाभारतमें आये हुए कुबेरके नाम–अलकाधिप, धनद, धनदेश्वर, धनाधिगोप्ता, धनाधिप, धनाधिपति, धनाध्यक्ष, धनेश्वर, धनपति, धनेश, द्रविणपति, गदाधर, गुह्यका-धिप, गुह्यकाधिपति, कैलासनिलय, नरवाहन, निधिप, पौलस्त्य, राजराज, राजराट्, राक्षसाधिपति, राक्षसेश्वर, वैश्रवण, वित्तगोप्ता, वित्तपति, वित्तेश, यक्षाधिप, यक्षाधि-पति, यक्षपति, यक्षप्रवर, यक्षराट्, यक्षराज, यक्षराक्षस-भर्ता, यक्षरक्षोधिप इत्यादि।

कुबेरतीर्थ–सरस्वती नदी-सम्बन्धी एक तीर्थ, इसकी उत्पत्तिका प्रसंग (शल्य० ४७ । २५–३१)।

कुब्जाम्रक–यात्रामात्रसे सहस्र गोदानका फल और स्वर्ग देनेवाला एक तीर्थ (वन० ८४ । ४०)।

कुमार–(१) 'अनल' नामक वसुके पुत्र स्कन्द, जिनका जन्मकालमें सरकंडोंके वनमें निवास था (आदि० ६६ । २३)। इनका 'कार्तिकेय' नाम होनेका कारण (आदि० ६६ । २४)। कुमारग्रह अथवा कुमार स्कन्दके पार्षद, जो वज्रका प्रहार होनेपर कुमारके शरीरसे प्रकट हुए थे (वन० २८८ । १)। (२) भारतवर्ष-का एक पूर्वीय जनपद, जहाँके राजा श्रेणिमान्‌को दिग्विजयके समय भीमसेनने परास्त किया था (सभा० ३० । १)। यहाँके राजकुमार राजसूययज्ञमें युधिष्ठिरके लिये भेंट लाये थे (सभा० ५२ । १४–१७)। (३) एक प्राचीन राजा, जिसे पाण्डवोंकी ओरसे रणनिमन्त्रण भेजा गया था (उद्योग० ४ । १४)। द्रोणाचार्यके साथ युद्ध और उनके द्वारा इसका परास्त होना (द्रोण० १६ । २१–२५)। (४) 'सनत्कुमार' अथवा कुमार सनत्सुजात ऋषि, जिन्होंने किसी समय कहा था कि 'मृत्युकी सत्ता है ही नहीं' (उद्योग० ४१ । २)। (५) गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १३)।

कुमारक–कौरव्यकुलमें उत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । १३)।

कुमारकोटि–एक तीर्थ, जिसके नियमपूर्वक सेवनसे दस हजार गोदानका फल प्राप्त होता है (वन० २ । ११७)।

कुमारधारा–पितामह सरोवरसे निकली 'कुमारधारा' नामकी एक धारा, जहाँ स्नानसे कृतार्थता प्राप्त होती है (वन० ८४ । १४९)।

कुमारवर्ष–रैवतक पर्वतके पासका वर्ष (भीष्म० ११।२६)।

कुमारी–(१) केकयदेशकी एक राजकुमारी, पूरुवंशीय राजा भीमसेनकी पत्नी, प्रतिश्रवाकी माता (आदि० ९५ । ४३)। (२) स्कन्दके शरीरसे उत्पन्न कुमारी ग्रह । ये कुमारियाँ गर्भस्थ बालकोंका भक्षण करनेवाली हैं (वन० २३०।३१)। (३) धनंजय नागकी भार्या (उद्योग० ११७ । १७)। (४) भारतकी एक नदी, जिसका जल यहाँकी प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । ३६)। (५) शाकद्वीपकी एक नदी (भीष्म० ११ । ३२)।

कुमुद–(१) एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १५; उद्योग० १०३ । १३; मौसल० ४ । १५)। (२) एक वानर जो वानरराज सुग्रीवका सहायक एवं अनुगामी था (वन० २८९ । ४)। (३) सुप्रतीकके कुलमें उत्पन्न एक गजराज (उद्योग० ९९ । १५)। (४) गरुडकी प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१।१२)। (५) कुशद्वीपका एक पर्वत (भीष्म० १२ । १०)। (६) धाताद्वारा स्कन्दको दिये गये पाँच पार्षदोंमेंसे एक (शल्य० ४५ । ३९)। (७) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५६)। (८) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । ७६)।

कुमुदमाली–ब्रह्माद्वारा स्कन्दको दिये गये चार पार्षदोंमेंसे एक (शल्य० ४५ । २५)।

कुमुदाक्ष–एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १५)।

कुमुदोत्तर–शाकद्वीपका एक वर्ष, जो जलद या मलयके निकट है (भीष्म० ११ । २५)।

कुम्भ–प्रह्लादजीके तीन पुत्रोंमेंसे एक, इसके शेष दो भाई विरोचन और निकुम्भ हैं (आदि० ६५ । १९)।

कुम्भक–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७५)।

कुम्भकर्ण–राक्षसकन्या पुष्पोत्कटाके दो पुत्रोंमेंसे एक। रावणका सहोदर छोटा भाई। इसके पिता पुलस्त्यकुमार विश्रवा थे (वन० २७५ । १—७)। इसका तप करके ब्रह्मासे नींदका वरदान माँगना (वन० २७५ । २८)। इसका लक्ष्मणद्वारा वध (वन० २८७।१९)।

कुम्भकर्णाश्रम–एक तीर्थ, इसकी यात्रासे भूतलपर सम्मान-लाभ (वन० ८४ । १५७)।

कुम्भयोनि–अर्जुनके जानेपर इन्द्रसभामें नृत्य करनेवाली अप्सराओंमेंसे एक (वन० ४३ । ३०)।

कुम्भरेता–शंयुके प्रथम पुत्र भरद्वाजकी पत्नी वीराके गर्भसे उत्पन्न वीर नामक अग्नि, जिन्हें सोमदेवताके साथ द्वितीय आज्य-भाग प्राप्त होता है। इन्हें 'रथप्रभु' 'रथध्वान' और 'कुम्भरेता' भी कहते हैं (वन० २२० ।९-१०)।

कुम्भवक्त्र–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७५)।

कुम्भश्रवा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २६)।

कुम्भाण्डकोदर–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६९)।

कुम्भिका–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १५)।

कुम्भीनसि–एक मायावी असुर (अनु० ३९ । ७)।

कुम्भीनसी–गन्धर्वराज चित्ररथकी पत्नी, जिसने चित्ररथकी जीवन-रक्षाके लिये युधिष्ठिरसे प्रार्थना की थी (आदि० १६९ । ३५)।

कुरङ्गक्षेत्र–एक तीर्थ, यहाँ स्नान और त्रिरात्र-उपवासका फल (अनु० २५ । १–१२)।

कुरु–(१) सूर्यकन्या तपतीके गर्भसे सम्राट् संवरणद्वारा उत्पन्न (आदि० ९४ । ४८)। इनके द्वारा वाहिनीके गर्भसे अश्ववान्, अभिष्यन्त, चैत्ररथ, मुनि एवं जनमेजयका जन्म। इनके नामसे कुरुजाङ्गल देशकी प्रसिद्धि। इनकी तपस्यासे कुरुक्षेत्रका पवित्र होना (आदि० ९४। ५०-५१)। इनकी दूसरी पत्नी शुभाङ्गीसे विदुरका जन्म (आदि० ९५ । ३९)। कुरुक्षेत्रकी भूमि जोतते हुए इनका इन्द्रके साथ संवाद (शल्य० ५३ । ६–१५)। कुरुक्षेत्रमें इनके यज्ञ करते समय सरस्वती नदी 'सुरेणु' नामसे प्रकट हुई थीं। कुछ व्याख्याकारोंके अनुसार 'ओघवती' नामसे इनका प्राकट्य हुआ था (शल्य० ३८ । २६-२७)। (२) एक श्रद्धा-शम-दमसम्पन्न प्राचीन ऋषि, जो शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीको देखने आये थे (शान्ति० ४७ । ८)।

कुरुक्षेत्र–सरस्वती एवं दृषद्वती नामक नदीका मध्यवर्ती क्षेत्र, इसमें निवासकी महिमा (वन० ८३ । ४, २०४, २०५)। कुरुक्षेत्रमें इक्षुमती नदीके तटपर तक्षक रहता था (आदि० ३ । १३९–१४२)। कुरुने अपनी तपस्यासे इस क्षेत्रको पवित्र बनाया (आदि० ९४ । ५०)। चित्राङ्गद नामक गन्धर्वके साथ युद्ध करके महाराज चित्राङ्गदकी मृत्यु यहीं हुई थी (आदि० १०१ । ८-९)। सुन्द और उपसुन्द सम्पूर्ण दिशाओंको जीतकर कुरुक्षेत्रमें निवास करते थे (आदि० २०९ । २७)। खाण्डवदाहके पहले तक्षक वहाँसे कुरुक्षेत्र चला गया था (आदि० २२६ । ४)। वनयात्राके समय पाण्डवोंका यहाँ आगमन (वन० ५ । १)। यह एक प्रसिद्ध तीर्थ है, जिसके दर्शनमात्रसे पाप नाश हो जाता

है (वन० ८३ । १-३, ७-८) । कुरुक्षेत्रकी सीमाके भीतर एक पवित्र स्थानमें मान्धाताने यज्ञ किया था (वन० १२६ । ४५) । मुद्गल नामक जितेन्द्रिय ऋषि, जो उञ्छवृत्तिसे जीविका चलाते थे, कुरुक्षेत्रमें ही रहते थे (वन० २६० । ३) । भीष्म और परशुरामका युद्ध कुरुक्षेत्रमें ही हुआ था (उद्योग० १७८ । ७२) । कौरव और पाण्डव युद्धके लिये कुरुक्षेत्रमें ही एकत्र हुए और वहीं श्रीकृष्णके मुखसे अर्जुनको गीताका उपदेश प्राप्त हुआ (भीष्म० २५ अध्यायसे ४२ अ० तक) । महाभारत-युद्धका मैदान कुरुक्षेत्र ही था (भीष्मपर्वसे शल्यपर्वतक) । इसी क्षेत्रमें भीष्मजी शरशय्यापर पड़े थे (भीष्म० ११९ । ९२) । कुरुक्षेत्रमें सरस्वती नदी 'ओघवती'के रूपमें प्रकट हुई (शल्य० ३८ । ३-४) । पहले यह समन्तपञ्चक क्षेत्र था । महाराज कुरुके समयसे इसका नाम कुरुक्षेत्र हुआ । इसकी सीमाका निर्धारण तथा महिमा (शल्य० ५३ अ०) । बलरामजी-द्वारा इसकी महिमाका वर्णन (शल्य० ५५ । ६-१०) । भीमसेन और दुर्योधनका युद्ध तथा दुर्योधनका वध भी इसी क्षेत्रमें हुआ (शल्य० ५५ अ० से ५८ अ० तक) । अतिथिसत्कारपरायण अग्निपुत्र सुदर्शन अपनी पत्नी ओघवतीके साथ कुरुक्षेत्रमें ही रहते थे (अनु० २ । ४०) ।

कुरुजाङ्गल अथवा कुरु–भारतवर्षका सुविख्यात जनपद, जिसकी राजधानी हस्तिनापुर थी । कुरुके नामसे ही कुरुजाङ्गल देशकी प्रसिद्धि हुई (आदि० ९४ । ४९) । धृतराष्ट्र तथा पाण्डुके जन्मके बाद इस देशकी सर्वाङ्गीण उन्नतिका वर्णन (आदि० १०८ । १—१६) ।

कुरुतीर्थ–कुरुक्षेत्रमें तैजसतीर्थसे पूर्वभागमें स्थित एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है (वन० ८३ । १६५) ।

कुरुपाञ्चाल–कुरु और पाञ्चाल नामक भारतवर्षके दो जनपद (भीष्म० ९ । ३९) ।

कुरुवर्णक–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५६) ।

कुरुविन्द–एक भारतीय जनपद तथा वहाँके निवासी (भीष्म० ८७ । ९) ।

कुलत्थ–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६६) ।

कुलधर्म–सनातनकालसे चले आनेवाले कुलाचार (भीष्म० २५ । ४०) ।

कुलपांसन राजा–(उद्योग० ७४ अ० में) ।

कुलम्पुन–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे मानव अपने समूचे कुलको पवित्र कर देता है (वन० ८३ । १०४) ।

कुलम्पुना–एक नित्य स्मरणीय नदी (अनु० १६५ । २०) ।

कुलाचल–महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षवान्, विन्ध्य और पारियात्र—ये सात कुलपर्वत हैं (भीष्म० ९ । ११) ।

कुलिक–एक प्रमुख नाग, जो कद्रूका पुत्र है (आदि० ६५ । ४१) ।

कुलिन्द–(१) एक प्राचीन राजा (सभा० १४ । २६) । (२) प्राचीन देश (सभा० २६ । ३; भीष्म० ९ । ५५, ६३) ।

कुल्या–एक तीर्थ, यहाँ उपवाससे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है (अनु० २५ । ५६) ।

कुवलयापीड–ऐरावत-कुलोत्पन्न कंसका हाथी । भगवान् श्रीकृष्णद्वारा इसका वध (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८०१, कालम १) ।

कुवलाश्व–इक्ष्वाकुवंशी महाराज बृहदश्वके पुत्र, इनके इक्कीस हजार पुत्र थे (वन० २०२ । ५) । इनका धुन्धुको मारनेके लिये प्रस्थान (वन० २०४ । ११) । इनमें भगवान् विष्णुके तेजका प्रवेश (वन० २०४ । १३) । इनके द्वारा धुन्धुका वध (वन० २०४ । ३२) । इन्हें देवताओंसे वर-प्राप्ति (वन० २०४ । ३६–३८) । इनका धुन्धुमार नाम पड़नेका कारण (वन० २०४ । ४२) ।

कुवीरा-एक नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । २७) ।

कुश–एक प्राचीन कालके महर्षि, जो अग्निदेवके समान प्रतापी थे, ये ब्रह्माजीके पुत्र और विश्वामित्रके प्रपितामह थे (आदि० ७४ । ६९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

कुशचीरा–एक नदी, जिसका जल भारतके निवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २३) ।

कुशद्वीप–सुप्रसिद्ध सात द्वीपोंमेंसे एक । इसका विशेष वर्णन (भीष्म० १२ । ६–१६) ।

कुशधारा–एक नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २४) ।

कुशनाभ–महर्षि कुशके धर्मात्मा पुत्र, गाधिके पिता और विश्वामित्रके पितामह (आदि० ७४ । ६९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

कुशप्लवन–एक तीर्थ, जहाँ स्नान और तीन रात निवाससे अश्वमेध यज्ञका फल सुलभ होता है (वन० ८५ । ३६) ।

कुशल–क्रौञ्चपर्वतके निकटका एक देश (भीष्म० १२ । २१) ।

कुशल्य–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४०) ।

कुशवती–देवलोककी एक नगरी (वन० १६१ । ५४) ।

कुशवान्–मानस-सरोवरके निकटवर्ती, उज्जानक सरोवरका एक ह्रद (वन० १३० । १७-१८) ।

कुशविन्दु–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५६)।

कुशस्तम्ब–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेवाला मनुष्य स्वर्गमें अप्सराओंद्वारा सेवित होता है (अनु० २५ । २८)।

कुशस्थली–द्वारकापुरीका प्राचीन नाम (सभा० १४ । ५०)।

कुशाद्य–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४४)।

कुशाम्ब–राजा उपरिचरवसुके तृतीय पुत्र, इनका दूसरा नाम मणिवाहन था (आदि० ६३ । ३१)।

कुशावर्त–एक तीर्थ, यहाँ स्नानका फल (अनु० २५ । १३)।

कुशिक–(१) अजमीढके वंशमें उत्पन्न जह्नुके वंशज वल्लभके पुत्र (आदि० ९५ । ३३; भीष्म० ९ । ८; अनु० ४ । ५)। एक स्थानपर इन्हें जह्नुवंशज बलाकाश्वका पुत्र कहा गया है (शान्ति० ४९ । ३)। इनकी पुत्र-प्राप्तिके लिये तपस्या (शान्ति० ४९ । ४)। इन्द्रका पुत्ररूपमें जन्म (शान्ति० ४९ । ५-६)। इनके यहाँ च्यवनका आगमन तथा रहनेकी इच्छा बताना (शान्ति० ५२ । ९-१०)। भार्यासहित इनके द्वारा च्यवनका सत्कार तथा उन्हें सर्वस्व अर्पण (शान्ति० ५२ । १३–१८)। इनका च्यवनको घरमें ले जाकर ठहराना, शय्या आदि देना और सेवाके लिये प्रतिज्ञा करना (शान्ति० ५२ । २३-२४)। पत्नीसहित राजाका निराहार रहकर इक्कीस दिनोंतक सोये हुए च्यवनके पैर दबाना (शान्ति० ५२ । ३४-३५)। च्यवनके सहसा चले जानेसे इनकी चिन्ता और पुनः उन्हें शय्यापर विराजमान देख आश्चर्य और उनकी आज्ञासे पुनः उतने ही दिनोंतक सोये हुए मुनिकी चरणसेवा (शान्ति० ५३ । २–७)। मुनिके प्रतिकूल आचरणसे भी राजा-रानीका क्रोध न करना (शान्ति० ५३ । ८–२४)। इन राजदम्पतिका रथमें जुतकर कोड़ोंसे पीटा जाना और अन्तमें मुनिकी कृपासे नवयौवनसम्पन्न एवं स्वस्थ होना (शान्ति० ५३ । २७–६३)। च्यवन मुनिके वर माँगनेके लिये कहनेपर संतोष प्रकट करके नगरको वापस आना (अनु० ५३ । ५९–६५)। दूसरे दिन मुनिके पास जाकर अद्भुत स्वर्गीय दृश्य देखना (अनु० ५४ । २–२५)। रानीसे मुनिकी प्रशंसा करना (अनु० ५४ । २६–३१)। च्यवनके वर माँगनेके लिये कहनेपर संतोष प्रकट करना (अनु० ५४ । ३८–४२)। च्यवन मुनिसे अपने यहाँ रहनेका कारण और परीक्षाके क्लेशोंके विषयमें पूछना (अनु० ५५ । २–९)। च्यवनमुनिसे वर माँगना (अनु० ५५ । १८; अनु० ५५ । ३५)। अपने पौत्रके ब्राह्मणत्वके विषयमें पूछना (अनु० ५५ । ३६-३७)।

(२) एक वनवासी ऋषि, जो सर्पविषसे मरी हुई प्रमद्वराको देखनेके लिये गये थे (आदि० ८ । २५)। इन्होंने हस्तिनापुरको जाते हुए श्रीकृष्णकी मार्गमें परिक्रमा की थी (उद्योग० ८३ । २७)।

कुशिकाश्रम–कोशीनदीके निकटवर्ती एक तीर्थभूत आश्रमका नाम (वन० ८४ । १३१)।

कुशेशय–कुशद्वीपके छः श्रेष्ठ पर्वतोंमेंसे एक (भीष्म० १२ । १०-११)।

कुसुम–धाताद्वारा स्कन्दको दिये गये पाँच पार्षदोंमेंसे एक (शल्य० ४५ । ३९)।

कुसुम्भि–द्वारकाके समीपवर्ती एक वन (सभा० ३८ । २९ के बाद पृष्ठ ८१३, कालम १)।

कुस्तुम्बुरु–कुबेरकी सभाका एक पिशाच (सभा० १० । १६)।

कुहन–सौवीर देशका एक राजकुमार, जो जयद्रथका अनुगामी था (वन० २६५ । ११)।

कुहर–कलिङ्गदेशका एक राजा, जो क्रोधवश नामवाले दैत्योंके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ६५)।

कुहुर–एक कश्यपवंशी नाग (उद्योग० १०३ । १५)।

कुहू–महर्षि अङ्गिराकी आठवीं पुत्री (वन० २१८ । ८)। यह स्कन्दके जन्म-समयमें आयी थी (शल्य० ४५ । १३)।

कूर्चामुख–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५३)।

कूर्म–एक प्रमुख नाग, जो कद्रूका पुत्र है (आदि० ६५ । ४१)।

कूष्माण्डक–एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । ११)।

कृकणेयु–पूरुके तीसरे पुत्र। रौद्राश्वके द्वारा मिश्रकेशी अप्सराके गर्भसे उत्पन्न दस पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ९४ । १०)।

कृत–एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३१)।

कृतक्षण–विदेहदेशके एक राजा, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । २७)। इन्होंने राजा युधिष्ठिरको चौदह हजार घोड़े भेंटमें दिये थे (सभा० ५१ । ७ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८६१, कालम २)।

कृतचेता–एक प्राचीन ऋषि, जो अजातशत्रु युधिष्ठिरका विशेष आदर करते थे (वन० २६ । २२)।

कृतबन्धु–एक प्राचीन नरेश (आदि० १ । २३८)।

कृतयुग–हनुमान्‌जीद्वारा इस युगके धर्मका वर्णन (वन० १४९ । ११–२५)। मार्कण्डेयजीद्वारा इसका वर्णन (वन० १८८ । २२)। कलियुगके बाद कल्कीद्वारा इसकी स्थापना (वन० १९१ । १–१४)।

कृतवर्मा—यदुकुलके अन्तर्गत भोजवंशी हृदिकका पुत्र, जो भगवान् श्रीकृष्णका अनुरागी एवं आज्ञापालक था (आदि० ६३ । १०५) । यह मरुद्गणोंके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ८१) । इसका द्रौपदीके स्वयंवरमें पदार्पण (आदि० १८५ । १८) । यह सुभद्राके लिये उपहार-सामग्री लेकर खाण्डवप्रस्थमें गया था (आदि० २२० । ३१) । यह युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होता था (सभा० ४ । ३०) । यह वृष्णि-वंशके सात महारथियोंमेंसे एक था (सभा० १४ । ५८) । उपप्लव्य नगरमें अभिमन्युके विवाहमें उपस्थित हुआ था (विराट० ७२ । २१) । पाण्डवोंकी ओरसे इसको रणनिमन्त्रण भेजा गया था (उद्योग० ४ । १२) । दुर्योधनके माँगनेपर एक अक्षौहिणी सेनाकी सहायता देना (उद्योग० ७ । ३२) । इसका सेनासहित दुर्योधन-की सहायतामें जाना (उद्योग० १९ । १७) । सात्यकि-के कहनेसे श्रीकृष्णकी रक्षाके लिये कौरवसभाके द्वारपर उसका सेनासहित डट जाना (उद्योग० १३० । १०-११) । यह कौरवपक्षका अतिरथी वीर था (उद्योग० १६५ । २४) । प्रथम दिनके युद्धमें इसका सात्यकिके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । १२-१३) । अभिमन्यु-के हाथों यह घायल हुआ था (भीष्म० ४७ । १०) । भीष्मद्वारा निर्मित क्रौञ्चारुणव्यूहमें मस्तककी जगह खड़ा किया गया था (भीष्म० ७५ । १७) । भीमसेन-द्वारा इसका पराजित होना (भीष्म० ८२ । ६१) । सात्यकिद्वारा इसका घायल होना (भीष्म० १०४ । १६) । धृष्टद्युम्नके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ११० । ९-१०; भीष्म० १११ । ४०–४४) । भीमसेन और अर्जुनके साथ युद्ध (भीष्म० ११३, ११४ अध्याय) । सात्यकिके साथ युद्ध (द्रोण० १४ । ३५-३६; द्रोण० २५ । ८-९) । अभिमन्युपर प्रहार और उसके घोड़ोंको मार डालना (द्रोण० ४८ । ३२) । अभिमन्युपर आक्रमण करनेवाले छः महारथियोंमें एक यह भी था (द्रोण० ७३ । १०) । अर्जुनके साथ युद्ध और उनके प्रहारसे इसका मूर्च्छित होना (द्रोण० ९२ । १६– २६) । इसका युधामन्यु और उत्तमौजाके साथ युद्ध (द्रोण० ९२ । २७–३२) । सात्यकिके साथ युद्ध (द्रोण० ११३ । ४६–५८) । भीमसेनको आगे बढ़नेसे रोकना (द्रोण० ११३ । ६४–६७) । भीमसेन और शिखण्डी-को परास्त करके इसका पाण्डव-सेनाको खदेड़ना (द्रोण० ११४ । ५९–१०३) । सात्यकिद्वारा इसकी पराजय (द्रोण० ११५ । १०-११; द्रोण० ११६ । ४१) । युधिष्ठिरके साथ युद्ध और उन्हें परास्त करना (द्रोण० १६५ । २४–४०) । द्रोणाचार्यके मारे जानेपर युद्धस्थल-से भागना (द्रोण० १९३ । १३) । सात्यकिद्वारा इसकी पराजय (द्रोण० २०० । ५३) । इसके द्वारा शिखण्डीकी पराजय (कर्ण० २६ । ३६-३७) । धृष्टद्युम्न-द्वारा इसका मूर्च्छित किया जाना (कर्ण० ५४ । ४० के बाद दा० पाठ) । इसके द्वारा उत्तमौजाकी पराजय (कर्ण० ६१ । ५९) । भीमसेनके साथ युद्धमें भागना (शल्य० ११ । ४५–४७) । सात्यकिद्वारा इसकी पराजय (शल्य० १७ । ७७-७८; शल्य० २१ । २९-३०) । युधिष्ठिरद्वारा पराजय (शल्य० १७ । ८७) । द्वैपायन सरोवरपर जाकर दुर्योधनको युद्धके लिये उत्साहित करना (शल्य० ३० । ९–१४) । सेनासहित युधिष्ठिर-के पहुँचनेपर इसका वहाँसे हट जाना (शल्य० ३० । ६३) । अश्वत्थामाके साथ रातमें सौप्तिक युद्धके लिये जाना (सौप्तिक० ५ । ३८) । रातमें शिविरसे भागे हुए योद्धाओंका इसके द्वारा वध (सौप्तिक० ८ । १०६-१०७) । पाण्डवोंके शिविरमें इसका आग लगाना (सौप्तिक० ८ । १०९-११०) । धृतराष्ट्रको दुर्योधन-के मारे जानेका समाचार बताकर इसका अपने देशकी ओर जाना (स्त्री० ११ । २१) । युधिष्ठिरके अश्वमेध-यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णके साथ कृतवर्माका भी आगमन (आश्व० ६६ । ३-४) । सात्यकिद्वारा मौसल-युद्धमें इसका वध (मौसल० ३ । २८) । स्वर्गमें जानेपर इसका मरुद्गणोंमें प्रवेश (स्वर्गा० ५ । १३) ।

महाभारतमें आये हुए कृतवर्माके नाम—आनर्तवासी, भोज, भोजराज, हार्दिक्य, हृदिकसुत, हृदिकात्मज, माधव, सात्वत, वार्ष्णेय, वृष्णि, वृष्णिसिंह आदि ।

कृतवाक्—अजातशत्रु युधिष्ठिरका आदर करनेवाले एक महर्षि (वन० २६ । २४) ।

कृतवीर्य—(१) सोमवंशी राजा अहंयातिके श्वशुर, भानु-मतीके पिता (आदि० ९५ । १५) । (२) भूमण्डल-के एक सुप्रसिद्ध प्राचीन राजा, जो कार्तवीर्यके पिता और वेदज्ञ भृगुवंशियोंके यजमान थे (आदि० १७७ । ११) । इनके द्वारा सोमयज्ञ करके भृगुवंशियोंके लिये विपुल धनराशिका दान (आदि० १७७ । १२) । ये यमराज-की सभाके एक सदस्य हैं (सभा० ८ । ९) । माहिष्मती नगरीका राजा अर्जुन इन्हीं कृतवीर्यका ज्येष्ठ पुत्र था (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७९१, कालम २)।

कृतवेग—एक पुण्यात्मा एवं बहुश्रुत राजर्षि, जो यमसभाको सुशोभित करते हैं (सभा० ८ । ९) ।

कृतशौच—कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक तीर्थ, जहाँ जाने और तीर्थ-सेवन करनेसे पुण्डरीक-यज्ञका फल प्राप्त होता है (वन० ८३ । २१) ।

कृतश्रम-युधिष्ठिरकी सभामें बैठनेवाले एक महर्षि (सभा० ४ । १४) । इनको वानप्रस्थधर्मके पालनसे स्वर्गलोककी प्राप्ति हुई (शान्ति० २४४ । १८) ।

कृति-(१) एक पुण्यात्मा एवं बहुश्रुत राजर्षि, जो यमराजकी सभाको सुशोभित करते हैं (सभा० ८ । ९) । (२) एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३५) । (३) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । २२) ।

कृती-शूकरदेशका एक राजा, जिसने युधिष्ठिरको सौ गजरत्न भेंट किये थे (सभा० ५२ । २५) ।

कृत्तिका-(१) एक तीर्थ, यहाँकी यात्रासे अतिरात्र यागका फल मिलता है (वन० ८४ । ५१) । (२) कृत्तिकाएँ छः हैं, इनका स्कन्दसे अपनेको माता स्वीकार करनेका अनुरोध (वन० २३० । ५) । इन्हें नक्षत्रमण्डलमें स्थानकी प्राप्ति (वन० २३० । ११) । कृत्तिका नक्षत्रमें दान देनेका फल (अनु० ६४ । ५) ।

कृत्तिकाङ्गारक-एक तीर्थ, जहाँ स्नान करके एक पक्षतक निराहार रहनेवाला मनुष्य निष्पाप होकर स्वर्गलोकमें जाता है (अनु० २५ । २२-२६) ।

कृत्तिकाश्रम-एक तीर्थ, जहाँ स्नान करके पितरोंका तर्पण और महादेवजीको संतुष्ट करनेवाला पुरुष पापमुक्त हो स्वर्गमें जाता है (अनु० २५ । २५) ।

कृत्या-(१) दैत्योंद्वारा आभिचारिक यज्ञसे उत्पन्न की हुई एक राक्षसी, जो आमरण उपवासके लिये बैठे हुए दुर्योधनको वनसे उठाकर रसातलमें ले गयी थी (वन० २५२ । २१-२९) । (२) एक नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । १८) ।

कृत्रिम-एक प्रकारका अबन्धुदायादपुत्र ('मैं आपका पुत्र हूँ' यों कहकर जो स्वयं समीप आया हो) (आदि० ११९ । ३४) ।

कृप-एक प्राचीन राजा, जिन्होंने कभी मांस नहीं खाया था (अनु० ११५ । ६४) ।

कृपाचार्य-किसी समय गौतमगोत्रीय शरद्वान्का वीर्य सरकंडेके समूहपर गिरा और दो भागोंमें बँट गया, उसीसे एक पुत्र और एक कन्याका जन्म हुआ, कन्याका नाम कृपी हुआ और पुत्र महाबली कृपके नामसे प्रसिद्ध हुआ (आदि० ६३ । १०७) । ये रुद्रगणके अंशावतार और अत्यन्त पुरुषार्थी थे (आदि० ६७ । ७७) । 'जानपदी' नामक अप्सराके दर्शनसे सरकंडेपर स्खलित हुए महर्षि शरद्वान्के दो भागोंमें बँटे हुए वीर्यसे एक पुत्र और एक कन्याकी उत्पत्ति (आदि० १२९ । ६-१४) । वनमें शिकारके लिये आये हुए महाराज शान्तनुका इन्हें देखना और कृपाके वशीभूत हो घर लाकर इनका पालन-पोषण एवं समस्त संस्कार करना (आदि० १२९ । १५-१८) । इनका 'कृप' नाम होनेका कारण (आदि० १२९ । २०) । शरद्वान्का इनको इनके गोत्र आदिका गुप्तरूपसे परिचय देकर समस्त शास्त्रोंका उपदेश करना (आदि० १२९ । २१-२२) । ये धनुर्वेदके परमाचार्य हो गये (आदि० १२९ । २२) । इनसे कौरवों-पाण्डवों तथा यादवोंका धनुर्वेद पढ़ना (आदि० १२९ । २३) । रङ्गभूमिमें अर्जुनपर आक्षेप करते समय इनका कर्णसे उसके कुलका परिचय पूछना (आदि० १३५ । ३२) । ये युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें उपस्थित थे (सभा० ३४ । ८) । धनकी देख-रेख और दक्षिणा बाँटनेके कामपर नियुक्त किये गये थे (सभा० ३५ । ७) । इनका पाण्डवोंके अन्वेषणके लिये सलाह देना (विराट० २९ । १-१४) । कर्णको फटकारते हुए युद्धके विषयमें अपना मत प्रकट करना (विराट० ४९ अ०में) । अर्जुनद्वारा घायल होनेपर कौरवोंका इन्हें अन्यत्र हटा ले जाना (विराट० ५७ । ४३) । दुर्योधनसे दो मासमें पाण्डव-सेनाको नष्ट करनेकी अपनी शक्तिका कथन (विराट० १९३ । १९) । युधिष्ठिरको आज्ञा देकर अपनेको अवध्य बताना (भीष्म० ४३ । ७०-७५) । प्रथम दिनके युद्धमें बृहत्क्षत्रके साथ इनका द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । ५२-५४) । चेकितानद्वारा इनका मूर्च्छित होना (भीष्म० ८४ । ३१) । सात्यकिको घायल करना (भीष्म० १०१ । ४०-४१) । सहदेवके साथ द्वन्द्व-युद्ध करना (भीष्म० ११० । १२-१३; भीष्म० १११ । २८-३३) । भीमसेन और अर्जुनके साथ युद्ध (भीष्म० ११३, ११४ अध्याय) । धृष्टकेतुके साथ युद्ध (द्रोण० १४ । ३३-३४) । वार्धक्षेमिके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । ५१-५२) । अभिमन्युके पार्श्वरक्षकोंका वध कर देना (द्रोण० ४८ । ३२) । इनके ध्वजका वर्णन (द्रोण० १०५ । १४-१६) । अर्जुनके साथ युद्ध (द्रोण० १४५ अ०) । अर्जुनके साथ युद्धमें मूर्च्छित होना (द्रोण० १४७ । ९) । कर्णको फटकारना (द्रोण० १५८ । १३-२३; ३३-४७) । अश्वत्थामासे दुर्योधनको अर्जुनके साथ युद्धके लिये जानेसे रोकनेको कहना (द्रोण० १५९ । ७७-८२) । इनके द्वारा शिखण्डीकी पराजय (द्रोण० १६९ । ३२) । द्रोणाचार्यके मारे जानेपर युद्धस्थलसे भागना (द्रोण० १९३ । १२) । अश्वत्थामासे द्रोण-वधका समाचार बताना (द्रोण० १९३ । ३७-६७) । इनके सात्यकिद्वारा पराजय (द्रोण० २०० । ५३) ।

द्वारा शिखण्डीकी पराजय (कर्ण० ५४ । २३)। चित्रकेतु-पुत्र सुकेतुका वध (कर्ण० ५४ । २८)। युधामन्युको परास्त करना (कर्ण० ६१ । ५५-५६)। इनके द्वारा कुलिन्द-राजकुमारका वध (कर्ण० ८५ । ६)। दुर्योधनको सन्धिके लिये समझाना (शल्य० ४ अ०)। द्वैपायन सरोवरपर जाकर दुर्योधनको युद्धके लिये उत्साहित करना (शल्य० ३० । ९-१४)। सेनासहित युधिष्ठिरके पहुँचनेपर वहाँसे हट जाना (शल्य० ३० । ६३)। दुर्योधनके कहनेसे अश्वत्थामाको सेनापति-पदपर अभिषिक्त करना (शल्य० ६५ । ४३)। दैवकी प्रबलता बताते हुए अश्वत्थामाको सत्पुरुषोंसे सलाह लेनेकी राय देना (सौप्तिक० २ अ०)। अश्वत्थामाको प्रातःकाल युद्ध करनेके लिये समझाना (सौप्तिक० ४ । १-२०; सौप्तिक० ५ । १-१७)। अश्वत्थामाके साथ रातमें युद्धके लिये जाना (सौप्तिक० ५ । ३८)। इनके द्वारा पाण्डव-शिविरसे भागे हुए योद्धाओंका वध (सौप्तिक० ८ । १०६-१०७)। शिविरमें आग लगाना (सौप्तिक० ८ । १०९-११०)। दुर्योधनकी दशा देखकर विलाप करना (सौप्तिक० ९ । १०-१७)। धृतराष्ट्र और गान्धारीको कौरव-पाण्डवोंके विनाशकी सूचना देना (स्त्री० ११ । ५-१७)। समाचार बताकर हस्तिनापुरकी ओर चला जाना (स्त्री० ११ । २१)। इन्हें द्रोणाचार्यसे खड्ग-विद्या प्राप्त होनेका प्रसंग (शान्ति० १६६ । ८१)। तपस्यासे सिद्धि या प्रतिष्ठा प्राप्त करनेवाले लोगोंमें इनका भी नाम है (शान्ति० २९६ । १४)। वनमें जाते समय धृतराष्ट्रका कृपाचार्यको युधिष्ठिरके हाथों सौंपकर अपने साथ जानेसे लौटाना (आश्रम० १६ । ५)। महाप्रस्थानसे पूर्व युधिष्ठिरने कृपाचार्यकी पूजा करके उन्हें परीक्षित्को शिष्यरूपमें सौंपा (महाप्रस्थान० १ । १४-१५)।

महाभारतमें आये हुए कृपाचार्यके नाम–आचार्य, आचार्यसत्तम, भारताचार्य, ब्रह्मर्षि, शारद्वत, शरद्वत्-सुत, गौतम आदि।

कृपी–शरद्वान् ऋषिकी पुत्री, कृपाचार्यकी बहन, द्रोणाचार्यकी पत्नी और अश्वत्थामाकी माता (आदि० ६३ । १०७-१०८)। शान्तनुद्वारा इनका संवर्धन (पालन-पोषण) एवं समस्त संस्कार (आदि० १२९ । १८)। द्रोणाचार्यका इन्हें धर्मपत्नीके रूपमें ग्रहण करना (आदि० १२९ । ४६)। इनका मरे हुए द्रोणाचार्यके लिये रोना (स्त्री० २३ । ३४-३७)।

महाभारतमें आये हुए इनके नाम–शारद्वती, कृपी, गौतमी आदि।

कृमि–(१) एक क्षत्रियकुल (उद्योग० ७४ । १३)। (२) एक नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । १७)।

कृश–(१) शृङ्गीऋषिका एक मित्र, जो धर्मके लिये कष्ट उठानेके कारण सदा कृश ही रहा करता था (आदि० ४० । २७-२८)। इनका शृङ्गीऋषिको उत्तेजित करना (आदि० ४० । २९-३२)। इनका शृङ्गीऋषिको उनके पिताके कंधेपर राजा परीक्षित्द्वारा सर्प डालनेका समाचार सुनाना (आदि० ४१ । ५-९)। (२) ऐरावतकुलोत्पन्न एक नाग, जो जनमेजयके सर्पयज्ञमें दग्ध हो गया था (आदि० ५७ । ११)। (३) एक दिव्य महर्षि, जो शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीको देखनेके लिये आये थे (अनु० २६ । ७)।

कृशक–एक कश्यपवंशी नाग (उद्योग० १०३ । १५)।

कृशाश्व–यमकी सभामें उपस्थित धर्मराजकी उपासना करनेवाले एक नरेश (सभा० ८ । १७)। ये उत्तर-गोग्रहणके समय अर्जुनका कृपाचार्य एवं अन्य कौरव-वीरोंके साथ होनेवाले युद्धको देखनेके लिये इन्द्रके विमानमें बैठकर आये थे (सभा० ५६ । १०)। इनका प्रातःसायं स्मरण-कीर्तन करनेवाला मनुष्य धर्म-फलका भागी होता है (अनु० १६५ । ४९)।

कृषीवल–इन्द्रकी सभामें बैठकर उनकी उपासना करनेवाले एक प्राचीन महर्षि (सभा० ७ । १३)।

कृष्ण–(१) सत्यवतीनन्दन द्वैपायन व्यास, जिन्हें शरीरका रंग साँवला होनेके कारण लोग 'कृष्ण' भी कहते थे (आदि० १०४ । १५)। (देखिये 'व्यास') (२) एक नाग, जो वरुणसभामें रहकर वरुण देवताकी उपासना करते हैं (सभा० ९ । ८)। (३) अर्जुनका एक नाम (विराट० ४४ । २२)। (४) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५७)। (५) एक महर्षि, जो उत्तरायणके आरम्भमें शर-शय्याशायी भीष्मजीको देखनेके लिये पधारे थे (शान्ति० ४७ । १२)। (६) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । ४५)। (७) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । ७२)। (८) ये नारायणस्वरूप हैं, इनकी वन्दना करके महाभारतका पाठ करनेका विधान (आदि० १ । मङ्गलाचरण १)। ये 'श्रीकृष्ण' ही धर्ममय वृक्षके मूल हैं (आदि० १ । १११)। विश्ववन्दित महायशस्वी भगवान् विष्णु जगत्के जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये वसुदेवजीके द्वारा देवकीके गर्भसे प्रकट हुए (आदि० ६३ । ९९)। आदि-अन्तसे रहित, सबके आत्मा, अव्यय, अनन्त, अचल, अजन्मा, नारायणस्वरूप, अनादि, सर्वव्यापी, परम पुरुष पूर्णतम परमात्मा ही धर्मकी वृद्धिके लिये अन्धक और वृष्णि-

कुलमें बलराम और श्रीकृष्णरूपसे अवतीर्ण हुए (आदि० ६३।१००–१०४)। सम्पूर्ण देवताओं एवं इन्द्रका भगवान् श्रीहरिसे अवतार ग्रहण करनेकी प्रार्थना और भगवान्की स्वीकृति (आदि० ६४ । ५१–५४)। देवताओंके भी देवता, सनातन पुरुष, नारायणके ही अंशस्वरूप प्रतापी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण मनुष्योंमें अवतीर्ण हुए थे (आदि० ६७ । १५१)। अपने श्याम और श्वेत दो प्रकारके केशोंको द्वारमात्र बनाकर सच्चिदानन्दघन नारायणने स्वयं ही अपनेको पूर्णतम पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण रूपसे प्रकट किया (आदि० १९६ । ३२-३३)। वृष्णिवंशियों-सहित इनका द्रौपदीके स्वयंवरमें आगमन (आदि० १८५ । १६–२०)। इनका स्वयंवरमें आये हुए ब्राह्मणवेषधारी पाण्डवोंको पहचानना और बलरामजी-को संकेतसे बताना (आदि० १८६ । ८–१०)। द्रौपदी-स्वयंवरमें भीम और अर्जुनके विषयमें इनका बलरामजीसे वार्तालाप (आदि० १८८ । २०–२३ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। पाण्डवोंसे मिलनेके लिये बलरामसहित इनका कुम्भकारके घरमें आगमन (आदि० १९० । १८)। द्रौपदीके विवाहके अवसरपर इनके द्वारा पाण्डवोंको विविध उपहारोंकी भेंट (आदि० १९८ । १३–१९)। पाण्डवोंको द्रुपद-नगरसे हस्तिनापुर जानेके लिये इनकी सम्मति (आदि० २०६ । ६)। पाण्डवोंके निवासके लिये दिव्य नगर-निर्माणके हेतु इनकी इन्द्रको प्रेरणा (आदि० २०६ । २८ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। प्रभास क्षेत्रमें इनका अर्जुनके साथ मिलन और रैवतक पर्वतपर विश्राम (आदि०२१७ । ३–८)। अर्जुनको सुभद्राहरणके लिये इनकी सम्मति (आदि० २१८ । २३)। सुभद्राहरणसे कुपित हुए वृष्णिवंशियोंको इनकी सान्त्वना (आदि० २२० । १–११)। दहेजरूपमें विपुल धनराशि लेकर इनका इन्द्रप्रस्थ नगरमें आगमन और भेंटसमर्पण (आदि० २२० । २७–५२)। अर्जुन-के साथ इनका यमुनाजीमें जल-विहार (आदि० २२१ । १४–२०)। खाण्डववन-दाहके लिये इनसे अग्निकी प्रार्थना (आदि० २२२ । २–११)। अग्निद्वारा इनको दिव्य चक्रका दान (आदि० २२४ । २३)। वरुणद्वारा इनको कौमोदकी गदाकी भेंट (आदि० २२४ । २८)। खाण्डववनदाहके समय इनका इन्द्र आदि देवताओंके साथ युद्ध (आदि० २२६ अध्याय)। अर्जुनके द्वारा अभयदान देनेपर इनका मयासुरको जीवनदान (आदि० २२७ । ४४–४५)। अर्जुनके साथ निरन्तर प्रेम-वृद्धिके लिये इनकी इन्द्रसे वर-याचना (आदि० २३३ । १३)। इनकी मयासुरको सभाभवन-निर्माणके लिये आज्ञा (सभा० १० । १३)। इनकी द्वारकायात्रा (सभा० २ अध्याय)। इन भगवान् वासुदेवने बिन्दुसरोवरपर धर्मपरम्पराकी रक्षाके लिये बहुत वर्षोंतक निरन्तर श्रद्धा-पूर्वक यज्ञ किया था (सभा० ३ । १६)। युधिष्ठिरको राजसूय यज्ञके लिये इनकी सम्मति (सभा० १४ अध्याय)। जरासंधके वधके विषयमें इनकी युधिष्ठिर और भीमसेनसे बातचीत (सभा० १५ । १४–२५)। इनके द्वारा अर्जुनकी बातका अनुमोदन और जरासंधकी उत्पत्तिका वर्णन (सभा० १७ अध्याय)। जरासंध-वधके लिये भीम और अर्जुनके साथ ब्राह्मण-रूप धारणकर इनकी मगध-यात्रा (सभा० २० अध्याय)। इनके द्वारा मगधकी राजधानीकी प्रशंसा (सभा० २१ । १–११)। इनका जरासंधके साथ संवाद (सभा० २१ । ४९–५४)। निरपराध कैद किये हुए राजाओं-को छोड़ देनेके लिये इनकी जरासंधको चेतावनी (सभा० २२ । ७–२६)। जरासंधके वधके लिये इनका भीमको संकेत (सभा० २४ । ५ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। इनके द्वारा जरासंध-पुत्र सहदेवका राज्याभिषेक (सभा० २४ । ४३)। राजसूय यज्ञके उपलक्ष्यमें इनके द्वारा युधिष्ठिरको विपुल धनराशिकी भेंट (सभा० ३३ । १३)। राजसूय यज्ञमें भीष्मके आदेशपर सहदेवद्वारा इनकी अग्रपूजा (सभा० ३६ । ३०)। इनके प्रति शिशुपालके आक्षेपपूर्ण वचन (सभा० ३७ अध्याय)। भीष्मद्वारा इनकी महिमाका वर्णन (सभा० ३८ । ६–२९)। भगवान् श्रीकृष्णके अवतारका प्रकृतिपर प्रभाव; अवतारकालमें महर्षियों, देवर्षियों आदिका आगमन तथा इन्द्रद्वारा भगवान्से प्रार्थना (सभा० ३८ । पृष्ठ ७९७)। वसुदेवजीका नव-जात शिशु श्रीकृष्णको कंसके भयसे गोकुलमें नन्दगोपके घर छिपा देना (सभा० ३८ । पृष्ठ ७९८)। इनके पदा-घातसे दही आदिके मटुकोंसे भरे छकड़ेका उलट जाना (सभा० ३८ । पृष्ठ ७९८)। इनके द्वारा पूतनाका वध, यशोदा मैयाका इन्हें ऊखलमें बाँधना, इनके द्वारा यमलार्जुनका उद्धार (सभा०३८। पृष्ठ ७९८)। इनकी सात वर्षकी अवस्थामें वेष-भूषा, खेल-कूद, मनोरञ्जन और इनके द्वारा वत्स-चारण (सभा० ३८। पृष्ठ ७९९)। श्रीकृष्णका अकेले वृन्दावनमें जाना, इनकी शोभा और वन-विहार तथा इनके द्वारा कालिय नागका मानमर्दन एवं अन्यत्र प्रेषण; इनका बलभद्रजीके साथ वन-विहार (सभा० ३८। पृष्ठ८००)। इनके द्वारा इन्द्रका मान-भङ्ग और गोवर्धन-धारण। देवेन्द्रद्वारा इनका 'गोविन्द' नामकरण और 'गवेन्द्र' पदपर अभिषेक। इनके द्वारा अरिष्टासुर, केशीनामक दैत्य, आन्ध्रदेशीय मल्ल चाणूर, कंसके सेनापति 'सुनामा' का वध; इनके

द्वारा कंसके मनमें भयका उत्पादन और कुवलयापीडका वध, श्रीकृष्णद्वारा कंसका वध और उग्रसेनका राजाके पदपर अभिषेक (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०१; ८०४) । बलराम-जीके साथ इनका मथुरामें ही निवास, उज्जयिनीमें सान्दीपनि मुनिके यहाँ इन दोनों भाइयोंका अध्ययनके लिये जाना तथा चौंसठ कलाओंका अध्ययन एवं गुरुसेवा करना, इन्हें बारह दिनोंमें ही गजशिक्षा और अश्वशिक्षाकी प्राप्ति । इनका पुनः धनुर्वेदकी शिक्षाके लिये सान्दीपनिके यहाँ जाना और अवन्तीमें निवास करना; पचास दिन-रातमें ही दस अङ्गोंसे युक्त सुप्रतिष्ठित एवं रहस्यसहित धनुर्वेद-का ज्ञान प्राप्त करना; सान्दीपनिपुत्रके मारनेवाले असुरका श्रीकृष्ण और बलरामद्वारा वध; मरे हुए गुरुपुत्रको यमलोकसे लाकर इनके द्वारा गुरुदक्षिणा तथा ऐश्वर्यका दान (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०२) । चौंसठ कलाओंके नाम ये हैं–१–गीत (गाना), २–वाद्य (बाजा बजाना), ३–नृत्य (नाचना), ४–नाट्य (नाटक करना, अभिनय करना), ५–आलेख्य (चित्रकारी करना), ६–विशेषकच्छेद्य (तिलकके साँचे बनाना), ७–तण्डुल-कुसुमवलिविकार (चावलों और फूलोंका चौक पूरना), ८–पुष्पास्तरण (फूलोंकी सेज रचना तथा बिछाना), ९–दशन-वसनाङ्गराग (दाँतों, कपड़ों और अङ्गोंको रँगना या दाँतोंके लिये मञ्जन-मिस्सी आदि, वस्त्रोंके लिये रंग और रँगनेकी सामग्री तथा अङ्गोंमें लगानेके लिये चन्दन, केसर, मेंहदी, महावर आदि बनाना और उनके बनानेकी विधिका ज्ञान), १०–मणिभूमिका कर्म (ऋतु-के अनुकूल घर सजाना), ११–शयनरचना (बिछावन या पलंग बिछाना), १२–उदकवाद्य (जलतरंग बजाना), १३–उदकघात (पानीके छींटे आदि मारने या पिचकारी चलाने और गुलाबपाससे काम लेनेकी विद्या), १४–चित्रयोग (अवस्था-परिवर्तन करना अर्थात् नपुंसक करना, जवानको बुड्ढा और बुड्ढेको जवान करना इत्यादि), १५–माल्यग्रन्थ-विकल्प (देवपूजनके लिये या पहननेके लिये माला गूँथना), १६–केश-शेखरा–पीड़-योजन (सिरपर फूलोंसे अनेक प्रकारकी रचना करना या सिरके बालोंमें फूल लगाकर गूँथना), १७–नेपथ्ययोग (देश-कालके अनुसार वस्त्र-आभूषण आदि पहनना), १८–कर्ण-पत्र-भंग (कानोंके लिये कर्णफूल आदि आभूषण बनाना), १९–गन्धयुक्ति (सुगन्धित पदार्थ, जैसे गुलाब, केवड़ा, इत्र, फुलेल आदि बनाना), २०–भूषण-भोजन, २१–इन्द्रजाल, २२–कौचुमारयोग (कुरूपको सुन्दर करना या मुँहमें और शरीरमें मलने आदिके लिये ऐसे उबटन आदि बनाना, जिनसे कुरूप भी सुन्दर हो जाय), २३–हस्तलाघव (हाथकी सफाई, फुर्ती या लाग), २४–चित्रशाका-पूप-भक्ष्यविकार-क्रिया (अनेक प्रकारकी तरकारियाँ; पूप और खानेके पकवान बनाना, सूपकर्म), २५–पान-करसरागासव-भोजन (पीनेके लिये अनेक प्रकारके शर्बत, अर्क और शराब आदि बनाना), २६–सूचीकर्म (सीना, पिरोना), २७–सूत्रकर्म (रफूगरी और कसीदा काढ़ना तथा तागेसे तरह-तरहके बेल-बूटे बनाना), २८–प्रहेलिका (पहेली या बुझौवल कहना और बूझना), २९–प्रतिमाला (अन्त्याक्षरी अर्थात् श्लोकका अन्तिम अक्षर लेकर उसी अक्षरसे आरम्भ होनेवाला दूसरा श्लोक कहना, बैतबाजी), ३०–दुर्वाचकयोग (कठिन पदों या शब्दोंका तात्पर्य निकालना), ३१–पुस्तक-वाचन (उपयुक्त रीतिसे पुस्तक पढ़ना), ३२–नाटिका-ख्यायिका-दर्शन (नाटक देखना या दिखलाना), ३३–काव्य-समस्या-पूर्ति, ३४–पट्टिकावेत्रवाणविकल्प (नेवाड़, बाध या बेंतसे चारपाई आदि बुनना), ३५–तर्क-कर्म (दलील करना या हेतुवाद), ३६–तक्षण (बढ़ई; संगतराश आदिका काम करना), ३७–वास्तुविद्या (घर बनाना; इंजीनियरी), ३८–रूप्यरत्न-परीक्षा (सोने, चाँदी आदि धातुओं और रत्नोंको परखना), ३९–धातुवाद (कच्ची धातुओंको साफ करना या मिली धातुओंको अलग-अलग करना), ४०–मणिराग-ज्ञान (रत्नोंके रंगोंको जानना), ४१–आकर-ज्ञान (खानों-की विद्या), ४२–वृक्षायुर्वेदयोग (वृक्षोंका ज्ञान; चिकित्सा और उन्हें रोपने आदिकी विधि), ४३–मेष-कुक्कुट-लावक-युद्धविधि (भेंड़े, मुर्गे, बटेर, बुलबुल आदिको लड़ानेकी विधि), ४४–शुक-सारिका-प्रलापन (तोता, मैना पढ़ाना), ४५–उत्सान (उबटन लगाना और हाथ, पैर, सिर आदि दबाना), ४६–केश-मार्जनकौशल(बालोंका मलना और तेल लगाना), ४७–अक्षर-मुष्टिकाकथन (करपलई), ४८–म्लेच्छितकलाविकल्प (म्लेच्छ या विदेशी भाषाओंका जानना), ४९–देशभाषा-ज्ञान (प्राकृतिक बोलियोंको जानना), ५०–पुष्पशकटिका-निमित्तज्ञान (दैवीलक्षण, जैसे बादलकी गरज, बिजलीकी चमक इत्यादि देखकर आगामी घटनाके लिये भविष्यवाणी करना), ५१–यन्त्रमातृका (यन्त्रनिर्माण), ५२–धारण-मातृका (स्मरण बढ़ाना), ५३–सम्पाठ्य (दूसरेको कुछ पढ़ते हुए सुनकर उसे उसी प्रकार पढ़ देना), ५४–मानसी काव्य-क्रिया (दूसरेका अभिप्राय समझकर उसके अनुसार तुरंत कविता करना या मनमें काव्य करके शीघ्र कहते जाना), ५५–क्रियाविकल्प (क्रियाके प्रभावको पलटना), ५६–छलितकयोग (छल या ऐय्यारी करना), ५७–अभिधान (कोष-छन्दोज्ञान), ५८–वस्त्रगोपन

(वस्त्रोंकी रक्षा करना), ५९-द्यूतविशेष (जूआ खेलना), ६०-आकर्षण-क्रीड़ा (पासा आदि फेंकना), ६१-बालक्रीड़ाकर्म (लड़का खेलाना), ६२-वैनायिकीविद्या-ज्ञान (विनय और शिष्टाचार, इल्मे इख्लाक वो आदाब), ६३-वैजयिकी विद्याज्ञान, ६४-वैतालिकी विद्याज्ञान ॥

--हिंदी शब्दसागरसे

श्रीकृष्णको गदा और परिघके युद्धमें तथा सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रोंके ज्ञानमें उत्कृष्ट स्थानकी प्राप्ति और समस्त लोकोंमें उनकी ख्याति (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०३)। इनका मथुरा छोड़कर द्वारकामें जाना तथा इनके द्वारा बड़े-बड़े असुरोंका वध (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०४)। भौमासुरको मारनेके लिये इनसे इन्द्रकी प्रार्थना (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०६) श्रीकृष्णद्वारा नरकासुरको मारकर माता अदितिके कुण्डल ला देनेकी प्रतिज्ञा । इनके द्वारा मुरनामक असुर, निशुम्भ, हयग्रीव, विरूपाक्ष, पञ्चजन तथा नरकासुरका वध (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०७)। भूमिद्वारा इनको कुण्डल-दान (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०८)। मणिपर्वतपर बने हुए नरकासुरके अन्तःपुरमें इनका प्रवेश तथा नरकासुर द्वारा अपहरण करके लायी हुई कन्याओंकी गान्धर्व विवाह करनेके लिये भगवान्से प्रार्थना (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०८-८१०)। उनकी प्रार्थना स्वीकार करके श्रीकृष्णका उन्हें द्वारका भेजना (सभा० ३८ । पृष्ठ ८११)। इनका मणिपर्वतको गरुडपर लादकर बलरामजी और इन्द्रके साथ स्वर्गलोकमें जाना, मेरुपर्वतके मध्यशिखरपर पहुँचकर श्रीकृष्ण द्वारा देवस्थानोंका दर्शन; फिर देवलोकमें जाकर इन्द्रभवनके निकट इनका गरुड़से उतरना, देवताओंद्वारा इनका स्वागत तथा इनका माता अदितिके चरणोंमें प्रणाम करके उन्हें उनके कुण्डल अर्पित कर देना (सभा० ३८ । पृष्ठ ८११)। देवमाता अदिति और इन्द्रपत्नी शचीद्वारा श्रीकृष्ण एवं सत्यभामाका सत्कार तथा वहाँसे लौटकर इन सबका द्वारकामें आगमन (सभा० ३८ । पृष्ठ ८१२)। इनके द्वारा मणिपर्वत (प्राग्ज्योतिषपुर) से लायी गयी धनराशिका वृष्णिवंशियोंमें वितरण (सभा० ३८ । पृष्ठ ८१८)। इन्द्रद्वारा श्रीकृष्णकी महिमाका वर्णन (सभा० ३८ । पृष्ठ ८१९)। शोणितपुरमें इनका शिवजीसे युद्ध और उनकी पराजय (सभा० ३८ । पृष्ठ ८२३)। इनके द्वारा बाणासुरकी भुजाओंका छेदन (सभा० ३८ । पृष्ठ ८२३)। इनका रुक्मीको भयभीत करना, जारूथीमें आहुति, क्राथ और शिशुपालको पराजित करना, शैव्य, दन्तवक्र तथा शतधन्वाको भी हराना; इन्द्रद्युम्न, कालयवन, कशेरुमान्का वध करना। द्युमत्सेनके साथ इनका युद्ध, महाबली गोपति और तालकेतुका इनके द्वारा वध, पाण्डय, पौण्ड्र, मत्स्य, कलिङ्ग और अङ्ग आदि अनेक देशोंके राजाओंकी एक साथ ही पराजय (सभा० ३८ । पृष्ठ ८२४)। इनके द्वारा बभ्रुकी पत्नीका उद्धार; पीठ, कंस, पैठक तथा अतिलोमा नामक असुरोंका वध; जम्भ, ऐरावत, विरूप और शम्बर आदि असुरोंका वध; भोगवतीमें वासुकि नागको जीतकर इनके द्वारा रोहिणीकुमार गदका उद्धार (सभा० ३८ । पृष्ठ ८२५)। इनकी गोदमें आते ही शिशुपालकी दो भुजाओं तथा तीसरी आँखका विनाश (सभा० ४३ । १८)। 'शिशुपालके सौ अपराध क्षमा कर दूँगा' ऐसा कहकर इनका श्रुतश्रवा (अपनी बुआ) को आश्वासन (सभा० ४३ । २४)। इनके द्वारा शिशुपालका वध (सभा० ४५ । २५)। यज्ञकी समाप्तिपर श्रीकृष्णद्वारा युधिष्ठिरका अभिनन्दन (सभा० ४५ । ३९-४३)। राजसूय यज्ञमें ऋषियोंसहित श्रीकृष्णने युधिष्ठिरका अभिषेक किया (सभा० ५३ । १५-१६)। द्रौपदीकी लाज रखनेके लिये इनका अव्यक्तरूपसे उसके चीरमें प्रवेश करके उसे बढ़ाना (सभा० ६८ । ४७)। इनके द्वारा रोती हुई द्रौपदीको आश्वासन-प्रदान (वन० १२ । १२८-१३२)। इनका जुएके दोष बताते हुए पाण्डवोंपर आयी हुई विपत्तिमें अपनी अनुपस्थितिको कारण मानना (वन० १३ अध्याय)। इनके द्वारा शाल्वके साथ युद्ध करने तथा सौभ विमानसहित उसके नष्ट करनेका संक्षिप्त वर्णन (वन० १४ अ० से २२ अध्यायतक)। इनका शाल्वके साथ भीषण युद्ध (वन० २० अध्याय)। इनका शाल्वकी मायासे मोहित होना (वन० २१ । २२)। श्रीकृष्णद्वारा सौभविमानसहित शाल्वका वध (वन० २२ । ३६-३७)। इनका पाण्डवोंसे सम्मानित हो सुभद्रा और अभिमन्युको साथ लेकर द्वारकाको प्रस्थान (वन० २२ । ४७-४८)। प्रभासक्षेत्रमें पाण्डवोंसे भेंट और सात्यकिके वचनोंका इनके द्वारा समर्थन (वन० १२० । २३-२६)। काम्यकवनमें पाण्डवोंके पास इनका आगमन और इनके द्वारा उन्हें आश्वासन (वन० १८३ । १६-३६)। मार्कण्डेयजीको कथा कहनेके लिये प्रेरित करना (वन० १८३ । ५०)। द्रौपदीके स्मरण करनेपर पाण्डवोंके आश्रममें प्रकट होना, बटलोईमेंसे सागका पत्ता खाकर त्रिलोकीको तृप्त करना (वन० २६३ । १८-२५)। उपप्लव्यनगरमें अभिमन्युके विवाहके अवसरपर जाकर युधिष्ठिरको बहुत-सा धन भेंट करना (विराट० ७२ । २४-२५)। राजा विराटकी सभामें कौरवोंके अत्याचार और पाण्डवोंके धर्म-व्यवहारका वर्णन करते हुए किसी सुयोग्य दूतको कौरवोंके यहाँ भेजनेका प्रस्ताव (उद्योग० १ अध्याय)। द्रुपदको कार्यभार सौंपकर इनका द्वारकाको प्रस्थान (उद्योग० ५ । ११)। दुर्योधन और अर्जुन दोनोंकी सहायता करनेके लिये स्वीकृति देना (उद्योग० ७ । १६)। अर्जुनका सारथ्य कर्म स्वीकार करना (उद्योग० ७ । ३८)। संजयको प्रत्युत्तर देते हुए इनके द्वारा कर्मयोगका समर्थन (उद्योग० २९ । ६-१६)। इनके द्वारा वर्णधर्मका निरूपण (उद्योग० २९ । २२-२६)। कौरवोंके अन्यायका उद्घाटन करते

हुए इनका संजयद्वारा धृतराष्ट्रको चेतावनीका संदेश (उद्योग० २९ । ३१–५८)। संजयद्वारा कौरवोंके लिये संदेश देना (उद्योग० ५९ । १८–२९) । शान्ति-स्थापनार्थ कौरवसभामें जानेके लिये उद्यत होना (उद्योग० ७२ । ७९–८१) । कौरवोंके अत्याचारोंका वर्णन करके युधिष्ठिरको युद्धके लिये प्रोत्साहन देना (उद्योग० ७३ अध्याय)। भीमसेनको उत्तेजित करना (उद्योग० ७५ अध्याय) । भीमसेनको आश्वासन देना (उद्योग० ७७ अध्याय) । अर्जुनकी बातोंका उत्तर देना (उद्योग० ७९ अध्याय) । श्रीकृष्णके द्वारा द्रौपदीको आश्वासन (उद्योग० ८२ । ४४–४९) । सात्यकिसहित रथपर आरूढ़ हो हस्तिनापुरको प्रस्थान (उद्योग० ८३ । २९)। मार्गमें इनका दिव्य महर्षियोंके दर्शन करना (उद्योग० ८३ । ६०) । हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें वृकस्थलमें विश्राम (उद्योग० ८४ । २०-२१) । श्रीकृष्णका हस्तिना-पुरमें स्वागत (उद्योग० ८९ । ५) । इनका राज-महलमें प्रवेश (उद्योग० ८९ । ११) । विदुरके गृहमें पदार्पण (उद्योग० ८९ । २२) । कुन्तीसे मिलकर उन्हें आश्वासन देना (उद्योग० ९० । ९१–९९)। दुर्योधन-से उसके निमन्त्रणको अस्वीकार करनेका कारण बताना (उद्योग० ९१ । २४–३२) । विदुरके घर इनका भोजन और विश्राम (उद्योग० ९१ । ४१)। विदुरजीसे कौरवसभामें जानेका औचित्य बतलाना (उद्योग० ९३ अध्याय) । श्रीकृष्णका कौरवसभामें प्रवेश (उद्योग० ९४ । ३३) । कौरवसभामें इनका प्रभावशाली भाषण (उद्योग० ९५ अध्याय) । दुर्योधन-को पाण्डवोंसे संधि करनेके लिये समझाना (उद्योग० १२४ । ८–६२)। दुर्योधनको फटकारना (उद्योग० १२८ । २–३१) । कंस और दैत्यदानवोंका दृष्टान्त देते हुए दुर्योधनको कैद करनेकी सलाह देना (उद्योग० १२८ । ५०) । दुर्योधनद्वारा कैद किये जानेकी बात सुनकर इनकी सिंहगर्जना (उद्योग० १३० । २४–२९)। कौरवसभामें इनके विश्वरूपका दर्शन (उद्योग० १३१ । ५–१३)। इनके द्वारा धृतराष्ट्रको अदृश्य नेत्र प्रदान करना (उद्योग० १३१ । १९) । कौरवसभासे प्रस्थान (उद्योग० १३१ । ३७-३८) । कुन्तीके पास जाकर पाण्डवोंसे कहनेके लिये संदेश पूछना (उद्योग० १३२ । ४)। कर्णके साथ मन्त्रणा तथा उपप्लव्यनगरको प्रस्थान (उद्योग० १३७ । २९-३०) । कर्णको पाण्डव-पक्षमें आनेके लिये समझाना (उद्योग० १४० । ६–२९)। कर्णसे पाण्डवोंकी निश्चित विजयका प्रतिपादन करते हुए युद्धकी तिथि निर्धारित करना (उद्योग० १४२ । १७–२०) । युधिष्ठिरसे भीष्मके वचनोंका वर्णन (उद्योग० १४७ । १६–४३) । युधिष्ठिरसे द्रोणाचार्यके वचनोंका वर्णन (उद्योग० १४८ । २–१६) । युधिष्ठिरसे विदुरके वचनोंका वर्णन (उद्योग० १४८ । १८–२६) । युधिष्ठिरसे गान्धारीके वचनोंका वर्णन (उद्योग० १४८ । २९–३६) । युधिष्ठिरसे धृत-राष्ट्रके वचनोंका वर्णन (उद्योग० १४९ अध्याय) । कौरवसभामें अपने किये हुए प्रयत्नोंका वर्णन करके दण्डपर ही जोर देना (उद्योग० १५० । १८) । धृष्ट-द्युम्नको प्रधान सेनापति बनानेका समर्थन (उद्योग० १५१ । ४९) । युधिष्ठिरको युद्ध करना ही कर्तव्य बतलाना (उद्योग० १५४ । १५) । दुर्योधनके संदेश-का उत्तर देना (उद्योग० १६२ । ६ उद्योग० १६२ । ५७–६३) । कौरवसेनाको मारनेके लिये अर्जुनको आदेश (भीष्म० २२ । १६) । अर्जुनको दुर्गाकी स्तुति करनेके लिये कहना (भीष्म० २३ । २) । अर्जुनको गीताका उपदेश देना (भीष्म० २६ । ११ से ४२ अध्यायतक) । कुरुक्षेत्रमें इनके द्वारा पाञ्च-जन्य नामक शङ्खका बजाया जाना (भीष्म० २५ । १५) । सांख्ययोगका वर्णन (भीष्म० २६ । ११–३०) । अज्ञानी और ज्ञानवान्‌के लक्षण तथा रागद्वेषसे रहित होकर कर्म करनेके लिये प्रेरणा (भीष्म० २७ । २५–३५) । फलसहित पृथक्-पृथक् यज्ञोंका कथन और ज्ञानकी महिमा (भीष्म० २८ । २४–४२) । सांख्ययोगी और निष्काम कर्मयोगीके लक्षण तथा ज्ञानयोगका वर्णन (भीष्म० २९ । ७–२६) । योगभ्रष्ट पुरुषकी गति और ध्यानयोगीकी महिमा (भीष्म० ३० । ३७–४७) । आसुरी स्वभाववालोंकी निन्दा और भगवद्भक्तोंकी प्रशंसा तथा अन्य देवताओंकी उपा-सनाका वर्णन (भीष्म० ३१ । १३–२३) । ब्रह्म, अध्यात्म और कर्मादिका वर्णन (भीष्म० ३२ । ३–७)। सकाम और निष्काम उपासनाका फल और निष्काम भगवद्भक्तिकी महिमा (भीष्म० ३३।२०–३४) । श्रीकृष्ण-द्वारा अपनी विभूतियों और योगशक्तिका कथन (भीष्म० ३४ । १९–४२) । इनके द्वारा अपने विश्वरूपका वर्णन और फलसहित अनन्यभक्तिका कथन (भीष्म० ३५ । ५–१८; ५५) । साकार-निराकारके उपासकों और भगवत्प्राप्तिके उपाय तथा भगवत्प्राप्त पुरुषोंके लक्षणोंका वर्णन (भीष्म० ३६ । १–२०) । क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ तथा ज्ञानसहित प्रकृति-पुरुषका वर्णन (भीष्म० ३७ । १–३४) । सत्, रज और तम तथा भगवत्प्राप्तिके उपाय और गुणातीत पुरुषके लक्षण (भीष्म० ३८ । ५–२७) । जीवात्माके विषय, प्रभावसहित परमेश्वरके स्वरूप तथा क्षर-अक्षर तथा पुरुषोत्तमका वर्णन (भीष्म० ३९ ।

७–२०)। दैवी और आसुरी सम्पदा तथा आसुरी सम्पदावालोंके लक्षण और उनके अधोगतिका वर्णन (भीष्म० ४० । १–२०) । आहार, यज्ञ, तप और दानके पृथक्-पृथक् भेद (भीष्म० ४१ । ७–२२) । ज्ञान, कर्म, कर्ता, बुद्धि, धृति और सुखके पृथक्-पृथक् भेद (भीष्म० ४२ । १९–४०) । कर्णको पाण्डवोंके पक्षमें आनेके लिये समझाना (भीष्म० ४३।९–११)। भीष्मके पराक्रमसे चिन्तित हुए युधिष्ठिरको आश्वासन देना (भीष्म० ५० । २६–३०) । चक्र लेकर भीष्मको मारनेके लिये उद्यत होना (भीष्म० ५९ । ८८-८९) । भीष्मद्वारा इनकी महिमाका वर्णन (भीष्म० ६५। २५ से ६८ अ० तक) । भीष्मको मारनेके लिये अर्जुनको चेतावनी (भीष्म० १०६ । ३३–३७) । चाबुक लेकर भीष्मके वधके लिये दौड़ना (भीष्म० १०६ । ५५–५७) । भीष्मके पराक्रमसे दुःखित युधिष्ठिर-को सान्त्वना देना (भीष्म० १०७ । २६–४०) । भीष्मके पास चलनेके लिये युधिष्ठिरके प्रस्तावकी स्वीकृति (भीष्म० १०७ । ५२–५५) । भीष्म-वधके लिये उद्यत न होनेवाले अर्जुनको समझाना (भीष्म० १०७ । ९६–१०२) । भीष्मका वध करनेके लिये अर्जुनको प्रेरित करना (भीष्म० ११८ । ३५-३६) । भीष्मके मारे जानेपर युधिष्ठिरसे वार्तालाप (भीष्म० १२० । ६६-६७) । धृतराष्ट्रद्वारा इनकी लीलाओंसहित महिमा-का वर्णन (द्रोण० ११ । १–४०) । भगदत्तद्वारा अर्जुनपर चलाये हुए वैष्णवास्त्रको अपनी छातीपर लेना (द्रोण० २९ । १८) । अर्जुनके पूछनेपर वैष्णवास्त्रका रहस्य बताकर भगदत्तको मारनेका आदेश देना (द्रोण० २९ । २५- ३४; ४४-४५) । अभिमन्यु-वधसे दुखी होकर विलाप करते हुए अर्जुनको शान्त करना (द्रोण० ७२ । ६६–७४) । अर्जुनसे जयद्रथकी रक्षाका समाचार बताना (द्रोण० ७५ अ० में) । पुत्रशोकसे दुखी सुभद्राको आश्वासन देना (द्रोण० ७७ । १२–२६) । विलाप करती हुई द्रौपदी, सुभद्रा और उत्तराको आश्वासन देना (द्रोण० ७८ । ४०–४२) । अर्जुनकी विजयके लिये समयपर रथ तैयार करके लानेके लिये दारुकको आदेश देना (द्रोण० ७९ । २१–४२) । सोते हुए अर्जुनको स्वप्नमें दर्शन देना और उनसे वार्तालाप करके शिवजीके पास ले जाना (द्रोण० ८० । २–४९) । इनके द्वारा भगवान् शिवकी स्तुति (द्रोण० ८० । ५५–६४) । जयद्रथ-वधके लिये युधिष्ठिरको आश्वासन (द्रोण० ८३ । २१–२८) । इनके द्वारा शङ्ख बजाया जाना (द्रोण० ८८ । २१) । द्रोणाचार्यको छोड़कर आगे बढ़नेके लिये अर्जुनको प्रेरणा (द्रोण० ९१ । ३०-३१) । घोड़ोंको पिलानेके लिये जल प्रकट करनेके हेतु अर्जुनको प्रेरित करना (द्रोण० ९९ । ५८) । इनके द्वारा संग्रामभूमिमें अश्वपरिचर्या (द्रोण० १०० । १०–१६) । अर्जुनको दुर्योधनका वध करनेके लिये प्रोत्साहन (द्रोण० १०२ । १–१८) । दुर्योधनपर बाणोंको विफल होते देख अर्जुनको उपालम्भ (द्रोण० १०३ । ६–१०) । अर्जुनको सात्यकिके आगमनकी सूचना देना (द्रोण० १४१ । १३–२५) । भूरिश्रवाके चंगुलसे सात्यकिको छुड़ानेके लिये अर्जुनको प्रेरित करना (द्रोण० १४२ । ६४-६५) । भूरिश्रवाको मुक्त होनेका वरदान (द्रोण० १४३ । ४८) । मायाद्वारा अन्धकारकी सृष्टि करके जयद्रथ-वधके लिये अर्जुनको प्रेरित करना (द्रोण० १४६ । ६२–७२) । जयद्रथके सिरको उसके पिताकी गोदमें डालनेके लिये कहना और उसका रहस्य बताना (द्रोण० १४६ । १०४–११९) । जयद्रथ-वधके पश्चात् मायारूपी अन्धकारको समेट लेना (द्रोण० १४६ । १३२) । कर्णके साथ अर्जुनको युद्ध करनेसे मना करना (द्रोण० १४७ । ३३–३६) । जयद्रथ-वधके बाद अर्जुनको बधाई देना (द्रोण० १४८ । २५–३२) । अर्जुनको संग्रामका दृश्य दिखाते हुए युधिष्ठिरके पास ले जाना (द्रोण० १४८ । ३६–५९) । जयद्रथ-वधके बाद युधिष्ठिरको विजयका समाचार बताना (द्रोण० १४९ । २) । युधिष्ठिरके क्रोधको ही शत्रु-वधमें कारण बताना (द्रोण० १४९ । ४५–५१) । युधिष्ठिरको द्रोणाचार्यके साथ युद्ध करनेसे रोकना (द्रोण० १६२ । ४७–५१) । आधी रातके समय कर्णके साथ अर्जुनके युद्धका अनौचित्य बताकर घटोत्कचको भेजनेके लिये अनुमति देना (१७३ । ३५–४१) । घटोत्कचको कर्णके साथ युद्ध करनेके लिये आदेश देना (द्रोण० १७३ । ४५–५८) । अर्जुनसे भिन्न-भिन्न महारथियोंका सामना करनेके लिये व्यवस्था बताना (द्रोण० १७७ । ३३–३६) । अलायुधका वध करनेके लिये घटोत्कचको प्रेरित करना (द्रोण० १७८ । २-३) । अर्जुनद्वारा घटोत्कचके वधसे प्रसन्नताका कारण पूछे जानेपर कर्णकी प्रशंसा करते हुए अपनी प्रसन्नताका कारण बताना (द्रोण० १८० । ११–३३) । अर्जुनसे जरासंध आदि धर्मद्रोहियोंके वधका कारण बताना (द्रोण० १८१ । २–३३) । सात्यकिसे कर्णद्वारा अर्जुनपर शक्ति न छोड़े जानेका कारण बताना (द्रोण० १८२ । ३५–४६) । घटोत्कच-वधसे दुखी युधिष्ठिरको समझाना (द्रोण० १८३ । २४–२६) । द्रोणाचार्यके वधकी युक्ति बताना (द्रोण० १९० । १०–१२) । युधिष्ठिरको छलपूर्वक अश्वत्थामाके मारे जानेकी झूठी बात कहनेको विवश

करना (द्रोण० १९० । ४६-४७) । नारायणास्त्रको शान्त करनेका उपाय बताना (द्रोण० १९९ । ३८-४२)। भीमसेनको रथसे खींचकर नारायणास्त्रको शान्त करना (द्रोण० २०० । १५-१७)। अर्जुनको युद्धस्थलका भीषण दृश्य दिखाना (कर्ण० १९ । २८-५३)। अश्वत्थामाके साथ युद्धमें शिथिल देखकर अर्जुनको चेतावनी देना (कर्ण० ५६ । १३५-१३८) । अर्जुनको युद्ध-भूमिका दृश्य दिखाते हुए युधिष्ठिरके पास ले जाना (कर्ण० ५८ । १०-४१) । अर्जुनसे धृष्टद्युम्नको अश्वत्थामाके चंगुलसे छुड़ानेको कहना (कर्ण० ५९ । ४७-४९)। अर्जुनसे दुर्योधन और कर्णके पराक्रमका वर्णन करके कर्णको मारनेके लिये उन्हें उत्साहित करना और भीमसेनके पराक्रमका वर्णन करना (कर्ण० ६० अध्याय)। घायल युधिष्ठिरको देखनेके बहाने अर्जुनको कर्णके पाससे हटा लेना (कर्ण० ६४ । ६६)। अर्जुनके साथ युधिष्ठिरके पास जाकर उनके चरणोंमें प्रणाम करना (कर्ण० ६५ । १७)। युधिष्ठिरके वधसे अर्जुनको रोकनेके प्रसंगमें बलाक व्याध और कौशिक ब्राह्मणकी कथा कहकर समझाना और युधिष्ठिरको 'तू' शब्द कहनेमात्रसे अर्जुनकी प्रतिज्ञा-पूर्ति बताना (कर्ण० ६९ अध्याय)। अर्जुनको आत्महत्यासे बचाना (कर्ण० ७० । २३-२४)। युधिष्ठिरको प्रसन्न करना (कर्ण० ७० । ४९-५५)। अर्जुनको उपदेश (कर्ण० ७१ । ३-१२)। कर्ण-वधके लिये अर्जुनको प्रोत्साहन (कर्ण० ७२ । १७ से ७३ अध्याय-तक)। कर्ण-वधके लिये अर्जुनको प्रोत्साहन (कर्ण० ८६ । २-१६)। कर्णवधके लिये अर्जुनको प्रोत्साहन (कर्ण० ८९ । ४३-४८) । कर्णके सर्पमुख बाणसे अर्जुनकी रक्षा करना (कर्ण० ९० । २९-३१)। धर्मकी दुहाई देनेपर कर्णको चेतावनी देना (कर्ण० ९१ । १-१४)। कर्ण-वधका शुभ समाचार सुनानेके लिये अर्जुनसे युधिष्ठिरके पास चलनेको कहना और सैनिकोंको युद्धकी व्यवस्थाका आदेश देना (कर्ण० ९६ । २-११) । युधिष्ठिरके पास पहुँचकर कर्ण-वधका समाचार सुनाना (कर्ण० ९६ । १८-२३) । शल्यका वध करनेके लिये युधिष्ठिरको उत्साहित करना (शल्य० ७ । २५-४१)। अर्जुनसे दुर्योधनको मारनेके लिये कहना (शल्य० २७ । ३-१२)। युधिष्ठिरको क्रियात्मक प्रयोगद्वारा दुर्योधनको मारनेके लिये सलाह देना (शल्य० ३१ । ६-१५) । युधिष्ठिरको फटकारना (शल्य० ३३ । २-१६)। अर्जुनसे भीमसेन और दुर्योधनके बलाबलका वर्णन करके मायाद्वारा दुर्योधनको मारनेकी सलाह देना (शल्य० ५८ । ३-२०)। दुर्योधनके वधसे कुपित बलरामजीको समझाना (शल्य० ६० । १४-२५के बादतक)। भीमसेनद्वारा किये जाते हुए अधर्मपूर्ण बर्तावको आप चुपचाप देखते क्यों हैं ? उन्हें रोकते क्यों नहीं ? यह युधिष्ठिरसे पूछना (शल्य० ६० । ३३-३४)। इनके द्वारा दुर्योधनपर आक्षेप (शल्य० ६१ । १८-२३)। दुर्योधनद्वारा किये गये आक्षेपोंका इनकी ओरसे उत्तर (शल्य० ६१ । ३९-५०)। इनके द्वारा पाण्डवोंका समाधान (शल्य० ६१ । ६१-६९)। इनका अर्जुनको रथसे उतरनेके लिये आदेश देना (शल्य० ६२ । ९-१०)। अर्जुनद्वारा रथके दग्ध होनेका कारण पूछनेपर इनका उत्तर (शल्य० ६२ । १८-१९)। इनके द्वारा युधिष्ठिरका अभिनन्दन (शल्य० ६२ । २१-२७)। युधिष्ठिरके भेजनेसे हस्तिनापुरको जाना (शल्य० ६२ । ४५ शल्य० ६३ । ३४) । धृतराष्ट्रको आश्वासन देना (शल्य० ६३ । ४०-५८)। गान्धारीको प्रबोधन (शल्य० ६३ । ५९-६५)। हस्तिना-पुरसे शिविरको लौटना (शल्य० ६३ । ७८)। अश्वत्थामाकी चपलता और क्रूरताके प्रसङ्गमें सुदर्शनचक्रके माँगनेकी बात सुनाते हुए युधिष्ठिरको उससे भीमसेनकी रक्षा करनेके लिये प्रयत्न करनेका आदेश देना (सौप्तिक० १२ अध्याय)। अर्जुन और युधिष्ठिरको साथ लेकर भीमसेनकी रक्षाके लिये जाना (सौप्तिक० १३ । १-९)। अर्जुनको ब्रह्मास्त्र प्रकट करनेका आदेश देना (सौप्तिक० १४ । २-३)। इनके द्वारा अश्वत्थामाको शाप (सौप्तिक० १६ । ८-१६) । महादेवजीकी महिमाका प्रतिपादन (सौप्तिक० १७ । ६-२६)। इनका धृतराष्ट्रको समझाना (स्त्री० १२ । २३-३०)। धृतराष्ट्रको फटकारकर उनका क्रोध शान्त करना (स्त्री० १३ । २-११)। गान्धारीद्वारा अपनेको दिये गये शापका समर्थन (स्त्री० २५ । ४८-४९)। गान्धारीको सान्त्वना देना (स्त्री० २६ । १-५)। नारद-संजय-संवादरूपमें षोडशराजकीयोपाख्यान सुनाकर युधिष्ठिर-को समझाना (शान्ति० २९ अध्याय)। युधिष्ठिरके पूछनेपर नारद-पर्वत-उपाख्यान सुनाना (शान्ति० ३० अध्याय)। व्यासजीकी बात माननेके लिये युधिष्ठिरको समझाना (शान्ति० ३७ । २१-२५)। युधिष्ठिरसे चार्वाकको प्राप्त हुए वर आदिका वर्णन करना (शान्ति० ३९ अध्याय) । भीष्मकी प्रशंसा और युधिष्ठिरको उनके पास चलनेका आदेश (शान्ति० ४६ । ११-२३)। युधिष्ठिरको परशुरामोपाख्यान सुनाना (शान्ति० ४९ अध्याय) । भीष्मजीके गुण-प्रभावका सविस्तर वर्णन करते हुए उनसे युधिष्ठिरका शोक दूर करनेके लिये कहना (शान्ति० ५० । १३-३८)। भीष्मकी प्रशंसा करते हुए युधिष्ठिरको धर्मोपदेश करनेका आदेश

(शान्ति० ५१ । १०–१८) । धर्मोपदेशके लिये भीष्मको वरदान (शान्ति० ५२ । १४–२१) । इनकी प्रातश्चर्या (शान्ति० ५३ । १–९) । भीष्मद्वारा ही धर्मोपदेश होनेका कारण बताते हुए उन्हें उपदेश करनेको कहना (शान्ति० ५४ । २५–३९) । भीष्मसे युधिष्ठिरके लज्जित और भयभीत होनेका कारण बताना (शान्ति० ५५ । ११–१३) । जाति-भाइयोंमें फूट न पड़नेके विषयमें नारदजीसे पूछना (शान्ति० ८१ अध्याय) । इन्हींसे सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्तिका वर्णन करना (शान्ति० २०७ अध्याय) । उग्रसेनसे नारदजीके गुणोंका वर्णन करना (शान्ति० २३० । ४–२४) । अर्जुनको अपने नामोंकी व्युत्पत्ति बताना (शान्ति० ३४१ । ८–५१) । अर्जुनसे सृष्टिकी प्रारम्भिक अवस्थाका वर्णन करना (शान्ति० ३४२ । ३–२१) । अर्जुनसे अपने नामोंकी व्याख्या करना (शान्ति० ३४२ ।६७–११६) । युधिष्ठिरसे महादेवजीके माहात्म्यकी कथाके प्रसंगमें उपमन्युकी कथा सुनाना और अपनी तपस्या तथा दर्शन पानेका वृत्तान्त बताना (अनु० १४ अध्याय) । भगवती उमासे आठ वरदान माँगना (अनु० १५ । ६) । उपमन्युके साथ शिवजीके विषयमें वार्तालाप (अनु० १६ अध्याय) । इनके द्वारा भगवान् शिवकी महिमाका वर्णन (अनु० १८ । ६१–८३) । नारदजीसे पूजनीय पुरुषोंके लक्षण पूछना (अनु० ३१ । २–४) । पृथ्वीसे गृहस्थोंके पापनाशक अनुष्ठानके विषयमें प्रश्न करना (अनु० ३४ । २१) । गिरगिटयोनिसे नृगका उद्धार करना (अनु० ७० । ७) । नृगसे उनकी दुर्गतिका कारण पूछना (अनु० ७० । ८-९) । ब्राह्मणका धन न लेनेके विषयमें घोषणा करना (अनु० ७० । ३१) । पृथ्वी देवीसे गृहस्थधर्मके विषयमें पूछना (अनु० ९७ । ४) । पर्वतको जलाकर पुनः उसे प्रकृतिस्थ करना (अनु० १३९ । १६–२१)। ऋषियोंके पूछनेपर इसका रहस्य बताना (अनु० १३९ । ३०–४४) । भीष्मजीद्वारा इनकी महिमाका वर्णन (अनु० १५८ अध्याय) । युधिष्ठिरको ब्राह्मणकी महिमा सुनानेके प्रसंगमें प्रद्युम्नके पूछनेपर दुर्वासाका चरित्र कहना (अनु० १५९ अध्याय) । युधिष्ठिरके प्रति शिवजीकी महिमाका वर्णन करना (अनु० १६० अध्याय से १६१ अध्यायतक) । भीष्मको देहत्यागके लिये अनुमति प्रदान करना (अनु० १६७ । ४६-४७) । भीष्मके लिये शोक करती हुई गङ्गाको आश्वासन देना (अनु० १६८ । ३०–३५) । शोकाकुल युधिष्ठिरको समझाना (आश्व० २ । २–८) । युधिष्ठिरको विविध दृष्टान्तोंद्वारा समझाना (आश्व० ११ अ० से १३ अध्यायतक) । अर्जुनसे अपने द्वारका जानेका प्रस्ताव करना (आश्व० १५ । १२–३४) । अर्जुनके पूछनेपर पुनः गीताका ज्ञान सिद्ध महर्षि और काश्यपके संवादरूपसे सुनाना (आश्व० १६ । ९ से १८ अध्याय तक) । पुनः ब्राह्मणगीताके द्वारा ज्ञानोपदेश करना (आश्व० २० अध्यायसे ३४ अध्यायतक) । अर्जुनके प्रति गुरु-शिष्यके संवादरूपमें ब्रह्मा और महर्षियोंके प्रश्नोत्तररूप मोक्षधर्मका वर्णन (आश्व० ३५ अध्यायसे ५१ अध्यायतक) । युधिष्ठिरकी आज्ञा पाकर सुभद्रा और सात्यकिके साथ द्वारकाको प्रस्थान (आश्व० ५२ । ५४–५८) । उत्तङ्क मुनिके पूछनेपर कौरवों-पाण्डवोंका समाचार सुनाना (आश्व० ५३ । १५–१८) । उत्तङ्क मुनिसे अध्यात्मतत्त्वका वर्णन करना (आश्व० ५४ । २–१९) । उत्तङ्क मुनिको विश्वरूपका दर्शन कराना (आश्व० ५५ । ४–६) । उत्तङ्क मुनिको दर्शन देकर चाण्डालरूपधारी इन्द्रका रहस्य बताते हुए मरुदेशमें उत्तङ्क नामक मेघोंद्वारा वर्षा होनेका वर देना (आश्व० ५५ । २६–३७) । रैवतक पर्वतपर होनेवाले महोत्सवमें सम्मिलित होना (आश्व० ५९ । ३-४) । उस महोत्सवसे अपने महलमें पधारना (आश्व० ५९ । १६) । वसुदेवजीके पूछनेपर महाभारतयुद्धका वृत्तान्त सुनाना (आश्व० ६० । ६–३६) । वसुदेवजीके पूछनेपर अभिमन्यु-वधका वृत्तान्त सुनाना (आश्व० ६१ । १५–४२) । इनके द्वारा अभिमन्युका श्राद्ध-कर्म (आश्व० ६२ । २–५) । इनका हस्तिनापुरमें आगमन और उत्तराके मृतबालकको जिलानेके लिये कुन्तीकी इनसे प्रार्थना (आश्व० ६६ अध्याय) । उत्तराके मृतबालकको इनके द्वारा जीवनदान (आश्व० ६९ । १६–२४) । उत्तराके उक्त शिशुका नामकरण (आश्व० ७० । ११-१२) । श्रीकृष्णका युधिष्ठिरको अश्वमेध यज्ञके लिये सम्मति देना (आश्व० ७१ । २३–२६) । श्रीकृष्णका बलराम आदिके साथ आगमन और युधिष्ठिरको अर्जुनका संदेश सुनाना तथा उनके अधिक कष्ट उठानेका कारण बताना (आश्व० ८६ । १३–२१) । ब्राह्मणोंको दक्षिणा देनेके सम्बन्धमें युधिष्ठिरको व्यासजीकी आज्ञा माननेके लिये कहना (आश्व० ८९ । १८-१९) । इनका युधिष्ठिरसे विदा लेकर बन्धुओंसहित द्वारकाको लौटना (आश्व० ८९ । ३७-३८) । भगवान् श्रीकृष्णद्वारा युधिष्ठिरको वैष्णवधर्म-सम्बन्धी विविध विषयोंका उपदेश (आश्व० ९२ । दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ६३०८ से ६३५२ तक) । शापकी बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्णका वृष्णिवंशियोंको 'ऐसी ही भवितव्यता है' ऐसा कहकर नगरमें प्रवेश करना (मौसल० १ । २३-२४) । मदिरानिर्माण-निषेधकी आज्ञा जारी करना (मौसल० १ । २९–३१) ।

द्वारकामें भयंकर उत्पात देखकर भगवान् श्रीकृष्णका यदुवंशियोंको तीर्थयात्राके लिये आज्ञा देना (मौसल० २ अध्याय)। सात्यकि और प्रद्युम्नको मारा हुआ देख श्रीकृष्णका कुपित हो एक मुट्ठी एरका उठाना और भोज तथा अन्धक कुलके प्रमुख योधाओंका संहार करना (मौसल० ३। ३५–३७)। साम्ब और गदके मारे जानेपर कुपित हुए श्रीकृष्णद्वारा समस्त यादवोंका संहार (मौसल० ३। ४४–४७)। श्रीकृष्णका बलरामजीको एक वृक्षके नीचे ध्यान लगाये बैठे हुए देखना और दारुकको अर्जुनके पास भेजकर संदेश कहलाना (मौसल० ४। १–३)। इनका बलरामजीसे अपनी प्रतीक्षाके लिये कहकर स्त्रियोंको कुटुम्बी जनोंके संरक्षणमें सौंपनेके लिये द्वारका जाना और पितासे अर्जुनके आनेतक स्त्रियोंका संरक्षण करनेकी बात कहकर स्वयं तपके लिये बलरामजीके पास जानेका विचार प्रकट करना (मौसल० ४। ७–१०)। उनका रोती हुई स्त्रियोंको आश्वासन दे अर्जुनके आनेकी बात बताकर चल देना और वनके एकान्त प्रदेशमें बलरामजीके पास जाकर उनके मुखसे एक विशाल सर्पको निकलकर समुद्रकी ओर जाते देखना (मौसल० ४। १२–१३)। बलरामजीके परमधाम-गमनके पश्चात् उनका वनमें विचरना ! बीती बातों और घटनाओंको याद करके उनपर विचार करना। गान्धारी और दुर्वासाके कथनको भी ध्यानमें लाना और परम-धामको जानेके लिये किसी निमित्तकी प्रतीक्षा करते हुए योगयुक्त होकर पृथ्वीपर लेटना, जरानामक व्याधके बाणसे तलुओंमें घाव हो जानेपर अपने तेजसे प्रकाशित होते हुए ऊर्ध्वलोकको जाना, वहाँ उनका स्वागत होना और इन्द्र आदि देवताओंसे मिलना (मौसल० ४। १८–२८)। अर्जुनद्वारा इनके शरीरका दाह-संस्कार होना (मौसल० ७। ३१)। दिव्यधाममें इनकी नारायणरूपसे स्थिति (स्वर्गा० ५। २४–२६)। इनकी पटरानियोंमेंसे रुक्मिणी, गान्धारी, शैव्या, हैमवती तथा जाम्बवती—इन पाँचोंने पतिलोककी कामनासे अग्निमें प्रवेश किया। सत्यभामा तथा अन्य दो देवियोंने तपस्याका निश्चय करके वनमें प्रवेश किया (मौसल० ७। ७३–७४)। शेष सोलह हजार रानियाँ दस्युओंके हाथोंसे छूटकर सरस्वतीके जलमें कूद पड़ीं और स्वर्गमें भगवान्‌से जा मिलीं (स्वर्गा० ५। २५)। (इनकी सभी रानियोंसे दस-दस पुत्र उत्पन्न हुए थे। इनमें प्रद्युम्न, साम्ब, चारुदेष्ण आदि प्रधान हैं।)

महाभारतमें आये हुए कृष्णके नाम—अच्युत, अधिदेव, अधोक्षज, आदिदेव, अज, अमध्य, अनादि, अनादिमध्यपर्यन्त, अनादिनिधन, अनाद्य, अनन्त, अन्धकवृष्णिनाथ, असित, आत्मा, अव्यक्त, अव्यय, भोजराजन्यवर्धन, भूतेश्वर, भूतपति भूतात्मा, भूतेश, चक्रधर, चक्रधारी, चक्रगदाभृत्, चक्रगदाधर, चक्रगदा-पाणि, चक्रपाणि, चक्रायुध, शैव्यसुग्रीववाहन, शम्भु, शङ्ख-चक्रगदाधर, शङ्खचक्रगदाहस्त, शङ्खचक्रगदापाणि, शङ्खचक्रासिपाणि, शार्ङ्गचक्रगदाधर, शार्ङ्गचक्रासिपाणि, शार्ङ्गधनुर्धर, शार्ङ्गधन्वा, शार्ङ्गगदापाणि, शार्ङ्गगदासि-पाणि, शार्ङ्गी, शौरि, शूलभृत्, शूली, दाशार्ह, दशार्ह-भर्ता, दशार्हाधिपति, दाशार्हकुलवर्धन, दाशार्हनन्दन, दाशार्हनाथ, दाशार्हसिंह, दाशार्हवीर, दामोदर, देवदेव, देवदेवेश, देवदेवेश्वर, देवकीमातः, देवकीनन्दन, देवकी-पुत्र, देवकीसुत, देवकीतनय, गदाग्रज, गदपूर्वज, गरुडध्वज, गोपाल, गोपेन्द्र, गोपीजनप्रिय, गोविन्द, हलधरानुज, हरि, हृषीकेश, जनार्दन, कंसकेशिनिषूदन, कंसनिषूदन, कौस्तुभभूषण, केशव, केशिहन्, केशिहन्ता, केशिनिषूदन, केशिसूदन, महाबाहु, पीतवासा, रमानाथ, रामानुज, सङ्कर्षणानुज, सर्वदाशार्हहर्ता, सर्वनागरिपुध्वज, सर्वयादवनन्दन, सत्य, सुपर्णकेतु, तार्क्ष्यध्वज, तार्क्ष्यलक्षण, त्रैलोक्यनाथ, त्रियुग, वासुदेव, वसुदेवपुत्र, वसुदेवसुत, वसुदेवात्मज, व्रजनाथ, वृष्णिशार्दूल, वृष्णिश्रेष्ठ, वृष्णि-कुलोद्वह, वृष्णिनन्दन, वृष्णिपति, वृष्णिप्रवर, वृष्णिप्रवीर, वृष्णिपुङ्गव, वृष्णिसत्तम, वृष्णिसिंह, वृष्णिजीव, वृष्ण्यन्धकपति, वृष्ण्यन्धकोत्तम, यादव, यादवशार्दूल, यादवश्रेष्ठ, यादवाग्र्य, यादवनन्दन, यादवेश्वर, यदुशार्दूल, यदुश्रेष्ठ, यदूद्वह, यदुकुलश्रेष्ठ, यदुकुलनन्दन, यदु-कुलोद्वह, यदुनन्दन, यदुप्रवीर, यदुपुङ्गव, यदुसुखावह, यदूत्तम, यदुवंशविवर्धन, यदुवर, यदुवीर, यदुवीर-मुख्य, योगेश्वर, योगीश, योगीश्वर, योगी इत्यादि।

कृष्णकर्णी—स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६। २४)।

कृष्णकेश—स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५। ६१)।

कृष्णद्वैपायन—महर्षि पराशरके पुत्र—सत्यवतीनन्दन व्यास (आदि० १। १०, ५५)। हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें श्रीकृष्णसे भेंट (उद्योग० ८३। ६४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) (विशेष—देखिये व्यास)।

कृष्णपर्वत—कुशद्वीपका एक पर्वत, जो 'गौर' नामक मैनसिलके पर्वतसे पश्चिमभागमें स्थित एवं नारायणको विशेष प्रिय है (भीष्म० १२। ४)।

कृष्णवर्त्मा—अग्निदेवका एक नाम, जिसका आस्तीकने जनमेजयके सर्पसत्रमें अग्निकी स्तुति करते हुए उच्चारण किया था (आदि० ५५। १०)।

कृष्णवेणा—दक्षिण भारतकी एक पवित्र नदी, जिसके

देवकुण्ड (जातिस्मर हृद) में स्नानसे पूर्वजन्मकी स्मृति होती है(सभा० ९ । २०; वन० ८५ । ३७; भीष्म० ९ । २८) । यह अग्निका उत्पत्ति-स्थान है (वन० २२२ । २६) ।

कृष्णा—(१) द्रौपदी, जो यज्ञवेदीसे उत्पन्न हुई थी (आदि० ६३ । ११०) (विशेष—देखिये द्रौपदी) । (२) एक नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । ३३) । (३) दुर्गाजीका एक नाम (विराट० ६ । ९) । (४) स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २२) ।

कृष्णात्रेय—एक प्राचीन ऋषि, जिन्होंने तपोबलद्वारा चिकित्साशास्त्र (आयुर्वेद) का सबसे पहले ज्ञान प्राप्त किया (शान्ति० २१० । २१) ।

कृष्णानुभौतिक—एक महर्षि, जो उत्तरायणके आरम्भमें शरशय्याशायी भीष्मजीको देखनेके लिये पधारे थे (शान्ति० ४७ । ११) ।

कृष्णौजा—स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७५) ।

केकय—(१) एक भारतीय जनपद (व्यास और शतलजके बीचका भूभाग) (भीष्म० ९ । ४८) । दशरथपत्नी कैकेयीके पिताका राज्य यहीं था, इसीसे वह कैकेयी कहलाती थी (वन० २७७ । १५) । (२) (कैकय अथवा कैकेय) केकय देशके निवासी या अधिपति, राजा एवं राजकुमार विशेषतः केकयदेशीय पाँच राजकुमार, जो परस्पर भाई थे और पाण्डवपक्षमें सम्मिलित थे (वन० १२० । २६) । इनका द्रोणाचार्यके साथ युद्ध (द्रोण० २१ । २३–२९) । ये द्रोणाचार्यद्वारा मारे गये थे (स्त्री० २५ । १५) । इनका दाह-संस्कार (स्त्री० २६ । ३६) । (३) दो केकय-राजकुमार विन्द और अनुविन्द दुर्योधनके पक्षमें थे, जो सात्यकिद्वारा मारे गये थे (कर्ण० १३ । २०–३६) । (४) एक सूतराज, जो इसी (केकय) नामसे विख्यात था । इसकी दो मालव-कन्याएँ पत्नियाँ थीं—बड़ी मालवीसे कीचक-उपकीचक पैदा हुए थे और छोटीसे कैकेयी सुदेष्णाका जन्म हुआ था, जो राजा विराटसे ब्याही गयी थी (विराट० १६ । दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ १८९३) ।

केतु—(१) एक ग्रह, एक ही राहुके शिरश्छेदसे सिर और धड़ अलग-अलग हो गये थे (आदि० १९ । ६–८) । यह राहुके शरीरका धड़ या पुच्छभाग माना गया है । अर्जुन और कर्णके ध्वजकी उपमा राहु और केतुसे दी गयी है (कर्ण० ८७ । ९२) । (२) एक प्राचीन ऋषि, इन्हें स्वाध्यायद्वारा स्वर्गकी प्राप्ति (शान्ति० २६ । ७) । (३) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । ३८) ।

केतुमान्—(१) एक दानव, कश्यपपत्नी दनुका पुत्र (आदि० ६५ । २४) । यही 'अमितौजा' नामक पाञ्चाल क्षत्रिय वीरके रूपमें उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ११) । 'अमितौजा' पाण्डवपक्षका महारथी वीर था । (२) युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होनेवाले एक राजा (सभा० ४ । २७) । कलिङ्गराज श्रुतायुधका मित्र । कौरवपक्षीय योद्धा (भीष्म० १७ । ३२) । भीमसेनके साथ युद्ध और इनके द्वारा इसका वध (भीष्म० ५४ । ७७) । (३) युधिष्ठिरकी सभाको सुशोभित करनेवाले एक नरेश, जो पूर्वोक्त 'केतुमान्' से भिन्न थे (सभा० ४ । ३२) । ये पाण्डवपक्षके योद्धा थे, धृतराष्ट्रद्वारा इनकी वीरताका वर्णन (द्रोण० १० । ४४) । (४) द्वारकापुरीमें भगवान् श्रीकृष्णके एक प्रासादका नाम, जिसमें भगवान्की पत्नी सुदत्ताजी रहती थीं । (सभा० ३८।२९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ,पृष्ठ ८१५, कालम २) ।

केतुमाल—जम्बूद्वीपके नौ वर्षोंमेंसे एक, जो देवोपम पुरुषों और सुन्दरी स्त्रियोंकी निवासभूमि था, इसे अर्जुनने जीता था (सभा० २८ । ६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । यह द्वीप या वर्ष मेरुपर्वतके पश्चिम भागमें है, यहीं जम्बूखण्ड प्रदेश है, जहाँके निवासी दस हजार वर्षोंकी आयुवाले होते हैं (भीष्म० ६ । १३, ३१-३२) । यहाँके पुरुष सुनहले रंगके और स्त्रियाँ अप्सराओंके समान सुन्दरी होती हैं । इन्हें कभी रोग-शोक नहीं होता (भीष्म० ६ । ३२-३३) ।

केतुमाला—पश्चिममें जम्बूमार्गके अन्तमें एक तीर्थ (वन० ८९ । १५) ।

केतुवर्मा—एक त्रिगर्तदेशीय राजकुमार, जो त्रिगर्तराज सूर्यवर्माका छोटा भाई था । यह आश्वमेधिक अश्वकी रक्षाके लिये गये हुए अर्जुनके साथ लोहा लेकर उन्हींके हाथों मारा गया (आश्व० ७४ । १४-१५) ।

केतुशृङ्ग—एक प्राचीन नरेश, जो कालके अधीन हो चुके हैं (आदि० १ । २३७) ।

केदार—कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक तीर्थ, यहाँ स्नानसे पुण्य-की प्राप्ति (वन० ८३ । ७२) ।

केरल—(१) एक म्लेच्छ जाति, वशिष्ठकी 'होमधेनु' नन्दिनीने अपने मुँहके फेनसे केरल, हूण आदि दस प्रकारके म्लेच्छोंकी सृष्टि की (आदि० १७४ । ३८) । (२) एक दक्षिण भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५८) । वहाँके नरेश और निवासी भी केरल ही कहे गये हैं । सहदेवने केरल देशको दूतोंद्वारा ही वशमें कर लिया और कर देनेको विवश किया (सभा० ३१ ।

७१-७२)। केरल-नरेशने राजा युधिष्ठिरको चन्दन, अगुरु, मोती, वैदूर्य और चित्रक नामक रत्न भेंट किये (सभा० ५१ । ४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ पृष्ठ, ८६१, कालम १)। कर्णने दिग्विजयके समय यहाँके राजाको जीता और दुर्योधनके लिये 'करद' बनाया था (वन० २५४ । १५-१६)।

केवला–एक नगरी, जिसे कर्णने अपनी दिग्विजययात्रामें जीता था (वन० २५४ । १०-११)।

केशयन्त्री–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १७)।

केशव–भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम । इसकी निरुक्ति (शान्ति० ३४१ । ४८-४९)। केशव नाम महाभारतमें अनेक स्थलोंपर प्रयुक्त हुआ है (यथा–भीष्म० २५ । ३१; २६ । ५४; २७ । १; ३४ । १४; ३५ । ३५, ४२ । ७६ आदि)।

केशिनी–(१) एक अप्सरा, जो प्राधाके गर्भसे देवर्षि कश्यपद्वारा उत्पन्न हुई है (आदि० ६५ । ५०)। (२) महाराज अजमीढ़की तृतीय पत्नी । इनके गर्भसे अजमीढ़द्वारा जह्नु, व्रजन एवं रूपिण नामके तीन पुत्रोंका जन्म हुआ था (आदि० ९४ । ३२)। (३) दमयन्तीकी दासी । इसका बाहुक नामधारी नलके साथ संवाद (वन० ७४ अध्याय)। इसके द्वारा बाहुककी परीक्षा (वन० ७५ अध्याय)। (४) उमादेवीकी अनुगामिनी सहचरी (वन० २३१ । ४८)। (५)एक सुन्दरी कन्या, जिसके लिये विरोचन और सुधन्वामें संवाद हुआ था (उद्योग० ३५ । ५–१५)।

केशी–(१) एक दानव, कश्यपपत्नी दनुका पुत्र (आदि० ६५ । २२)। इसीने भगवान् विष्णुके साथ तेरह दिनों-तक युद्ध किया था (वन० १३४ । २०)। इसके द्वारा देवसेनाका अपहरण (वन० २२३ । ९)। इसका इन्द्रसे पराजित होकर भागना (वन० २२३ । १५)। (२) एक दैत्य, जो कंसका अनुगामी था । इसके शरीरमें दस हजार हाथियोंका बल था। यह घोड़ेकी ही आकृतिमें रहता था । कंसकी प्रेरणासे श्रीकृष्णको मारने आया था; परंतु स्वयं ही पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके हाथों मारा गया (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०१ कालम १)। (जिस स्थानपर यह मारा गया, वह वृन्दावनमें आजकल केशीघाटके नामसे विख्यात है ।) श्रीकृष्णने केशीको धर्मपूर्वक मारा था, यह उन्होंने शपथपूर्वक घोषित किया है (आश्व० ६९ । २३)। इनके द्वारा केशिवधकी चर्चा (मौसल० ६ । १०)।

केसर–शाकद्वीपका एक पर्वत, जहाँकी वायुमें केसरकी सुगन्ध भीनी रहती है (भीष्म० ११ । २३)।

केसरी–एक वानरराज, जिनके क्षेत्रभूत अञ्जना देवीके गर्भसे वायुद्वारा हनुमान्जीका जन्म हुआ था (वन० १४७ । २७)।

कैकेयी–(१) पूरुवंशीय महाराज अजमीढ़की पत्नी (आदि० ९५ । ३७)। (२) महाराज दशरथकी पटरानी । भरतकी माता (वन० २७४ । ८)। इनका महाराज दशरथसे भरतके लिये राज्य और रामके लिये वनवासका वरदान माँगना (वन० २७७ । २६)। इनका भरतको राज्य ग्रहण करनेके लिये कहना (वन० २७७ । ३२)। (३) सूतराज केकयकी छोटी पत्नी मालवीके गर्भसे उत्पन्न सुदेष्णा, जो महाराज विराटकी रानी थी (विराट० १६ । दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ १८९३, कालम १)। (केकयदेशके राजाओंकी सभी कुमारियाँ कैकेयी कही गयी हैं । जैसे सार्वभौमकी पत्नी और जयत्सेनकी माता सुनन्दा (आदि० ९५ । १६)। परीक्षित्-पुत्र भीमसेनकी धर्मपत्नी एवं प्रतिश्रवाकी माता कुमारी (आदि० ९५ । ४३) इत्यादि ।

कैटभ–(१) एक महान् असुर, जो मधुका भाई एवं सहचर था । इन दोनोंकी उत्पत्ति भगवान् विष्णुके कानोंकी मैलसे हुई थी । भगवान्ने मिट्टीसे इनकी आकृति बनायी थी । इनकी मूर्तिमें वायुके प्रविष्ट हो जानेसे ये सप्राण हो गये थे । इसके साथीका मधु और इसका कैटभ नाम होनेका कारण (सभा० ३८ । दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७८३)। भगवान् विष्णुद्वारा इन दोनोंका वध (सभा० ३८ । पृष्ठ ७८४)। मधुसहित कैटभकी उत्पत्तिका वर्णन, नाभिकमलपर भगवत्प्रेरणासे जलकी दो बूँदें पड़ी थीं, जो रजोगुण और तमोगुणकी प्रतीक थीं । भगवान्ने उन दोनों बूँदोंकी ओर देखा । एक मधु और दूसरी बूँद कैटभके आकारमें परिणत हुई (शान्ति० ३४७ । २५-२६)। भगवान् हयग्रीवद्वारा इनका वध (शान्ति० ३४७ । ६९-७०)। (२) एक दानव, जो कभी इस पृथ्वीका अधिपति था; किंतु इसे छोड़कर चल बसा (शान्ति० २२७ । ५३)।

कैतव–(१) शकुनिपुत्र उलूक (आदि० १८५ । २२)। (२) एक भारतीय जनपद (भीष्म० १८ । १३)।

कैरातपर्व–वनपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय ३८ से ४१ तक)।

कैलास–एक पर्वत, जो कुबेर तथा भगवान् शिवका निवासस्थान है (वन० १०९ । १६-१७; वन० १४१ । ११-१२)। यहाँ श्वेतकिने भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये उग्र तपस्या की (आदि० २२२ । ३६–४०)। कैलासके उत्तर मैनाक है, जहाँ मयासुरने मणिमय भाण्ड

तैयार करके रक्खा था (सभा० ३ । २-९) । कैलास-पर्वत कुबेरके सभाभवनमें जाकर उनकी उपासना करता है (सभा० १० । ३१-३३) । व्यासजी कैलासपर गये थे (सभा० ४६ । १७) । राजा सगरने भी अपनी दोनों पत्नियोंके साथ जाकर कैलासपर तपस्या की थी (वन० १०६ । १०) । भगीरथने भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये कैलासपर जाकर तप किया (वन० १०८ । २६) । कैलासपर्वत छः योजन ऊँचा है । वहाँ सब देवता आया करते हैं । उसके पास ही विशाला (बदरिकाश्रम) है । कुबेरभवनरूप कैलासपर असंख्य यक्ष, राक्षस, किन्नर, सुपर्ण, नाग और गन्धर्व रहते हैं (वन० १४१ । ११-१२) । कैलास-शिखरके निकट ही कुबेरकी नलिनी है, जहाँ भीमसेन गये थे (वन० १५३ । १-२) । अन्य पाण्डवोंका भी वहाँ गमन (वन० १५५ । २३) । कैलासपर्वतपर कुबेरको यक्ष और राक्षसोंका राजा बनाया गया था (उद्योग० १११ । ११) । अष्टावक्रजी कैलास होते हुए उत्तर दिशाकी ओर गये । वहाँ कुबेरभवनमें उनका सत्कार हुआ था (अनु० १९ । ३१) । सुरभिने देव-गन्धर्व-सेवित कैलासके सुरम्य शिखरपर तपस्या की (अनु० ८३ । २८-३०) ।

कैलासक (या कैलास)-एक कश्यपवंशीय नाग (उद्योग० १०३ । ११) ।

कैरिक-एक प्राचीन देश, जिसपर विदर्भनरेश भीष्मकने विजय पायी थी (सभा० १४ । २१) ।

कोकनद (१) एक प्राचीन क्षत्रियनरेश, जो दिग्विजयके समय अर्जुनसे भयभीत होकर उनकी शरणमें आया था (सभा० २७ । १८) । (२) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६०) । (३) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६१) । (४) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७४) ।

कोकवक-एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६१) ।

कोकामुख-एक तीर्थ, इसमें स्नानसे पूर्वजन्मकी स्मृति जाग्रत् होती है (वन० ८४ । १५८) ।

कोकिलक-स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७३) ।

कोङ्कण-एक दक्षिण भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६०) ।

कोटरक-एक कश्यपवंशीय नाग (उद्योग० १०३ । १२) ।

कोटरा-(१) स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १४) । (२) स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १७) ।

कोटिकास्य (कोटिक)-शिबिनरेश सुरथका पुत्र, जिसने वनमें जयद्रथ आदि साथियोंका द्रौपदीको परिचय दिया था (वन० २६५ अध्याय) । भीमसेनद्वारा इसका वध (वन० २७१ । २६) ।

कोटितीर्थ-एक तीर्थ, जहाँ आचमन करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है (वन० ८२ । ४९; वन० ८४ । ७७; वन० ८५ । ६१) । यह कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत है (वन० ८३ । १७; वन० ८३ । २००) ।

कोटिश-वासुकिकुलमें उत्पन्न एक नाग (आदि० ५७ । ५) ।

कोपवेग-एक महर्षि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १६) ।

कोलगिरि-दक्षिण भारतका एक पर्वत—कोलाचल, जहाँके निवासियोंको सहदेवने जीता था (सभा० ३१ । ६८) ।

कोलाहल-प्राचीन कालका एक सचेतन पर्वत, जिसने कामवश दिव्यरूपधारिणी शुक्तिमती नदीको रोक लिया था (आदि० ६३ । ३५-३६) । उपरिचर वसुके द्वारा इसपर पैरोंसे प्रहार (आदि० ६३ । ३६) । इसके द्वारा शुक्तिमती नदीके गर्भसे जुड़वीं संतानकी उत्पत्ति (आदि० ६३ । ३७) ।

कोलिक-बिडालोपाख्यानमें आये हुए एक चूहेका नाम (उद्योग० १६० । ३८) ।

कोलिसर्प-एक जाति, जो पहले क्षत्रिय थी; किंतु ब्राह्मणों-की कृपादृष्टि न मिलनेसे शूद्रत्वको प्राप्त हो गयी (अनु० ३३ । २२) ।

कोल्लगिरेय-दक्षिणका एक देश, जिसे अर्जुनने अश्वमेधीय यज्ञकी रक्षाके समय जीता था (आश्व० ८३ । ११) ।

कोशल-कोशलदेशीय क्षत्रिय, जो जरासंधके भयसे दक्षिण भाग गये थे (सभा० १४ । २७) ।

कोषा-एक नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । ३४) ।

कोष्ठवान्-एक पर्वत, जो अन्य बहुतसे पर्वतोंका अधिपति है (आश्व० ४३ । ५) ।

कोसल-एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४०-४१, ५२) । पूर्वदिग्विजयके समय भीमसेनने उत्तर कोशलको जीता था (सभा० ३० । ३) । दक्षिण-दिग्विजयके समय सहदेवने दक्षिण कोशलको जीतकर अपने अधिकारमें कर लिया था (सभा० ३१ । १२-१३) । पहले श्रीकृष्णने भी इस जनपदपर विजय पायी थी (द्रोण० २१ । १५) । कोशलराज अभिमन्युद्वारा मारा गया था (कर्ण० ५ । २१) । दुर्योधनके लिये कर्णने इस देशको जीता था (कर्ण० ८ । १९) । यहाँका राजा क्षेमदर्शी था (शान्ति० ८२ । ६) । अम्बाके स्वयंवरमें भीष्मने भी

कोसलको जीता था (अनु० ४४ । ३८)। अश्वमेधके घोड़ेके पीछे जाते हुए अर्जुनने इस देशपर विजय पायी थी (आश्व० ८३ । ४)।

कोसला (अयोध्या)–सुप्रसिद्ध पुरी, जहाँ ऋषभतीर्थमें स्नान और त्रिरात्र उपवाससे वाजपेय तथा सहस्र गोदान-का फल मिलता है (वन० ८५ । १०-११)।

कोहल–(१) वेदविद्याके पारङ्गत विद्वान् ब्राह्मण, जो जनमेजयके सर्पसत्रके सदस्य थे (आदि० ५३ । ९)। (२) एक ब्राह्मण, जिन्हें राजा भगीरथने एक लाख सवत्सा गौएँ दान की थीं (अनु० १३७ । २७)। (३) उत्तर दिशाका आश्रय लेकर रहनेवाले एक ऋषि, सम्भव है, ये ही जनमेजयके सर्पसत्रके सदस्य बने हों (अनु० १६५ । ४५)।

कौकुलिका–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १५)।

कौकुहक–दक्षिण भारतका एक जनपद (भीष्म० ९ । ६०)।

कौणप–वासुकिके कुलमें उत्पन्न हुआ एक नाग, जो माताके शापसे पीड़ित हो विवशतापूर्वक सर्पसत्रकी आगमें होम किया गया था (आदि० ५७ । ६)।

कौणपासन–एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १४)।

कौणिकुत्स्य–एक वनवासी श्रेष्ठ द्विज, जो सर्पदंशनसे मरी हुई प्रमद्वराको देखनेके लिये आये थे (आदि० ८ । २५)।

कौण्डिन्य–एक महर्षि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १६)।

कौत्स–एक वृद्ध एवं विद्वान् ब्राह्मण, जो जनमेजयके सर्पसत्रमें उद्गाता बनाये गये थे (आदि० ५३ । ६)। इन्हींको राजर्षि भगीरथने अपनी कन्या 'हंसी' का दान किया था; जिससे वे अक्षय लोकको प्राप्त हुए (अनु० १३७ । २६)।

कौमोदकी–भगवान् श्रीकृष्णकी गदा, यह गदा खाण्डव-वन-दाहके अवसरपर वरुणने उन्हें भेंटमें दी थी (आदि० २२४ । २८)।

कौरव–कुरुके पुत्र तथा कुरुकुलमें उत्पन्न होनेवाले पुरुष 'कौरव' कहलाते हैं। (यद्यपि पाण्डव तथा धृतराष्ट्रपुत्र दोनों ही कौरव कहलाते हैं तथापि पाण्डवोंका पृथक् ग्रहण हो जानेसे 'कौरव' शब्द प्रायः दुर्योधन आदिके लिये ही व्यवहृत होता है; फिर भी पाण्डवोंके लिये भी इस शब्दका प्रयोग हुआ ही है।) इनके द्वारा रङ्गभूमिमें आचार्य और अस्त्रोंके पूजनपूर्वक अस्त्र-कलाप्रदर्शन (आदि० १३३ । २३ के बाद ३५ तक)। द्रुपदके द्वारा इनकी पराजय (आदि० १३७ । २४-२५)। द्रुपदके पाण्डवोंके सम्बन्धी हो जानेपर इनका भयभीत और निराश होना (आदि० १९९ । १४-१५)।

कौरव्य–एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १३)।

कौशिक–(१) युधिष्ठिरकी सभामें विराजनेवाले एक ऋषि (सभा० ४ । १२)। हस्तिनापुर जाते समय श्रीकृष्णसे मार्गमें उनकी भेंट (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दा० पाठ)। (२) एक प्राचीन ऋषि जो इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । १८ के बाद दा० पाठ) (३) जरासंधका एक मन्त्री, जिसका दूसरा नाम हंस था (सभा० २२ । ३२-३३) (देखिये हंस)। (४) एक तपस्वी ब्राह्मण, इनकी क्रोधभरी दृष्टिसे बगुलीका भस्म होना (वन० २०६ । ५)। इनका पतिव्रतासे वार्तालाप (वन० २०६ । १८)। इनका धर्मव्याधसे विविध धार्मिक विषयोंपर वार्तालाप (वन० २०७ अ० से २१६ तक)। इनका घर लौटकर माता-पिताकी सेवामें तत्पर होना (वन० २१६ । २३)। (५) हैमवतीके प्रियतम पति, कुशिकवंशी विश्वामित्र (वन० ८४ । १४२-१४३; उद्योग० ११७ । १३)। (६) एक सत्यवादी तपस्वी ब्राह्मण, जिसे लुटेरोंको छिपे मनुष्योंका पता बतानेके कारण नरककी प्राप्ति हुई (कर्ण० ६९ । ४६-५२)।

कौशिककुण्ड–एक तीर्थ, यहाँ विश्वामित्रने उत्तम सिद्धि प्राप्त की थी (वन० ८४ । १४२)।

कौशिकाचार्य–इस पदवीसे विभूषित राजा आकृति (सभा० २१ । ६१-६२)। (देखिये आकृति)

कौशिकाश्रम–एक तीर्थ, जहाँ काशिराजकी कन्याने कठोर तप किया (उद्योग० १८६ । २७)।

कौशिकी–(१) एक नदी (अनु० ९४ । ६)। महर्षि विश्वामित्रद्वारा इसका निर्माण (आदि० ७१ । ३०)। (जिसे आजकल 'कोसी' कहते हैं। यह नदी पूर्वी-विहारके कई जिलोंमें बह रही है।) (२) एक पापनाशिनी नदी, इसमें स्नान करनेमात्रसे राजसूय यज्ञका फल प्राप्त होता है (वन० ८४ । १३२; वन० ८७ । १३; भीष्म० ९ । २९)। यहाँ स्नानका फल (अनु० २५ । ३१)।

कौशिकी-अरुणासङ्गम–एक तीर्थ, जहाँ स्नान और त्रिरात्र उपवाससे पाप छूट जाते हैं (वन० ८४ । १५६)।

कौशिकीकच्छ–कोसी नदीका कछार (सभा० ३० । २२)।

कौसल–बकरेके समान मुख धारण करनेवाले स्कन्ददेवका एक नाम (वन० २२८ । ४)।

कौसल्या–(१) ययातिनन्दन महाराज पूरुकी पत्नी और जनमेजय (प्रवीर) की पत्नी, इनका दूसरा नाम 'पौष्टी' था (आदि० ९५ । १०–११) । (२) काशिराजकी पत्नी तथा अम्बा, अम्बिका एवं अम्बालिकाकी माता (आदि० ९५ । ५१) । (३) दशरथनन्दन श्रीरामकी माता (वन० २७४ । ७-८) । (४) मिथिलानरेश महाराज जनककी पटरानी, इनका पतिको संन्यास न लेनेके लिये समझाना (शान्ति० १८ । ७–३६) ।

कौस्तुभ–समुद्रसे प्रकट हुई एक मणि जो भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलका आभूषण बनी (आदि० १८ । ३६) । मणिरत्न कौस्तुभका प्रादुर्भाव (उद्योग० १०२ । १२) ।

क्रतु–ब्रह्माजीके एक मानसपुत्र (आदि० ६५ । १०; आदि० ६६ । ४; शान्ति० १६६ । १६) । बालखिल्य-नामक ऋषि क्रतुके ही पुत्र हैं (आदि० ६६ । ९) । ये अर्जुनके जन्म-समयमें पधारे थे (आदि० १२२।५२)। पराशरके राक्षस-सत्रमें राक्षसोंकी जीवनरक्षाके लिये गये थे (आदि० १८० । ९) । ये इन्द्र और ब्रह्माजीके सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । १७; सभा० ११ । १९) । स्कन्दके जन्मकालमें भी ये पधारे थे (शल्य० ४५ । १०) । शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीके पास गये थे (शान्ति० ४७ । १०) । इक्कीस प्रजापतियोंमें ये भी हैं (शान्ति० ३३४ । ३५–३७) । सात 'चित्रशिखण्डी' ऋषियोंमें भी क्रतुकी गणना की गयी है (शान्ति० ३३५ । २७) । आठ प्रकृतियोंमें भी इनका स्थान है (शान्ति० ३४० । ३४) । इन्हें शिवभक्तिद्वारा सहस्रों पुत्रोंकी प्राप्ति हुई (अनु० १४ । ८७-८८) । उत्तरायण आरम्भ होनेपर भीष्मजी देखनेके लिये आये थे (अनु० २६ । ४) । ये महायोगेश्वर माने गये हैं (अनु० ९२ । २१) ।

क्रथ–(१) एक क्षत्रिय राजा, जो क्रोधवशसंज्ञक असुरके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ६१) । (२) एक प्राचीन देश, जिसपर विदर्भनरेश भीष्मकने विजय पायी थी (सभा० १४ । २१) । (३) एक राजराजेश्वर, जिन्हें भीमसेनने दिग्विजयके समय परास्त किया था (सभा० ३० । ७) । (४) एक महर्षि, जिन्होंने शान्ति-दूत बनकर हस्तिनापुर जाते हुए श्रीकृष्णकी परिक्रमा की थी (उद्योग० ८३ । २७) । (५) एक कौरव-योद्धा (द्रोण० १२० । १०-११) । (६) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७०) ।

क्रथन–(१) एक यक्ष, जिसके साथ पक्षिराज गरुडने युद्ध किया था (आदि० ३२ । १८) । (२) एक असुर, जो भूतलपर राजा 'सूर्याक्ष' के रूपमें उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ५७) । (३) धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ११६ । ११) ।

क्रमजित्–एक क्षत्रियनरेश, जो युधिष्ठिरकी सभामें उनके पास बैठते थे (सभा० ४ । २८) ।

क्रव्याद्–पितरोंका एक गण (शान्ति० २६९ । १५) ।

क्राथ–(१) एक प्रसिद्ध राजा, जो सिंहिकाकुमार राहुके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ४०) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें उपस्थित था (आदि० १८६ ।१५)। जारूथीनगरीमें श्रीकृष्णद्वारा पराजित हुआ था (वन० १२ । ३०) । इसने दुर्योधनकी सेनामें सम्मिलित हो अभिमन्युपर धावा किया था (द्रोण० ३७ । २५) । इसका पुत्र अभिमन्युद्वारा मारा गया (द्रोण० ४६ । २६-२७) । इसके द्वारा कलिङ्गराजकुमारका वध हुआ और पाण्डवपक्षीय, पर्वतीयनरेशद्वारा इसका वध हुआ (कर्ण० ८५ । १५-१६) । (२) पूरुवंशी महाराज कुरुके प्रपौत्र एवं धृतराष्ट्रके एक पुत्र (आदि० ९४ । ५८) । (३) एक वानर सेनापति (वन० २८३ । १९) । (४) (क्रथन) धृतराष्ट्रका एक पुत्र । भीमसेनद्वारा इसका वध (कर्ण० ५१ । १६) । (५) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७०) । (६) एक नाग, जो बलरामजीके परमधाम पधारते समय उनके स्वागतके लिये गया था (मौसल० ४।१६)।

क्रिया–दक्ष प्रजापतिकी एक पुत्री और धर्मराजकी पत्नी (आदि० ६६ । १४) ।

क्रीत–एक प्रकारका अबन्धुदायाद पुत्र, जिसे धन आदि देकर खरीद लिया गया हो (आदि० ११९ । ३४) ।

क्रूर–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६५) ।

क्रूरा (अथवा क्रोधा)–दक्षप्रजापतिकी पुत्री । कश्यपकी पत्नी (आदि० ६५ । १२-१३; आदि० ६६ । १३) । इस क्रूरा या क्रोधाके क्रूर स्वभाववाले असंख्य पुत्र-पौत्र हैं और यही 'क्रोधवश' संज्ञक असुरोंकी जननी है (आदि० ६५ । ३२) ।

क्रोध–एक विख्यात दानव, जो काला नामक कश्यपपत्नीका पुत्र था (आदि० ६५ । ३५) ।

क्रोधन–एक ऋषि, जो इन्द्रकी सभामें विराजते हैं (सभा० ७ । ११) ।

क्रोधना–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ६) ।

क्रोधवर्द्धन–एक असुर, जो 'दण्डधार' नामक राजाके

रूपमें इस भूतलपर उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ४६)।

क्रोधवशा–राक्षसोंके एक गणका नाम। इनकी माता कश्यप-पत्नी क्रोधा या क्रूरा थी (आदि० ६५ । ३२)। ये ही कुबेरके सौगन्धिक कमलोंवाले सरोवर (या नलिनी) की, जिसका नाम अलका था, रक्षा करते थे। भीमसेनने इनके साथ युद्ध करके इन्हें परास्त किया था (वन० १५४ । २०-२१)। इन्होंने धनाध्यक्ष कुबेरको भीमसेनके बल-पराक्रमका वृत्तान्त बताया था (वन० १५४ । २५)। ये रावणकी सेनामें भी सम्मिलित थे (वन० २८५ । २)।

क्रोधशत्रु–एक विख्यात दानव, जो काला नामक कश्यप-पत्नीका पुत्र था (आदि० ६५ । ३५)।

क्रोधहन्ता–(१) कश्यपपत्नी कालाके चार पुत्रोंमेंसे एक प्रसिद्ध दानव (आदि० ६५ । ३५)। इसे वृत्रासुरका छोटा भाई कहा गया है। यही राजा दण्डके रूपमें उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ४५)। (२) पाण्डव-पक्षीय राजा सेनाबिन्दुका दूसरा नाम (उद्योग० १७१ । २०)।

क्रोशना–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १७)।

क्रोष्टा–यदुके पुत्र (अनु० १४७ । २८)।

क्रौञ्च–एक पर्वत, जिसे स्कन्दने विदीर्ण किया था (शल्य० ४६ । ८४)।

क्रौञ्चद्वीप–एक प्रसिद्ध द्वीप, इसका विशेष वर्णन (भीष्म० १२ । १७—२३)।

क्रौञ्चनिषूदन–सरस्वती-सम्बन्धी तीर्थ, जहाँ सरस्वतीमें स्नान करनेसे विमानलाभ होता है (वन० ८४ । १६०)।

क्रौञ्चपदी–एक तीर्थ, जहाँ पिण्डदान करके मनुष्य तीन ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है (अनु० २५ । ४२)।

क्रौञ्चव्यूह–सेनाकी मोर्चाबंदीका वह प्रकार, जिसमें सैनिकोंको क्रौञ्च पक्षीकी आकृतिमें खड़ा किया जाता है। भीष्मद्वारा क्रौञ्चव्यूहकी रचना (भीष्म० ७५ । १५—२२)। युधिष्ठिरद्वारा उक्त व्यूहकी रचना (द्रोण० ७ । २५-२७)।

क्रौञ्चारुणव्यूह–यह भी क्रौञ्चव्यूहका ही नामान्तर है। इसका निर्माण धृष्टद्युम्नने किया था (भीष्म० ५० । ४२—५७)।

क्षत्ता–विदुर (उद्योग० ३३।२,६) (देखिये विदुर)।

क्षत्रंजय–धृष्टद्युम्नका एक वीर पुत्र (द्रोण० १० । ५३)। द्रोणाचार्यद्वारा द्रुपदके तीन पुत्रों (क्षत्रदेव, क्षत्रंजय तथा क्षत्रवर्मा) का वध (द्रोण० १८६ । ३३-३४)।

क्षत्रदेव–शिखण्डीका पुत्र (उद्योग० ५७ । ३२; द्रोण० २३ । ६)। यह एक श्रेष्ठ रथी था (उद्योग० १७१ । १०)। भगदत्तद्वारा इसकी दाहिनी भुजापर गहरा आघात (भीष्म० ९५ । ७३)। इसका लक्ष्मणके साथ युद्ध (द्रोण० १४ । ४९)। द्रोणके साथ युद्ध (द्रोण० २१ । ५०, ५६)। इसके रथके घोड़ोंका रंग (द्रोण० २३ । ६)। लक्ष्मणद्वारा इसका वध (कर्ण० ६ । २६-२७)।

क्षत्रधर्मा–धृष्टद्युम्नका पुत्र अर्धरथी (उद्योग० १७१ । ७)। इसके रथके घोड़ोंका रंग (द्रोण० २३ । ५)। द्रोणाचार्यद्वारा इसका वध (द्रोण० १२५ । ६६)।

क्षत्रवर्मा–धृष्टद्युम्नका एक वीर पुत्र (द्रोण० १० । ५३)। जयद्रथके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । १०-१२)। आचार्य द्रोणद्वारा इसका वध (द्रोण० १८६ । ३४)।

क्षितिकम्पन–स्कन्दका सेनापति (शल्य० ४५ । ५९)।

क्षीरवती–एक पुण्यतीर्थ, वहाँ स्नान करके देवताओंके पूजनमें लगा हुआ मनुष्य वाजपेय-यज्ञका फल पाता है (वन० ८४ । ६८-६९)।

क्षीरसागर (क्षीरनिधि)–इसकी उत्पत्ति (उद्योग० १०२ । ४)। अन्य नामोंद्वारा इसकी चर्चा—क्षीरोद (आदि० २ । ९१; भीष्म० १० । ११; शान्ति० ३३६ । २३; शान्ति० ३४० । ४५; अनु० १४ । २४०)। क्षीरोदधि (शान्ति० ३३६ । २७)।

क्षीरी–उत्तर कुरुवर्षके कुछ वृक्ष, जो सदा षड्विध रसोंसे युक्त अमृतके समान स्वादिष्ट दूध बहाते रहते हैं। उनके फलोंमें इच्छानुसार वस्त्र और आभूषण भी प्रकट होते हैं (भीष्म० ७ । ४-५)।

क्षुद्रक–एक देश और वहाँके निवासी, ये युधिष्ठिरके लिये भेंट लाये थे (सभा० ५२ । १५)। क्षुद्रकोंको साथ लेकर दुर्योधन शकुनिकी सेनाकी रक्षामें लगा था (भीष्म० ५१ । १६)। क्षुद्रक आदि देशोंके सैनिक भीष्मकी आज्ञाका पालन करते हुए अर्जुनके निकट चले गये (भीष्म० ५९ । ७६)। भीष्मके पीछे द्रोणाचार्यके साथ रहकर क्षुद्रक भी शत्रुओंसे जूझनेके लिये चले थे (भीष्म० ८७ । ७)। परशुरामजीने पहले कभी क्षुद्रकोंका संहार किया था (द्रोण० ७० । ११)। अर्जुनद्वारा क्षुद्रकोंका वध (कर्ण० ५ । ४७)।

क्षुप–(१) एक प्रजापति, जो ब्रह्माजीके द्वारा मस्तकपर धारण किये हुए उनके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। ब्रह्माजीके छींकनेपर ये उनके मस्तकसे गिर पड़े थे (शान्ति० १२२ । १६—१७)। यही ब्रह्माके यज्ञके ऋत्विज हुए थे (शान्ति० १२२ । १७)। भगवान् रुद्रने इनको समस्त

प्रजाओं तथा धर्मधारियोंका अधिपति बनाया था (शान्ति० १२२। ३५)। (२) शक्तिशाली वैवस्वतमनुके आत्मज महाबाहु प्रसन्धिके पुत्र और इक्ष्वाकुके पिता (आश्व० ४। ३)। ये महाबली राजर्षि यमराजकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ८। १३)। इन्हें मनुसे खड्गकी प्राप्ति हुई (शान्ति० १६६। ७३)। इन महाराज क्षुपने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया था (अनु० ११५। ६७)।

क्षुरकर्णी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६। २५)।

क्षेत्र–देहधारियोंका यह शरीर (भीष्म० ३७। १)। क्षेत्रका वर्णन (भीष्म० ३७। ५–६)।

क्षेत्रज्ञ–इस शरीरको जाननेवाला जीवात्मा। सम्पूर्ण शरीरोंमें क्षेत्रज्ञरूपसे भगवान् ही विराजमान हैं (भीष्म० ३७। १—२)। क्षेत्रके स्वभाव और प्रभावसहित क्षेत्रज्ञका वर्णन (भीष्म० ३७। १९—३३)।

क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ-ज्ञान–क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका अर्थात् विकार-सहित प्रकृति और पुरुषका विभागपूर्ण यथार्थ बोध—यही ज्ञान है (भीष्म० ३७। २)।

क्षेम–एक क्षत्रिय राजा, जो क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७। ६५)। यह पाण्डव-पक्षीय योद्धा था और द्रोणाचार्यद्वारा मारा गया था (द्रोण० २१। ५३)।

क्षेमक–(१)कश्यप और कद्रूसे उत्पन्न एक नाग (आदि० ३५। ११)। (२) एक प्राचीन राजा, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होता था (सभा० ४। २२)। इसे पाण्डवोंकी ओरसे रणनिमन्त्रण भेजा गया था (उद्योग० ४। २३)।

क्षेमङ्कर–जयद्रथका साथी त्रिगर्तदेशका एक राजा, कोटिकास्यद्वारा द्रौपदीको इसका परिचय (वन० २६५। ६-७)। नकुलके हाथों इसका वध (वन० २७१। ७०)।

क्षेमदर्शी–कोसलदेशके एक राजा (शान्ति० ८२। ६)। इनके दरबारमें उपस्थित हो कालकवृक्षीय मुनिका इनके मन्त्री आदिके दोष बताना और राजाको उपदेश देना (शान्ति० ८२। १२—६७)। सेना आदिके नष्ट हो जानेपर इनका कालकवृक्षीय मुनिसे धनके अतिरिक्त सुखका उपाय पूछना (शान्ति० १०४। ४–१०)। कालकवृक्षीय मुनिके प्रयत्नसे राजा जनकके साथ इनकी संधि और उनके द्वारा इनका सत्कार और जामाता बनाया जाना (शान्ति० १०६। २३–२८)।

क्षेमधन्वा–एक कौरवपक्षीय प्रधान रथी, जो दुर्योधनके अग्रगामी सहायकोंमें था (भीष्म० १७। २७)।

क्षेमधूर्ति–(१)एक क्षत्रिय राजा, जो क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७। ६४)। इसे पाण्डवोंकी ओरसे रण-निमन्त्रण भेजे जानेका विचार (उद्योग० ४। ८)। यही कुलूतदेशका अधिपति था और कौरवपक्षसे युद्धमें आकर भीमसेनके द्वारा मारा गया था (कर्ण० १२। ४४)। (२) एक कौरव-पक्षका राजा, बृहन्तका सगा भाई, इसका सात्यकिके साथ युद्ध (द्रोण० २५। ४७–४८)। सात्यकिद्वारा इसका वध (शल्य० २१। ८)। (३) कौरव-पक्षका एक योद्धा, पाण्डवपक्षीय बृहत्क्षत्रके साथ इसका युद्ध (द्रोण० १०६। ८)। बृहत्क्षत्रद्वारा इसका वध (द्रोण० १०७। ६)।

क्षेममूर्ति–धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ६७। १००)।

क्षेमवाह–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५। ६६)।

क्षेमवृद्धि–राजा शाल्वका मन्त्री तथा सेनापति। जाम्बवती-कुमार साम्बद्वारा इसकी पराजय (वन० १६। ११-१६)।

क्षेमशर्मा–कौरव-पक्षीय एक योद्धा, जो द्रोणनिर्मित गरुड़-व्यूहके ग्रीवाभागमें खड़ा किया गया था (द्रोण० २०। ६)।

क्षेमा–एक स्वर्गीय अप्सरा, जो अन्य अप्सराओंके साथ अर्जुनके जन्ममहोत्सवपर नृत्य करनेके लिये आयी थी (आदि० १२२। ६६)।

क्षेमि–क्षेमकुमार सत्यधृति, जिसे चितकबरे, विशालकाय, वशमें किये हुए, सुवर्णकी मालासे विभूषित तथा ऊँचे कदवाले शुभलक्षण अश्वोंने युद्धभूमिमें पहुँचाया (द्रोण० २३। ५८)।

(ख)

खग–(१) कश्यपके वंशमें उत्पन्न हुआ एक नाग (उद्योग० १०३। १०)। (२) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७। ६७)।

खगम–पूर्वकालका एक तपोबलसम्पन्न ब्राह्मण, जो सहस्रपाद ऋषिका मित्र था (आदि० ११। १)। इसके शापसे सहस्रपाद ऋषिका 'डुण्डुभ' सर्प होना (आदि० ११। २–४)।

खट्वाङ्ग–इलविलाके पुत्र महाराज दिलीपका दूसरा नाम (द्रोण० ६१। १–१०)। इन्होंने यह सारी पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान कर दी थी (द्रोण० ६१। २)। इनके यज्ञोंमें सड़कें सोनेकी बनी थीं। सभा-मण्डप भी

सुवर्णसे ही निर्मित हुआ था (द्रोण० ६१ । ३–४)। इनके यज्ञके दिव्य वैभवका वर्णन (द्रोण० ६१ । ५–११)।

खड्ग–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६७)।

खड्गी–भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । ४३)।

खण्डखण्डा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २०)।

खनीनेत्र–सूर्यवंशी विविंशके ज्येष्ठ पुत्र, जो पराक्रमी होने और अकण्टक राज्य पानेपर भी प्रजाके अनुरागभाजन न हो सके। अतः राज्यसे उतार दिये गये (आश्व० ४ । ६–९)।

खर–(१) एक राक्षस, जो विश्रवाका पुत्र एवं शूर्पणखाका सहोदर भाई था। इसकी माताका नाम राका था (वन० २७५ । ४—८)। यह धनुर्विद्यामें विशेष पराक्रमी तथा ब्रह्मद्रोही था (वन० २७५ । १२)। रावण, कुम्भकर्ण और विभीषणकी तपस्याके समय ये दोनों भाई-बहन उनकी सेवा करते थे (वन० २७५ । १२)। शूर्पणखाके कारण इसका श्रीरामसे बड़ा भारी वैर हो गया (वन० २७७ । ४२)। श्रीरामने तपस्वी जनोंकी रक्षाके लिये खर आदि चौदह हजार राक्षसोंका संहार किया (सभा० ३८। २९ के बाद, पृष्ठ ७९४)। (२) राक्षसोंका एक दल, जिसने अन्य दलोंके साथ वानर-सेनापर आक्रमण किया था (वन० २८५ । २)।

खरकर्णी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २६)।

खरजङ्घा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका(शल्य० ४६ । २२)।

खरी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ६)।

खली–(१) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । ४३)। (२) दानवोंका एक समुदाय, जिसे वशिष्ठजीने अपने तेजसे दग्ध कर दिया (अनु० १५५ । २२)।

खलु–भारतवर्षकी एक नदी, जिसका जल यहाँकी प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । २८)।

खस–एक देश (द्रोण० १२१ । ४२)।

खाण्डव (वन)–यमुना-तटवर्ती एक वन, जिसे भगवान् श्रीकृष्ण तथा अर्जुनकी सहायतासे अग्निदेवने जलाया था इसकी रक्षाके लिये इन्द्रके प्रयत्न। इसके जलानेके समय तक्षककी पत्नीका अर्जुनद्वारा वध (आदि० २२३ अध्यायसे २२५ तक)।

खाण्डवदाहपर्व–आदिपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय २२१ से २२६ तक)।

खाण्डवप्रस्थ–प्राचीन कालका एक नगर, जो पाण्डवोंकी राजधानी थी—इन्द्रप्रस्थ (आदि० ६१ । ३५)। यहीं रहकर अर्जुनने भगवान् श्रीकृष्णकी सहायतासे अग्निदेवको तृप्त किया था (आदि० ६१ । ४५)। पूर्वकालमें पुरूरवा, नहुष और ययाति भी यहीं निवास करते थे (आदि० २०६ । २५ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। (विशेष देखिये इन्द्रप्रस्थ)।

खाण्डवायन–परशुरामजीकी दी हुई स्वर्णवेदीको खण्ड-खण्ड करके आपसमें बाँटनेवाले ब्राह्मणोंका नाम (वन० ११७ । १३)।

खाशीर–पूर्वोत्तर भारतका एक जनपद (भीष्म० ९ । ६८)।

खिल–महाभारतके परिशिष्ट भाग हरिवंशका दूसरा नाम (आदि० २ । ८२-८३; आदि० ३७९-३८०)।

ख्याता–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २०)।

(ग)

गगनमूर्धा–कश्यप और दनुके वंशका एक विख्यात दानव (आदि०६५ । २४)। यह पाँच केकय-राजकुमारोंमेंसे एकके रूपमें उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । १०)।

गङ्गा–देवनदी। वसुओंकी माता। भीष्मकी जननी। महर्षि वशिष्ठके शाप और इन्द्रके आदेशसे आठ वसुओंका गङ्गाजीके गर्भसे शान्तनुपुत्र होकर जन्म लेना (आदि० ६७ । ७४)। गङ्गाजीका आधिदैविक रूप देवाङ्गनाके तुल्य है, वे उसी रूपसे एक दिन ब्रह्माजीकी सभामें उपस्थित हुईं। उस समय वायुके झोंकेसे उनके शरीरका चाँदनीके समान उज्ज्वल वस्त्र सहसा कुछ ऊपरकी ओर उठ गया। उस अवस्थामें उनकी ओर देखनेके कारण महाभिषको ब्रह्माजीके द्वारा मर्त्यलोकमें जन्म लेनेका शाप मिला और इन्हें भी उनके प्रतिकूल आचरण करनेके लिये उनके साथ जानेका संकेत प्राप्त हुआ (आदि० ९६ । ४—८)। महाभिषका चिन्तन करती हुई गङ्गाका वहाँसे जाना और मार्गमें वसुओंसे उनकी उदासीका कारण पूछना (आदि० ९६ । ९–१२)। 'वशिष्ठके शापवश हमें मर्त्यलोकमें जन्म लेना पड़ेगा, वहाँ आप ही हमारी जननी हों' वसुओंकी गङ्गाजीसे प्रार्थना और इनका इस प्रार्थनाको स्वीकार करना (आदि० ९६ । १२—१८)। जन्म लेते ही जलमें फेंक देनेके लिये इनसे वसुओंकी अभ्यर्थना (आदि० ९६ । १९)। शान्तनुको एक पुत्र प्राप्त होनेके लिये इनका वसुओंद्वारा व्यवस्था कराना (आदि० ९६ । २०–२२)। अपना पति बननेके लिये राजा प्रतीपसे इनकी प्रार्थना (आदि० ९७ । ५)। दाहिनी जाँघपर बैठनेके कारण इन्हें पत्नीरूपमें नहीं, पुत्रवधूरूपमें प्रतीपका अङ्गीकार करना (आदि०

९७ । ११) । गङ्गाजीका प्रतीपकी आज्ञाको स्वीकार करना (आदि० ९७ । १२—१५) । राजा शान्तनुका गङ्गाजीके परम सुन्दर दिव्य प्रभासे प्रकाशमान, साक्षात् लक्ष्मीके समान मनोरम, अनिन्द्य सौन्दर्यसे सम्पन्न, दिव्याभरणभूषित, सूक्ष्माम्बर-विलसित तथा कमलोदर-कान्तिसे सुशोभित दिव्य रूपका दर्शन तथा उनके प्रति आकृष्ट हो उनसे अपनी पत्नी बननेके लिये प्रार्थना (आदि० ९७ । २७—३३) । गङ्गाजीका कुछ शर्तोंके साथ उनके अनुरोधको अङ्गीकार करना (आदि० ९८ । १—४) । शान्तनुके द्वारा इनके गर्भसे आठ देवोपम पुत्रोंकी उत्पत्ति (आदि० ९८ । १२) । इनके द्वारा नवजात शिशुओंका जलमें प्रक्षेप (आदि० ९८ । १३) । भीष्मका जन्म होनेपर उनके भी वधकी आशङ्कासे इनको शान्तनुकी कड़ी फटकार (आदि० ९८ । १६) । अपने रहस्यको प्रकट करके इनका शान्तनुको उनके नवजात शिशुओं (वसुओं) का संक्षिप्त परिचय देना (आदि० ९८ । १७—२४) । वसुओंको वशिष्ठद्वारा प्राप्त हुए शापकी बात बताकर और यही एक पुत्र चिरकालतक मानवलोकमें रहेगा, ऐसा कहकर इनके द्वारा शान्तनुके प्रति भीष्मके भावी गुणोंका वर्णन और पालनके लिये उसे साथ लेकर इनका अन्तर्धान हो जाना (आदि० ९९ अ०) । शान्तनुका गङ्गाजीसे अपने पुत्रको दिखानेके लिये कहना और गङ्गाजीका पालपोषकर बड़े एवं सुशिक्षित किये हुए उस पुत्रको राजाके हाथमें सौंप देना (आदि० १०० । ३०—४०) । गङ्गा प्राचीन कालमें हिमालयके स्वर्णशिखरसे निकलीं और सात धाराओंमें विभक्त हो समुद्रमें गिरीं । इन सातोंके नाम हैं—गङ्गा, यमुना, सरस्वती, रथस्था, सरयू, गोमती और गण्डकी । इन धाराओंका जल पीनेवाले पुरुषोंके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं । ये गङ्गा देवलोकमें अलकनन्दा और पितृलोकमें वैतरणी नाम धारण करती हैं । इस मर्त्यलोकमें इनका नाम 'गङ्गा' है । इनका तीर्थरूपसे वर्णन (वन० ८५ । ८८—९९) । इनका राजा भगीरथको वर देना (वन० १०८ । १५) । इनका भूतलपर गिरना (वन० १०९ । ८) । इनके द्वारा समुद्रका भरा जाना (वन० १०९ । १८) । अग्निकी उत्पत्तिके स्थानभूत नदियोंमें इनकी भी गणना (वन० २२२ । २२) । परशुरामजीसे युद्धके लिये उद्यत भीष्मको डाँटना (उद्योग० १७८ । ८६—८८) । परशुरामजीसे भीष्मके लिये क्षमा माँगना (उद्योग० १७८ । ९२) । परशुरामजीके साथ होनेवाले युद्धमें सारथिके मारे जानेपर भीष्मका सारथ्य करना (उद्योग० १८२ । १६) । इनका अम्बाको नदी होनेका शाप देना (उद्योग० १८६ । ३६) । मेरुपर्वतके शिखरसे दुग्धके समान श्वेत धारवाली विश्वरूपा अपरिमित शक्तिशालिनी भयङ्कर वज्रपातके समान शब्द करनेवाली परम पुण्यात्मा पुरुषोंद्वारा सेवित सुभग-स्वरूपा पुण्यमयी भागीरथी गङ्गा बड़े प्रबल वेगसे सुन्दर चन्द्र-मोहद (चन्द्रकुण्ड) में गिरती हैं । गङ्गाद्वारा प्रकट किया हुआ वह ह्रद समुद्रके समान प्रतीत होता है । भगवान् शङ्कर इन्हें एक लाख वर्षतक अपने मस्तकपर धारण किये रहे । ब्रह्मलोकसे उतरकर त्रिपथगामिनी गङ्गा पहले हिरण्यशृङ्गके पास विन्दुसरोवरमें प्रविष्ट हुईं । वहींसे उनकी सात धाराएँ विभक्त हुईं । जिनके नाम इस प्रकार हैं—वस्वोकसारा, नलिनी, पावनी, सरस्वती, जम्बूनदी, सीतागङ्गा और सिन्धु (भीष्म० ६ । २८-५०) । बाणशय्यापर पड़े हुए भीष्मके पास महर्षियोंको भेजना (भीष्म० ११९ । ९७-९८) । इनका भागीरथी नाम पड़नेका कारण (द्रोण० ६० । ६) । इनके द्वारा स्कन्दको कमण्डलुका दान (शल्य० ४६ । ५०) । समुद्रसे वेंतकी नम्रताका वर्णन (शान्ति० ११३ । ८-११) । इनका जह्नुकी पुत्रीरूपसे प्रसिद्ध होना (अनु० ४ । ३) । गङ्गाजीमें स्नानका फल (अनु० २५ । ३९) । इनकी महिमाका वर्णन (अनु० २६ । २६-९६) । अग्निद्वारा स्थापित किये गये शिवजीके तेजको इनका मेरु पर्वतपर छोड़ना (अनु० ८५ । ६८) । अग्निसे अपने गर्भके स्वरूप आदिका वर्णन (अनु० ८५ । ७२-७६) । पार्वतीजीसे स्त्रीधर्मका वर्णन करनेके लिये प्रार्थना (अनु० १४६ । २७-३२) । अपने पुत्र भीष्मकी मृत्युपर इनका शोक करना (अनु० १६८ । २३-२८) । भीष्मजीके धराशायी होनेपर वसुओंका गङ्गाजीके तटपर आकर अर्जुनको शाप देनेकी इच्छा प्रकट करना और गङ्गाजीद्वारा उनके इस विचारका अनुमोदन होना (आश्व० ८१ । १२-१५) ।

महाभारतमें आये हुए गङ्गाजीके नाम—आकाशगङ्गा, भगीरथसुता, भागीरथी, शैलराजसुता, शैलसुता, देवनदी, हैमवती, जाह्नवी, जह्नुकन्या, जह्नुसुता, समुद्रमहिषी, त्रिपथगा, त्रिपथगामिनी इत्यादि ।

गङ्गादत्त—राजा शान्तनुके द्वारा गङ्गाजीके गर्भसे उत्पन्न कुमार देवव्रत (आदि० ९९ । ४५ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । (देखिये भीष्म)

गङ्गाद्वार—जहाँ गङ्गाजी पर्वतमालाओंसे निकलकर समतल भूमि या मैदानमें आती हैं, उस स्थानका नाम गङ्गाद्वार है; इसीको 'हरद्वार' या 'हरिद्वार' कहते हैं । गङ्गाद्वारमें प्रतीपने तपस्या की (आदि० ९७ । १) । यहाँ भरद्वाज



माद्रीपुत्र सहदेव

मुनि रहते थे (आदि० १२९ । ३३)। अर्जुनने यहाँके तीर्थोंकी यात्रा की (आदि० २१३ अध्याय)। गङ्गाद्वार स्वर्गद्वारके समान है, वहाँ एकाग्रचित्त होकर कोटि-तीर्थमें स्नान करनेसे पुण्डरीक यज्ञका फल मिलता है (वन० ८४ । २७; वन० ८९ । १५; वन० ९० । २१)। पत्नीसहित महर्षि अगस्त्यने यहाँ तप किया था (वन० ९७ । ११)। जयद्रथने यहीं आराधना करके भगवान् शिवको प्रसन्न किया था (वन० २७२ । २४–२६)। दक्ष-प्रजापतिने भी यहीं (कनखलमें) यज्ञ किया था (शल्य० ३८ । २७-२८)। गङ्गाद्वार तथा वहाँके तीर्थ-विशेष कुशावर्त, विल्वक, नीलपर्वत तथा कनखलमें स्नान करके पापरहित हुआ मनुष्य स्वर्गलोकको जाता है (अनु० २५ । १३)। गङ्गाद्वारमें भीष्मजीने अपने पिताका श्राद्ध किया था, जिसमें पिण्ड लेनेके लिये शान्तनुका हाथ प्रकट हुआ था (अनु० ८४ । ११–१५)। धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती गङ्गाद्वारके वनमें दग्ध हुई थीं और वहाँ युधिष्ठिरने उनके लिये श्राद्धकर्म भी कराया था (आश्रम० ३९ । १४–२०)।

गङ्गामहाद्वार–यह वह स्थान है, जहाँ हिमालयके शिखरसे गङ्गाजी उतरती हैं। यह गङ्गोत्तरीसे भी बहुत आगे है। एक सत्यवादी महात्मा धाममुनि उसकी रक्षा करते हैं। उनकी मूर्ति, आकृति तथा संचित तपस्याका परिमाण किसीको ज्ञात नहीं होता। उस गङ्गामहाद्वारसे आगे जानेवाला मनुष्य हिमराशिमें गल जाता है। भगवान् नर-नारायणको छोड़कर दूसरा कोई उस गङ्गामहाद्वारसे आगे कभी नहीं गया (उद्योग० १११ । १६–२०)।

गङ्गा-यमुना-सङ्गम–प्रयागका एक पावन तीर्थ, जिसमें स्नान करनेसे दस अश्वमेध यज्ञका फल मिलता और समस्त कुलका उद्धार हो जाता है (वन० ८४ । ३५; वन० ८५ । ७४–७६)।

गङ्गा-सरस्वती-सङ्गम–प्रयागका एक पवित्र तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता और स्वर्गलोक प्राप्त होता है (वन० ८४ । ३८)।

गङ्गा-सागर-सङ्गम–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे दस अश्वमेध यज्ञोंके फलकी प्राप्ति होती है। वहाँ गङ्गाके दूसरे पार जाकर स्नान और तीन रात निवास करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है (वन० ८५।४-५)।

गङ्गाह्रद–यहाँ स्नानका फल (अनु० २५ । ३४)। कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित यौवन तीर्थके अन्तर्गत गङ्गाह्रद नामका कूप है, जिसमें तीन करोड़ तीर्थोंका वास है। उसमें स्नान करनेवाला मनुष्य स्वर्गलोकमें जाता है (वन० ८३ । १७६; वन० ८३ । २०१)।

गङ्गोद्भेद–एक तीर्थ, जिसमें तीन रात उपवास करनेवाला मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल पाता और सदाके लिये ब्रह्मीभूत हो जाता है (वन० ८४ । ६५)।

गज–(१) एक महापराक्रमी वानरराज, जो एक अरब सेनाके साथ श्रीरामके पास आये थे (वन० २८३ । ३)। (२) सुबलपुत्र शकुनिका एक छोटा भाई, जिसने अन्य भाइयोंके साथ रहकर पाण्डवसेनाके दुर्जय व्यूहमें प्रवेश किया था (भीष्म० ९० । २७–३०)। इरावान्-द्वारा इसका वध (भीष्म० ९० । ४५–४६)।

गजकर्ण–कुबेरकी सभामें उपस्थित हो उनकी सेवा करनेवाला एक यक्ष (सभा० १० । १६)।

गजशिरा–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६०)।

गण–सेना-गणनाके लिये एक पारिभाषिक शब्द। तीन गुल्मोंका एक गण होता है (आदि० २ । २१)।

गणा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ३)।

गणित–एक सनातन विश्वेदेव, कालकी गतिके ज्ञाता (अनु० ९१ । ३६)।

गणेश–व्यासनिर्मित महाभारतको लिपिबद्ध करनेवाले विघ्नेश्वर भगवान् गणनायक (आदि० १ । ७५–७९)।

गण्डक–एक देश, जो गण्डकी नदीके आस-पास बसा हुआ है। इसे भीमसेनने दिग्विजयके समय जीता था (सभा० २९ । ४)।

गण्डकण्डू–कुबेरकी सभाका एक यक्ष, जो वहाँ धनाध्यक्ष कुबेरकी सेवा करता है (सभा० १० । १५)।

गण्डकी–गङ्गाजीकी सात धाराओंमेंसे एक, गण्डकीका जल पीनेवाले मनुष्य तत्काल पापरहित हो जाते हैं (आदि० १६९ । २०-२१)। ग्रन्थान्तरोंमें इनके दो नाम और प्रसिद्ध हैं—नारायणी और शालग्रामी। महाभारत (भीष्म० ९ । २५) में तथा बौद्ध ग्रन्थोंमें इनका हिरण्वती या हिरण्यवती नाम भी उपलब्ध होता है। श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेनने इन्द्रप्रस्थसे गिरिव्रज जाते समय इसे पार किया था (सभा० २० । २७)। गण्डकी नदी सब तीर्थोंके जलसे उत्पन्न हुई है। वहाँ जानेसे तीर्थयात्री अश्वमेध यज्ञका फल पाता और सूर्य-लोकमें जाता है (वन० ८४ । ११३)। अग्निकी उत्पत्तिकी स्थानभूता नदियोंमें 'गण्डकी' की भी गणना है (वन० २२२ । २२)। हिरण्वती या गण्डकी भारतवर्षकी प्रधान नदियोंमें है (भीष्म० ९।२५)।

गण्डा–सप्तर्षियोंकी सेवा करनेवाली एक दासी (अनु०

९३ । २२)। इसका वृषादर्भिसे प्रतिग्रहके दोष बताकर उससे भय प्रकट करना (अनु० ९३ । ४६)। इसका यातुधानीसे अपने नामका अभिप्राय बताना (अनु० ९३ । ९८)। मृणालकी चोरीके विषयमें शपथ खाना (अनु० ९३ । १२९)।

गतिताली–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६७)।

गद–भगवान् श्रीकृष्णके अनुज । ये द्रौपदीके स्वयंवरमें आये थे (आदि० १८५ । १७)। अर्जुन और सुभद्राके लिये दहेज लेकर ये द्वारकासे इन्द्रप्रस्थ आये थे (आदि० २२० । ३२)। श्रीकृष्णके द्वारका जानेपर गदने इनका स्वागत किया और श्रीकृष्णने उन्हें हृदयसे लगाया (सभा० २ । ३५)। युधिष्ठिरके मयनिर्मित सभाभवनमें प्रवेश करनेके समय गद भी वहाँ उपस्थित थे (सभा० ४ । ३०)। पाण्डुनन्दन युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें अन्य वृष्णिवंशियोंके साथ गद भी पधारे थे (सभा० ३४ । १६)। शाल्वके चढ़ाई करनेपर इन्होंने द्वारका नगरीकी रक्षा-व्यवस्थामें सहयोग दिया था (वन० १५ । ९)। युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञमें श्रीकृष्णके साथ ये भी आये थे (आश्व० ८६ । ५)। मौसल-युद्धमें गदको मारा गया देख भगवान् श्रीकृष्णको विरोधियोंपर बड़ा क्रोध हुआ था (मौसल० ३ ।४५)।

गदापर्व–शल्यपर्वका एक अवान्तर पर्व (शल्य० अध्याय ३० से ६५ तक)।

गदावसान–मथुराका स्थानविशेष । श्रीकृष्णके द्वारा अपने जामाता कंसके मारे जानेपर अत्यन्त कुपित हो मगधराज जरासंधने श्रीकृष्णको मारनेकी नीयतसे निन्यानबे बार अपनी गदा घुमाकर गिरिव्रजसे मथुराकी ओर फेंकी। वह गदा निन्यानवे योजन दूर मथुरामें जाकर गिरी । जिस स्थानपर वह गदा गिरी थी, वह स्थान मथुरामें 'गदावसान' नामसे विख्यात हुआ (सभा० १९ । २२–२५)।

गन्धकाली–सत्यवतीका दूसरा नाम । भीष्मने पिताका प्रिय करनेकी इच्छासे उनके साथ माता सत्यवती या गन्धकालीका विवाह करवाया (आदि० ९५ । ४८)। (देखिये सत्यवती)

गन्धमादन–(१) हिमालयके उत्तरभागमें स्थित बदरिकाश्रमके समीपवर्ती पर्वत । गन्धमादनपर कश्यपजीने तपस्या की (आदि० ३० । १०)। यहीं भगवान् शेषने भी तप किया था (आदि० ३६ । ३)। शतशृङ्गपर्वतपर तपस्याके लिये जाते समय दोनों पत्नियोंसहित पाण्डुका यहाँ आगमन (आदि० ११८ । ४८)। यह गन्धमादन पर्वत दिव्यरूप धारण करके कुबेरकी सभामें रहकर उन भगवान् धनाध्यक्षकी उपासना करता है (सभा० १० । ३२)। नारायणरूपसे भगवान् श्रीकृष्णने यत्र-सायंगृह मुनि होकर दस हजार वर्षोंतक गन्धमादन पर्वतपर निवास किया है (वन० १२ । ११)। तपस्याके लिये जाते समय अर्जुनने हिमवान् तथा गन्धमादन पर्वतको लाँघकर आगेकी यात्रा की थी (वन० ३७ । ४१)। तपोबलसे ही गन्धमादनपर जाना सम्भव है—यह लोमशका वचन (वन० १४० । २२)। गन्धमादनपर विशाला बदरीका वृक्ष और भगवान् नर-नारायणका आश्रम है । वहाँ सदा यक्षलोग निवास करते हैं (वन० १४१ । २२–२४)। पाण्डवोंका गन्धमादनमें प्रवेश और वहाँकी प्राकृतिक स्थितिका वर्णन (वन० १४३ । २–६)। घटोत्कच और उसके साथियोंकी सहायतासे पाण्डवोंका गन्धमादनपर्वतपर पहुँचना (वन० १४५ अ०)। गन्धमादनकी प्राकृतिक शोभाका वर्णन (वन० १५८ अध्याय)। गन्धमादनपर भीमसेनद्वारा कुबेरके सखा राक्षसप्रवर मणिमान्का वध (वन० १६० । ७६-७७)। अर्जुनका इन्द्रलोकसे लौटकर गन्धमादनपर आना (वन० १६४ अध्याय)। लङ्कासे निर्वासित हुए कुबेरका गन्धमादनपर निवास (वन० २७५ । ३३)। यहाँ नर-नारायणने अवर्णनीय तपस्या की है (उद्योग० ९६ । १५)। (२) गन्धमादन-निवासी एवं गन्धमादन नामसे प्रसिद्ध एक वानर-यूथपति, जो दस खरब वानरोंकी सेना साथ लेकर श्रीरामके समीप आया था (वन० २८३ । ५)। (३) एक राक्षसराज, जो यक्षों, गन्धर्वों और निशाचरोंके साथ कुबेरकी सभामें उनकी उपासना करता है (सभा० १० । ३०-३१)।

गन्धर्वतीर्थ–सरस्वती-तटवर्ती एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ विश्वावसु आदि गन्धर्व नृत्य आदिका आयोजन करते रहते हैं । बलरामजीने इसकी यात्रा की थी (शल्य० ३७ । ९—१३)।

गन्धर्वनगर–(नगर, ग्राम आदिका वह आभास, जो आकाशमें या स्थलमें दृष्टिदोषसे दिखायी पड़ता है । जब गरमीके दिनोंमें मरुभूमि या समुद्रमें वायुकी तहोंका घनत्व उष्णताके कारण असमान होता है, उस समय प्रकाशकी गतिके विच्छेदसे दूसरे शहर, गाँव, वृक्ष, नौका आदिका प्रतिविम्ब आकाशमें पड़ता है और कभी-कभी उस आकाशके प्रतिविम्बका प्रतिविम्ब उलटकर पृथ्वीपर पड़ता है, जिससे कभी दूरके गाँव, नगर या तो आकाशमें उलटे टँगे या समीप दिखायी पड़ते हैं । यह दृष्टिदोष वायुकी असमान तहके कारण उस समय होता है, जब नीचेकी

तहकी वायु इतनी जल्दी हल्की हो जाती है कि ऊपरकी वायु और ऊपर नहीं जा सकती । गन्धर्वनगरका फल बृहत्संहितामें लिखा है—हिन्दी-शब्द-सागर) । महर्षियोंके अन्तर्धानको गन्धर्वनगरकी उपमा (आदि० १२५ । ३५) ।

गन्धर्वी–क्रोधवशाकी पुत्री । सुरभिकी कन्या । इससे घोड़ोंकी उत्पत्ति हुई (आदि० ६५ । ६७-६८) ।

गन्धवती–सत्यवतीने पराशरजीसे अपने शरीरके लिये उत्तम सुगन्धका वर माँगा । वर पाकर वह 'गन्धवती' एवं 'योजनगन्धा' नामसे प्रसिद्ध हुई (आदि० ६३ । ८०–८३) । (देखिये सत्यवती) ।

गभस्तिमान् द्वीप–एक द्वीप, जिसे शक्तिशाली सहस्रबाहुने जीता था (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७९२, कालम १) ।

गय–(१) 'आयु'के द्वारा स्वर्भानुकुमारीके गर्भसे उत्पन्न चतुर्थ पुत्र । पुरूरवाके पौत्र (आदि० ७५ । २५) । (२) एक प्राचीन राजा, जो अमूर्तरयाके पुत्र और राजर्षियोंमें श्रेष्ठ थे । शमठद्वारा इनके यज्ञका वर्णन (वन० ९५ । १८—२९) । ये यमराजकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ८ । १८) । इन्होंने सम्पूर्ण तीर्थोंकी यात्रा की और वहाँके पावन जलके स्पर्श तथा महात्माओंके दर्शनसे प्रचुर धन एवं यश लाभ किये थे (वन० ९४ । १८-१९) । इनके यज्ञकी प्रशंसा (वन० १२१ । ३—१३) । विराट-नगरमें गोहरणके समय अर्जुन और कृपाचार्यका युद्ध देखनेके लिये ये इन्द्रके विमानपर बैठकर आये थे (विराट० ५६ । ९-१०) । इन्होंने हस्तिनापुर जाते हुए श्रीकृष्णकी मार्गमें परिक्रमा की थी (उद्योग० ८३ । २७) । इनपर मान्धाताकी विजय (द्रोण० ६२ । १०) । सृञ्जयको समझाते हुए नारदजीद्वारा इनके यज्ञका वर्णन (द्रोण० ६६ अध्याय)। इन्होंने गयामें यज्ञ किया । इनके यज्ञमें आयी हुई सरस्वतीका नाम 'विशाला' है (शल्य० ३८ । २०-२१)। श्रीकृष्णद्वारा इनके यज्ञका वर्णन (शान्ति० २९ । १११—११९) । इनके द्वारा ब्राह्मणको पृथ्वीदान (शान्ति० २३४ । २६) । इन्होंने मांस-भक्षणका निषेध किया था (अनु० ११५ । ५९) । (३) एक परम पुण्यमय श्रेष्ठ पर्वत, जो राजा गयद्वारा सम्मानित हुआ है । वहीं देवर्षिसेवित कल्याणमय ब्रह्मसरोवर है । गयामें जाकर श्राद्ध करनेसे मनुष्यकी बीस पीढ़ियोंका उद्धार हो जाता है (वन० ८७ । ८–१०) । (४) एक देश, जिसके भीतर गय पर्वत और गया तीर्थ है । इस देशके लोग राजा युधिष्ठिरके यहाँ भेंट लेकर आये थे (सभा० ५२ । १६) ।

गयशिर–गया तीर्थके अन्तर्गत जो गय नामक पर्वत है, उसीको गयशिर अथवा गयशीर्ष कहते हैं, वहीं अक्षयवट है (वन० ८७ । ११; वन० ९५ । ९) ।

गयशीर्ष–गयाका ही तीर्थविशेष, जहाँ अक्षयवट है और जहाँ पितरोंके लिये दिया हुआ अन्न अक्षय होता है (वन० ८७ । ११; वन० ९५ । ९) ।

गया–एक परम पावन तीर्थ, जहाँ जाकर ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक एकाग्र-चित्त होनेसे मनुष्य अश्वमेध-यज्ञका फल पाता और अपने कुलका उद्धार कर देता है (वन० ८४ । ८२; वन० ९५ । ८) ।

गरिष्ठ–एक मुनि, जो इन्द्रसभामें रहकर वज्रधारी इन्द्रकी उपासना करते हैं (सभा० ७ । १३) ।

गरुड़–कश्यप और विनताके परम तेजस्वी पुत्र, जो भगवान् विष्णुके वाहन और ध्वज हैं (आदि० २३ । १२) । ये समय आनेपर अपनी माताकी सहायताके बिना ही अण्डा फोड़कर बाहर निकल आये । इनमें महान् साहस और बल-पराक्रम था । ये अपने तेजसे सम्पूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते थे । इच्छानुसार रूप धारण करने, चलने, पराक्रम दिखानेमें समर्थ थे । प्रज्वलित अग्निपुञ्जके समान अत्यन्त भयङ्कर जान पड़ते थे । इनकी पिङ्गल-वर्णकी आँखें बिजलीके समान चमकती थीं । ये पैदा होते ही सहसा बढ़कर विशाल हो गये और आकाशमें उड़ चले । देवता इन्हें बड़वानलके समान भीषण देख अग्निदेवकी शरणमें गये । अग्निदेवने बताया कि ये महातेजस्वी विनतानन्दन गरुड़ हैं । ये कश्यपकुमार देवताओंके हितैषी और सर्पोंके संहारक हैं (आदि० २३ । ५—१३) । देवताओंद्वारा इनकी स्तुति (आदि० २३ । १५—२६) । देवताओंद्वारा स्तुति करनेपर इनका अपने तेजको समेटना (आदि० २३ । २७; आदि० २४ । २) । अपने और माताके दास्यभावसे छूटनेके लिये इनका सर्पोंसे उपाय पूछना (आदि० २७ । १४-१५) । स्वर्ग जाते समय इनके पूछनेपर माताका इनको मार्गका भोजन बतलाना (आदि० २८ । २) । माताका इनके पूछनेपर इन्हें ब्राह्मणकी महिमा बताना और उन्हें न खानेका आदेश देना (आदि० २८ । ३–१२) । स्वर्ग जाते समय इनको माताका आशीर्वाद (आदि० २८ । १४–१६) । निषादोंके साथ एक सस्त्रीक ब्राह्मणका इनके मुँहमें आना, इनका कण्ठ जलना तथा इनके द्वारा उसका परित्याग (आदि० २९ । २–५) । पिता कश्यपका इनको कछुए तथा हाथीके पूर्वजन्मका इतिहास बताकर उन्हें खानेका आदेश देना (आदि० २९ । १३–३२) । इनके द्वारा हाथी, कछुए एवं बालखिल्य

ऋषियोंको लेकर उड़नेकी अद्भुत घटना (आदि० २९ । ३७ से ३० । २५) । बालखिल्य मुनियोंद्वारा इनका नामकरण (आदि० ३० । ६-७) । इनके पिताके स्तुति करनेपर बालखिल्य मुनियोंद्वारा उस शाखाका परित्याग (आदि० ३० । १६) । इनके स्वर्गके समीप जानेपर वहाँ अनेक प्रकारके अशुभसूचक उत्पात होना (आदि० ३० । ३२–३८) । भयभीत हुए इन्द्रको बृहस्पतिका अमृतके लिये गरुडके आनेकी सूचना देना (आदि० ३० । ४०–४२) । अमृत हरण करनेके लिये इनको स्वर्ग आते देख इन्द्रका देवताओंको सावधान करना (आदि० ३० । ४२–४४) । इनकी जन्मकथा तथा इनका पक्षियोंके इन्द्रपदपर अभिषेक (आदि० ३१ । ३४-३५; आदि० ३२ । १–२५) । अपना लघु रूप बनाकर चक्रमें इनका घुसना और अमृतके स्थानमें प्रवेश करना । वहाँ अमृतरक्षक अद्भुत पराक्रमी दो सर्पोंको मारकर इनका अमृतपात्रको लेकर उड़ना (आदि० ३३ । १–११) । मार्गमें इनका भगवान् विष्णुसे उनके ध्वजपर रहने तथा बिना अमृत पिये अजर-अमर होनेका वर पाना एवं उनके लिये भी स्वयं वाहन होनेका वर देना (आदि० ३३ । १२–१६) । इन्द्रके साथ इनका युद्ध और मित्रता (आदि० ३३ । २८ से ३४ । ७) । इन्द्रके कथनानुसार गरुड़के द्वारा नागोंका अमृत-की प्राप्तिसे वञ्चित होना, इन्द्रके मनोरथकी पूर्ति और विनताका दासीभावसे छुटकारा (आदि० ३४ । ८–२०) । इनके कुशोंपर अमृत रखनेसे उनका पवित्र होना (आदि० ३४ । २४) । ये अर्जुनके जन्म-समयमें वहाँ पधारे थे (आदि० १२२ । ५०) । श्रीकृष्णके ध्वजपर गरुडकी स्थिति (सभा० २४ । २२–२४) । इनका ऋद्धिमान् नामक नागको पकड़ना (वन० १६० । १५) । इनकी गर्वपूर्ण आत्मप्रशंसा (उद्योग० १०५ । ३–१७) । भगवान् विष्णुद्वारा इनके गर्वका नाश (उद्योग० १०५ । २२) । इनकी भगवान्‌से क्षमा-याचना (उद्योग० १०५ । २७–२९) । गुरुदक्षिणा-के लिये चिन्तित हुए गालवको इनका आश्वासन देना (उद्योग० १०७ । १७–१९) । गालवसे पूर्व दिशाका वर्णन करना (उद्योग० १०८ अध्याय) । गालवसे दक्षिण दिशाका वर्णन करना (उद्योग० १०९ अध्याय) । गालवसे पश्चिम दिशाका वर्णन करना (उद्योग० ११० अध्याय) । गालवसे उत्तर दिशाका वर्णन करना (उद्योग० १११ अध्याय) । ऋषभ पर्वतपर पंखहीन होना और शाण्डिलीसे क्षमा-याचना करना (उद्योग० ११३ । ८–११) । शाण्डिलीके वरदानसे पंखोंकी प्राप्ति (उद्योग० ११३ । १७) । गालवको धनके लिये राजर्षि ययातिके पास चलनेका परामर्श (उद्योग० ११४ । १–८) । ययातिसे अपने आगमनका प्रयोजन बताना (उद्योग० ११४ । ११–२०) । ययातिकी कन्याके मिलनेपर गालवसे विदा लेना (उद्योग० ११५ । १६) । गालवको गुरुदक्षिणाके लिये छः सौ घोड़े और माधवी-को भी गुरुकी सेवामें समर्पित करनेके लिये सम्मति देना (उद्योग० ११९ । ९-१०) । इनके द्वारा स्कन्दको अपने पुत्र मयूरका दान (शल्य० ४६ । ५१) । श्रीनारायणकी आज्ञासे राजा उपरिचर वसुको पातालसे उठाकर आकाशचारी बनाना (शान्ति० ३३७ । ३७) । ऋषियोंके समाजमें नारायणकी महिमाके विषयमें अपना अनुभव सुनाना (अनु० १३ । दा० पाठ) । इनका कार्तिकेयको मयूर भेंट करना (अनु० ८६ । २१) ।

महाभारतमें आये हुए गरुड़के नाम–अरुणानुज, भुजगारि, गरुत्मान्, काश्यपेय, खगराट्, पक्षिराट्, पक्षिराज, पतगपति, पतगेश्वर, सुपर्ण, तार्क्ष्य, वैनतेय, विनतानन्द-वर्धन, विनतासूनु, विनतासुत, विनतात्मज आदि ।

गरुड़व्यूह–सेनाकी मोर्चाबंदीकी एक विधि, जिसके अनुसार सैनिकोंको गरुड़की आकृतिमें खड़ा किया जाता है (भीष्म० ५६ । २) ।

गर्ग–एक प्राचीन महर्षि । इनका द्रोणाचार्यके पास आकर उनसे युद्ध बंद करनेके लिये कहना (द्रोण० १९० । ३५–४०) । महाराज पृथुके दरबारमें ज्यौतिषी होना (शान्ति० ५९ । १११) । महात्मा गर्गने किसी समय गन्धर्वराज विश्वावसुको वेद्य तत्त्वकी नित्यताका उपदेश दिया था (शान्ति० ३१८ । ५९–६३) । शिवमहिमाके विषयमें युधिष्ठिरसे अपना अनुभव बताना (अनु० १८ । ३८-३९) ।

गर्गस्रोत–सरस्वती-तटवर्ती एक तीर्थ, जहाँ तपस्यासे पवित्र अन्तःकरणवाले वृद्धगर्गने कालका ज्ञान, कालकी गति, ग्रहों और नक्षत्रोंके उलट-फेर आदि बातोंकी जानकारी की (शल्य० ३७ । १४—१८) ।

गवय–एक महापराक्रमी वानरराज, जो एक अरब सेनाके साथ श्रीरामके समीप पधारे थे (वन० २८३ । ३) ।

गवल्गण–मुनियोंके समान ज्ञानी एवं धर्मात्मा सञ्जयके पिता (आदि० ६३ । ९७) ।

गवाक्ष–(१) एक गोलांगूल (लंगूर) जातिका वानर, जो देखनेमें बड़ा भयङ्कर था । अपने साथ साठ सहस्र कोटि (६ खरब) वानर-सेना लेकर श्रीरामके सामने उपस्थित हुआ (वन० २८३ । ४) । (२) सुबलपुत्र शकुनिका

एक छोटा भाई, जिसने अन्य भाइयोंके साथ रहकर पाण्डव-सेनाके दुर्जय व्यूहमें प्रवेश किया था (भीष्म० ९०। २७—३०) । इरावान्‌द्वारा इसका वध (भीष्म० ९०। ४५-४६)।

गवायन-एक यज्ञका नाम (वन० ८४। १०२) ।

गविष्ठ-दस विख्यात दानवोंमेंसे एक (आदि० ६५। ३०)। यही राजा द्रुमसेनके रूपमें प्रकट हुआ था (आदि० ६७। ३४-३५)।

गाङ्गेय-(१) गङ्गानन्दन देवव्रत भीष्म (आदि० ९९। ४७)। गङ्गानन्दन देवव्रत भीष्म (अनु० २६। २)। (२) गङ्गापुत्र भगवान् स्कन्द (शल्य० ४४। १६)। (३) गङ्गाजीका जल (वन० ३। ३५)।

गाण्डीव-वरुणदेवका एक दिव्य धनुष, जो अग्निदेवके द्वारा अर्जुनको दो अक्षय तरकसोंके साथ प्राप्त हुआ (आदि० ६१। ४७-४८; उद्योग० १५८। ६) । अग्निका वरुणसे अर्जुनके लिये गाण्डीव धनुष, दो अक्षय तरकस और कपिध्वज रथ माँगना तथा वरुणका उनकी माँग स्वीकार करके वे सब वस्तुएँ प्रस्तुत करना (आदि० २२४ । ३—१७) । अर्जुनद्वारा गाण्डीव-ग्रहण (आदि० २२४। २०) । गाण्डीव धनुष शत्रुओंकी सेनाके लिये कालरूप है । यह सब आयुधोंसे विशाल है। यह अकेला ही एक लाख धनुषोंके समान है। देवताओं, दानवों और गन्धर्वोंने इसका बहुत वर्षोंतक पूजन किया है। इसमें कभी कहीं कोई चोटका चिह्न नहीं आया है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने इसे एक हजार वर्षोंतक धारण किया था। तदनन्तर प्रजापतिने पाँच सौ तीन वर्षोंतक इसे अपने पास रक्खा। फिर इन्द्रने पचासी वर्षोंतक, सोमने पाँच सौ वर्षोंतक तथा राजा वरुणने सौ वर्षोंतक इसे धारण किया था (विराट० ४३ । १०६) । वज्रकी गाँठको 'गाण्डीव' कहा गया है। यह धनुष इसीका बना हुआ है। इसलिये 'गाण्डीव' कहलाता है । जगत्‌का संहार करनेके लिये इसका निर्माण हुआ है। देवतालोग सदा इसकी रक्षा करते हैं (उद्योग० ९८। १९) । 'गाण्डीव दूसरेको दे दो' ऐसा कहनेवालेका सिर काट लेना यह अर्जुनका उपांशु व्रत था (कर्ण० ६९। ९-१०)। अग्निदेवके कहनेपर वरुणको वापस देनेके लिये अर्जुनने गाण्डीव धनुष और अक्षय तरकसोंको जलमें डाल दिया था (महाप्रस्था० १। ३६—४२)।

गाधि-विश्वामित्रके पिता। गाधिके पिताका नाम 'कुशनाभ' था (आदि० ७४। ६९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। ये कुशिक (या कुशनाभ) के पुत्र तथा कान्यकुब्ज देशके अधिपति थे (आदि० १७४। ३) । इनके द्वारा ऋचीक मुनिको अपनी कन्या सत्यवतीका दान (वन० ११५ । २८; शान्ति० ४९ । ७) । तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे इनका ऋचीकके आश्रमपर जाना (शान्ति० ४९। १३)। कुशिकपुत्र गाधि दीर्घकालतक संतान-हीन थे; अतः संतानकी इच्छासे पुण्य कर्म करनेके लिये वे वनमें रहने लगे। वहाँ सोमयाग करनेसे उन्हें एक कन्या हुई, जिसका नाम सत्यवती था। इसे ऋचीक मुनिने माँगा। तब गाधिने शुल्क लेकर कन्या देनेकी इच्छा प्रकट की और चन्द्रमाके समान कान्तिमान् तथा श्यामवर्णके एक कर्णवाले एक हजार घोड़े लेकर उन्होंने अपनी कन्या उन ब्रह्मर्षिको दे दी (अनु० ४। ६—२०)। ये अपने पुत्र विश्वामित्रको राज्यसिंहासनपर बिठाकर स्वर्गलोकको चले गये (शल्य० ४०। १६)।

गान्धर्व-एक प्रकारका विवाह (आदि० ७३। ९)। वर और वधू दोनों एक-दूसरेको स्वेच्छासे स्वीकार कर लें, यह गान्धर्व विवाह है। यह विवाह क्षत्रियोंके लिये धर्मानुकूल है (आदि० ७३। १३)।

गान्धार-एक प्राचीन देश, आधुनिक मतके अनुसार इसमें सिन्धु और कुनर नदीसे लेकर काबुल नदीतकका प्रदेश और पेशावर तथा मुल्तान सम्मिलित हैं। गान्धारीके पिता सुबल यहींके राजा थे (आदि० १०९। ११)।

गान्धारी-(१) पूरुवंशीय महाराज अजमीढ़की द्वितीय पत्नी (आदि० ९५। ३७)। (२) गान्धारराज सुबलकी पुत्री (आदि० १०९। ९)। ये मतिके अंशसे उत्पन्न हुई थीं (आदि० ६७। १६०)। इन्होंने भगवान् शङ्करकी आराधना करके उनसे अपने लिये सौ पुत्र प्राप्त होनेका वरदान पा लिया था (आदि० १०९। १०)। पिताद्वारा इनका धृतराष्ट्रके लिये वाग्दान (आदि० १०९। १२)। गान्धारी पतिव्रत-परायणा थी। उन्होंने जब सुना कि मेरे भावी पति अंधे हैं और माता-पिता मेरा विवाह उन्हींके साथ करना चाहते हैं, तब रेशमी वस्त्र लेकर उसके कई तह करके उसीसे अपनी आँखें बाँध लीं। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि मैं सदा पतिके अनुकूल रहूँगी । उनके दोष नहीं देखूँगी (आदि० १०९। १३—१५) । शकुनिद्वारा इनके विवाह-संस्कारका सम्पादन (आदि० १०९ । १५—१७)। सुन्दरी गान्धारीने अपने उत्तम स्वभाव, सदाचार तथा सद्व्यवहारोंसे समस्त कौरवोंको प्रसन्न कर लिया। अपने सुन्दर बर्तावसे समस्त गुरुजनोंकी प्रसन्नता प्राप्त करके उत्तम व्रतका पालन करनेवाली पतिपरायणा गान्धारीने कभी दूसरे पुरुषोंका नामतक नहीं लिया (आदि० १०९। १८—१९)। इनके द्वारा व्यासका सत्कार और उनसे

सौ पुत्रोंकी प्राप्तिके लिये वर-याचना (आदि० ११४ । ८)। गान्धारीका गर्भ-धारण । कुन्तीके पुत्र होनेका समाचार सुनकर महान् दुःखके कारण अपने उदरपर आघात और इनके गर्भसे एक मांस-पिंडका प्रादुर्भाव (आदि० ११४ । ९-१२) । व्यासजीके आदेशानुसार सौ टुकड़ोंमें विभक्त हुए उस मांस-पिण्डकी रक्षा-व्यवस्था होनेपर उससे सौ पुत्रोंकी उत्पत्ति (आदि० ११४ । १७-२२) । पुत्रीके लिये इनका मनोरथ एवं व्यासद्वारा उसकी पूर्ति (आदि० ११५ । ९-१७) । इनके द्वारा धृतराष्ट्रको चेतावनी (सभा० ७५ । २-१०) । इनका दुर्योधनको समझाना (उद्योग० ६९ । ९-१०) । युद्ध होनेके विषयमें इनका धृतराष्ट्रको ही दोषी बताना (उद्योग० १२९ । १०-१५) । पाण्डवोंको आधा राज्य देकर संधि करनेके लिये दुर्योधनको समझाना (उद्योग० १२९ । १९-५४) । कर्णवधका समाचार सुनकर मूर्छित होकर गिरना (कर्ण० ४ । ५; कर्ण० ९६ । ५५)। श्रीकृष्णके समझानेपर उन्हें उत्तर देना (शल्य० ६३ । ६६-६८) । पाण्डवोंको शाप देनेकी इच्छा करना (स्त्री० १४ । २) । व्यासजीके समझानेपर उन्हें उत्तर देना (स्त्री० १४ । १४-२१) । भीमसेनपर कुपित होकर उनसे अन्यायका कारण पूछना (स्त्री० १५ । १२-१४; स्त्री० १५ । २१-२३) । युधिष्ठिरपर कुपित होकर उन्हें पूछना और इनकी तनिक-सी दृष्टि पड़ते ही युधिष्ठिरके पैरोंके नखोंका काला पड़ जाना (स्त्री० १५ । २४-३०) । कुन्ती और द्रौपदीको धीरज देना (स्त्री० १५ । ४१-४४) । युद्धस्थलमें मारे गये स्वजनोंको देखकर श्रीकृष्णके समक्ष विलाप करना (स्त्री० १६ । १८-६०) । दुर्योधनको मरा हुआ देखकर श्रीकृष्णके सम्मुख विलाप करना (स्त्री० १७ । ५-३२) । अपने अन्य पुत्रों तथा दुःशासनको देखकर श्रीकृष्णके सम्मुख इनका करुण रोदन (स्त्री० १८ अध्याय)। विकर्ण, दुर्मुख, चित्रसेन, विविंशति और दुःसहको देखकर श्रीकृष्णके सम्मुख इनका विलाप (स्त्री० १९ अध्याय) । इनके द्वारा श्रीकृष्णसे उत्तरा और विराट-कुलकी स्त्रियोंके शोक और विलापका वर्णन (स्त्री० २० अध्याय) । कर्णके शवको देखकर उसके शौर्य तथा उसकी स्त्रीके विलापका श्रीकृष्णके सम्मुख वर्णन (स्त्री० २१ अध्याय) । अवन्तीनरेश, जयद्रथ तथा दुःशलाको देखकर इनका श्रीकृष्णके सम्मुख शोक प्रकट करना (स्त्री० २२ अध्याय) । शल्य, भगदत्त, भीष्म और द्रोणको देखकर श्रीकृष्णके सम्मुख इनका विलाप (स्त्री० २३ अध्याय) । भूरिश्रवाकी पत्नियोंका विलाप तथा शकुनिको देखकर श्रीकृष्णके सम्मुख इनका शोकोद्गार (स्त्री० २४ अध्याय) । अन्यान्य वीरोंको मरा हुआ देखकर विलाप करना और कुपित होकर श्रीकृष्णको शाप देना (स्त्री० २५ । १-३६; स्त्री० २५ । ४३-४६) । राजा धृतराष्ट्रके साथ इनका वनको प्रस्थान (आश्रम० १५ । ८-९) । वनमें व्यासजीके समक्ष खड़ी होकर इनका उनसे महाराज धृतराष्ट्र तथा द्रौपदी, सुभद्रा, कुन्ती आदि सभी कुरुकुलकी स्त्रियोंके स्वजनोंके लिये होनेवाले शोकका वर्णन करना और सबको मरे हुए सम्बन्धियोंके दर्शन करानेका प्रस्ताव करना (आश्रम० २९ । ३७-४९) । व्यासजीकी कृपासे इनका राजा धृतराष्ट्र तथा कुरुकुलकी स्त्रियोंके साथ गङ्गाजीसे प्रकट हुए अपने परलोकवासी स्वजनोंके दर्शन करना (आश्रम० ३२ अध्याय)। धृतराष्ट्र और कुन्तीके साथ इनका गङ्गाद्वारके वनमें दावानलसे दग्ध होना (आश्रम० ३७ । ३१-३२) । युधिष्ठिरका इनके लिये जलाञ्जलि देना तथा नाना प्रकारकी वस्तुओंका दान एवं श्राद्ध-कर्म करना (आश्रम० ३९ अध्याय) । 'गान्धारीके शापकी सफलताका अवसर प्राप्त हुआ है'—ऐसी श्रीकृष्णकी मान्यता (मौसल० २ । २१) । धृतराष्ट्रके साथ इनको कुबेरके दुर्लभ लोकोंकी प्राप्ति (स्वर्गा० ५ । १४) । (२) उमादेवीकी अनुगामिनी सहचरी (वन० २३१ ।४८)।

महाभारतमें आये हुए गान्धारीके नाम—गान्धारराजदुहिता, सौबलेयी, सौबली, सुबलजा, सुबलपुत्री, सुबलात्मजा आदि।

गायत्री—चौबीस अक्षरोंका एक वैदिक मन्त्र; स्थावर-जङ्गम उन्नीस प्राणी हैं । इनके साथ पाँच महाभूतोंको गिन लेनेपर इनकी संख्या चौबीस हो जाती है । गायत्रीके भी इतने ही अक्षर होते हैं; इसलिये इन चौबीस भूतोंको भी लोकसम्मत गायत्री कहते हैं । जो इस सर्वगुणसम्पन्न पुण्यमयी गायत्रीको यथार्थरूपसे जानता है वह कभी नष्ट नहीं होता है (भीष्म० ४ । १५-१६) । गायत्री त्रिपुर-विजयके समय महादेवजीके रथके ऊपरी भागकी बन्धन-रज्जु बनी थी (कर्ण० ३४ । ३५) । कन्या गायत्रीने कार्तवीर्य अर्जुनको ब्राह्मणोंकी श्रेष्ठताके विषयमें चेतावनी देते हुए आकाशवाणीद्वारा अपना मन्तव्य प्रकट किया था (अनु० १५२ । १४, २०) ।

गायत्री-स्थान—एक तीर्थस्थान, जहाँ तीन रात निवास करनेवाला सहस्र गोदानका फल पाता है (वन० ८५ । २८) ।

गायन—स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६७) ।

गार्ग्य (१)—एक प्राचीन ऋषि, जो देवराज इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । १८ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) । विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५५) । इनके द्वारा धर्मके रहस्यका वर्णन

(अनु० १२७ । ९–१४)। (२) एक भारतीय जनपद, जिसे भगवान् श्रीकृष्णने जीता था (द्रोण० ११ । १५)।

गार्दभि–विश्वामित्रके एक ब्रह्मवादी पुत्र (अनु० ४।५९)।

गार्हपत्य–(१) सात पितरोंमेंसे एक (सभा० ११ । ४६)। (२) एक अग्नि (वन० २२४ । ३५)।

गालव–युधिष्ठिरकी सभामें विराजनेवाले एक ऋषि (सभा० ४ । १५) । ये इन्द्रकी सभामें भी बैठते हैं (सभा० ७ । १०) । गुरुदक्षिणा माँगनेके लिये इनका गुरु विश्वामित्र-से हठ करना (उद्योग० १०६ । २५) । गुरुदक्षिणाके लिये आठ सौ घोड़े पानेकी चिन्ता (उद्योग० १०७ । ३–१५) । गरुडकी पीठपर बैठकर पूर्व दिशाकी ओर जाते हुए गरुडके वेगसे इनका व्याकुल होना (उद्योग० ११२ । ५–१८) । गरुडके साथ धनके लिये ययातिके पास जाना (उद्योग० ११४ । ९) । ययातिकन्या माधवी-को लेकर अयोध्यानरेश हर्यश्वके पास जाना (उद्योग० ११५ । १८) । राजा हर्यश्वसे दो सौ घोड़े शुल्करूपमें लेकर माधवीको एक पुत्र उत्पन्न करनेके लिये उनके हाथमें सौंपना (उद्योग० ११६ । १५) । पुत्रोत्पत्तिके बाद पुनः माधवीको लेकर इनका दिवोदासके पास जाना (उद्योग० ११६ । २२) । दो सौ घोड़े शुल्करूपमें लेकर माधवीको दिवोदासके हाथमें एक पुत्रकी उत्पत्तिके लिये देना (उद्योग० ११७ । ७) । पुत्रोत्पत्तिके पश्चात् वहाँसे माधवीको लेकर गालवका उशीनरके पास जाना और उशीनरको माधवीके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न करनेकी प्रेरणा देते हुए उनसे चार सौ घोड़े माँगना (उद्योग० ११८ । ३–८) । गरुडकी सलाहसे विश्वामित्रको छः सौ घोड़े और माधवीको देकर गुरुदक्षिणा चुकाना (उद्योग० ११८ । १४) । फिर एक पुत्रकी उत्पत्तिके बाद माधवीको राजा ययातिको लौटाकर इनका वनको जाना (उद्योग० ११८ । २४) । स्वर्गसे गिरे हुए ययातिको इनका अपने तपका आठवाँ भाग देना (उद्योग० १२१ । २८) । नारदजीसे श्रेयके विषयमें प्रश्न करना (शान्ति० २८७ । ५–११) । शिवमहिमा-के विषयमें युधिष्ठिरसे अपना अनुभव सुनाना (अनु० १८ । ५२–५८) । अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होने-पर शपथ करना (अनु० ९४ । ३७) । महर्षि गालव विश्वामित्रजीके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक थे (अनु० ४ । ५२) । इनके पुत्रका नाम शृङ्गवान् था, जो एक महर्षि थे और जिन्होंने वृद्धकन्यासे विवाह किया था (शल्य० ५२ । १४-१५) । (२) एक बाभ्रव्यगोत्रीय ऋषि, जो वेदके क्रमविभागके पारङ्गत विद्वान् थे (शान्ति० ३४२ । १०४) ।

गिरिका–शुक्तिमती नदीकी पुत्री, जिनका जन्म कोलाहल पर्वतके द्वारा शुक्तिमतीके गर्भसे हुआ था (आदि० ६३ । ३७) । यही राजा उपरिचर वसुकी पत्नी हुई (आदि० ६३ । ३९) ।

गिरिगह्वर–पूर्वोत्तर भारतका एक जनपद (भीष्म० ९ । ४२) ।

गिरिप्रस्थ–निषधदेशका एक पर्वत, जिसके आश्रयमें छिपे रहकर इन्द्रने अपना कार्य सिद्ध किया था (वन० ३१५ । १३) ।

गिरिव्रज–मगधदेशकी प्राचीन राजधानी । जरासंध गिरिव्रज-में ही रहता था । उसके समयमें गिरिव्रजकी जो प्राकृतिक स्थिति थी, उसका वर्णन श्रीकृष्णने अर्जुनसे इस प्रकार किया था—यहाँ पशुओंकी अधिकता है, जलकी सदा पूर्ण सुविधा रहती है, रोग-व्याधिका प्रकोप नहीं होता । सुन्दर महलोंसे भरा-पूरा यह नगर बड़ा मनोहर जान पड़ता है । यहाँ विहारोपयोगी विपुल, वराह, वृषभ (ऋषभ), ऋषिगिरि (मातंग) तथा चैत्यक नामक पर्वत हैं । बड़े-बड़े शिखरोंवाले ये पाँचों सुन्दर पर्वत शीतल छायावाले वृक्षोंसे सुशोभित हैं और एक साथ मिलकर एक-दूसरेके शरीरका स्पर्श करते हुए मानो गिरिव्रज नगरकी रक्षा कर रहे हों । यहाँ अर्बुद और शक्रवापी नामवाले दो नाग रहते हैं । स्वस्तिक और मणि नामक नागोंके भी यहाँ उत्तम भवन हैं । यहाँ सदा मेघ समयपर वर्षा करते हैं (सभा० २१ । १–१०) । यहाँ जरासंधने अपनेद्वारा जीते गये नरेशोंको कैद करके रखा था (सभा० १४ । ६३) । गिरिव्रजसे मथुराकी ओर जरासंधने अपनी गदा फेंकी थी (सभा० १९ । २३-२४) । श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेन गिरिव्रजमें गये । भीमने वहाँ जरासंधको मारा और भगवान् श्रीकृष्णने बंदी राजाओंको कैदसे छुड़ाया । फिर भयभीत हो शरणमें आये हुए जरासंधपुत्रको राजाके पदपर अभिषिक्त किया (सभा० २४ अध्याय) । भीमसेनने पूर्वदिग्विजयके समय जरासंधके पुत्रको 'कर' देनेकी शर्तपर उसके राज्यपर प्रतिष्ठित कर दिया (सभा० ३० । १७-१८) । गिरिव्रजमें ही राजर्षि धुन्धुमार देवताओंके वरदानको त्यागकर सोये थे (अनु० ६ । ३९) ।

गीतप्रिया–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ७) ।

गीता–कुरुक्षेत्रमें युद्धके अवसरपर स्वजनोंके वधकी आशङ्कासे मोहग्रस्त हुए अर्जुनके शोक, चिन्ता और दैन्यका निवारण करके उन्हें कर्तव्य कर्ममें निष्काम भावसे

लगा देनेके लिये भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको जो उपदेश दिया था, वही 'गीता' (अथवा 'श्रीमद्भगवद्गीता') के नामसे विख्यात है । वेदव्यासजीने गीताके इस प्रसङ्गको भीष्मपर्वके श्रीमद्भगवद्गीतापर्वमें अध्याय २५ से ४२ तक लिपिबद्ध किया है । इसमें कुल सात सौ श्लोक हैं। श्रीमद्भगवद्गीताके प्रत्येक अध्यायके विषयोंका संक्षिप्त दिग्दर्शन इस प्रकार है—दोनों सेनाओंके प्रधान-प्रधान वीरों एवं शङ्खध्वनिका वर्णन तथा स्वजन-वधके पापसे भयभीत हुए अर्जुनका विषाद **(भीष्म० २५ अध्याय)**। अर्जुनको युद्धके लिये उत्साहित करते हुए भगवान्के द्वारा नित्यानित्य वस्तुके विवेचनपूर्वक सांख्ययोग, कर्म-योग एवं स्थितप्रज्ञकी स्थिति और महिमाका प्रतिपादन **(भीष्म० २६ अध्याय)**। ज्ञानयोग और कर्मयोग आदि समस्त साधनोंके अनुसार कर्तव्य कर्म करनेकी आवश्यकताका प्रतिपादन एवं स्वधर्म-पालनकी महिमा तथा कामनिरोधके उपायका वर्णन **(भीष्म० २७ अध्याय)**। सगुण भगवान्के प्रभाव, निष्काम कर्मयोग तथा योगी महात्मा पुरुषोंके आचरण और उनकी महिमा-का वर्णन करते हुए विविध यज्ञों एवं ज्ञानकी महिमाका वर्णन **(भीष्म० २८ अध्याय)**। सांख्ययोग, निष्काम कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तिसहित ध्यानयोगका वर्णन **(भीष्म० २९ अध्याय)**। निष्काम कर्मयोगका प्रति-पादन करते हुए आत्मोद्धारके लिये प्रेरणा तथा मनो-निग्रहपूर्वक ध्यानयोग एवं योगभ्रष्टकी गतिका वर्णन **(भीष्म० ३० अध्याय)** । ज्ञान-विज्ञान, भगवान्की व्यापकता, अन्य देवताओंकी उपासना एवं भगवान्को प्रभावसहित न जाननेवालोंकी निन्दा और जाननेवालोंकी महिमाका कथन **(भीष्म० ३१ अध्याय)**। ब्रह्म, अध्यात्म और कर्मादिके विषयमें अर्जुनके सात प्रश्न और उनका उत्तर एवं भक्तियोग तथा शुक्ल और कृष्ण मार्गों-का प्रतिपादन **(भीष्म० ३२ अध्याय)**। ज्ञान-विज्ञान और जगत्की उत्पत्तिका, आसुरी और दैवी सम्पदावालोंका, प्रभावसहित भगवान्के स्वरूपका, सकाम-निष्काम उपासनाका एवं भगवद्भक्तिकी महिमाका वर्णन **(भीष्म० ३३ अध्याय)**। भगवान्की विभूति और योगशक्तिका तथा प्रभावसहित भक्तियोगका कथन, अर्जुनके पूछनेपर भगवान्द्वारा अपनी विभूतियोंका और योगशक्तिका पुनः वर्णन **(भीष्म० ३४ अध्याय)** । विश्वरूपका दर्शन करानेके लिये अर्जुनकी प्रार्थना, भगवान् और संजयद्वारा विश्वरूपका वर्णन, अर्जुनद्वारा भगवान्के विश्वरूपका देखा जाना, भयभीत हुए अर्जुनद्वारा भगवान्की स्तुति-प्रार्थना, भगवान्द्वारा विश्वरूप और चतुर्भुजरूपके दर्शनकी महिमा और केवल अनन्य भक्तिसे ही भगवान्की प्राप्तिका कथन **(भीष्म० ३५ अध्याय)** । साकार और निराकारके उपासकोंकी उत्तमताका निर्णय तथा भगवत्प्राप्तिके उपाय-का एवं भगवत्प्राप्तिवाले पुरुषोंके लक्षणोंका वर्णन **(भीष्म० ३६ अध्याय)**। ज्ञानसहित क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ और प्रकृति-पुरुषका वर्णन **(भीष्म० ३७ अध्याय)**। ज्ञानकी महिमा और प्रकृति-पुरुषसे जगत्की उत्पत्तिका, सत्त्व, रज, तम—तीनों गुणोंका, भगवत्प्राप्तिके उपायका एवं गुणातीत पुरुषके लक्षणोंका वर्णन **(भीष्म० ३८ अध्याय)** । संसार-वृक्षका, भगवत्प्राप्तिके उपायका, जीवात्माका प्रभावसहित परमेश्वरके स्वरूपका एवं क्षर-अक्षर और पुरुषोत्तमके तत्त्वका वर्णन **(भीष्म० ३९ अध्याय)**। फलसहित दैवी और आसुरी सम्पदाका वर्णन तथा शास्त्रविपरीत आचरणोंको त्यागने और शास्त्र-अनुकूल आचरण करनेके लिये प्रेरणा **(भीष्म० ४० अध्याय)**। श्रद्धाका और शास्त्रविपरीत घोर तप करने-वालोंका वर्णन, आहार, यज्ञ, तप और दानके पृथक्-पृथक् भेद तथा ॐ, तत्, सत्के प्रयोगकी व्याख्या **(भीष्म० ४१ अध्याय)**। त्यागका, सांख्य-सिद्धान्तका, फलसहित वर्ण-धर्मका, उपासनासहित ज्ञाननिष्ठाका, भक्ति-सहित निष्काम कर्मयोगका एवं गीताके माहात्म्यका वर्णन **(भीष्म० ४२ अध्याय)** ।

गुडाकेश—अर्जुनका एक नाम **(आदि० १३८ । ८)**। (निद्राको जीत लेनेके कारण अर्जुनका नाम गुडाकेश हुआ)। (देखिये अर्जुन)

गुणकेशी—इन्द्रके प्रिय सारथि मातलिकी कन्या **(उद्योग० ९७ । १३)**। नागकुमार सुमुखके साथ विवाह हुआ **(उद्योग० १०४ । २९)** ।

गुणमुख्या—स्वर्गकी एक अप्सरा, जो अर्जुनके जन्मकालमें अन्य अप्सराओंके साथ नृत्य करने आयी थी **(आदि० १२२ । ६१)**।

गुणावती—एक नदी, जिसके उत्तर प्रान्तमें परशुरामजीने क्षत्रियोंका संहार किया था **(द्रोण० ७० । ८)**।

गुणावरा—स्वर्गकी एक अप्सरा, जो अर्जुनके जन्मकालमें अन्य अप्सराओंके साथ नृत्य करने आयी थी **(आदि० १२२ । ६१)**।

गुप्तक—सौवीर देशका राजकुमार, जो जयद्रथका साथी था **(वन० २६५ । १०)**। अर्जुनद्वारा इसका वध **(वन० २७१ । २७)**।

गुरुभार—गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक **(उद्योग० १०१ । १३)**।

गुरुस्कन्द—एक पर्वतराज **(आश्व० ४३ । ५)**।

गुल्म–सेना-गणनाके लिये एक पारिभाषिक शब्द—तीन सेनामुखका एक गुल्म होता है (आदि० २ । २०) ।

गुह–एक दक्षिण भारतीय म्लेच्छ जातिका नाम (शान्ति० २०७ । ४२) ।

गुह्यक–(१) देवयोनिके अन्तर्गत एक जाति, इस जातिके लोग द्रौपदीका स्वयंवर देखने आये थे (आदि० १८६ । ७)। ये कुबेरकी सभाका वहन करते हैं (सभा० १० । ३) । गन्धमादनपर भीमसेनने अपनी गदासे गुह्यकोंको मारा था, (शल्य० ११ । ५५–५७) । महाभारत-युद्धमें मारे गये योद्धाओंमेंसे कुछ लोग गुह्यकोंके लोकोंको प्राप्त हुए (स्वर्गा० ४। २३)(२) एक यक्ष, जो कुबेरकी सभामें उनकी सेवाके लिये उपस्थित होता था (सभा० १० । १५) । वह ब्रह्माजीकी सभामें भी उपस्थित होता है (सभा० ११ । ४९) ।

गृत्समद–इन्द्रके प्रिय सखा और बृहस्पतिके समान एक श्रेष्ठ मुनि । शिव-महिमाके विषयमें इनका युधिष्ठिरसे अपना अनुभव बताना (अनु० १८ । १९–२९) । ये वीतहव्य-के पुत्र थे और रूपमें इन्द्रकी समानता करते थे, किसी समय दैत्योंने इन्हें 'इन्द्र' मानकर पकड़ लिया था । इनके पुत्रका नाम सुचेता था (अनु० ३० । ५८-५९) । ऋग्वेदमें महामना गृत्समदकी श्रेष्ठ श्रुति विराजमान है, ब्राह्मणलोग इनका बड़ा सम्मान करते हैं । ये ब्रह्मर्षि गृत्समद बड़े तेजस्वी और ब्रह्मचारी थे (अनु० ३० । ६०-६१) ।

गृध्रकूट–एक पर्वत, जहाँ लंगूरोंने मगधराज बृहद्रथको बचाया था (शान्ति० ४९ । ८२) ।

गृध्रपत्र–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७४) ।

गृध्रवट–महादेवजीका स्थान, जहाँ भस्मस्नान कर्तव्य है । वहाँ यात्रा करनेसे ब्राह्मणको व्रतके पालनका पुण्य फल प्राप्त होता है तथा अन्य वर्णवालोंके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं (वन० ८४ । ९१-९२) ।

गृहदेवी–राक्षसी जरा, जिसे ब्रह्माजीने 'गृहदेवी' के नामसे उत्पन्न किया था (सभा० १८ । १-२) । दानवोंके विनाशके लिये इसकी सृष्टि हुई है । यह दिव्यरूप धारण करनेवाली है । जो अपने घरकी दीवारपर अनेक पुत्रोंसे घिरी हुई युवती स्त्रीके रूपमें इसका चित्र अङ्कित करती है, उसके घरमें सदा वृद्धि होती है (सभा० १८ । ३-४) ।

गेरु–एक पर्वतीय धातु (वन० १५८ । ९५) ।

गो (गौ)–महर्षि पुलस्त्यकी भार्याका नाम 'गो' या गौ था । इनके गर्भसे वैश्रवण नामक पुत्र हुआ, जो पिताको छोड़कर पितामह ब्रह्माजीकी सेवामें रहता था (वन० २७४ । १२) ।

गोकर्ण–(१) एक प्राचीन तीर्थ, जहा पूर्वकालमें भगवान् शेषने तपस्या एवं एकान्तवास किया था (आदि० ३६ । ३) । यह भगवान् शिवका स्थान है, यहाँ तीर्थ-यात्राके प्रसंगमें अर्जुनका आगमन हुआ था (आदि० २१६ । ३४) । यह समुद्रके मध्यमें विद्यमान, त्रिभुवन-विख्यात और अखिल लोकवन्दित तीर्थ है । यहाँ ब्रह्मा आदि देवता, तपोधन महर्षि और भूत-यक्ष आदि भगवान् शङ्करकी उपासना करते हैं। यहाँ भगवान् शिवकी पूजा करके तीन रात उपवास करनेवाला मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और गणपति-पद प्राप्त कर लेता है (वन० ८५ । २४–२७) । गोकर्ण तीर्थ तीनों लोकोंमें विख्यात है । वह पवित्र कल्याणमय और शुभ है । अशुद्ध अन्तःकरणवालोंके लिये यह तीर्थ अत्यन्त दुर्लभ है (वन० ८८ । १५-१६) । (२) यह एक तपोवन है (भीष्म० ६ । ५१) ।

गोकर्णा–कर्णके सर्पमुख बाणमें प्रविष्ट अश्वसेन नागकी माता (कर्ण० ९० । ४२) ।

गोकर्णी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २५) ।

गोकुल–अधिक गौओंके रहनेका स्थान एवं नन्दका गोकुल–जहाँ पले हुए ग्वालोंको सव्यसाची अर्जुनने मारा था (सभा० ३८ । पृष्ठ ७९९-८००; कर्ण० ५ । ३८) ।

गोतीर्थ–एक तीर्थ, जहाँ पाण्डवलोग तीर्थयात्रा करते हुए गये थे (वन० ९५ । ३) ।

गोदा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २८) ।

गोदावरी–एक नदी, जो वरुणकी सभामें उपस्थित होती है (सभा० ९ । २०) । यह दक्षिण भारतके नासिक जिलेमें स्थित त्र्यम्बक ज्योतिर्लिङ्गके समीप ब्रह्मगिरिसे निकलती और समुद्रमें मिलती है । इसमें अगाध जल भरा है । बहुत-से तपस्वी इसका सेवन करते हैं तथा यह सबके लिये कल्याणस्वरूपा है (वन० ८८ । २) । सिद्ध पुरुषोंसे सेवित गोदावरीके तटपर जाकर स्नान करनेसे गोमेध यज्ञका फल मिलता है और वासुकिका लोक प्राप्त होता है (वन० ८५ । ३३; ८८ । २) । राजा युधिष्ठिर तीर्थ-यात्रा करते हुए यहाँ भी आये थे । यह समुद्रगामिनी नदी है (वन० ११८ । ३) । यह अग्निकी उत्पत्तिस्थान है (वन० २२२ । २४) । दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामने (पञ्चवटीमें) गोदावरीके तटपर कुछ काल-तक निवास किया था (वन० २७७ । ४१) । भारतवर्ष-की प्रधान नदियोंमें गोदावरीकी गणना है (भीष्म०

९ । १४)। जो जनस्थानमें गोदावरीके जलमें स्नान करके उपवास करता है, वह पुरुष राजलक्ष्मीसे सेवित होता है (अनु० २५ । २९)।

गोधा–(गोध)–पूर्वोत्तर भारतका एक जनपद (भीष्म० ९ । ४२)।

गोनन्द–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४३ । ६५)।

गोपति–(१)कालकेतुका साथी एक राक्षस, जो महेन्द्रके शिखरपर इरावतीके किनारे श्रीकृष्णद्वारा आहत हुआ और अक्षप्रपतनके अन्तर्गत नेमिहंस-पथ नामक स्थानमें मारा गया (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८२४)।(२) एक देवगन्धर्व, जो कश्यपपत्नी मुनिके गर्भसे उत्पन्न हुआ था (वन० ६५ । ४२)। यह अर्जुनके जन्ममहोत्सवमें आया था (आदि० १२२ । ५५)।(३) शिबिका एक पुत्र, परशुरामजीके क्षत्रियसंहारके बाद वनमें गौओंने इसकी रक्षा की थी। पृथ्वीने कश्यपजीको इसका परिचय दिया था (शान्ति० ४९ । ७८-७९)। (४) भगवान् शिवका एक नाम (अनु० १७ । ११५)। (५) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९। ६६)।

गोपराष्ट्र–पूर्वोत्तर भारतका एक जनपद (भीष्म० ९ । ४४)।

गोपायन–गोपोंकी सेनाका नाम (भीष्म० ७१ । १३)।

गोपालकक्ष–एक पूर्वीय देश, जिसे भीमसेनने दिग्विजयके समय जीता था (सभा० ३० । ३; भीष्म० ९ । ५६)।

गोपाली–(१) एक अप्सरा, जिसने अर्जुनके सम्मानार्थ इन्द्रसभामें नृत्य किया था (वन० ४३ । ३०)। (२) स्कन्दकी अनुचरी मातृका(शल्य० ४६ । ४)।

गोप्रतार–सरयूनदीका उत्तम तीर्थ, जहाँ भृत्य, सेना और वाहनोंसहित भगवान् श्रीराम परमधामको पधारे थे (वन० ८४ । ७०-७३)।

गोभवन–कुरुक्षेत्रकी सीमामें स्थित एक पवित्र तीर्थ, जहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८३ । ५०)।

गोमती–एक प्रसिद्ध नदी, गङ्गाकी सात धाराओंमेंसे एक, इसका जल पीनेवाले मनुष्योंके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं (आदि० १६९ । २०-२१)। यह वरुणकी सभामें उपस्थित होती है (सभा० ९ । २३)। युधिष्ठिर तीर्थयात्राके प्रसंगसे यहाँ गये थे (वन० ९५ । २)। यह विश्वभुक् नामक अग्निकी पत्नी है (वन० २१९ । १९)। जारूथीमें गोमतीके तटपर दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामने दस अश्वमेध यज्ञ किये थे (वन० २५१ । ७०)। यह भारतवर्षकी प्रधान नदियोंमेंसे है (भीष्म० ९ । १८)। दिवोदासकी नगरीका एक छोर गङ्गाके उत्तरतटपर था और दूसरा छोर गोमतीके दक्षिण किनारेतक फैला हुआ था (अनु० ३० । १८)।

गोमतीमन्त्र–एक मन्त्र, जिसे गौओंके बीचमें खड़ा होकर मन-ही-मन जपा जाता है। ऐसा करनेवाला पुरुष शुद्ध एवं निर्मल (पापरहित) हो जाता है। जो तीन रात उपवास करके गोमतीमन्त्रका जप करता है, उसे गौओंका वरदान प्राप्त होता है। इसके जपसे पुत्रार्थीको पुत्र, धनार्थीको धन और पतिकी इच्छावाली स्त्रीको मनके अनुकूल पतिकी प्राप्ति होती है (अनु० ८१ । ४२–४५)।

गोमन्त–(१) द्वारकाके निकटका एक श्रेष्ठ पर्वत, (गोमान् या रैवतक) जहाँ जरासंधको पछाड़कर बलरामजीने उसे जीवित छोड़ दिया था; क्योंकि उसकी मृत्यु भीमसेनके हाथसे होनेवाली थी (सभा० २४ । ४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७३१)। (२) पूर्वोत्तर भारतका एक जनपद (भीष्म० ९ । ४३)। (३) कुशद्वीपका एक पर्वत (भीष्म० १२ । ८)।

गोमुख–(१) क्रोधवशसंज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न एक राजा (आदि० ६७ । ६३–६६)। (२) इन्द्रसारथि मातलिका पुत्र (उद्योग० १०० । ८)।

गोरथ–मगधकी राजधानी गिरिव्रजके निकटका एक पर्वत (सभा० २० । ३०)।

गोलोक–एक दिव्य सच्चिदानन्दमय लोक, जो समस्त लोकपालोंके लोकोंसे ऊपर है और वहाँ प्रधानतः दिव्य गौओंका निवास है। इसकी समस्त लोकोंसे ऊपर स्थिति क्यों है—इसके कारणका ब्रह्माजीद्वारा प्रतिपादन (अनु० ८३ अध्याय)। गोलोक भगवान् नारायणका ऊपरका ओठ और ब्रह्मलोक नीचेका ओठ है (शान्ति० ३४७ । ५२)।

गोवर्धन–(१) व्रजमण्डलका सुप्रसिद्ध पर्वत, जो भगवान् श्रीकृष्णका स्वरूप माना गया है, इसे 'गिरिराज' कहते हैं। जब इन्द्र व्रजवासियोंको अपनी पूजा न पानेके कारण मिटा देनेके लिये व्रजमें घोर वर्षा करने लगे, उन दिनों भगवान् श्रीकृष्णने बाल्यावस्थामें ही गौओंकी रक्षाके लिये एक सप्ताहतक गोवर्धन पर्वतको अपने हाथपर उठा रक्खा था (सभा० ३८ । दाक्षिणात्य पाठ पृष्ठ ८०१; सभा० ४१ । ९; उद्योग० १३० । ४६)। (२) बाह्रीक देशके राजभवनके द्वारपर स्थित एक वटवृक्ष, जो गोवर्धन नामसे प्रसिद्ध था (कर्ण० ४४ । ८)।

गोवासन–(१) शिवि देशके राजा, जिनकी पुत्री देविकाने स्वयंवरमें राजा युधिष्ठिरको अपना पति चुना था

(आदि० ५९ । ७६) । इन्होंने एक सहस्र योद्धाओं-को साथ ले काशिराज अभिभूके पराक्रमी पुत्रका सामना किया था (द्रोण० ९५ । ३८; द्रोण० ९६ । ११) । (२) एक देश, जहाँके निवासी राजा युधिष्ठिरके लिये तीन खरबकी सम्पत्ति लेकर भेंट देनेके निमित्त आये थे, (सभा० ५१ । ५) ।

गोविकर्ता–महाबली बैलोंको नाथनेवाला (विराट० २ । ९) ।

गोवितत–अश्वमेध-यज्ञका एक भेद, यही यज्ञ कण्वने अपने दौहित्र भरतसे करवाया था (आदि० ७४ । १३०) ।

गोविन्द–भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम, गिरिराज गोवर्धन-को धारण करके गौओं तथा व्रजवासियोंकी रक्षा करनेके कारण इन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णका 'गोविन्द' नाम रक्खा, 'गवेन्द्र' (गौओंके इन्द्र) पदपर उनका अभिषेक किया (सभा० ३८ । २९ के बाद, पृष्ठ ८०१, कालम १) ।

गोविन्दगिरि–क्रौञ्चद्वीपका एक पर्वत (भीष्म० १२ । १९) ।

गोव्रज–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६६) ।

गोव्रत–गोव्रतधारी पुरुष, जो जहाँ कहीं भी सो लेता है, जिस किसी भी फल-मूल आदिसे भोजनका कार्य चला लेता है तथा वल्कल आदि जिस किसी वस्तुसे शरीरको ढक लेता है, वही यहाँ गोव्रतधारी कहलाता है (उद्योग० ९९ । १४) ।

गोशृङ्ग–दक्षिणका एक श्रेष्ठ पर्वत, जिसपर सहदेवने विजय पायी थी (सभा० ३१ । ५) ।

गोसव–एक महायज्ञ (वन० ३० । १७) ।

गोस्तनी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ३) ।

गोहरणपर्व–विराटपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय २५ से ६९ तक) ।

गौतम–(१) सप्तर्षियोंमेंसे एक, जो अन्य ऋषियोंके साथ अर्जुनके जन्मोत्सवमें पधारे थे (आदि० १२२ । ५०-५१) । इनके एक पुत्रका नाम शरद्वान् गौतम था, जो सरकण्डोंके साथ उत्पन्न हुए थे (आदि० १२९ । २) । इनके दूसरे पुत्रका नाम चिरकारी था (शान्ति० २६६ । ४) । ये ब्रह्माजीकी सभामें उनकी सेवाके लिये उपस्थित होते हैं (सभा० ११ । १९) । इनका अत्रि मुनिके साथ संवाद (वन० १८५ । १५—१८) । इनका सत्यवान्के जीवित होनेका विश्वास दिला-कर राजा द्युमत्सेनको आश्वासन देना (वन० २९८ । ११–१३) । सावित्रीसे वनका वृत्तान्त पूछना (वन० २९८ । ३३–३५) । द्रोणाचार्यके पास आकर उनसे युद्ध बंद करनेके लिये कहना (द्रोण० १९० । ३६–४०) । शर-शय्यापर पड़े हुए भीष्मजीको देखनेके लिये अन्य मुनियोंके साथ ये भी पधारे थे (शान्ति० ४७ । १०) । इनका पारियात्र पर्वतपर अपने आश्रममें साठ हजार वर्षोंतक तपस्या करना । इनके यहाँ लोकपाल यमका पदार्पण और इनके द्वारा उनका सत्कार (शान्ति० १२९ । ४—८) । यमके साथ इनकी धर्म-चर्चा (शान्ति० १२९ । ९) । ये उत्तर-दिशाका आश्रय लेकर रहते हैं (शान्ति० २०८ । ३३) । इनका अपने पुत्र चिरकारीको उसकी माता अहल्याके वधके लिये आदेश देना (शान्ति० २६६ । ७) । वनमें जाकर पत्नी-वधके विषयमें चिन्ता करना (शान्ति० २६६ । ४७—५८) । वनसे लौटनेपर पत्नीको जीवित पाकर इनके द्वारा पुत्रका अभिनन्दन (शान्ति० २६६ । ६७–७१) । इनके शापसे इन्द्रका हरी दाढ़ी-मूँछोंसे युक्त होना (शान्ति० ३४२ । २३) । इनका अङ्गिरासे तीर्थोंके विषयमें प्रश्न (अनु० २५ । ५-६) । राजा वृषादर्भिसे प्रतिग्रहके दोष बताना (अनु० ९३ । ४२) । अरुन्धतीसे अपने शरीरके मोटे न होनेका कारण बताना (अनु० ९३ । ६७) । यातुधानीके समक्ष अपने नाम-की व्याख्या करना । (अनु० ९३ । ९०) । मृणालकी चोरीके विषयमें शपथ खाना (अनु० ९३ । १२२-१२३) । अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर शपथ खाना (अनु० ९४ । १९) । अहल्यापर बलात्कारके कारण इनका इन्द्रको शाप (अनु० १५३ । ६) । अपने सभी शिष्योंमें उत्तङ्कपर ही इनका अधिक स्नेह और प्रेम होना, उत्तङ्कके इन्द्रिय-संयम, शौच, पुरुषार्थ, क्रियाशीलता और उत्तमोत्तम सेवासे इनका अधिक प्रसन्न होना तथा अधिक प्रेमके कारण ही इनका उत्तङ्क-को घर जानेकी आज्ञा न देना (आश्व० ५६ । ४–६) । इनकी आज्ञासे इनकी पुत्रीका रोते हुए उत्तङ्कके आँसुओं-का अपने हाथोंमें लेना, इनका उत्तङ्कसे उनके मानसिक शोकका कारण पूछना । उनकी घर जानेकी इच्छा जान-कर उन्हें सहर्ष आज्ञा प्रदान करना । उनके गुरु-दक्षिणा देनेकी इच्छा प्रकट करनेपर उनकी सेवासे ही अपनेको संतुष्ट बताना और गुरु-दक्षिणा लेनेकी इच्छा न करना, साथ ही उत्तङ्कके षोडशवर्षीय युवक हो जानेपर उनके साथ अपनी कन्याका विवाह कर देना (आश्व० ५६ । ११—२४) । इनका अपनी पत्नीसे उत्तङ्कके विषयमें पूछना और वह राक्षस सौदासके यहाँ कुण्डल लाने गया है—यह जानकर पत्नीको उसके वधकी आशङ्का बताकर इस अनुचित आज्ञाके लिये उपालम्भ देना । उत्तङ्ककी रक्षाके लिये अपनी पत्नी अहल्याकी इच्छाका अनुमोदन

करना (आश्व० ५६ । ३२—३५) । गौतमके पुत्र शरद्वान्‌को भी 'गौतम' कहा जाता है (आदि० १२९ । २) तथा शरद्वान्‌के पुत्र कृप और कन्या कृपीके लिये भी 'गौतम' (आदि० १३० । १४) एवं 'गौतमी' नामका प्रयोग देखा जाता है (आदि० १२९ । ४७)। (२) एक ऋषि, जो अन्य ऋषि-मुनियोंके साथ युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १७) । ये इन्द्रकी सभामें भी उपस्थित होकर देवेन्द्रकी उपासना करते थे (सभा० ७ । १८) । इन्होंने ही गिरिव्रजमें निवास करके उशीनर देशकी शूद्र-जातीय कन्याके गर्भसे काक्षीवान् नामक पुत्र उत्पन्न किया था (सभा०२१ । ३–५)। (३) एक तपस्वी एवं विद्वान् ब्राह्मण मुनि, जो एकत, द्वित और त्रितके पिता थे (शल्य० ३६ । ७९)। (४) एक तपस्वी ब्राह्मण, जिन्होंने अपने हाथीका अपहरण हो जानेपर धृतराष्ट्ररूपधारी इन्द्रके साथ संवाद किया था (अनु० १०२ अध्याय)। (५) मध्यदेशका रहनेवाला एक कृतघ्न ब्राह्मण, जिसका नाम गौतम था, इसका डाकुओंके गाँवमें निवास (शान्ति० १६८ । ३६)। अपने गाँवके एक सदाचारी ब्राह्मणद्वारा फटकारे जानेपर उसके द्वारा समुद्रकी यात्रा (शान्ति० १६९ । १)। वनमें राजधर्मा नामके बकका अतिथि होना (शान्ति० १६९ । १७) । राजधर्माका आतिथ्य स्वीकार करके धनके लिये राक्षसराज विरूपाक्षके पास पहुँचना (शान्ति० १७० । २६) । विरूपाक्षसे वार्तालाप और धन लेकर लौटना (शान्ति० १७१ । २–२८) । राजधर्माको मार डालनेका विचार (शान्ति० १७१ । ३४-३५)। जलती हुई लकड़ियोंद्वारा राजधर्माका वध (शान्ति० १७२ । ३) । राक्षसोंद्वारा इसका वध (शान्ति० १७२ । २३-२४) । इन्द्रद्वारा जीवनदान (शान्ति० १७३ । १२-१३) । इसे देवताओंका शाप (शान्ति० १७३ । १७–१८) ।

गौतमी–(१) द्रोणाचार्यकी भार्या (आदि०१२९ । ४७)। (देखिये—कृपी) (२) गौतम गोत्रकी एक कन्या जटिला, जिसने सात ऋषियोंसे विवाह किया था (आदि० १९५ । १४) । यह ब्रह्माजीकी सभामें विराजमान होती है (सभा० ११ । ४०) । द्रौपदीकी पतिसेवाके विषय-में गौतमी जटिलाका दृष्टान्त (शान्ति० ३८ । ५)। (३) एक ब्राह्मणी । अपने पुत्रकी मृत्युपर इसका व्याध, सर्प, मृत्यु और कालके साथ संवाद (अनु० १ । २१–३२) । (४) एक नदी (अनु० १६५ । २१) ।

गौर–कुशद्वीपका एक पर्वत (भीष्म० १२ । ४) ।

गौरपृष्ठ–एक राजर्षि, जो यमसभामें उपस्थित हो सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । २१) ।

गौरमुख–शमीक ऋषिके एक शिष्य । इन्होंने गुरुकी आज्ञासे राजा परीक्षित्‌को श्रृङ्गी ऋषिके शापका समाचार सुनाया (आदि० ४२ । १४–२२) ।

गौरवाहन–एक राजा, जो युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें पधारे थे (सभा० ३४ । १२) ।

गौरशिरा–एक मुनि, जो इन्द्रकी सभामें रहकर वज्रधारी इन्द्रकी उपासना करते हैं (सभा० ७ । ११) ।

गौराश्व–एक राजर्षि, जो यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १८) ।

गौरी–(१) महादेवी पार्वतीका एक नाम (वन० ८४ । १५१)।(२) उमादेवीकी अनुगामिनी सहचरी (वन० २३१ । ४८) । (३) वरुणकी प्रिय पत्नी (उद्योग० ११७ । ९) । (४) भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय जनता पीती है (भीष्म० ९ । २५) ।

गौरीशिखर–एक त्रिभुवनविख्यात तीर्थ, वहाँ स्तनकुण्डमें स्नान करनेसे वाजपेय यज्ञका तथा देवता-पितरोंका पूजन करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है (वन० ८४ । १५१–१५४) ।

ग्रन्थिक–विराटनगरमें अज्ञातवासके समय नकुलका नाम (विराट० ३ । ४) ।

ग्रामणी–भगवान् शिवके एक गण, जिनके नामका शुद्ध-भावसे कीर्तन करनेवाले मनुष्योंके सब पाप नष्ट हो जाते हैं (अनु० १५० । २५) ।

ग्रामणीय–ग्रामशासक क्षत्रियोंके वंशज, जिन्हें दिग्विजयके समय नकुलने जीता था (सभा० ३२ । ९) ।

(घ)

घट–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६३) ।

घटजानुक–एक प्राचीन ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते हैं (सभा० ४ । १३) । हस्तिनापुर जाते समय मार्गमें श्रीकृष्णसे इनकी भेंट (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

घटोत्कच–हिडिम्बाके गर्भसे भीमसेनद्वारा उत्पन्न एक राक्षस (आदि० १५४ । ३१) । इसका 'घटोत्कच' नाम होनेका कारण (आदि० १५४ । ३८) । आवश्यकता पड़नेपर अपने पितृवर्गों (पाण्डवों) की सेवाके लिये इसका कुन्तीको आश्वासन (आदि० १५४ । ४५)। इन्द्रकी शक्तिका आघात सहन करनेके लिये इन्द्रद्वारा

इसकी सृष्टि (आदि० १५४ । ४६) । सहदेवकी आज्ञासे इसकी लङ्का-यात्रा (सभा० ३१ । ७२ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७५९) । इसके द्वारा विभीषणको पाण्डवोंका परिचय (सभा० ३१ । पृष्ठ ७६२) । विभीषणसे कर लाकर इसका सहदेवको देना (सभा० ३८ । पृष्ठ ७६४) । भीमसेनकी आज्ञासे द्रौपदीको कंधेपर चढ़ाकर इसका गन्धमादनकी यात्रा करना (वन० १४५ । ४–८) । इसका दुर्गम मार्गमें पाण्डवोंको पीठपर बिठाकर ले जाना और उन्हें संकटसे पार करना (वन० १७६ । २१) । प्रथम दिनके संग्राममें इसका अलम्बुषके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । ४२–४५) । दुर्योधनके साथ युद्ध (भीष्म० ५८ । १४-१५) । भगदत्तके साथ मायायुद्ध छेड़ना और इसके अद्भुत पराक्रमसे पराजित होकर कौरवसेनाका उस दिन युद्ध बंद कर देना (भीष्म० ६४ । ५७–७२) । भगदत्त-द्वारा इसका पराजित होना (भीष्म० ८३ । ३०–४०) । दुर्योधनके साथ युद्ध करके उसे प्राण-संशयमें डाल देना (भीष्म० ९१ । १९ से ९२ । ७ तक) । वङ्गनरेशके गजराजको मारकर उसे पराजित करना (भीष्म० ९२ । १२) । इसके द्वारा विकर्णकी पराजय (भीष्म० ९२ । ३६) । इसके द्वारा बृहद्बलकी पराजय (भीष्म० ९२ । ४१) । कौरव महारथियोंके प्रहारसे व्याकुल होकर इसका आकाशमें उड़ना (भीष्म० ९३ । ६) । इसकी आसुरी मायासे कौरवसेनाका पलायन (भीष्म० ९४ । ४१–४७) । दुर्मुखके साथ इसका द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ११० । १३-१४; भीष्म० १११ । ३७–३९) । धृतराष्ट्रद्वारा इसकी वीरताका वर्णन (द्रोण० १० । ७२-७३) । अलम्बुषके साथ इसका युद्ध (द्रोण० १४ । ४६-४७) । इसके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ७५) । अलम्बुषके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । ६१-६२) । अलायुधके साथ युद्ध (द्रोण० ९६ । २७-२८) । इसके द्वारा अलम्बुषका वध (द्रोण० १०९ । २८-२९) । अश्वत्थामाके साथ युद्धमें इसके पुत्र अञ्जनपर्वाका उसके द्वारा मारा जाना तथा इसका भी पराजित होना (द्रोण० १५६ । ५६–१८६) । अश्वत्थामाद्वारा इसकी पराजय (द्रोण० १६६ । १५–३८) । श्रीकृष्ण और अर्जुनकी आज्ञासे इसका कर्णके साथ युद्धके लिये जाना (द्रोण० १७३ । ६३–६५) । घटोत्कच और जटासुरके पुत्र अलम्बुषका घोर युद्ध तथा अलम्बुषका वध (द्रोण० १७४ अध्याय) । इसके रूप तथा रथ आदिका वर्णन और कर्णके साथ मायामय घोर युद्ध (द्रोण० १७५ अ०) । इसके द्वारा अलायुधका वध (द्रोण० १७८ । ३१) । इसका मायामय घोर युद्ध करके कौरव-सेनाका संहार करना (द्रोण० १७९ । २५–४७) । कर्णद्वारा छोड़ी हुई इन्द्रप्रदत्त शक्तिके प्रहारसे घटोत्कचका वध (द्रोण० १७९ । ५८) । यह यज्ञों और ब्राह्मणोंसे द्वेष एवं घृणा करता था (द्रोण० १८१ । २६-२७) । व्यासजीके आवाहन करनेपर यह भी गङ्गाजीके जलसे प्रकट हुआ था (आश्रम० ३२ । ८) । यह मृत्युके पश्चात् यक्षों एवं देवताओंमें मिल गया (स्वर्गा० ५ । ३७) ।

महाभारतमें आये हुए घटोत्कचके नाम–भैमसेनि, भैमि, भीमसेनसुत, भीमसेनात्मज, भीमसूनु, भीमसुत, हैडिम्ब, हैडिम्बि, राक्षस, राक्षसाधिप, राक्षसपुङ्गव, राक्षसेश्वर, राक्षसेन्द्र इत्यादि ।

घटोत्कचवधपर्व–द्रोणपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १५३ से १८३ तक) ।

घण्टोदर–एक दैत्य या दानव, जो वरुणकी सभामें उनकी सेवाके लिये उपस्थित होता है (सभा० ९ । १३४) ।

घण्टाकर्ण–ब्रह्माद्वारा स्कन्दको दिये गये चार पार्षदोंमेंसे तीसरा । पहला नन्दिसेन, दूसरा लोहिताक्ष और चौथा कुमुदमाली था (शल्य० ४५ । २३-२४) ।

घूर्णिका–शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानीकी धाय (आदि० ७८ । २५) ।

घृतपा–घी पीकर रहनेवाले ऋषि, जो ब्रह्माजीकी आज्ञाके अधीन रहकर सनातनधर्मका पालन करते हैं (शान्ति० १६६ । २४) ।

घृतवती–भारतकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । २३; भीष्म० ९ । ३१) ।

घृततोय–(अथवा घृतोद) समुद्र—घीका समुद्र (भीष्म० १२ । २) ।

घृताची–एक श्रेष्ठ अप्सरा, जिसके गर्भसे महर्षि प्रमतिद्वारा 'रुरु' का जन्म हुआ था (आदि० ५ । ९) । यह छः प्रधान अप्सराओंमेंसे एक है (आदि० ७४ । ६८) । घृताची उन प्रधान ग्यारह अप्सराओंमेंसे एक है, जो अर्जुनके जन्मोत्सवमें नाचने-गाने आयी थीं (आदि० १२२ । ६५) । इसके दर्शनसे स्खलित हुए भरद्वाज मुनिके वीर्यसे द्रोणाचार्यका जन्म हुआ था (आदि० १२९ । ३५–३८; वन० ४३ । २९) । यह कुबेरसभाकी प्रमुख अप्सरा है (सभा० १० । १०) । इसे देखकर भरद्वाजजीके वीर्यका स्खलन और श्रुतावती नामक कन्याकी उत्पत्ति (शल्य० ३४८ । ६४–६६) । इसके दर्शनसे व्यासजीके वीर्यका स्खलन और शुकदेवजीका जन्म (शान्ति० ३२४ । २–९) । इसने अष्टावक्रके

स्वागत-सत्कारके निमित्त कुवेरसभामें नृत्य किया था (अनु० १९ । ४४) ।

घृतार्चि–भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम, जिसकी व्याख्या उन्होंने श्रीमुखसे की है (शान्ति० ३४२ । ८५) ।

घोर–महर्षि अङ्गिराके वारुणसंज्ञक पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ८५ । १३१) ।

घोरक–पश्चिमोत्तर भारतका एक जनपद, जहाँके लोगोंने राजा युधिष्ठिरको बहुत धन अर्पित किया था (सभा० ५२ । १४) ।

घोषयात्रापर्व–वनपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय २३६ से २५७ तक) ।

घ्राणश्रवा–स्कन्दका एक सैनिक एवं पार्षद, जो निरन्तर योगयुक्त रहकर सदा ब्राह्मणोंसे प्रेम रखते हैं (शल्य० ४५ । ५७) ।

(च)

चक्र–(१) नागराज वासुकिसे उत्पन्न एक नाग, जो सर्पसत्रमें जल मरा था (आदि० ५७ । ६) । (२) भगवान् श्रीकृष्णका सुप्रसिद्ध अस्त्र सुदर्शनचक्र, जिसे अग्निदेवने उन्हें प्रदान किया था (आदि० २२४ । २३) । (३) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४५) । (४) भगवान् विष्णुद्वारा स्कन्दको दिये गये तीन पार्षदोंमेंसे एक (शल्य० ४५ । ३७) । (५) त्वष्टाद्वारा स्कन्दको दिये गये दो अनुचरोंमेंसे एक, दूसरेका नाम अनुचक्र था (शल्य० ४५ । ४०) ।

चक्रक–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५४) ।

चक्रदेव–वृष्णिवंशका एक अतिरथी वीर (सभा० १४ । ५७-५८) ।

चक्रद्वार–एक पर्वत, जो सुलभाके पूर्वजोंके यज्ञोंमें देवराज इन्द्रके सहयोगसे यज्ञवेदीमें ईंटाकी जगह चुना गया था (शान्ति० ३२० । १८५) ।

चक्रधनु–महर्षि कर्दमसे उत्पन्न भगवान् कपिलमुनि ही चक्रधनु कहलाते हैं । ये दक्षिणदिशामें रहते हैं । इन्होंने ही सगर-पुत्रोंको भस्म कर दिया था (उद्योग० १०९ । १७-१८) ।

चक्रधर्मा–विद्याधरोंके अधिपति, जो अपने छोटे भाइयोंके साथ कुबेरकी सभामें उपस्थित हो भगवान् कुबेरकी उपासना करते हैं (सभा० १० । २७) ।

चक्रनेमि–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ५) ।

चक्रमन्द–एक नाग, जो बलरामजीके परमधाम पधारते समय उनके स्वागतके लिये आया था (मौसल० ४ । १६) ।

चक्रव्यूह–द्रोणनिर्मित एक सैन्य-व्यूह, जिसका भेदन करना पाण्डव-दलमें केवल अर्जुन जानते थे; अभिमन्यु इसमें प्रवेश करके निकलना नहीं जानता था, अतः उसमें बाहरसे सहायता न पहुँच सकनेके कारण मारा गया; इस व्यूहका निर्माण गाडीके पहियेकी आकृतिमें होता है। इसका वर्णन (द्रोण० ३४ । १३–२४) ।

चक्राति–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४५) ।

चक्षु–विवस्वान् (सूर्य) के ही बोधक दिवःपुत्र आदि बारह सूर्योंमेंसे एक (आदि० १ । ४२) ।

चक्षुर्वर्धनिका–शाकद्वीपकी एक नदी (भीष्म० ११ । ३३) ।

चण्डकौशिक–गौतमपुत्र महात्मा काक्षीवान्‌के पुत्र (सभा० १७ । २२) । इनकी कृपासे मगधनरेश बृहद्रथको पुत्रकी प्राप्ति हुई; वही जरासंधके नामसे विख्यात हुआ (आदि० १७ । २८–४१) । इनके द्वारा जरासंधका भविष्यकथन (आदि० १९ अध्याय) ।

चण्डतुण्डक–गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । ९) ।

चण्डबल–इसी नामसे प्रसिद्ध एक वानर, जो कुम्भकर्णके मुखका ग्रास बन गया था (वन० २८७ । ६) ।

चण्डभार्गव–वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ एक विद्वान् ब्राह्मण, जो च्यवनमुनिके वंशमें उत्पन्न हुए थे, ये अपने समयके सुप्रसिद्ध कर्मकाण्डी थे और राजा जनमेजयके सर्पयज्ञके होता बनाये गये थे (आदि० ५३ । ४-५) ।

चतुरश्व–एक राजर्षि, जो यमसभामें उपस्थित होकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । ११) ।

चतुर्दंष्ट्र–स्कन्दका एक सैनिक अथवा पार्षद, जो ब्राह्मणोंसे प्रेम रखनेवाला है (शल्य० ४५ । ६२) ।

चतुर्वेद–सात पितरोंमेंसे एक (सभा० ११ । ४७) ।

चतुष्कर्णी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २५) ।

चतुष्पथरता–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २७) ।

चत्वरवासिनी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १२) ।

चन्द्र–(१) एक श्रेष्ठ दैत्य, जो चन्द्रमाके समान सुन्दर और चन्द्रवर्मा नामसे विख्यात काम्बोज देशका राजा हुआ (आदि० ६७ । ३१-३२) । (२) चन्द्रमा (आदि० २०९ । २६; वन० ११८ । १२) । (देखिये– चन्द्रमा) ।

चन्द्रक–बिडालोपाख्यानमें वर्णित उल्लूका नाम (**शान्ति० १३८ । ३३**) ।

चन्द्रकुण्ड–(चन्द्रह्रद)–एक ह्रद या कुण्ड, जिसमें मेरुपर्वतसे भागीरथी गङ्गा गिरती हैं (**भीष्म० ६ । २९**) ।

चन्द्रकेतु–कौरवपक्षका एक योद्धा, अभिमन्युद्वारा इसका वध (**द्रोण० ४८ । १५-१६**) ।

चन्द्रतीर्थ–एक प्राचीन तीर्थ, जिसकी बहुत-से ऋषिलोग उपासना करते हैं । यहाँ वालखिल्य नामक वैखानस मुनि निवास करते हैं । यहाँ तीन पवित्र शिखर और तीन झरने हैं (**वन० १२५ । १७**) ।

चन्द्रदेव–(१) त्रिगर्तराज सुशर्माका भाई । अर्जुनद्वारा वध (**कर्ण० २७ । ३–१३**) । (२) पाण्डवपक्षका पाञ्चालयोद्धा । युधिष्ठिरका चक्ररक्षक । कर्णद्वारा इसका वध (**कर्ण० ४९ । २७**) ।

चन्द्रप्रमर्दन–दक्षकन्या सिंहिकाका पुत्र । पिताका नाम कश्यप (**आदि० ६५ । ३१**) ।

चन्द्रभ–स्कन्दका एक सैनिक या पार्षद, जो ब्राह्मणोंका प्रेमी है (**शल्य० ४५ । ७५**) ।

चन्द्रभागा–पञ्चनद प्रदेश (पंजाब) की एक नदी, जिसे आजकल 'चिनाब' कहते हैं (**सभा० ९ । १९**) । इसमें सात दिन स्नान करनेसे मनुष्य मुनिके समान निर्मल हो जाता है (**अनु० २५ । ७**) ।

चन्द्रमा–(१) शीतल किरणोंवाले सोम, जो क्षीरसागरका मन्थन होते समय उससे प्रकट हुए थे (**आदि० १८ । ३४**) । ये अत्रिपुत्र और बुधके पिता हैं (**द्रोण० १४४ । ४**) । इन्हें प्रजापति दक्षने अपनी सत्ताईस कन्याएँ पत्नीरूपमें प्रदान की थीं (**आदि० ६६ । १३; आदि० ७५ । ९; शल्य० ३५ । ४५**) । सोमके सत्ताईस पत्नियाँ हैं, जो सम्पूर्ण लोकोंमें विख्यात हैं । पवित्र व्रतका पालन करनेवाली वे सोम-पत्नियाँ काल-विभागका ज्ञापन करनेमें नियुक्त हैं । लोक-व्यवहारका निर्वाह करनेके लिये वे सब-की-सब नक्षत्रवाचक नामोंसे युक्त हैं (**आदि० ६६ । १६-१७**) । ये नक्षत्रोंके साथ मेरु पर्वतकी परिक्रमा करते और पर्वसंधिके समय विभिन्न मासोंका विभाग करते रहते हैं । इस प्रकार महामेरुका उल्लङ्घन करके समस्त प्राणियोंका पोषण करते हुए वे पुनः मन्दराचलको चले जाते हैं (**वन० १६३ । ३२-३३**) । चन्द्रमण्डलका व्यास ग्यारह हजार योजन, उनकी परिधिका विस्तार तैंतीस हजार योजन और उनकी मोटाई उनसठ सौ योजन है (**भीष्म० १२ । ४२-४३**) । इनकी सभी पत्नियाँ अनुपम रूपवती थीं; परंतु रोहिणीका सौन्दर्य उन सबसे बढ़कर था, अतः वे अन्य पत्नियोंकी उपेक्षा करके सदा रोहिणीके पास रहने लगे । यह देख दूसरी स्त्रियोंने पिता दक्षसे उनकी शिकायत की । दक्षने समझाते हुए कहा–'तुम्हें सबपर समान भाव रखना चाहिये ।' उनके इस आदेशकी अवहेलना करके सोम पूर्ववत् रोहिणीमें ही आसक्त रहने लगे । इससे कुपित हो दक्षने उनके लिये राजयक्ष्माकी सृष्टि की और वह रोग उनके शरीरमें समा गया । सोम क्षीण हो चले । उनके क्षीण होनेसे ओषधियों और प्रजाका भी क्षय होने लगा । तब देवताओंके अनुरोधसे दक्षने उनके रोगकी निवृत्तिका उपाय बताते हुए कहा-'सोम अपने सब स्त्रियोंके प्रति समान बर्ताव करें और पश्चिम समुद्रमें, जहाँ सरस्वती नदीका संगम हुआ है, वहाँ जाकर स्नान करें । उस तीर्थमें महादेवजीकी आराधनासे इन्हें इनकी पूर्व कान्ति प्राप्त हो जायगी । ये पंद्रह दिन क्षीण होंगे और पंद्रह दिन सदा बढ़ते रहेंगे ।' सोमने अमावास्याको उस तीर्थमें गोता लगाया; इससे उन्हें उनकी शीतल किरणें प्राप्त हो गयीं और वे सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करने लगे । वे प्रत्येक अमावास्याको वहाँ स्नान करते हैं (**शल्य० ३५ । ४५–८६**) । इनके द्वारा स्कन्दको मणि और सुमणि नामक पार्षदोंका दान (**शल्य० ४५ । ३२**) । शम्बरासुरके प्रति ब्राह्मणोंकी महिमाका वर्णन (**अनु० ३६ । १३–१७ के बाद दाक्षिणात्य पाठ**) । इनका कार्तिकेयको भेंड़ा देना (**अनु० ८६ । २३**) । अजीर्ण-निवारणके लिये पितरों और देवताओंको ब्रह्माजीकी शरणमें जानेकी सलाह देना (**अनु० ९२ । ६**) । पूर्णमासी तिथिको चन्द्रोदयके समय ताँबेके बर्तनमें मधु-मिश्रित पकवान लेकर जो चन्द्रमाके लिये बलि अर्पण करता है, उसकी दी हुई उस बलिको साध्य, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार, मरुद्गण और वसुदेवता भी ग्रहण करते हैं तथा उससे चन्द्रमा और समुद्रकी भी वृद्धि होती है (**अनु० १३४ । ३–६**) । (२) ये सोम या चन्द्रमा आठ वसुओंमेंसे एक हैं । वसुरूपमें ये धर्मपत्नी मनस्विनीके पुत्र हैं । उनकी मनोहरा नामक पत्नीसे चार पुत्र उत्पन्न हुए हैं—वर्चा, शिशिर, प्राण और रमण (**आदि० ६६ । १८–२२**) । सोमने अपने पुत्र वर्चाको कुछ शर्तोंके साथ केवल सोलह वर्षोंके लिये देवकार्यकी सिद्धिके निमित्त भूतलपर भेजा था, जो 'अभिमन्यु' रूपसे अवतीर्ण हुआ था (**आदि० ६७ । १३–१२४**) । (३) भारतवर्षकी एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (**भीष्म० ९ । २९**) ।

चन्द्रवत्स–एक क्षत्रियकुल, जो चन्द्रवत्ससे आरम्भ हुआ था, इसमें 'धारण' नामक 'कुलपांसन' राजकुमार पैदा हुआ था (उद्योग० ७४ । १६) ।

चन्द्रवर्मा–काम्बोजदेशका एक राजा, जो चन्द्रमाके समान सुन्दर था, यह चन्द्रनामक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ३१-३२) । धृष्टद्युम्नके द्वारा इसका वध (द्रोण० ३२ । ६५) ।

चन्द्रविनाशन–एक महान् असुर, जो भूतलपर 'जानकि' नामसे प्रसिद्ध राजा हुआ था (आदि० ६७ । ३७-३८) ।

चन्द्रसीता–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ११) ।

चन्द्रसेन–(१) एक राजकुमार, जो बंगालके राजा समुद्रसेनका पुत्र था और द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । ११) । यह अपने पिताके साथ ही भीमसेनद्वारा पराजित हुआ था (सभा० ३० । २४) । यह पाण्डव-सेनाका श्रेष्ठ रथी और युधिष्ठिरका सहायक था (उद्योग० १७१ । १९) । चन्द्रमाके समान श्वेत-वर्णवाले समुद्री घोड़े इसके रथमें जुते थे । (द्रोण० २३ । ६०) । अश्वत्थामाद्वारा इसका वध (द्रोण० १५६ । १८३) । (२) कौरवपक्षका योद्धा शल्यका चक्ररक्षक, युधिष्ठिरद्वारा इसका वध (शल्य० १२ । ५२) ।

चन्द्रहन्ता–एक दैत्य, जो राजर्षि 'शुनक' के रूपमें इस भूतलपर उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ३७-३८) ।

चन्द्रहर्ता–दक्षकन्या सिंहिकाका पुत्र, पिताका नाम कश्यप (आदि० ६५ । ३१) ।

चन्द्राश्व–इक्ष्वाकुवंशी महाराज कुवलाश्वके पुत्र, ये धुन्धुकी क्रोधाग्निमें दग्ध होनेसे बच गये थे (वन० २०४ । ४०–४२) ।

चन्द्रोदय–राजा विराटका एक भाई (द्रोण० १५८ । ४२) ।

चपल–एक प्राचीन नरेश (आदि० १ । २३८) ।

चमसोद्भेद–सुराष्ट्रदेशीय विनशनतीर्थके अन्तर्गत एक तीर्थ, जहाँ अदृश्य हुई सरस्वतीका दर्शन होता है, यहाँ स्नान करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है (वन० ८२ । ११२; वन० । ८८ । २०; शल्य० ३५ । ८७) ।

चमू–सैन्यगणनाके लिये एक पारिभाषिक शब्द । तीन पृतनाकी एक चमू होती है (आदि० २ । २१) ।

चमूहर–एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३५) ।

चम्पकारण्य (चम्पारन)–एक तीर्थ, जहाँ एक रात निवास करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८४ । १३३) ।

चम्पा–यहाँ भागीरथीमें तर्पण करनेकी महिमा है (वन० ८५ । १४-१५) । भागीरथी गङ्गाके तटपर अवस्थित एक प्राचीन नगरी, जिसमें त्रेतायुगमें राजा लोमपाद रहते थे (वन० ११३ । १५) । द्वापरमें यहाँ अधिरथ सूतकी राजधानी थी । यहीं गङ्गाजीके जलसे राधाको वह पिटारी मिली, जिसमें शिशु 'कर्ण' बंद था (वन० ३०८ । २६ से वन० ३०९ । ५ तक) । इसपर कर्ण अधिकार करके इसका पालन करता था (शान्ति० ५ । ७) । विपुलका चम्पानगरीको जाना (अनु० ४२ । १६) ।

चर्ममण्डल–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४७) ।

चर्मण्वती–एक नदी, जिसे आजकल 'चम्बल' कहते हैं, यह वरुणकी सभामें उपस्थित होती है (सभा० ९ । २१) । इसके तटपर सहदेवने जम्भकके पुत्रको परास्त किया था (सभा० ३१ । ७) । चर्मण्वती नदीमें स्नान करनेसे राजा रन्तिदेवद्वारा अनुमोदित 'अग्निष्टोम' यज्ञका फल मिलता है (वन० ८२ । ५४) । अग्निकी उत्पत्तिकी स्थानभूता नदियोंमें इसकी भी गणना है (वन० २२२ । २३) ।

चर्मवान्–सुबलका एक पुत्र, शकुनिका भाई, इरावान्-द्वारा इसका वध (भीष्म० ९० । २७–४६) ।

चाक्षुषी–एक प्रकारकी विद्या, जिसको मनुने सोमको, सोमने विश्वावसुको, विश्वावसुने चित्ररथको और चित्ररथने अर्जुनको दिया था । तीनों लोकोंमें जो भी वस्तुएँ हैं, उनमेंसे जिस वस्तुको आँखसे देखनेकी इच्छा हो, उसे इस विद्याके प्रभावसे कोई भी देख सकता है और जिस रूपमें देखना चाहे, उसी रूपमें देख सकता है (आदि० १६९ । ४३–४५) ।

चाणूर–(१) एक क्षत्रिय नरेश, जो मयनिर्मित सभामें युधिष्ठिरकी सेवामें बैठते थे (सभा० ४ । २६) । (२) एक आन्ध्रदेशीय मल्ल (पहलवान), जो एक महान् असुर था, यह कंसके दरबारमें रहा करता था, भगवान् श्रीकृष्णने इसका वध कर दिया (सभा० ३८ । पृष्ठ ८०१; उद्योग० १३० । ४७) ।

चातुर्मास्य–एक व्रत, जिसका वर्षाके चार महीनोंमें यत्नपूर्वक पालन करना आवश्यक माना जाता है । वीर पाण्डवोंने गयामें चातुर्मास्य व्रत ग्रहण करके वेदादि शास्त्रोंके स्वाध्यायद्वारा भगवान्‌की आराधना की (वन० ९५ । १३-१४) ।

चातुर्वर्ण्य–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चारों वर्णोंको ही चातुर्वर्ण्य कहते हैं, साक्षात् भगवान्ने ही गुणकर्मविभागपूर्वक चातुर्वर्ण्यकी सृष्टि की है (भीष्म० २८ । १३; शान्ति० २०७ । ३०–३३) ।

चान्द्रमसी–बृहस्पतिकी यशस्विनी पत्नी तारा, जो कभी चन्द्रमाके सम्पर्कमें आ जानेके कारण 'चान्द्रमसी' कहलाती थी । इसने छः अग्निस्वरूप पुत्रों और एक 'स्वाहा' नामक पुत्रीको जन्म दिया था (वन० २१९ । १) ।

चान्द्रव्रत–रूप-सौन्दर्य, सौभाग्य तथा लोकप्रियताकी प्राप्ति करानेवाला एक व्रत, जो मार्गशीर्ष मासकी शुक्ल प्रतिपदाको मूल नक्षत्रसे चन्द्रमाका योग होनेपर आरम्भ किया जाता है, इसका विशेष विधान (अनु० ११० अध्याय) ।

चाम्पेय–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५८) ।

चारु (चारुचित्र)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९५; आदि० ११६ । ४) । भीमसेनद्वारा वध (द्रोण० १३६ । २०–२२) ।

चारुदेष्ण–भगवान् श्रीकृष्णद्वारा रुक्मिणीके गर्भसे प्रकट (अनु० १४ । २९) । द्रौपदीके स्वयंवरमें इनका आगमन (आदि० १८५ । १७) । इनके द्वारा विविन्ध्यका वध (वन० १६ । २६) ।

चारुनेत्रा–कुबेरकी सभामें उपस्थित हो भगवान् धनदकी सेवा करनेवाली एक अप्सरा (सभा० १० । १०) ।

चारुमत्स्य–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५९) ।

चारुयशा–श्रीकृष्ण और रुक्मिणीके पुत्र (अनु० १४ । ३३-३४) ।

चारुवक्त्र–स्कन्दका सैनिक या पार्षद, जो ब्राह्मणोंका प्रेमी है (शल्य० ४५ । ७१) ।

चारुवेष–श्रीकृष्ण और रुक्मिणीके पुत्र (अनु० १४ । ३३-३४) ।

चारुशीर्ष–एक आलम्बगोत्रीय ऋषि, जो इन्द्रके प्रिय सखा थे; शिव-महिमाके विषयमें युधिष्ठिरसे इनका अनुभव सुनाना (अनु० १८ । ५–७) ।

चारुश्रवा–श्रीकृष्ण और रुक्मिणीके पुत्र (अनु० १४ । ३३-३४) ।

चार्वाक–दुर्योधनका मित्र एक राक्षस, जिसने युधिष्ठिरके नगर-प्रवेशके समय संन्यासी-वेषमें आकर उनके प्रति दुर्वचन कहे थे (शान्ति० ३८ । २२—२७) । बदरिकाश्रममें इसकी तपस्याका वर्णन (शान्ति० ३९ । ३) । इसका ब्रह्माजीसे अपने लिये किसी भी प्राणीसे भय न होनेका वर माँगना और ब्रह्माजीका कुछ संशोधनके साथ उसको वर-प्रदान करना (शान्ति० ३९ । ४-५) । ब्राह्मणोंद्वारा इसका वध (शान्ति० ३८ । ३५) ।

चाषवक्त्र–स्कन्दका एक सैनिक या पार्षद, जो ब्राह्मणोंका प्रेमी है (शल्य० ४५ । ७६) ।

चिकुर–नागराज आर्यकके पुत्र एवं सुमुखके पिता, जिन्हें गरुड़ने अपना ग्रास बना लिया था (उद्योग० १०३ । २४) ।

चित्र–(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९५; आदि० ११६ । ४) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १३६ । २०–२२) । (२) एक गजराज, जिसके साथ स्कन्दने शैशवकालमें क्रीड़ा की थी (वन० २२५ । २३) । (३) कौरव-पक्षका एक योद्धा, प्रतिविन्ध्यद्वारा वध (कर्ण० १४ । ३२-३३) । (४) चेदिदेशीय पाण्डवपक्षका योद्धा, कर्णद्वारा वध (कर्ण० ५६ । ४९) ।

चित्रक (नामान्तर—चित्र एवं चित्रबाण)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १०५) । चित्र नामसे इसका भीमसेनद्वारा वध (द्रोण० १३७ । ३०) ।

चित्रकुण्डल (दीर्घलोचन)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ११६ । ६) । भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ९६ । २७) । (चित्रकुण्डलकी जगह दीर्घलोचन पाठभेद मिलता है ।)

चित्रकूट–सर्वपापनाशिनी मन्दाकिनीके तटपर अवस्थित एक श्रेष्ठ पर्वत । वहाँ मन्दाकिनीमें स्नान और देवता-पितरोंकी पूजा करनेसे अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है (वन० ८५ । ५८) । वनवासके समय भगवान् श्रीरामने चित्रकूट पर्वतपर निवास किया था (वन० २७७ । ३८) । जो चित्रकूट पर्वतपर मन्दाकिनीके जलमें स्नान करके उपवास करता है, वह पुरुष राजलक्ष्मीसे सेवित होता है (अनु० २५ । २९) । (यह स्थान उत्तरप्रदेशके बाँदा जिलेमें है) ।

चित्रकेतु–(१) गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १२) । (२) पाण्डव-पक्षका एक योद्धा । पाञ्चालराजकुमार (भीष्म० ९५ । ४१) ।

चित्रगुप्त–धर्मराजके मन्त्री । इनके द्वारा धर्मके रहस्यका वर्णन (अनु० १३० । १८—३३) ।

चित्रचाप (चित्रशरासन या शरासन)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९८; आदि० ११६ । ६) ।

चित्रदेव-स्कन्दका सैनिक या पार्षद, जो ब्राह्मणोंका प्रेमी है (शल्य० ४५ । ७१) ।

चित्रधर्मा-भूमण्डलका एक नरेश, जिसके रूपमें विरूपाक्ष नाम दैत्य ही उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । २२-२३) । पाण्डवोंकी ओरसे इन्हें रण-निमन्त्रण भेजा गया था (उद्योग० ४ । १३) ।

चित्रपुष्प-विचित्र पुष्पोंसे भरा हुआ एक वन, जो द्वारकाके पश्चिमवर्ती सुकक्ष नामक रजतपर्वतपर सुशोभित था (सभा० ३८ । पृष्ठ ८१२) ।

चित्रबर्ह-गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १२) ।

चित्रबाण (नामान्तर— चित्र या चित्रक)-धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ११६ । ४) । भीमसेनद्वारा वध (द्रोण० १३७ । २९) ।

चित्रबाहु (चित्रायुध)-धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९७; आदि० ११६ । ८) । चित्रायुध नामसे इसका भीमसेनद्वारा वध (द्रोण० १३६ । २०–२२) ।

चित्ररथ-(१) एक देवगन्धर्व, जो पिता कश्यप और माता मुनिका पुत्र था (आदि० ६५ । ४३) । यह अर्जुनके जन्मोत्सवमें गया था (आदि० १२२ । ५६)। यही गन्धर्वराज अङ्गारपर्णके नामसे विख्यात था (आदि० १६९ । ५) । प्रदोषकालमें गङ्गाजीके जलके भीतर अपनी स्त्रियोंके साथ क्रीड़ा करते समय पाण्डवोंके वहाँ आ जानेसे इसका उनके ऊपर क्रोध प्रकट करना और फटकारना (आदि० १६९ । ५–१५) । गन्धर्वको अर्जुनका मुँहतोड़ उत्तर (आदि० १६९ । १६–२४)। अर्जुनके साथ इसका युद्ध (आदि० १६९ । २५)। अर्जुनके आग्नेयास्त्रसे इसके रथका दग्ध होना और इसकी मूर्च्छा तथा अर्जुनका इसे युधिष्ठिरके पास घसीट ले जाना (आदि० १६९ । ३१–३३) । इसकी जीवन-रक्षाके लिये युधिष्ठिरसे कुम्भीनसीकी प्रार्थना (आदि० १६९ । ३५) । अर्जुनद्वारा इसको जीवनदान (आदि० १६९ । ३७) । इसका चित्ररथ नाम होनेका कारण तथा अर्जुनके कारण इसका 'दग्धरथ' नाम होना (आदि० १६९ । ४०) । इसके द्वारा विश्वावसुसे अपनेको चाक्षुषी विद्याकी प्राप्तिका कथन और चाक्षुषी विद्याके महत्त्वका वर्णन (आदि० १६९ । ४३–४६)। इसके द्वारा पाण्डवोंको गन्धर्वदेशीय दिव्य अश्वोंका दान और उनकी प्रशंसा (आदि० १६९ । ४८–५४) । इसका अर्जुनको चाक्षुषी विद्या प्रदान करना (आदि० १६९ । ५६) । अर्जुनके साथ इसकी मित्रता (आदि० १६९ । ५८) । इसका पाण्डवोंपर अपने आक्रमण और पराजयका कारण बताना (आदि० १६९ । ६०–७२) । किसी श्रोत्रिय ब्राह्मणको पुरोहितरूपमें वरण करनेके लिये इसकी अर्जुनको प्रेरणा (आदि० १६९ । ७३–८०) । इसका अर्जुनको तपती और संवरणकी कथा सुनाना (आदि० १७० अध्यायसे १७२ तक) । वशिष्ठके साथ विश्वामित्रके वैरका कारण सुनाकर इसके द्वारा वशिष्ठके अद्भुत क्षमाबलका वर्णन (आदि० १७३ अध्यायसे १७४ अध्यायतक) । इसका शक्तिके शापसे राक्षसभावको प्राप्त हुए राजा कल्माषपादके द्वारा विश्वामित्रकी प्रेरणासे वशिष्ठके पुत्रोंके भक्षण एवं वशिष्ठके शोककी कथा सुनाना (आदि० १७५ अध्याय) । इसके द्वारा कल्माषपादके उद्धार और वशिष्ठजीसे उन्हें अश्मक नामक पुत्रकी प्राप्तिका वर्णन (आदि० १७६ अध्याय) । शक्तिपुत्र पराशरके जन्म और पिताकी मृत्युका हाल सुनकर कुपित हुए पराशरको शान्त करनेके लिये वसिष्ठजीके औवोंपाख्यान सुनानेकी कथाका वर्णन (आदि० १७७ अध्यायसे १७८, १७९ अध्यायतक) । पराशरके राक्षससत्रके आरम्भ और समाप्ति तथा कल्माषपादको ब्राह्मणी आङ्गिरसीके शापकी कथा कहना (आदि० १८० अध्यायसे १८१ अध्यायतक)। अर्जुनके पूछनेपर इसका धौम्यको पुरोहित बनानेकी सलाह देना (आदि० १८२ । १-२) । चित्ररथका अर्जुनसे आग्नेयास्त्रको ग्रहण करना (आदि० १८२ । ३)। यह कुबेरकी सभामें रहकर भगवान् धनाध्यक्षकी उपासना करता है (सभा० १० । २६) । इसने राजा युधिष्ठिरको चार सौ दिव्य घोड़े दिये, जो वायुके समान वेगशाली थे (सभा० ५२ । २३) । यह गन्धर्वोंद्वारा पृथ्वीदोहनके समय बछड़ा बना था (द्रोण० ६९ । २५)।

महाभारतमें आये हुए चित्ररथके नाम-अङ्गारपर्ण, दग्धरथ, गन्धर्व और गन्धर्वराज इत्यादि ।

(२)मार्तिकावत देशका राजा, जिसकी अपनी पत्नीके साथ की हुई जलक्रीडाको रेणुकाने देखा था (वन० ११६ । ७) । (३) एक पाञ्चाल राजकुमार, द्रोणाचार्यद्वारा इसका वध (द्रोण० १२२ । ४३–४९)। (४) अङ्गदेशके एक राजा, जो देवशर्माकी पत्नी रुचिकी बहिन प्रभावतीके पति थे (अनु० ४२ । ८)। (५) यदुवंशी उषङ्गुके पुत्र एवं शूरके पिता (अनु० १४७ । २९) ।

चित्ररथा-एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । ३४) ।

चित्रलेखा-एक अप्सरा, जिसने अर्जुनके स्वागत-समारोह-

के अवसरपर इन्द्रसभामें नृत्य किया था (वन० ९ । ३४) ।

चित्रवर्मा–(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९७; आदि० ११६ । ६) । भीमसेन-द्वारा इसका वध (द्रोण० १३६ । २०–२२) । (२) एक पाञ्चाल राजकुमार । राजा द्रुपदने इसे युद्धके लिये निमन्त्रित करनेकी प्रेरणा दी थी (उद्योग० ४ । १३) । चित्रकेतु, सुधन्वा, चित्ररथ और वीरकेतु—ये चार इसके भाई थे । बड़े भाई वीरकेतुके मारे जानेपर शेष सभी भाई द्रोणाचार्यपर टूट पड़े और उनके द्वारा मारे गये (द्रोण० १२२ । ४३–४९) । यह सुचित्रका पुत्र था (कर्ण० ६ । २७-२८) ।

चित्रवाहन–मणिपूरके नरेश, चित्राङ्गदाके पिता (आदि० २१४ । १५) । पुत्रिका-धर्मकी शर्तपर इनके द्वारा अर्जुनको अपनी कन्याका दान (आदि० २१४ । २५) ।

चित्रवाहा–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय जनता पीती है (भीष्म० ९ । १७) ।

चित्रवेगिक–धृतराष्ट्रके कुलमें उत्पन्न एक नाग, जो सर्पसत्रमें दग्ध हो गया था (आदि० ५७ । १८) ।

चित्रशरासन (शरासन या चित्रचाप)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ११६ । ४) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १३६ । २०–२२) ।

चित्रशिखण्डी–पाञ्चरात्रशास्त्रके रचयिता मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ—इन सात ऋषियोंकी संज्ञा (शान्ति० ३३५ । २७) ।

चित्रशिला–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । ३०) ।

चित्रसेन (उग्रसेन)–(१) धृतराष्ट्रके ग्यारह महारथी पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६३ । ११९) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । ३) । युधिष्ठिरके साथ जूआ खेलनेको उद्यत हुए लोगोंमें यह भी था (सभा० ५८ । १३) । इसका चेकितानके साथ युद्ध (भीष्म० ११० । ८) । भीमसेनके साथ युद्ध (भीष्म० ११३ । २) । सुशर्माके साथ संग्राम (भीष्म० ११६ । २७–२९) । भीमके साथ युद्ध (द्रोण० ९६ । ३१) । सात्यकिके साथ युद्ध (द्रोण० ११६ । ४) । भीमसेन-द्वारा मारा गया (द्रोण० १३७ । २९-३०) । इसका शतानीकके साथ युद्ध और शतानीकद्वारा इसकी पराजयका वर्णन (द्रोण० १६८ । १–१२) । (यह युद्ध चित्रसेनके जीवनकालका है । अध्याय १३७ में इसके वधका वर्णन हुआ है । इससे पहले जो इन्होंने शतानीकके साथ युद्ध किया था, उसका वर्णन पीछे किया गया है ।) (२) पूरुवंशीय राजा अविक्षित्के पौत्र तथा परीक्षित्के तृतीय पुत्र (आदि० ९४ । ५४) । (३) एक गन्धर्व, जो सत्ताईस सहायक गन्धर्वों और अप्सराओंके साथ युधिष्ठिरकी सभामें उपस्थित हो उनका मनोरञ्जन करते थे (सभा० ४ । ३७) । ये कुबेरकी सभामें भी उपस्थित होते हैं (सभा० १० । २६) । ये इन्द्रकी सभामें विराजते हैं (सभा० ७ । २२) । इनका अर्जुनको संगीत-विद्याकी शिक्षा देना (वन० ४४ । ८-९) । इन्द्रके आदेशसे इनका उर्वशीके पास जाकर उसे अर्जुनको प्रसन्न करनेके लिये कहना (वन० ४५ । ६–१३) । द्वैतवनमें कौरवोंके साथ इनका युद्ध और कर्णको परास्त करना (वन० २४१ अध्याय) । दुर्योधनको बंदी बनाना (वन० २४२ । ६) । अर्जुनद्वारा पराजित होकर इनका अपनेको प्रकट कर देना (वन० २४५ । २७) । इन्द्रसे अर्जुनकी युद्ध-कलाकी प्रशंसा करना (विराट० ६४ । ३८–४३) । युधिष्ठिरके अश्वमेधयज्ञमें ये भी पधारे थे और यथावसर अपने नृत्य-गीतकी कलाओंद्वारा ब्राह्मणोंका मनोरञ्जन करते थे (आश्व० ८८ । ३९-४०) । धृतराष्ट्रके आश्रमपर नारदजीके साथ ये भी पधारे थे (आश्रम० २९ । ९) । (४) जरासंधका मन्त्री, डिम्भक (सभा० २२ । ३२-३३) । (देखिये—डिम्भक) (५) अभिसारदेशका राजा और कौरव-पक्षका एक योद्धा । श्रुतकर्माद्वारा इसका वध (कर्ण० १४ । १४) । (६) (श्रुतसेन)–त्रिगर्तराज सुशर्माका भाई (कर्ण० २७ । ३–११) । (७) एक पाञ्चाल योद्धा, कर्णद्वारा वध (कर्ण० ४८ । १५) । (८) कर्णका पुत्र, कर्णका चक्ररक्षक (कर्ण० ४८ । १८) । नकुलद्वारा इसका वध (शल्य० १० । १९-२०) । (९) कर्णका भाई, युधामन्युद्वारा इसका वध (कर्ण० ८३ । ३९-४०) । (१०) समुद्रतटवर्ती राज्यके अधिपति एक पाण्डवपक्षीय योद्धा, जो अपने पुत्रके साथ युद्धभूमिमें समुद्रसेनके द्वारा मारा गया (कर्ण० ६ । १५-१६) । (११) एक नाग, जो कर्ण और अर्जुनके युद्धमें अर्जुनकी विजयका समर्थक था (कर्ण० ८७ । ४३) ।

चित्रसेना–(१) कुबेरकी सभामें उपस्थित हो धनदकी उपासना करनेवाली एक अप्सरा (सभा० १० । १०) । अर्जुनके इन्द्रलोकमें जानेपर इसने नृत्य किया था (वन० ४३ । ३०) । (२) एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । १७) । (३) स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १४) ।

चित्रा–एक अप्सरा, जिसने अष्टावक्रके सम्मानार्थ कुबेरकी सभामें नृत्य किया था (अनु० १९ । ४४)।

चित्राक्ष–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९५; आदि० ११६ । ४)। भीमसेनद्वारा वध (द्रोण० १३६ । २०–२२)।

चित्राङ्ग (चित्राङ्गद या श्रुतान्तक)–धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ११६ । ६)। भीमसेनद्वारा इसका वध (शल्य० २६ । १०-११)।

चित्राङ्गद (चित्राङ्ग)–(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक। 'श्रुतान्तक' नामसे भीमसेनद्वारा इसका वध (शल्य० २६ । १०)। (२) महाराज शान्तनुके द्वारा सत्यवतीके गर्भसे उत्पन्न एवं विचित्रवीर्यके अग्रज (आदि० ९५ । ४९-५०; आदि० १०१ । २)। पिताके स्वर्गवासी होनेपर भीष्मद्वारा इनका राज्याभिषेक (आदि० १०१ । ५)। चित्राङ्गद नामक गन्धर्वके साथ इनका भीषण संग्राम और उसके द्वारा इनकी मृत्यु (आदि० १०१ । ९)। भीष्मद्वारा इनका अन्त्येष्टि-संस्कार (आदि० १०१ । ११)। (३) एक गन्धर्व, जिसके द्वारा शान्तनुपुत्र चित्राङ्गदका वध किया गया (आदि० १०१ । ९)। (४) द्रौपदीके स्वयंवरमें आये हुए एक राजा (सम्भव है, ये कलिङ्गराज या दशार्णराजमेंसे कोई रहे हों।) (आदि० १८५ । २२)। (५) कलिङ्गदेशके एक राजा, जिनके यहाँ किसी समय स्वयंवर-महोत्सवमें देश-देशके राजा एकत्र हुए थे (शान्ति० ४ । २)। (६) महाबली शत्रुमर्दन दशार्णनरेश, जिनके साथ अश्वमेध-सम्बन्धी अश्वकी रक्षाके समय अर्जुनका बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ और ये अर्जुनके अधीन हो गये (आश्व० ८३ । ५–७)।

चित्राङ्गदा–(१) मणिपूरनरेश चित्रवाहनकी पुत्री (आदि० २१४ । १५)। नगरमें विचरण करती हुई इस राजकुमारीपर अर्जुनकी दृष्टि पड़ी और वे इसे चाहने लगे (आदि० २१४ । १६)। चित्राङ्गदाके पितासे उनका इसे अपनी पत्नी बनानेके लिये माँगना (आदि० २१४ । १७)। अर्जुनद्वारा इसका पाणिग्रहण (आदि० २१४ । २६)। इसके गर्भसे अर्जुनद्वारा एक पुत्रका जन्म और अर्जुनका चित्राङ्गदाको हृदयसे लगाकर वहाँसे प्रस्थित हो जाना (आदि० २१४ । २७)। इससे मिलनेके लिये अर्जुनका पुनः मणिपूरमें आगमन (आदि० २१६ । २३)। मणिपूरसे जाते समय इसको अर्जुनका आश्वासन तथा राजसूय-यज्ञमें आनेका आदेश (आदि० २१६ । २६—३४)। बभ्रुवाहन और अर्जुनके युद्धमें दोनोंके धराशायी होनेपर इसका संतप्त हृदयसे समराङ्गणमें आना और पतिदेवकी दशाका निरीक्षण (आश्व० ७९ । ३७–३९)। पति-वियोगके शोकसे संतप्त हो मूर्च्छित होकर गिरना, कुछ देर बाद होशमें आनेपर उलूपीको सामने खड़ी देखना और उसे उपालम्भ देकर उससे अर्जुनके प्राण बचानेका अनुरोध करना (आश्व० ८० । २—७)। पतिके निकट जाकर इसका विलाप करना (आश्व० ८० । ८—११)। पुनः उलूपीसे पतिको जिलानेके लिये अनुरोध करना (आश्व० ८० । १२—१७)। आमरण उपवासका संकल्प लेकर बैठना (आश्व० ८० । १८)। चित्राङ्गदाका उलूपी तथा बभ्रुवाहनके साथ हस्तिनापुरमें जाना (आश्व० ८७ । २६)। इसका कुन्ती और द्रौपदीके चरणोंका स्पर्श करना और सुभद्रा आदिसे मिलना (आश्व० ८८ । २-३)। कुन्ती, द्रौपदी और सुभद्रा आदिका चित्राङ्गदाके लिये विविध रत्नोंकी भेंट देना (आश्व० ८८ । ३-४)। इसका दासीकी भाँति गान्धारीकी सेवामें संलग्न होना (आश्रम० १ । २३-२४)। वनमें जाते हुए धृतराष्ट्र और गान्धारीके साथ कुरुकुलकी अन्य स्त्रियोंसहित चित्राङ्गदाका भी घरसे बाहर निकलना और रोना (आश्रम० १५ । १०)। संजयका आश्रमवासी मुनियोंको कुरुकुलकी स्त्रियोंका परिचय देते समय चित्राङ्गदाकी अङ्गकान्तिको नूतन मधूकपुष्पकी भाँति गौर बताना (आश्रम० २५ । ११)। पाण्डवोंके महाप्रस्थानके पश्चात् इसका 'मणिपूर' नामक नगरको जाना (महाप्रस्थान० १ । १८)। (२) एक अप्सरा, जिसने अष्टावक्रके सम्मानार्थ कुबेरकी सभामें नृत्य किया था (अनु० १९ । ४४)।

चित्रायुध (या चित्रबाहु)–(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९७)। भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १३६ । २०–२२)। (२) (दृढ़ायुध) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ११६ । ८)। भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १३७ । २९)। (३) सिंहपुर-नरेश, जिनकी राजधानी सिंहपुरपर अर्जुनने दिग्विजयके समय आक्रमण किया और उसे युद्धमें जीत लिया (सभा० २७ । २०)। (४) चेदिदेशके एक महारथी योद्धा, जो पाण्डव पक्षमें थे। उनके घोड़े लाल और आयुध आदि विचित्र थे (द्रोण० २३ । ५६—६४)। कर्णद्वारा इनका वध (कर्ण० ५६ । ४९)।

चित्राश्व–सत्यवान्का दूसरा नाम। इन्हें अश्व बहुत प्रिय थे। ये मिट्टीके अश्व बनाया करते थे और चित्रमें अश्व ही अङ्कित करते थे, इसलिये लोग इन्हें 'चित्राश्व' भी कहते थे (वन० २९४ । १३)।

चित्रोपला–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । ३४)।

चिबुक–नन्दिनी गौद्वारा उत्पादित एक म्लेच्छ जाति (आदि० १७४ । ३८) ।

चिरकारी–महर्षि गौतमका एक पुत्र, जो प्रत्येक कार्यपर अधिक देरतक विचार करनेके कारण उसे बहुत देरसे पूर्ण करता था, इसीसे चिरकारी कहलाता था। पिताद्वारा अपनी माताके वधका आदेश पानेपर उसका विचार करना (शान्ति० २६६ । ३—४३) । पिताके चरणोंमें नतमस्तक होना (शान्ति० २६६ । ६०) । पिताद्वारा उसका अभिनन्दन (शान्ति० २६६ । ६७) । पिताके साथ स्वर्गगमन (शान्ति० २६६ । ७८) ।

चिरान्तक–गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १३) ।

चीन–(१) नन्दिनी गौद्वारा उत्पादित एक म्लेच्छ जाति (आदि० १७४ । ३८) । (२) एक देश, जहाँके लोग युधिष्ठिरको भेंट देनेके लिये आये थे (सभा० ५१ । २३) ।

चीरक–एक देश या जनपद, जिसे कर्णने जीतकर दुर्योधनके लिये कर देनेवाला बना दिया था (कर्ण० ८ । १९) ।

चीरवासा–(१) एक क्षत्रिय राजा, जो क्रोधवश नामक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ६१) । (२) एक यक्ष, जो कुबेरकी सभामें उपस्थित हो भगवान् धनाध्यक्षकी सेवा करता है (सभा० १० । १८) ।

चीरिणी–एक नदी, जिसके तटपर वैवस्वत मनुने भीगे चीर और जटा धारण किये तपस्या की थी (वन० १८७ । ६) ।

चुलुका–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । २०) ।

चूचुक–दक्षिण भारतकी एक म्लेच्छ जाति (शान्ति० २०७ । ४२) ।

चूचुप–दक्षिण भारतका एक जनपद (उद्योग० १४० । २६) ।

चेकितान–पाण्डव-पक्षका एक महारथी, जो वृष्णिवंशी यादव था और द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । ११; उद्योग० १७१ । १८; भीष्म० ८४ । २०) । राजा युधिष्ठिरके मयनिर्मित सभामें प्रवेश करते समय ये भी उनकी सेवामें उपस्थित थे (सभा० ४ । २७) । इन्होंने युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें उपस्थित हो अभिषेकके समय उनके लिये तरकस भेंट किया था (सभा० ५३ । ९) । प्रथम दिनके संग्राममें सुशर्माके साथ इनका द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ४५ । ६०–६२) । कृपाचार्यको मूर्छित करके स्वयं भी उनके द्वारा मूर्छित होना (भीष्म० ८४ । ३१) । चित्रसेनके साथ द्वन्द्वयुद्ध (भीष्म० ११० । ८-९; भीष्म० १११ । ५३–५५) । धृतराष्ट्रद्वारा इनकी वीरताका वर्णन (द्रोण० १० । ५४) । अनुविन्दके साथ युद्ध (द्रोण० १४ । ४८) । इनके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ४५) । द्रोणाचार्यद्वारा इनकी पराजय (द्रोण० १२५ । ६८–७१) । दुर्योधनद्वारा इनका वध (शल्य० १२ । ३१–३३) । व्यासजीके आवाहन करनेपर गङ्गाजीके जलसे ये भी प्रकट हुए थे (आश्रम० ३२ । १२) । इनके दो नाम और मिलते हैं—सात्वत और वार्ष्णेय ।

चेदि–एक प्राचीन देश, जिसे उपरिचर वसुने जीता था और इसपर शासन किया था (आदि० ६३ । १-२) । चेदिदेशकी विशेषता (आदि० ६३ । ८) । यहींका राजा शिशुपाल था । नकुलकी पत्नी करेणुमती भी यहींकी राजकुमारी थीं (आदि० ९५ । ७९) । शिशुपालकी मृत्युके पश्चात् उसके पुत्र धृष्टकेतुको चेदिदेशका राजा बनाया गया (सभा० ४५ । ३६) । राजा नलके समयमें सुबाहु इस देशके राजा थे; जिनके यहाँ दमयन्तीने सुखपूर्वक निवास किया था (वन० ६५ । ४४–७६) । चेदिराज धृष्टकेतु एक अक्षौहिणी सेना साथ लेकर पाण्डवोंकी सहायतामें आये थे (उद्योग० १९ । ७) । इस देशके क्षत्रिय वीर भगवान् श्रीकृष्णकी सलाहसे चलकर शत्रुओंको बंदी बनाते और मित्रोंको आनन्दित करते थे (उद्योग० २८ । ११) । भारतके प्रमुख जनपदोंमें 'चेदि'की भी गणना है (भीष्म० ९ । ४०) ।

चैत्य–देववृक्ष (आदि० १५० । ३३) ।

चैत्यक–मगधकी राजधानी गिरिव्रजके समीपका एक पर्वत, जो मगधवासियोंको अत्यन्त प्रिय था । बृहद्रथ-परिवारके लोग इसकी देवताकी भाँति पूजा किया करते थे (सभा० २१ । १–५) ।

चैत्ररथ–(१) एक वन, जहाँ राजा ययातिने 'विश्वाची' अप्सराके साथ रमण किया था (आदि० ७५ । ४८) । तपस्याके लिये जाते समय राजा पाण्डु अपनी दोनों पत्नियोंके साथ यहाँ आये थे (आदि० ११८ । ४८) । द्वारकापुरीका एक वन, जो इसी (चैत्ररथ) नामसे प्रसिद्ध था और ब्रह्माजीके अलौकिक उद्यानकी भाँति शोभा पाता था (सभा० ३८ । पृष्ठ ८१२, कालम २) । (२) भरतवंशीय महाराज कुरुके द्वारा वाहिनीके गर्भसे उत्पन्न एक राजकुमार (आदि० ९४ । ५०) ।

चैत्ररथपर्व–आदिपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १६४ से १८२ तक) ।

चैद्य-चेदिराज शिशुपाल (आदि० १ । ३१)। चेदिराज धृष्टकेतु, जो धृष्टद्युम्ननिर्मित क्रौञ्चव्यूहके नेत्र-स्थानमें खड़े थे (भीष्म० ५० । ४७)।

चोल-एक देश, जिसकी सेनाओंपर अर्जुनने विजय पायी थी (सभा० २७ । २१)। चोलदेशके नरेशको भी चोल कहा गया है, ये युधिष्ठिरको भेंट देने गये थे (सभा० ५२ । ३५)। दक्षिण भारतका एक जनपद, जहाँके वीर योद्धा धृष्टद्युम्ननिर्मित क्रौञ्चव्यूहकी दाहिनी पाँखका आश्रय लेकर खड़े थे (भीष्म० ९ । ६०; भीष्म० ५० । ५१)। भगवान् श्रीकृष्णने इस देशको जीता था (द्रोण० ११ । १७)। पाण्डवोंकी ओरसे इन्होंने युद्ध किया (कर्ण० १२ । १५)।

चौर-क्षत्रियोंकी एक प्राचीन जाति, जो ब्राह्मणोंके रोषसे शूद्रत्वको प्राप्त हो गयी (अनु० ३५ । १७)।

च्यवन-(१) एक सुप्रसिद्ध तपस्वी मुनि, जो महर्षि भृगुके पुत्र थे (आदि० ५ । ८)। इनकी उत्पत्ति-कथा (आदि० ५ । १३ से ६ । ३ तक)। इनका च्यवन नाम पड़नेका कारण तथा इन्हें देखते ही पुलोमा राक्षस-का जलकर भस्म हो जाना (आदि० ६ । ३)। इनके द्वारा सुकन्या नामक पत्नीके गर्भसे प्रमतिका जन्म (आदि० ५। ९; आदि० ८। १)। इनसे आस्तीकने अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन किया था (आदि० ४८ । १८)। इनकी भार्या मनुकी पुत्री आरुषी थी, जिससे और्व मुनिका जन्म हुआ था (आदि० ६६ । ४६)। ये ब्रह्माजीकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । २२)। सुकन्याद्वारा इनकी आँखोंके फोड़ दिये जानेपर इनके द्वारा राजा शर्यातिके सैनिकोंका मलावरोध (वन० १२२ । १५–१७)। इन्हें शर्यातिसे सुकन्याकी प्राप्ति होनेपर इनकी प्रसन्नता (वन० १२२। २६-२७)। रूप, यौवन और पत्नीकी प्राप्तिसे प्रसन्न होकर इनका अश्विनीकुमारों-को सोमपानके अधिकारी बनानेकी प्रतिज्ञा करना (वन० १२३ । २२-२३)। इनके द्वारा इन्द्रकी भुजाओंका स्तम्भन (वन० १२४ । १९; शान्ति० २४२ । २४)। इनका अश्विनीकुमारोंको सोमपान कराना (वन० १२५ । १०)। अभिमन्त्रित जल पी लेनेपर राजा युवनाश्व-को इनका आश्वासन देना (वन० १२६।१०–२८)। देवव्रत भीष्मका इनसे वेदाङ्गों और वेदोंका अध्ययन (शान्ति० ३७। ११)। (२) अङ्गिराके वंशज, च्यवन नामक अग्नि (वन० २२० । १)।

च्यवनाश्रम-एक तीर्थ, जिसमें काशिराजकी कन्या अम्बाने स्नान किया (उद्योग० १८६ । २६)।

च्यवन-सरोवर-एक तीर्थ जिसमें पितरोंका तर्पण किया जाता है (वन० १२५ । ११-१२)।

(छ)

छत्रवती--अहिच्छत्रदेशकी राजधानी, अहिच्छत्रा नगरीका दूसरा नाम (आदि० १६५ । २१)।

छन्दोदेव-मतङ्गको इन्द्रके वरदानसे जन्मान्तरमें मिलने-वाला नाम (अनु० २९ । २४)।

छागमुख-बकरेके समान मुख धारण करनेवाले भगवान् स्कन्द, जो अपने पुत्रों और कन्याओंसे घिरकर मातृ-काओंके देखते-देखते युद्धमें अपने पक्षकी रक्षा करते हैं (वन० २२८ । ३-४)।

(ज)

जङ्घारि-विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४। ५७)।

जङ्घाबन्धु-एक प्राचीन ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १६)।

जटाधर-स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६१)।

जटायु-एक गीध, विनतानन्दन अरुणके दूसरे पुत्र, इनकी माताका नाम श्येनी और बड़े भाईका नाम सम्पाति था (आदि० ६६ । ६९-७०)। इनका सीताहरणके समय रावणके साथ युद्ध (वन० २७९ । ३–५)। रावणद्वारा इनकी पाँखोंका काटा जाना (वन० २७९ । ६)। श्रीरामचन्द्रजीको सीताका पता बताकर इनका प्राण त्याग करना (वन० २७९। २३)। जटायु अपने भाई सम्पातिके साथ सूर्यमण्डल-की ओर उड़े थे। सम्पातिकी पाँखें जल गयीं और इनकी बची रह गयीं—इस प्रसङ्गकी चर्चा (वन० २८५ । ४९-५०)।

जटालिका-स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । २३)।

जटासुर-(१) एक राजा, जो युधिष्ठिरकी सभामें रहता था (सभा० ४ । २४)। (२) एक राक्षस, जो पाण्डवोंके अस्त्र-शस्त्र तथा द्रौपदी, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेवको लेकर भागा जा रहा था (वन० १५७ । ७–११)। इसका भीमसेनके साथ युद्ध तथा प्राण-त्याग (वन० १५७ । ४८–७०)। इसके पुत्रका नाम अलम्बुष था, जो घटोत्कचके हाथसे मारा गया (द्रोण० १७४ । ७—३७)।

जटासुरवधपर्व-वनपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १५७)।

जटिला-गौतमगोत्रकी कन्या, सात ऋषियोंकी पत्नी

(आदि० १९५ । १४)। हस्तिनापुरकी स्त्रियोंद्वारा द्रौपदीकी पतिसेवाके विषयमें इनका दृष्टान्त (शान्ति० ३८ । ५)।

जठी–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६१)।

जठर–(१) एक वेदविद्याके पारंगत ब्राह्मण, जो जनमेजयके सर्पसत्रके सदस्य बने थे (आदि० ५३ । ८)। (२) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ४२)।

जतुगृह–लाक्षागृह, जिसे दुर्योधनने पाण्डवोंके विनाशके लिये वारणावतमें बनवाया था (आदि० ६१ । १७)। पाण्डवोंने इस भवनमें सालभर रहकर इसमें आग लगा दी (आदि० ६१ । २१–२३)। दुष्ट दुर्योधनकी प्रेरणासे पुरोचनद्वारा महात्मा पाण्डवोंके विनाशके लिये लाहका घर बनवाया गया था (आदि० १४३ । ८)। विदुरके भेजे हुए खनकद्वारा पाण्डवोंने इसमें सुरंगका निर्माण कराया था (आदि० १४६ । १६)। अपने शराबी पाँच पुत्रोंके साथ मदिरा पीकर मत्त होकर एक भीलनीका इस भवनमें आकर सोना (आदि० १४७ । ७)। भीमका इस घरमें आग लगाना (आदि० १४७ । १०)। इसमें जलकर पुरोचनकी मृत्यु (आदि० १४७ । १६)।

जतुगृहपर्व–आदिपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १४० से १५० तक)।

जनक–(क) मिथिलाके एक भूतपूर्व राजा, जो अब यमसभामें विराजमान होते हैं (सभा० ८ । १९)। (ख) युधिष्ठिरके समकालिक मिथिलाके एक राजा, जिसे भीमसेनने दिग्विजयके समय पराजित किया था (सभा० ३० । १३)। (ग) एक विदेहराज जनक, जिनके दरबारमें वन्दीद्वारा शास्त्रार्थमें हारे हुए कहोडको समुद्रमें डलवा दिया गया था (वन० १३२ । १५)। इनका अपनी यज्ञशालामें आये हुए अष्टावक्रसे वार्तालाप (वन० १३३ । २०–३०)। इनका अष्टावक्रको वन्दीसे शास्त्रार्थ करनेका अवसर देना (वन० १३३ । ३०)। हारे हुए वन्दीको अष्टावक्रके इच्छानुसार जलमें डुबानेकी बात स्वीकार करना (वन० १३४ । २९)। कहोडका जनकके सामने प्रकट होकर पुत्रकी प्रशंसा करना (वन० १३४ । ३२–३६)। राजाकी आज्ञासे वन्दीका समुद्रके जलमें प्रवेश (वन० १३४ । ३७)। धर्मव्याधद्वारा कौशिक ब्राह्मणके प्रति जनकके गुणोंका वर्णन (वन० २०७ । ३७–३९)। विदेहराज जनक सीताके पिता थे (वन० २७४ । ९)। इनका राज्य छोड़कर संन्यास ग्रहण करनेका उपक्रम (शान्ति० १८ । ४-५)। इनका अश्मा मुनिसे कुटुम्बी जन और धनका नाश होनेपर क्या करना चाहिये, इस विषयमें प्रश्न करना (शान्ति० २८ । ४)। जनकका स्वर्ग और नरकका प्रत्यक्ष दर्शन कराकर अपने सैनिकोंको युद्धके लिये प्रोत्साहित करना (शान्ति० ९९ । ४–७)। कालकवृक्षीय मुनिके समझानेपर जनकका क्षेमदर्शीसे संधि करना और उसका सत्कार करके उसके साथ अपनी कन्याका ब्याह कर देना (शान्ति० १०६ । २१–२८)। इनकी विरक्ति (शान्ति० १७८ । २)। महर्षि माण्डव्यके तृष्णाविषयक प्रश्नका जनकद्वारा उत्तर (शान्ति० २७६ अध्याय)। पराशरजीसे कल्याण-प्राप्तिके विषयमें जनकके प्रश्न (शान्ति० २९० । ४)। पराशरजीसे इनके विविध प्रकारके प्रश्न (शान्ति० २९६ । १-२; शान्ति० २९८ । २)। कराल जनकको वसिष्ठका उपदेश (शान्ति० ३०२ अध्यायसे ३०८ अध्याय तक)। वसुमान् जनकको एक मुनिका धर्मविषयक उपदेश (शान्ति० ३०९ अध्याय)। महर्षि याज्ञवल्क्यसे देवरातपुत्र जनकका प्रश्न करना और उनके द्वारा उनके प्रश्नोंका समाधान (शान्ति० ३१० अध्याय से ३१८ अध्याय तक)। जरा-मृत्युके उल्लङ्घनके विषयमें महर्षि पञ्चशिखसे जनदेव जनकका प्रश्न (शान्ति० ३१९ । ५)। धर्मध्वज जनककी परीक्षाके लिये आयी हुई और उनके शरीरमें प्रविष्ट हुई सुलभासे उसपर दोषारोपण करते हुए इनका प्रश्न (शान्ति० ३२० । ७५)। राजा जनकद्वारा शुकदेवजीका पूजन (शान्ति० ३२६ । ३–५)। शुकदेवजीको उनका ज्ञानोपदेश (शान्ति० ३२६ । २२–५१)। जनकने जीवनमें कभी मांस नहीं खाया था (अनु० ११५ । ६५)। ब्राह्मणरूपधारी धर्म और जनकका ममत्व-त्यागविषयक संवाद (आश्व० ३२ अध्याय)।

महाभारतमें आये हुए जनकके नाम–ऐन्द्रद्युम्नि, दैवराति, धर्मध्वज, कराल, करालजनक, मैथिल, मिथिलाधिप, मिथिलाधिपति, मिथिलेश्वर, वैदेह, विदेहराज आदि। (मिथिलाके प्रायः सभी राजा जनक कहलाते थे। प्रस्तुत वर्णनमें अनेक जनकोंके जीवनकी बातें संकलित हुई हैं। नामोंमें भी विभिन्न जनकोंके नाम हैं। यह किसी एक ही जनकका परिचय नहीं है।)।

जनदेव–मिथिलानरेश जनक (शान्ति० २१८ । ३)। इन्हें पञ्चशिखका उपदेश (शान्ति० २१८ । २२ से शान्ति० २१९ । ५२ तक)। ब्राह्मणरूपमें विष्णुद्वारा इनकी परीक्षा (शान्ति० २१९ । ५२ के बाद दाक्षिणात्य पाठ)। इन्हें भगवान् विष्णुका दर्शन और वर-प्राप्ति (शान्ति० २१९ अध्यायकी समाप्तितक)।

जनमेजय–(१) एक राजर्षि, जो महाराज परीक्षित्‌के पुत्र थे। इनकी माताका नाम मद्रवती था, इनकी पत्नी वपुष्टमासे शतानीक और शङ्कुकर्ण नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे (आदि० १। ९; आदि० ९५। ८५-८६)। इन्होंने कुरुक्षेत्रमें दीर्घकालतक यज्ञ किया था (आदि० ३। १)। इनके तीन भाई थे–श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन (आदि० ३। १)। सरमाके शाप देनेपर इनका चिन्तित होना (आदि० ३। ११)। इन्होंने सोमश्रवाको पुरोहित बनाया और भाइयोंको उनकी प्रत्येक आज्ञाके पालनका आदेश दिया (आदि० ३। १२–२०)। उनके द्वारा तक्षशिलापर विजय (आदि० ३। २०)। इनका वेदको अपना उपाध्याय बनाना (आदि० ३। ८२)। सर्पयज्ञ करनेके लिये इनको उत्तङ्ककी सलाह (आदि० ३। १८३-१८४)। काशिराज सुवर्णवर्माकी पुत्री वपुष्टमासे इनका विवाह (आदि० ४४। ८-९)। मन्त्रियोंके द्वारा अपने पिताकी मृत्युका विस्तारपूर्वक समाचार सुनकर इनका तक्षकसे बदला लेनेका निश्चय (आदि० ५०। ३३–५४)। ऋत्विजोंद्वारा इनको सर्प-सत्र करनेका परामर्श (आदि० ५१। ६-७)। इन्होंने यज्ञकी दीक्षा लेनेसे पहले ही सेवकको यह आदेश दे दिया कि मुझे सूचित किये बिना किसी अपरिचित व्यक्तिको यज्ञमण्डपमें न आने दिया जाय, इनका तक्षकको अग्निकुण्डमें गिरानेके लिये ऋत्विजोंको बारंबार प्रेरणा (आदि० ५६। ४–११)। उनका आस्तीकको वर देना और यज्ञसमाप्तिका वर माँगनेपर उनसे दूसरा वर माँगनेका आग्रह करना (आदि० ५६। १७–२६)। इनके द्वारा यज्ञ बंद करनेकी आज्ञा देकर ऋत्विज आदि सदस्यों और लोहिताक्ष सूत तथा शिल्पीको पुरस्कार (आदि० ५८ अध्याय)। सर्पसत्रमें आये हुए व्यासजीसे इनकी महाभारत-युद्ध-सम्बन्धी वृत्तान्त सुनानेकी प्रार्थना (आदि० ६०। १८-१९)। इनके प्रार्थना करनेपर व्यासजीकी आज्ञासे वैशम्पायनजीने इनसे पूरुवंश, भरतवंश एवं कुरुवंशके परिचयपूर्वक सम्पूर्ण पुरातन इतिहास एवं महाभारत युद्धकी कथा सुनायी थी (आदि० ६०। १८–२४)। इनका व्यासजीसे अपने पिताके दर्शन करानेकी प्रार्थना और व्यासजीका परलोकसे उनका आवाहन करके उसी रूप और अवस्थामें जनमेजयको दर्शन कराना, जनमेजयका पहले पिताको अवभृथ-स्नान कराकर स्वयं स्नान करना तथा आस्तीकसे अपने यज्ञको विविध आश्चर्योंका केन्द्र बताना और आस्तीकके कहनेसे महर्षि व्यासका बारंबार पूजन करना। इसके बाद वैशम्पायनजीसे शेष कथा सुनानेके लिये कहना (आश्रम० ३५। ४–१८)। कथा सुनकर तथा यज्ञको समाप्त करके राजाने समस्त ब्राह्मणोंको पर्याप्त दक्षिणा देकर संतुष्ट किया और सबको विदा करके तक्षशिलासे हस्तिनापुरको चले आये (स्वर्गा० ५। ३३-३४)।

महाभारतमें आये हुए जनमेजयके नाम–भारत, भरतशार्दूल, भरतश्रेष्ठ, भारताग्र्य, भरतर्षभ, भरतसत्तम, कौरव, कौरवशार्दूल, कौरवनन्दन, कौरवेन्द्र, कौरव्य, कुरुशार्दूल, कुरुश्रेष्ठ, कुरूद्वह, कुरुकुलश्रेष्ठ, कुरुकुलोद्वह, कुरुनन्दन, कुरुप्रवीर, कुरुपुङ्गवाग्रज, कुरुसत्तम, पाण्डव, पाण्डवनन्दन, पाण्डवेय, पारिक्षित्, पौरव आदि।

(२) एक परलोकवासी नरेश (आदि० १। २२८)। ये यमराजके सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ८। १९)। मान्धाताने इन्हें पराजित किया था (द्रोण० ६२। १०)। इन्होंने तीन ही दिनोंमें विजयी होकर इस भूमण्डलका राज्य प्राप्त किया था (शान्ति० १२४। १६)। ब्राह्मणोंके लिये अपने शरीर और गौका त्याग करके इन्होंने उत्तम लोक प्राप्त किया था (शान्ति० २३४। २४; अनु० १३७। ९)। (३) एक क्षत्रिय राजा, जो क्रोधवशसंज्ञक दैत्योंके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७। ६२)। पाण्डवोंकी ओरसे इन्हें रण-निमन्त्रण भेजा गया था (उद्योग० ४। १६)। यह गदा-युद्धमें कुशल पर्वतीय राजा था। इसे धृतराष्ट्रपुत्र दुर्मुखने मारा था (कर्ण० ६। १९-२०)। (४) एक राजा, जो भरतवंशी महाराज कुरुके द्वारा वाहिनीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे (आदि० ९४। ५१)। (५) अश्ववान्‌कुमार परीक्षित्‌के वंशमें उत्पन्न एक राजा, जिसके पुत्रका नाम धृतराष्ट्र था (आदि० ९४। ५३–५६)। ये परीक्षित्-वंशीय नरेश, अर्जुनके प्रपौत्र और अभिमन्युके पौत्रसे भिन्न थे (शान्ति० १५०। ३)। ये अनजानमें ब्रह्महत्या कर देनेके कारण प्रजा, ब्राह्मणों और पुरोहितोंद्वारा त्याग दिये गये और दुखी हो वनमें जाकर पुण्यकर्म एवं तपस्या करने लगे। इन्होंने पृथ्वीपर घूम-घूमकर ब्रह्महत्यानिवारणका उपाय पूछा, अन्तमें एक शौनकवंशी इन्द्रोत मुनिकी शरणमें गये (शान्ति० १५०। ४–८)। इन्द्रोतमुनिके फटकारनेपर इन्होंने उनकी ही शरण ग्रहण की (शान्ति० १५१। १–९)। इन्द्रोत मुनिने अश्वमेधयज्ञ कराकर इन्हें पापसे मुक्त किया (शान्ति० १५२। ३९)। (६) महाराज पूरुके पुत्र, इनकी माताका नाम कौसल्या था, इन्हींका दूसरा नाम प्रवीर है, इनके द्वारा मधुवंशकी कन्या अनन्ताके गर्भसे प्राचिन्वान्‌की उत्पत्ति हुई थी (आदि० ९५। ११-१२)। (७) वरुणकी सभामें विराजमान होनेवाला एक नाग (सभा० ९। १०)। (८) नीपवंशका

एक कुलाङ्गार नरेश (उद्योग० १७४ । १३) । (९) पाण्डवपक्षका एक पाञ्चालदेशीय योद्धा, जो दुर्मुखका पुत्र था, यह युधिष्ठिरका सम्बन्धी एवं सहायक था, इसके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ५१; द्रोण० १५८ । ३९)। इसका कर्णके साथ युद्ध (कर्ण० ४९ । ३५–३७) ।

जनस्थान–दण्डकारण्यका एक भाग, जो गोदावरीके तटपर है और जहाँ त्रेतायुगमें राक्षसोंका समुदाय निवास करता था, यहाँ रहकर देवताओंका कार्य सिद्ध करते हुए श्रीरामने प्रजाजनोंके हितकी कामनासे भयानक कर्म करनेवाले मारीच, खर, दूषण, त्रिशिरा आदि चौदह हजार राक्षसोंका वध किया (सभा० ३८ । दा० पाठ, पृष्ठ ७९४)। यहीं राक्षसराज रावणने मायासे सुवर्णमय मृगका रूप धारण करनेवाले मारीच नामक राक्षसके द्वारा श्रीरामको धोखेमें डालकर इनकी धर्मपत्नी सीताको हर लिया था (वन० १४७ । ३३-३४) । यहाँ रहते समय शूर्पणखाके नाक-कान कटवानेके कारण श्रीरामका जनस्थानवासी राक्षस खरके साथ महान् वैर हो गया (वन० २७७ । ४२) । नरश्रेष्ठ श्रीरामने जनस्थानमें तपस्वी मुनियोंकी रक्षाके लिये चौदह हजार राक्षसोंका वध किया था । (द्रोण० ५९ । ३) । जनस्थानमें श्रीरामने जब राक्षसोंके संहारका विचार किया था, उस समय एक राक्षसके सिरको काटकर दूर फेंका, वह महोदर मुनिकी जाँघमें जा लगा और उसकी हड्डी मुनिकी जाँघमें धँस गयी थी (शल्य० ३९ । ९–११) । जनस्थानमें गोदावरीके जलमें स्नान करके उपवास करनेवाला पुरुष राजलक्ष्मीसे सेवित होता है (अनु० २५ । २९) ।

जनार्दन–भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम (वन० १२ । १४) । दस्युजनोंको त्रास देनेके कारण भगवान् श्रीकृष्णका नाम जनार्दन हुआ है (उद्योग० ७० । ६)। महाभारतमें अनेक स्थलोंपर 'जनार्दन' नामका प्रयोग हुआ है, यथा–(भीष्म० २५ । ३६,३९,४४;भीष्म०२७। १; भीष्म० ३४ । १८; भीष्म० ३५ । ५१) इत्यादि ।

जन्तु–प्रसिद्ध राजा सोमकका पुत्र, जिसके प्रति राजपरिवारकी भारी आसक्ति थी (वन० १२७ । ४—१५) । सौ पुत्रोंकी प्राप्तिके निमित्त जन्तुकी आहुति देकर यज्ञ करनेके लिये ऋत्विजकी सलाह (वन० १२७ । १६–२७) । जन्तुके लिये माताओंका शोक और ऋत्विजोंका इसे काटकर इसकी चर्बियोंकी आहुति देना (वन० १२८ । २—६) । इसका पुनः अपनी माताके गर्भसे जन्म (वन० १२८ । ८) ।

जमदग्नि–एक ब्रह्मर्षि, जो सत्यवती और ऋचीक ऋषिके पुत्र, और्वके पौत्र तथा महर्षि च्यवनके प्रपौत्र थे; ये ऋचीकके सौ पुत्रोंमें बड़े थे । इनके भी चार पुत्र थे, जिनमें सबसे छोटे परशुरामजी थे (आदि० ६६ । ४५–४९) । जमदग्निजी अर्जुनके जन्मोत्सवमें पधारे थे (आदि० १२२ । ५१) । ये ब्रह्माजीकी सभामें विराजते हैं (सभा० ११ । २२) । इनका सत्यवतीके गर्भसे जन्म (वन० ११५ । ४३) । इनकी राजा प्रसेनजित्से रेणुकाकी माँग और उसके साथ विवाह (वन० ११६ । २) । इनको अपनी पत्नी रेणुकाके गर्भसे पाँच पुत्रोंकी प्राप्ति (वन० ११६ । ४) । इनका रेणुकाका वध करनेके लिये पुत्रोंको आदेश (वन० ११६ । ११) । माताका वध कर देनेपर परशुरामको इनका वरदान (वन० ११६ । १८) । कार्तवीर्यके पुत्रोंद्वारा इनका वध (वन० ११६ । २८; शान्ति० ४९ । ५०) । द्रोणाचार्यके पास आकर इनका उनसे युद्ध बंद करनेको कहना (द्रोण० १९० । ३५–४०) । इनके जन्मका प्रसंग (शान्ति० ४९ । २९) । इनसे परशुरामका जन्म (शान्ति० ४९ । ३१-३२) । इनका वृषादर्भिसे प्रतिग्रहके दोष बताना (अनु० ९३ । ४४) । अरुन्धतीसे अपने मोटे न होनेका कारण बताना (अनु० ९३ । ६४) । यातुधानीसे अपने नामकी व्याख्या बताना (अनु० ९३ । ९४) । मृणालकी चोरीके विषयमें शपथ खाना (अनु० ९३ । १२०-१२१) । अगस्त्यजीके कमलोंकी चोरी होनेपर शपथ खाना (अनु० ९४ । २५) । रेणुकाके पैर और मस्तकके संतप्त होनेसे सूर्यपर कोप करना (अनु० ९५ । १८) । इनका शरणागत सूर्यको अभयदान देना (अनु० ९६ । ८–१२) । इनके द्वारा धर्मके रहस्यका वर्णन (अनु० १२७ । १७–१९) । ये उत्तर दिशाके ऋषि हैं (अनु० १६५ । ४४) । जमदग्निका क्रोधपर विजय (आश्व० ९२ । ४१–४६) ।

महाभारतमें आये हुए जमदग्निके नाम–आर्चीक, भार्गव, भार्गवनन्दन, भृगुशार्दूल, भृगुश्रेष्ठ, भृगूत्तम, ऋचीकपुत्र, ऋचीकतनय आदि ।

जम्बुक–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७४) ।

जम्बू–मेरुपर्वतके दक्षिण भागमें विद्यमान वृक्षविशेष, जो सदा फल-फूलोंसे भरा रहता है, सिद्ध और चारण उस वृक्षका सेवन करते हैं, उसकी शाखा ऊँचाईमें स्वर्गलोकतक फैली हुई है, उसीके नामपर इस द्वीपको जम्बूद्वीप कहते हैं (सभा० २८ । ६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७४७) ।

जम्बूक–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७६) ।

जम्बूखण्डविनिर्माणपर्व–भीष्मपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १ से १० तक) ।

जम्बूद्वीप–सात द्वीपोंमेंसे एक (सभा० २८ । ६ के बाद दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ७४७) । (यह द्वीप समस्त भूमण्डलके मध्यभागमें है ।) इसके विस्तार आदिका वर्णन (भीष्म० ११ । ५–७) ।

जम्बूनदी–गङ्गाकी सात धाराओंमेंसे एक धाराका नाम (भीष्म० ६ । ४८) ।

जम्बूमार्ग–प्राचीन तीर्थ, जो देवताओं, पितरों और ऋषियोंसे सेवित है, वहाँ जानेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है (वन० ८२ । ४०-४१) । साधारणभावसे तीन महीनेतक और इन्द्रियसंयमपूर्वक एकाग्रचित्त हो एक ही दिन जम्बूमार्गमें स्नान करनेसे मनुष्य सिद्धि प्राप्त कर लेता है (अनु० २५ । ५१) ।

जम्भ–(१) एक असुर, जिसे भगवान् श्रीकृष्णने मारा था (सभा० ३८ । दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८२५; द्रोण० ११ । ५) । (२) एक दैत्य, जिसका शुक्राचार्यने त्याग किया था (सभा० ६२ । १२) । इसीका वध इन्द्रने किया था (शान्ति० ९८ । ४९) । (३) एक असुर, जो भगवान् विष्णुद्वारा मारा गया था (वन० १०२ । २४) । (४) राक्षसोंका एक दल, जो रावणके अधीन था और वानर-सैनिकोंपर धावा बोला था (वन० २८५ । २) । (५) पौलोम और कालखंज नामक दानवोंके अन्तर्गत एक दानव, जो नरावतार अर्जुनके द्वारा मारा गया (उद्योग० ४९ । १४-१५) ।

जम्भक–एक क्षत्रिय राजा, जो वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णद्वारा दलबलसहित मार डाला गया था, केवल उसका पुत्र ही जीवित बच गया था, जिसे सहदेवने दक्षिण-दिग्विजयके समय जीता था (सभा० ३१ । ७-८) ।

जय– (१) महाभारतका नाम (आदि० १ । १ मङ्गलाचरण; प्रत्येक पर्वका मङ्गलाचरण; आदि० ६२ । २०) । (२) धृतराष्ट्रका एक महारथी पुत्र (आदि० ६३ । ११९) । इसने गोहरणके समय विराटनगरमें अर्जुनपर धावा किया था (विराट० ५४ । ७) । नीलके साथ इसका युद्ध (द्रोण० २५ । ४५) । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १३५ । ३६) । (३) एक देवता, जो मूसल लेकर खाण्डवदाहके समय अर्जुन और श्रीकृष्णके विपक्षमें खड़े हुए थे (आदि० २२६ । ३४) । (४) एक प्राचीन नरेश, जो यमसभामें उपस्थित हो सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १५) । (५) भगवान् सूर्यका एक नाम (वन० ३ । २४) । (६) विराटनगरमें रहते समय युधिष्ठिरका गुप्त नाम (अन्य भाइयोंके गुप्त नाम क्रमशः जयन्त, विजय, जयत्सेन, और जयद्बल थे ।) (विराट० ५ । ३५) । जब सूत-पुत्र द्रौपदीको श्मशानमें लिये जा रहे थे, तब द्रौपदीने 'जय आदि' गुप्त नामोंसे ही पाण्डवोंको अपनी रक्षाके लिये पुकारा था (विराट० २३ । १२) । (७) एक मुहूर्तका नाम (उद्योग० ६ । १७) । (८) एक कश्यपवंशी नाग (उद्योग० १०३ । १६) । (९) विदुलोपाख्यानका नाम (उद्योग० १३६ । १८) । (१०) एक कौरवदलका योद्धा, जो शकुनिका साथी होकर अर्जुनपर आक्रमण करनेके लिये दुर्योधनद्वारा भेजा गया था (द्रोण० १५६ । ११९–१२३) । (११) पाण्डवपक्षका एक पाञ्चाल योद्धा, जो कर्णद्वारा घायल किया गया था (कर्ण० ५६ । ४४) । (१२) नाग-राज वासुकिके द्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदरूप नागोंमेंसे एक नाग, दूसरेका नाम महाजय था (शल्य० ४५ । ५२) । (१३) विजय या जीत (शल्य० ४६ । ६४) । (१४) भगवान् विष्णुका नाम (अनु० १४९ । ६७) ।

जयत्सेन–(१) मगधदेशका एक राजा, जो जरासंधका पुत्र था और कालेय नामक दैत्योंमें सबसे श्रेष्ठ असुरके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ४८) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । ८) । पाण्डवोंकी ओरसे इसे रणनिमन्त्रण भेजा गया (उद्योग० ४ । १९) । एक अक्षौहिणी सेनाके साथ पाण्डवोंके यहाँ इसका आगमन हुआ था (उद्योग० १९ । ८) । धृतराष्ट्रपुत्र विजयके साथ इसने युद्ध किया (द्रोण० २५ । ४५) । (२) पूरुवंशी सार्वभौमके द्वारा केकय-कुमारी सुनन्दाके गर्भसे उत्पन्न एक राजा, इनकी पत्नी विदर्भराजकुमारी सुश्रवा थी और इनके पुत्रका नाम अवाचीन था (आदि० ९५ । १६-१७) । (३) विराटनगरमें रहते समय नकुलका गुप्त नाम (विराट० ५ । ३५; विराट० २३ । १२) । (४) एक कौरवपक्षका राजा, जो मगधनिवासी जरासंधका पुत्र था । यह एक अक्षौहिणी सेना साथ लेकर दुर्योधनकी सहायताके लिये आया था (भीष्म० १६ । १६) । यह अभिमन्युद्वारा मारा गया (कर्ण० ५ । ३०) । ('जयत्सेन' नामक दो राजा या राजकुमार हैं, दोनों ही मागध हैं और दोनों-हीके पिताका नाम जरासंध है, परंतु सुप्रसिद्ध राजा जरासंधका पुत्र सहदेव ही पिताके बाद मगधका राजा हुआ था और वह अपने भाई जयत्सेनके साथ पाण्डव-पक्षमें ही सम्मिलित हुआ था; अतः यह दूसरा जयत्सेन मगधदेशवासी किसी अन्य जरासंधका पुत्र है, यही मानना

चाहिये ।) (५) धृतराष्ट्रका एक पुत्र, शतानीकद्वारा इसकी पराजय (भीष्म० ७९ । ४४-४५) । भीमसेनद्वारा इसका वध (शल्य० २६ । ११-१२) ।

जयत्सेना–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ६)।

जयद्बल–विराटनगरमें रहते समय सहदेवका एक गुप्त नाम (विराट० ५ । ३५; विराट० २३ । १२) ।

जयद्रथ–(१) सिन्धुनरेश वृद्धक्षत्रका पुत्र, इसकी पत्नीका नाम दुःशला था (आदि० ६७ । १०९-११०) । दुःशलाके साथ उसका विवाह (आदि० ११६ । १७-१८)। यह द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । २१)। युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें सम्मिलित हुआ था (सभा० ३४ । ८) । कौरवसभामें राजा युधिष्ठिरके जुआ खेलते समय यह भी मौजूद था (सभा० ५८ । २६)। जयद्रथका विवाहकी इच्छासे शाल्वदेशकी ओर जाते समय साथियोंसहित काम्यकवनमें पहुँचना और द्रौपदीको देखकर चकित होना, फिर दूषित भावनाका उदय होनेसे उनका परिचय जाननेके लिये कोटिकास्यको उनके पास भेजना (वन० २६४ । ६–१६) । द्रौपदीसे इसका अनुचित प्रस्ताव करना (वन० २६७ । १३–१७) । द्रौपदीकी इसको कड़ी फटकार (वन० २६७ । १९-२० और दाक्षिणात्य पाठके श्लोक) । द्रौपदीका इसको धिक्कारना और फटकारना (वन० २६८ । २–९) । इसका द्रौपदीको समझाना (वन० २६८ । १०–१२) । पुनः द्रौपदीकी इसे कड़ी फटकार (वन० २६८ । १३–२२) । उसका द्रौपदीको पकड़नेकी चेष्टा और उनके धक्के खाकर कटे पेड़की भाँति गिरना, फिर दुबारा उठकर उन्हें पकड़ना और रथपर बैठनेके लिये विवश कर देना (वन० २६८ । २३–२५) । धौम्यमुनिका जयद्रथको फटकारना (वन० २६८ । २६-२७) । जयद्रथद्वारा अपहृत हुई द्रौपदीके पीछे धौम्य मुनिका जाना (वन० २६८ । २८) । युधिष्ठिरके समक्ष धात्रेयिकाद्वारा जयद्रथके अत्याचारका वर्णन (वन० २६९ । १७—२२)। पाण्डवोंका जयद्रथको ललकारना (वन० २६९ । २८)। द्रौपदीद्वारा जयद्रथके सामने पाण्डवोंके पराक्रमका वर्णन (वन० २७० अध्याय) । पाण्डवोंद्वारा जयद्रथकी सेनाका संहार और जयद्रथका पलायन (वन० २७१ । १—३३) । भीम और अर्जुनका जयद्रथका पीछा करना और उसे फटकारना (वन० २७१ । ५२—५९) । भीमसेनका जयद्रथको पकड़कर पीटना और अधमरा कर देना, उसका सिर मूड़कर पाँच शिखाएँ रख देना, राजाओंकी सभामें युधिष्ठिरका दास बताकर अपना परिचय देनेके लिये उसे विवश करके बंदी बनाकर रथपर डाल लेना और युधिष्ठिरके सामने उसी दशामें उपस्थित करना (वन० २७२ । २—१५) । युधिष्ठिरका इसे छोड़ देनेका आदेश और युधिष्ठिरकी दासता स्वीकार कर लेनेके कारण इसे छोड़ देनेके लिये द्रौपदीका भी भीमसेनसे अनुरोध (वन० २७२ । १७-१८) । जयद्रथका छुटकारा, युधिष्ठिरका उसे उसके पापकर्मके लिये धिक्कारते हुए दासभावसे मुक्त कर देना और उसे सकुशल लौट जानेकी आज्ञा देना (वन० २७२ । २१—२४) । जयद्रथका लज्जित हो सीधे गङ्गाद्वारको जाना और तपस्याद्वारा भगवान् शङ्करको प्रसन्न करके एक दिनके लिये अर्जुनके सिवा अन्य चार पाण्डवोंको जीत लेनेका वरदान प्राप्त करना (वन० २७२ । २५—२९) । इसका सेनासहित दुर्योधनकी सहायतामें आना (उद्योग० १९ । १९) । प्रथम दिनके युद्धमें द्रुपदके साथ द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ४५ । ५५–५७) । भीमसेनसे दुर्योधनकी रक्षा करके भीमसेनपर आक्रमण (भीष्म० ७९ । १७—२०) । भीमसेनके पुरुषार्थसे इसका किंकर्त्तव्यविमूढ़ होना (भीष्म० ८५ । ३५ के बाद) । भीमसेन और अर्जुनके साथ युद्ध (भीष्म० ११३ अध्यायसे ११४ अध्यायतक) । विराटके साथ इसका द्वन्द्व-युद्ध (भीष्म० ११६ । ४२–४४) । अभिमन्युके साथ युद्ध (द्रोण० १४ । ६४—७४) । क्षत्रवर्माके साथ युद्ध (द्रोण० २५ । १०–१२) । व्यूहद्वारपर पाण्डवोंको रोक देना (द्रोण० ४२ । ७) । धृतराष्ट्रके पूछनेपर संजयद्वारा इसको वर-प्राप्तिका वर्णन (द्रोण० ४२ । १२—२२) । पाण्डवोंके साथ युद्ध और व्यूहद्वारको रोके रखना (द्रोण० ४३ अध्याय) । अर्जुनद्वारा की गयी अपने वधकी प्रतिज्ञा जानकर कौरवोंके सामने अपना भय प्रकट करके वहाँसे चले जानेकी आज्ञा माँगना (द्रोण० ७४ । ४—१२) । इसके ध्वजका वर्णन (द्रोण० १०५ । २०–२२) । अर्जुनके साथ इसका युद्ध (द्रोण० १४५ अध्याय) । भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे अर्जुनका जयद्रथके काटे हुए सिरको समन्तपञ्चकमें तपस्या करनेवाले इसके पिताकी गोदमें गिराना तथा उनके द्वारा उस सिरके भूमिपर गिरनेसे उनके भी सिरके सौ टुकड़े हो जाना (द्रोण० १४६।१०४—१३०)।

महाभारतमें आये हुए जयद्रथके नाम–सैन्धव, सैन्धवक, सौवीर, सौवीरज, सौवीरराज, सिन्धुपति, सिन्धुराज, सिन्धुराट्, सिन्धुसौवीरभर्ता, सुवीर, सुवीरराष्ट्रप, वार्धक्षत्रि आदि ।

(२) एक राजा, जो यमसभामें बैठकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । ३६) ।

जयद्रथवधपर्व–द्रोणपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय ८५ से १५२ तक)।

जयद्रथविमोक्षणपर्व–वनपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय २७२)।

जयन्त–(१) इन्द्रके पुत्र, इनकी माताका नाम शची था (आदि० ११२ । ३-४) । (२) विराटनगरमें रहते समय भीमसेनका एक गुप्त नाम (विराट० ५ । ३५; विराट०२३ । १२) । (३) एक पाञ्चाल-शिरोमणि महामनस्वी वीर, जो महारथी माना गया था (उद्योग० १७१ । ११) । (४) ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक (शान्ति० २०८ । २०) । (५) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । ९८) । (६) बारह आदित्योंमेंसे एक (अनु० १५० । १५) ।

जयन्ती–सरस्वती-तटवर्ती एक तीर्थस्थान, जहाँ सोमतीर्थमें स्नान करके मनुष्य राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त करता है (वन० ८३ । १९) ।

जयप्रिया–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १२) ।

जयरात–कौरव-पक्षका योद्धा, जो कलिङ्गदेशका राजकुमार था । भीमसेनद्वारा इसका वध (द्रोण० १५५ । २८) ।

जयसेन–एक मगधदेशीय राजकुमार, जो युधिष्ठिरकी सभामें बैठा करता था (सभा० ४ । २६) ।

जया–दुर्गा देवीका एक नाम (विराट० ६ । १६) ।

जयानीक–(१) द्रुपदपुत्रका एक पुत्र, जो अश्वत्थामाद्वारा मारा गया (द्रोण० १५६ । १८१) । (२) विराटके भाई (द्रोण० १५८ । ४२) ।

जयावती– स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ४)।

जयाश्व (१)–द्रुपदका एक पुत्र, जो अश्वत्थामाद्वारा मारा गया (द्रोण० १५६ । १८१) । (२) विराटके भाई (द्रोण० १५८ । ४२) ।

जरत्कारु–(१) यायावरसंज्ञक ब्राह्मणोंके घरमें उत्पन्न एक ऊर्ध्वरेता और महान् ऋषि, जो आस्तीकके पिता थे (आदि० १३ । ११; आदि० १५ । २-३) । (यायावर शब्दका अर्थ इसी अध्यायकी टिप्पणीमें देखना चाहिये ।) इनके द्वारा गर्तमें लटके हुए अपने पितरोंका दर्शन तथा उनके आदेशसे विवाह करनेका इनका निश्चय (आदि० १३ । १५–२७) । उनके विवाहकी शर्तें (आदि० १३ । २८–३१) । नागराज वासुकिके द्वारा भिक्षाके रूपमें प्राप्त हुई अपने समान नामवाली कन्यासे इनका विवाह होनेकी कथा (आदि० १४ । २–७) । इनका जरत्कारु नाम होनेका कारण (आदि० ४० । ३-४) । इनकी तपश्चर्याका वर्णन (आदि० ४० । ९) । गर्तमें लटके हुए पितरोंद्वारा इनको अपने दुःखकी कथा सुनाना तथा इनसे इनका परिचय पूछना (आदि० ४५ । ३–३२) । पितरोंको अपना परिचय देकर कुछ शर्तोंके साथ विवाह करनेके लिये इनका उन्हें वचन देना (आदि० ४६ । २–१०) । पत्नीके लिये विचरते हुए इनका कहीं पत्नी प्राप्त न होनेपर उदासीन हो वनमें जोर-जोरसे पुकार लगाना तथा धीरे-धीरे कन्याकी भिक्षा माँगना (आदि० ४६ । १२-१३) । दूतोंद्वारा इनका उद्देश्य जानकर नागराज वासुकिका इनकी समस्त शर्तोंको स्वीकार करके इनके साथ अपनी बहिनका ब्याह कर देना (आदि० ४६ । १९–२३; आदि० ४७ । ५) । पत्नीके साथ इनकी शर्त एवं ऋतुकाल आनेपर उसमें गर्भाधान (आदि० ४७ । ८–१३) । धर्मलोपके भयसे पत्नीके द्वारा जगाये जानेपर इनके द्वारा पत्नीका परित्याग (आदि० ४७। १५–४३) । पुत्रके लिये पत्नीके प्रार्थना करनेपर 'तुम्हारे उदरमें गर्भ है' इस प्रकार पत्नीको इनका आश्वासन (आदि० ४७ । ४२) । (२) नागराज वासुकिकी बहिन, जरत्कारु नामक ऋषिकी पत्नी तथा आस्तीककी माता (आदि० १४ । ६-७) । धर्मलोपके भयसे पतिको जगानेपर पतिके द्वारा इनका परित्याग (आदि० ४७ । १६–४३) । पुत्रके लिये प्रार्थना करनेपर जरत्कारु ऋषिके द्वारा इनको आश्वासन (आदि० ४७ । ४२) । जरत्कारु ऋषिके चले जानेपर मातृ-शापसे चिन्तित हुए वासुकिको इनका आश्वासन (आदि० ४८ । १–१३) । अपने पुत्र आस्तीकको सर्पोंकी रक्षाके लिये इनकी प्रेरणा (आदि० ५४ । ५–१६) ।

जरा–(१) एक राक्षसी, जिसने जरासंधके शरीरके दोनों टुकड़ोंको जोड़ा था (सभा० १७ । ४०) । पूर्वकालमें ब्रह्माजीने गृहदेवीके नामसे इसकी सृष्टि की थी और इसे दानवोंके विनाशके लिये नियुक्त किया था । जो अपने घरकी दीवारपर इसे अनेक पुत्रोंसहित युवती स्त्रीके रूपमें भक्तिपूर्वक लिखता है—इसका चित्र अङ्कित करता है, उसके घरमें सदा वृद्धि होती है; अन्यथा उसे हानि उठानी पड़ती है । मगधराज बृहद्रथके घरमें इसकी भलीभाँति पूजा होती थी; अतः उसने प्रसन्न होकर दो टुकड़ोंमें उत्पन्न हुए शिशु जरासंधको जोड़कर बृहद्रथको सुरक्षित रूपसे दे दिया था (सभा० १८ । १–७) । इसका राजा बृहद्रथको अपना परिचय देना (सभा० १८ । १–८) । इसकी मृत्युके कारणका श्रीकृष्णद्वारा अर्जुनके प्रति कथन (द्रोण० १८१ । १२–१४) । (२) 'जरा' नामक एक व्याध, जिसने मृगके भ्रमसे

सोते हुए श्रीकृष्णके एक पैरमें बाण मारा था (मौसल० ४ । २२-२३) ।

जरायु–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १९) ।

जरासंध–(१) (नामान्तर शत्रुसह)—धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १००) । 'शत्रुसह' नामसे इसका भीमसेनद्वारा वध (द्रोण० १३७ । ३०) । (२) विप्रचित्ति नामक दानवके अंशसे उत्पन्न मगधराज बृहद्रथका पुत्र (सभा० १७ । १२) । श्रीकृष्ण-द्वारा इसकी उत्पत्तिका वर्णन (सभा० १७ । १२–५१) । चण्डकौशिक मुनिके द्वारा कृपापूर्वक दिये हुए फलके माताओंद्वारा भक्षण करनेपर उनके गर्भसे इसका जन्म (सभा० १७ । २९) । इसका जरासंध नाम होनेका कारण (सभा० १८ । ११) । चण्डकौशिक मुनिद्वारा इसके भविष्यका कथन (सभा० १९ । ४–१५) । द्रौपदीके स्वयंवरमें इसका आगमन (आदि० १८५ । २३) । स्वयंवरमें धनुष उठाते समय इसका घुटनोंके बल गिरना और लज्जित होकर स्वदेशको लौट जाना (आदि० १८५ । २७) । भगवान् श्रीकृष्णका इसके पराक्रमका युधिष्ठिरके प्रति वर्णन (सभा० १४ । ६२–७०) । श्रीकृष्णके साथ इसके वैरका कारण (सभा० १९ । २२) । श्रीकृष्णको मारनेके लिये इस-का मगधसे मथुराको गदाका प्रक्षेप (सभा० १९ । २३) । इसका श्रीकृष्णके साथ संवाद (सभा० २१ । ४२–४७) । इसके द्वारा शिवजीकी प्रसन्नताके हेतु नरबलिके लिये नरेशोंका निग्रह (सभा० २२ । ८) । भीमसेनके साथ इसका युद्ध (सभा० २३ । १० से सभा० २४ । ६ तक) । भीमसेनद्वारा इसकी मृत्यु (सभा० २४ । ७) । अर्जुनके प्रति श्रीकृष्णका इसके वधका कारण बताना (द्रोण० १८१ । ८–१६) । कर्णद्वारा पराजित होकर उसे मालिनी नगरी देकर उसके साथ इसके संधि करनेकी चर्चा (शान्ति० ५ । ६) ।

महाभारतमें आये हुए जरासंधके नाम–बार्हद्रथ, मागध, मगधाधिप, मगधाधिपति, मगधेश्वर आदि । (३) मगधदेशका एक दूसरा क्षत्रिय, जिसका पुत्र जयत्सेन कौरवपक्षका योद्धा था और अभिमन्युद्वारा मारा गया था (कर्ण० ५ । ३०) ।

जरासंधवधपर्व–सभापर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय २० से २४ तक) ।

जरिता–मन्दपाल ऋषिकी भार्या पक्षिणी (आदि० २२८ । १६) । मन्दपालके द्वारा इसके गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्र—जरितारि, सारिसृक्क, स्तम्बमित्र और द्रोण (आदि० २२९ । ९) । खाण्डववनदाहके समय पुत्रोंके लिये इसकी चिन्ता और पुत्रोंद्वारा इसे आत्मरक्षाके हेतु अन्यत्र चले जानेका आदेश (आदि० २२९ । १२) । इसका अपने बच्चोंके साथ संवाद (आदि० २३० अध्याय) । अग्निदेवकी कृपासे इसके बच्चोंकी रक्षा (आदि० २३१ अध्याय) ।

जरितारि–पक्षिरूपधारी मन्दपाल ऋषिके द्वारा जरिताके गर्भसे उत्पन्न एक पक्षी मुनि । इनके द्वारा अग्निकी स्तुति । खाण्डववनमें अग्निद्वारा इनको अभयदान (आदि० २३१ अध्याय) ।

जर्जरानना–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १९) ।

जर्तिक–बाहीकोंकी एक जाति, जिसका चरित्र अत्यन्त निन्दित है (कर्ण० ४४ । १०) ।

जल–जल-तत्त्वके अभिमानी देवता, जो ब्रह्माजीकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ११ । २०) ।

जलद–शाकद्वीपका एक पर्वत, जिसके निकट कुमुदोत्तर वर्ष है (भीष्म० ११ । २५) ।

जलधार–शाकद्वीपका एक पर्वत (भीष्म० ११ । १६) ।

जलन्धम–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५७) ।

जलप्रदानिकपर्व–स्त्रीपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय १ से १५ तक) ।

जलसंधि–(१) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । ९४) । भीमसेनद्वारा इसका वध (भीष्म० ६४ । ३३) । (२) कौरव-पक्षका एक महारथी योद्धा (उद्योग० ६६ । ७) । यह द्रौपदीके स्वयंवरमें भी गया था (आदि० १८५ । १२) । सात्यकिद्वारा इसका वध (द्रोण० ११५ । ५२-५३) ।

जला–यमुनाकी पार्श्ववर्तिनी एक नदी, जहाँ उशीनरने यज्ञ करके इन्द्रसे भी ऊँचा स्थान प्राप्त किया था (वन० १३० । २१) ।

जलेयु–पूरु-पुत्र रौद्राश्वद्वारा मिश्रकेशी अप्सरासे उत्पन्न (आदि० ९४ । १०) ।

जलेला–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १६) ।

जलेश्वरी–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १३) ।

जल्प–एक प्रकारका वाद, जिसमें वादी छल, जाति और निग्रह-स्थानको लेकर अपने पक्षका मण्डन और विपक्षीके पक्षका खण्डन करता है । इसमें वादीका उद्देश्य तत्त्व-निर्णय नहीं होता; किंतु स्वपक्ष-स्थापन और परपक्ष-खण्डनमात्र होता

है। वादके समान इसमें भी प्रतिज्ञा,हेतु आदि पाँच अवयव होते हैं (सभा० ३६ । ३)।

जवन–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७५)।

जह्नु–महाराज अजमीढ़के द्वारा केशिनीके गर्भसे उत्पन्न एक राजा, उनके वंशज कुशिक नामसे प्रसिद्ध हुए (आदि० ९४ । ३२-३३)। इनकी वंशपरम्पराका वर्णन (शान्ति० ४९ । ३—६)। गङ्गाजी इनकी पुत्री-भावको प्राप्त हुईं (अनु० ४ । ३)।

जागुड़–एक देश, भारतका एक जनपद, जहाँके राजा युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें आये थे (वन० ५१ । २५)।

जाङ्गल–एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५६)।

जाजलि–एक प्राचीन ऋषि, जिन्होंने घोर तपस्या की थी (शान्ति० २६१ । ३३—३७)। इनके सिरपर पक्षियोंका अंडा देना (शान्ति० २६१ । २३-२४)। मनमें सिद्ध होनेका अहङ्कार आनेपर आकाशवाणीद्वारा इन्हें तुलाधारके पास जानेका आदेश (शान्ति० २६१ । ४२-४३)। इनका तुलाधारके पास जाना और धर्मोपदेश सुनना (शान्ति० अध्याय २६२ से २६३ तक)। इन्हें पक्षियोंका उपदेश (शान्ति० २६४ । ६—१९)। इनका तुलाधारके साथ परमधामगमन (शान्ति० २६४ । २०-२१)।

जाठर–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६२)।

जातिस्मर–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करके मनुष्यके शरीर एवं मनकी शुद्धि हो जाती है (वन० ८४ । १२८)।

जातिस्मर कीट–एक कीड़ा, जिसे शुभ कर्मके प्रभावसे अपने पूर्वजन्मोंकी बातोंका स्मरण बना रहा। व्यासजीकी कृपासे उसकी क्रमशः उन्नति और उद्धार (अनु० ११७ अध्यायसे ११९ अध्यायतक)।

जातिस्मरह्रद–एक तीर्थ, जिसमें स्नान करनेवाला मनुष्य पूर्वजन्मकी बातोंको स्मरण करनेकी शक्ति पा लेता है (वन० ८५ । ३)।

जातूकर्ण–एक जितेन्द्रिय मुनि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजते थे (सभा० ४ । १४)।

जानकि–एक क्षत्रिय राजा, जो चन्द्रविनाशन असुरके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ३९)। पाण्डवोंकी ओरसे इसे रण-निमन्त्रण भेजा गया था (उद्योग० ४ । २०)।

जानपदी–एक अप्सरा, जो इन्द्रकी आज्ञासे शरद्वान्‌की तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये आयी थी (आदि० १२९ । ६)। इसके दर्शनसे स्खलित हुए शरद्वान्‌के वीर्यसे कृप एवं कृपीका जन्म (आदि० १२९ । ११—२०)।

जानुजङ्घ–सायं-प्रातः स्मरण करने योग्य एक पुण्यात्मा नरेश (अनु० १६५ । ५९)।

जापक–एक गायत्री-जपपरायण ब्राह्मण। जापकमें दोष आनेके कारण उसे नरककी प्राप्ति (शान्ति० १९७ अध्याय)। परमधामके अधिकारी जापकके लिये देवलोक भी नरकतुल्य है (शान्ति० १९८ अध्याय)। जापकको सावित्रीका वरदान—उसके पास धर्म, यम और काल आदिका आगमन। राजा इक्ष्वाकु और जापक ब्राह्मणका संवाद। सत्यकी महिमा तथा जापककी परम गतिका वर्णन (शान्ति० १९९ अध्याय)। जापक ब्राह्मण और राजा इक्ष्वाकुके उत्तम गतिका वर्णन तथा जापकको मिलनेवाले फलकी उत्कृष्टता (शान्ति० २०० अध्याय)।

जाबालि–विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५५)।

जाम्बवती–ऋक्षराज जाम्बवान्‌की पुत्री और भगवान् श्रीकृष्णकी पत्नी (सभा० ३८ । दा० पाठ, पृष्ठ ८१५)। श्रीकृष्णसे पुत्र-प्राप्तिके लिये इनकी प्रार्थना (अनु० १४ । ३०–३४)। श्रीकृष्णकी तपस्या-यात्राके लिये इनकी मङ्गल-कामना (अनु० १४ । ३६–४०)। श्रीकृष्णके परमधाम पधारनेपर ये पतिलोककी प्राप्तिके लिये अग्निमें समा गयी थीं (मौसल० ७ । ७३)।

जाम्बवान्–ऋक्षराज, सुग्रीवके मन्त्री (वन० २८० । २३)। ये दस खरब काले रीछोंकी सेना लेकर भगवान् श्रीरामके पास आये थे (वन० २८३ । ८)।

जाम्बूनद–(१) पूरुवंशी महाराज कुरुके पौत्र एवं जनमेजयके पाँचवें पुत्र (आदि० ९४ । ५६)। (२) एक सुवर्णमय पर्वत (मेरु), जहाँसे गङ्गाजीका कल-कल नाद लोमशजीको सुनायी दिया था (वन० १३९ । १६)। (३) उशीरबीज नामक स्थानमें स्थित एक पवित्र सुवर्णमय पर्वत, जहाँ राजा मरुत्तने यज्ञ किया था (उद्योग० १११ । २३)। (४) जम्बूद्वीपकी जम्बूनदीसे उत्पन्न सुवर्ण (भीष्म० ७ । २६)।

जाम्बूनदी–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतीय प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । ३०)।

जायाशब्दकी निरुक्ति–पुरुषका अपना आत्मा ही संतानरूपमें स्त्रीके गर्भसे जन्म लेता है (वन० १२ । ७०)।

जारुधि–एक प्राचीन देश (सभा० ३८ । ३९ के बाद दाक्षि० पाठ)।

जारूथी–एक स्थान या नगर, जहाँ श्रीकृष्णने आहुति, क्राथ, साथियोंसहित शिशुपाल, जरासंध, शैब्य और शतधन्वाको परास्त किया था (वन० १२ । ३०)।

जाह्नवी–गङ्गाजीका एक नाम (जो जह्नुकी पुत्री होनेके कारण प्रसिद्ध हुआ था ।) (आदि० ९९ । ४) ।

जितवती–राजर्षि उशीनरकी सुन्दर रूप और युवावस्थासे सुशोभित पुत्री, जो मनुष्यलोककी सुप्रसिद्ध सुन्दरी थी और द्यो नामक वसुकी पत्नीकी सखी थी (आदि० ९९ । २२–२४) । इसके निमित्त वशिष्ठजीकी नन्दिनी गौका अपहरण करनेके लिये वसुपत्नीकी अपने पतिसे प्रार्थना (आदि० ९९ । २१–२५) । इसके लिये नन्दिनीका अपहरण करनेसे वसुओंको वशिष्ठजीका शाप (आदि० ९९ । ३२) ।

जितात्मा–एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३१) ।

जितारि–पूरुवंशी महाराज कुरुके पौत्र एवं अविक्षित्‌के पुत्र (आदि० ९४ । ५३) ।

जिष्णु–(१) अर्जुनका एक नाम (वन० ४७ । १३) । जिष्णु नामसे अर्जुनके प्रसिद्ध होनेका कारण (विराट० ४४ । २१) । (२) भगवान् श्रीकृष्णका एक नाम । ये सबको जीतनेके कारण जिष्णु कहलाते हैं (उद्योग० ७० । १३) । (३) पाण्डवपक्षका एक चेदिदेशीय योद्धा, कर्णद्वारा इसका वध (कर्ण० ५६ । ४८) ।

जिष्णुकर्मा–पाण्डवपक्षका एक चेदिदेशीय योद्धा (कर्ण० ५६ । ४८) ।

जीमूत–(१) एक मल्ल (पहलवान), जिसका विराटनगरमें भीमसेनके साथ मल्ल-युद्ध हुआ और जो उनके द्वारा मारा गया (विराट० १३ । २४–३६) । (२) एक ब्रह्मर्षि, जिनके सामने हिमालयकी वह स्वर्णनिधि प्रकट हुई थी, जिसे जैमूत कहते हैं (उद्योग० १११ । २३) ।

जीवजीवक–पक्षिविशेष (शान्ति० १३९ । ६) ।

जीवल–अयोध्यानरेश ऋतुपर्णका सारथि, इससे बाहुक नामवाले राजा नलका वार्तालाप (वन० ६७ । ११) ।

जृम्भिका–जँभाई, जिसे देवताओंने वृत्रासुरके मुखसे इन्द्रको निकालनेके लिये पैदा किया था (उद्योग० ९ । ५३) ।

जैगीषव्य–ब्रह्माजीकी सभामें रहकर उनकी उपासना करनेवाले एक महर्षि (सभा० ११ । २४) । आदित्य तीर्थकी महिमाके प्रसंगमें इनके चरित्रका वर्णन (शल्य० ५० अध्याय) । इनका असितदेवल मुनिको समत्वबुद्धिका उपदेश (शान्ति० २२९ । ७—२५) । शिवमहिमाके विषयमें युधिष्ठिरसे इनका अपना अनुभव सुनाना (अनु० १८ । ३७) ।

जैत्र–(१) एक रथविशेष, जिसपर आरूढ़ हो राजा हरिश्चन्द्रने सम्पूर्ण दिशाओंपर विजय पायी थी (सभा० १२ । १२) । (२) धृतराष्ट्रका एक पुत्र, भीमसेनद्वारा इसका वध (शल्य० २६ । १४) । (३) धृष्टद्युम्नका शङ्ख (शल्य० ६१ । ७१ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

जैमिनि–एक ब्रह्मर्षि, जो जनमेजयके सर्पयज्ञमें ब्रह्मा बनाये गये थे (आदि० ५३ । ६) । ये महर्षि व्यासके शिष्य हैं (आदि० ६७ । ८९) । ये युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४ । ११) । शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीको देखनेके लिये ये भी गये थे (शान्ति० ४७ । ६) ।

ज्ञानपावनतीर्थ–एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ जानेसे मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता और मुनिलोकको जाता है (वन० ८४ । ३) ।

ज्येष्ठ–(१) सामवेदके पारंगत एक प्राचीन ऋषि, जिन्हें बर्हिषद नामक ऋषियोंसे सात्वत धर्मका उपदेश प्राप्त हुआ था (शान्ति० ३४८ । ४६) । (२) जेठका महीना (अनु० १०९ । ९) ।

ज्येष्ठपुष्कर–एक तीर्थ, (वन० २०० । ६६; अनु० १३० । ७) ।

ज्येष्ठ साम–एक साम, जिसकी उपासनाका व्रत ज्येष्ठमुनिने लिया था (शान्ति० ३४८ । ४६) ।

ज्येष्ठस्थान–एक तीर्थ, जहाँ महादेवजीका दर्शन-पूजन करनेसे मनुष्य चन्द्रमाके समान प्रकाशित होता है (वन० ८५ । ६२) ।

ज्येष्ठा–एक नक्षत्र, जिसमें ब्राह्मणको सामयिक शाक और मूली दान करनेसे अभीष्ट समृद्धि एवं सद्गतिकी प्राप्ति होती है (अनु० ६४ । २३) । ज्येष्ठानक्षत्रमें इन्द्रियसंयमपूर्वक पिण्डदान करनेवाला मनुष्य समृद्धिशाली होता है तथा प्रभुत्व प्राप्त करता है, चन्द्रव्रतमें ज्येष्ठा नक्षत्रकी चन्द्रमाकी ग्रीवामें स्थिति मानकर उसके द्वारा चन्द्रमाके ग्रीवाभागका चिन्तन करनेका विधान है (अनु० ११० । ७) ।

ज्येष्ठिल–एक तीर्थ, जहाँ जाकर एक रात्रि रहनेसे मानव सहस्र गोदानका फल पाता है (वन० ८४ । १३४) ।

ज्येष्ठिला–एक नदी, जो वरुणकी सभामें उपस्थित होती है (सभा० ९ । २१) ।

ज्योति–(१) 'अहः' नामक वसुके पुत्र (आदि० ६६ । २३) । (२) अग्निद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक । दूसरेका नाम ज्वालाजिह्व था (शल्य० ४५ । ३३) ।

ज्योतिक–कश्यप और कद्रूसे उत्पन्न हुआ एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १३) ।

ज्योतिरथा–एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवासी पीते हैं (भीष्म० ९ । २६) ।

ज्योतिरथ्या–एक नदी, जिसका शोणभद्रसे संगम हुआ है, इस संगममें स्नान करनेसे मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है (वन० ८५ । ८) ।

ज्योतिष्क–(१) एक कश्यपवंशीय नाग (उद्योग० १०३ । १५) । (२) सुमेरु पर्वतका एक शिखर (शान्ति० २८३ । ५) ।

ज्योत्स्नाकाली–सोमकी दूसरी पुत्री, सूर्यकी भार्या, ये रूपमें साक्षात् लक्ष्मीके समान हैं (उद्योग० ९८ । १३) ।

ज्वर–रोगविशेष, भगवान् शङ्करके स्वेदसे इसकी उत्पत्तिका प्रकार (शान्ति० २८३ । ३७—५५) ।

ज्वाला–तक्षक नागकी पुत्री, जो महाराज ऋक्षकी पत्नी और मतिनारकी माता थी (आदि० ९५ । २५) ।

ज्वालाजिह्व–(१) अग्निद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक; दूसरेका नाम ज्योति था (शल्य० ४५ । ३३) । (२) स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ६१) ।

(झ)

झल्लि–एक वृष्णिवंशी यादव, जो द्वारकाके सात मुख्य मन्त्रियोंमेंसे एक है (सभा० १४ । ६० के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

झिल्लिक–एक दक्षिण भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५९) ।

झिल्ली (अथवा झिल्ली पिण्डारक)–(१) एक वृष्णिवंशी योद्धा, जो द्रौपदीके स्वयंवरमें गया था (आदि० १८५ । २०) । ये सुभद्राके लिये दहेज लेकर खाण्डवप्रस्थ आये थे (आदि० २२० । ३२) । धृतराष्ट्रद्वारा इनके पराक्रमका वर्णन (द्रोण० ११ । २८) । (२) (या झिल्लिका) झींगुर नामक एक कीड़ा (वन० ६४ । १) ।

(ट)

टिट्टिभ–एक दैत्य या दानव, जो वरुणकी सभामें उपस्थित होता है (सभा० ९ । १५) ।

(ड)

डम्बर–धाताद्वारा स्कन्दको दिये गये दो पार्षदोंमेंसे एक । दूसरेका नाम आडम्बर था (शल्य० ४५ । ३९) ।

डिंडिक–बिडालोपाख्यानमें आये हुए एक चूहेका नाम (उद्योग० १६० । ३४) ।

डिम्भक–जरासंधका नीतिशास्त्रविशारद मन्त्री । हंसका भ्राता (सभा० १९ । २६) । किसी भी अस्त्र-शस्त्रसे न मरनेका इसे देवताओंद्वारा वरदान (सभा० १४ । ३७) । भगवान् श्रीकृष्णके साथ जरासंधके सत्रहवीं बारके युद्धमें एक हंस नामका राजा बलरामजीके द्वारा मारा गया था । उसके मारे जानेपर जरासंधके सैनिक चिल्ला-चिल्लाकर 'हंस मारा गया' ऐसा कहने लगे । उसे सुनकर इसे अपने भाईकी मृत्युका भ्रम हुआ और वह उसके वियोगमें यमुनाजीमें कूदकर मर गया (सभा० १४ । ४१-४२) ।

डुण्डुभ–एक सर्प, जिसका रुरुके साथ संवाद हुआ था । ये शापग्रस्त सहस्रपाद ऋषि थे (आदि० ९ । २१ से आदि० १० । ७ तक) । ब्राह्मण मित्रके शापसे इनके सर्प होनेकी कथा (आदि० ११ । १–९) । महर्षि रुरुके दर्शनसे इनका सर्पयोनिसे मुक्त होना (आदि० ११ । १२) । इनके द्वारा अहिंसा-धर्मकी श्रेष्ठताका रुरुके प्रति उपदेश (आदि० ११ । १३–१९) ।

(त)

तंसु–पूरुवंशी राजा मतिनारके पुत्र (आदि० ९४ । १४) । इनके पुत्रका नाम ईलिन था (आदि० ९४ । १६) ।

तक्षक–एक श्रेष्ठ नाग, जो कश्यपद्वारा कद्रूके गर्भसे उत्पन्न हुआ (आदि० ३५ । ५) । इसके द्वारा क्षपणकका रूप धारण करके उत्तङ्क मुनिके कुण्डलोंका अपहरण (आदि० ३ । १२७; आश्व० ५८ । २५-२६) । राजा परीक्षित्को डसनेके लिये जाते हुए इसकी मार्गमें काश्यप नामक ब्राह्मणसे भेंट और धन देकर इसका उन्हें लौटा देना (आदि० ४२ । ३६ से ४३ । २०; आदि० ५० । १८–२७) । तपस्वी नागोंद्वारा फल आदि भेजकर उस फलके साथ ही इसका छलपूर्वक परीक्षित्के पास पहुँचना और उन्हें डँस लेना (आदि० ४३ । २२–३६; आदि० ५० । २९) । इसका इन्द्रकी शरणमें जाना और इन्द्रद्वारा इसे आश्वासन प्राप्त होना (आदि० ५३ । १४–१७) । आस्तीककी कृपासे जनमेजयके यज्ञमें इसकी रक्षा (आदि० ५८ । ३–७) । यह इन्द्रका मित्र था और सपरिवार खाण्डववनमें रहता था; अतः इसीके लिये इन्द्र सदा खाण्डववनकी रक्षा करते थे । उनके जल बरसा देनेके कारण अग्नि उस वनको जला नहीं पाती थी (आदि० २२२ । ७) । खाण्डववनदाहके अवसरपर इसका कुरुक्षेत्रमें निवास और अर्जुनद्वारा इसकी पत्नीका वध (आदि० २२६ । ४–८) । यह वरुणकी सभाका सदस्य है (सभा० ९ । ८) । नागों-

द्वारा पृथ्वी-दोहनके समय यह बछड़ा बना था (द्रोण० ६९ । २२)। बलरामजीके शेषरूपसे अपने लोकमें पधारते समय यह प्रभासक्षेत्रके समुद्रमें उनके स्वागतके लिये आया था (मौसल० ४ । १५)।

तक्षशिला—एक नगरी, जिसे जनमेजयने जीता था (और जहाँ सर्पसत्रका अनुष्ठान एवं महाभारत-कथाका श्रवण किया था) (आदि० ३ । २०)। सर्पसत्र और महाभारत-कथाकी समाप्ति होनेपर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे विदा करके जनमेजय तक्षशिलासे हस्तिनापुरको चले आये (स्वर्गा० ५ । ३१–३५)।

तङ्गण—एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६४)।

तडित्प्रभा—स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १७)।

तण्डि—वानप्रस्थ-धर्मका पालन करनेवाले एक ब्रह्मर्षि (शान्ति० २४४ । १७)। इन्होंने ब्रह्माजीके समक्ष शिव-सहस्रनाम सुनाया था (अनु० १४ । १९)। इनके द्वारा शिवजीकी स्तुति (अनु० १६ । १२–६५)।

तनय—एक भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६४)।

तनु—एक प्राचीन महर्षि, जिन्होंने राजा वीरद्युम्नको उनके पुत्रके विषयमें कुछ बताया था (शान्ति० १२७ । १८–२२)। राजा वीरद्युम्नको उपदेश (शान्ति० १२८ । ९–२३)।

तन्तिपाल—विराटनगरमें रहते समय सहदेवका नाम (विराट० ३ । ९)।

तन्तु—विश्वामित्रका एक ब्रह्मवादी पुत्र (अनु० ४ । ५५)।

तन्दुलिकाश्रम—एक प्राचीन तीर्थ, जहाँ जानेसे मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता और ब्रह्मलोकमें जाता है (वन० ८२ । ४३)।

तप—काश्यप, वासिष्ठ, प्राणक, च्यवन तथा त्रिवर्चा—इन पाँच मुनियोंकी तपस्यासे प्रकट हुआ एक तेजस्वी पुत्र, जो पाँच रंगोंसे युक्त होनेके कारण पाञ्चजन्य नामसे विख्यात हुआ । यह पूर्वोक्त पाँचों ऋषियोंके वंशका प्रवर्तक हुआ । ये पाञ्चजन्य नामक अग्नि ही घोर तपस्याके कारण तप कहलाये । फिर इन्होंने बहुत-से पुत्र उत्पन्न किये (वन० २२० अध्याय)।

तपती—भगवान् सूर्यकी कन्या और संवरणकी पत्नी । इनके गर्भसे अजमीढवंशी संवरणके द्वारा कुरुकी उत्पत्ति हुई (आदि० ९४ । ४८)। सूर्यकन्या तपती सावित्री-देवीकी छोटी बहिन थी । तपस्यामें संलग्न रहनेके कारण यह तीनों लोकोंमें तपती नामसे विख्यात हुई (आदि० १७० । ६-७)। इसके अनुपम सौन्दर्यका वर्णन (आदि० १७० । ८–१०)। 'इसका विवाह किसके साथ किया जाय'—पिताकी यह चिन्ता (आदि० १७० । ११)। सूर्यदेवका संवरणके साथ तपतीके विवाहका विचार (आदि० १७० । १५–२०)। संवरणको तपतीका प्रथम दर्शन और इसके अप्रतिम सौन्दर्यसे उनका मोहित होना (आदि० १७० । २३-२४)। राजाका तपतीसे कुछ प्रश्न करना और तपतीका उन्हें उत्तर दिये बिना ही अदृश्य हो जाना (आदि० १७० । ३५–४२)। राजाको मूर्छित पड़ा देख तपतीका पुनः उन्हें दर्शन और आश्वासन देना । राजाकी इससे प्रणययाचना तथा तपतीका अपनेको पिताकी वशवर्तिनी बताकर उन्हींसे अपना वरण करनेका संवरणको परामर्श देना (आदि० १७१ अध्याय)। वशिष्ठजीका संवरणके लिये सूर्यसे तपतीको माँगना । सूर्यका अपनी कन्याको उनके लिये दे देना और तपतीका वशिष्ठजीके साथ संवरणके पास आना (आदि० १७२ । २२–३०)। एक पर्वतशिखरपर संवरणद्वारा तपतीका विधिवत् पाणिग्रहण किया जाना (आदि० १७२ । ३३)। संवरण और तपतीका बारह वर्षोंतक विहार और तपतीके गर्भसे कुरुका जन्म (आदि० १७२ । ३४–५०)।

तपन—एक पाञ्चाल योद्धा, जिसका कर्णद्वारा वध हुआ (कर्ण० ४८ । १५)।

तम—गृत्समदवंशी श्रवाके पुत्र (अनु० ३० । ६३)।

तमसा—एक श्रेष्ठ नदी, जिसका जल भारतवर्षके लोग पीते हैं (भीष्म० ९ । ३१)।

तमोऽन्तकृत्—स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ५८)।

तरन्तुक—कुरुक्षेत्रकी सीमाका निर्धारण करनेवाले तरन्तुक नामक एक यक्ष और उनका स्थान । वहाँ एक रात निवास करनेसे सहस्र गोदानका फल प्राप्त होता है (वन० ८३ । १५-१६; शल्य० ५३ । २४)।

तरल—एक भारतीय जनपद, जिसे कर्णने जीता था (कर्ण० ८ । २०)।

तरुणक—धृतराष्ट्रकुलमें उत्पन्न हुआ एक नाग, जो सर्पसत्रकी अग्निमें जलकर भस्म हो गया था (आदि० ५७ । १९)।

ताडकायन—विश्वामित्रके ब्रह्मवादी पुत्रोंमेंसे एक (अनु० ४ । ५६)।

ताण्ड्य—एक महर्षि, जो इन्द्रकी सभामें विराजते हैं (सभा० ७ । १२)। इनके द्वारा वानप्रस्थ-धर्मका पालन हुआ था; जिससे ये स्वर्गको प्राप्त हुए (शान्ति०

२४४ । १७)। ये उपरिचर वसुके यज्ञमें सदस्य थे (शान्ति० ३३६ । ७) ।

तापत्य–तपती और संवरणसे उत्पन्न हुए राजा कुरुके वंशमें जन्म ग्रहण करनेवाले सभी कौरव 'तापत्य' कहलाते हैं। इसी अभिप्रायसे चित्ररथ गन्धर्वने अर्जुनको तापत्य कहा था (आदि० १६९ । ७९) । अर्जुनके पूछनेपर उसने तापत्य नामके समर्थनमें तपती और संवरणके मिलनेका प्रसंग सुनाया था (आदि० १७० अध्यायसे १७२ अध्यायतक) ।

तापसारण्य–तपस्वी जनोंसे सुशोभित एक तीर्थ या वन (वन० ८७ । २०) ।

ताम्रचूडा–स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १८) ।

ताम्रद्वीप–एक दक्षिण भारतीय जनपद, जिसे सहदेवने जीतकर अपने अधीन किया था (सभा० ३१ । ६८) ।

ताम्रपर्णी–पाण्ड्य देश (दक्षिण भारत) की एक पवित्र नदी, जहाँ मोक्ष पानेके उद्देश्यसे देवताओंने आश्रममें रहकर बड़ी भारी तपस्या की थी (वन० ८८ । १४) ।

ताम्रलिप्त–एक प्राचीन राजा, जिसे सहदेवने पूर्व-दिग्विजयके समय परास्त किया था (सभा० ३० । २४) ।

ताम्रलिप्तक–एक पूर्वोत्तर भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५७) ।

ताम्रवती–अग्नियोंकी उत्पत्तिकी स्थानभूता एक नदी (वन० २२२ । २३) ।

ताम्रा–(१) काकी, श्येनी, भासी, धृतराष्ट्री तथा शुकी—इन पाँच कन्याओंकी जननी ताम्रादेवी (आदि० ६६ । ५६) । (२) एक श्रेष्ठ नदी, जिसका जल भारतके लोग पीते हैं (भीष्म० ९।२८) ।

ताम्रारुणतीर्थ–एक तीर्थ, यहाँकी यात्रा करनेसे मनुष्य अश्वमेधयज्ञका फल पाता और ब्रह्मलोकमें जाता है (वन० ८४ । १५४) ।

ताम्रोष्ठ–कुबेरकी सभामें रहकर उनकी सेवामें रहनेवाला एक यक्ष (सभा० १० । १६) ।

तार–श्रीरामकी सेनाका एक वानर योद्धा, जिसने निखर्वट नामक राक्षसके साथ युद्ध किया (वन० २८५ । ९) ।

तारकासुर–एक राक्षस, जो ताराक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्मालीका पिता था (कर्ण० ३३ । ५) । स्कन्द-द्वारा इसका वध (शल्य० ४६ । ७३) । इसके महान् पराक्रमका वर्णन (अनु० ८४ । ७९–८१) ।

तारा–(१) वानरराज बालीकी भार्या (वन० २८० । १८–२०) । सुग्रीवसे युद्धके लिये उद्यत हुए पतिको इसका समझाना (वन० २८० । २१–२४) । सुग्रीवको पति बनाना (वन० २८० । ३९) । (२) बृहस्पतिकी पत्नी (उद्योग० ११७ । १३) ।

ताराक्ष (या तारकाक्ष)—तारका एक पुत्र, जो त्रिपुरोंमें सुवर्णमय पुरका अधिपति था (कर्ण० ३३।५; कर्ण० १५ । २१) । भगवान् शिवद्वारा इसका वध (कर्ण० ३४ । ११४) ।

तार्क्ष्य–(१) कश्यपपत्नी विनताका एक पुत्र (आदि० ६५ । ४०) । (२) एक ऋषि, जो इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । १८) । ये तार्क्ष्य अरिष्टनेमि कहे गये हैं। उन्होंने क्षत्रियोंको यह बताया था कि हमें मृत्युका भय नहीं होता (वन० १८४ । ८–२१) । इनका सरस्वती देवीके साथ धर्मविषयक संवाद हुआ था (वन० १८६ अध्याय) । (३) तार्क्ष्यदेशीय एक क्षत्रिय राजकुमार, जो राजसूय-के समय युधिष्ठिरको भेंटके तौरपर बहुत धन अर्पित कर रहे थे (सभा० ५२ । १५) । (४) भगवान् शिव का एक नाम (अनु० १७ । ९८) ।

तालकेतु–एक असुर, जो भगवान् श्रीकृष्णद्वारा महेन्द्र-पर्वतके शिखरपर इरावतीके किनारे पकड़ा गया और अक्षप्रपतनके समीपवर्ती हंसनेमिपथ नामक स्थानमें मारा गया (सभा० ३८ । दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८२४; वन० १२ । ३४) ।

तालचर–भारतवर्षका एक जनपद (उद्योग० १४० । २६) ।

तालजङ्घ–(१) एक प्रसिद्ध क्षत्रिय-कुल, जिसे राजा सगरने जीता था (वन० १०६ । ८) । यह वंश शर्यातिवंशी वत्सकुमार सुप्रसिद्ध राजा तालजङ्घसे प्रचलित हुआ था (अनु० ३० । ७) । एक महान् असुर, जो ब्राह्मणोंका सम्मान न करनेके कारण ब्रह्मदण्डसे ही मारा गया (वन० ३०३ । १७; अनु० ३० । ७) ।

तालवन–(१) एक दक्षिण भारतीय जनपद, जिसे सहदेवने जीतकर उसे राजा युधिष्ठिरके लिये कर देनेको विवश कर दिया (सभा० ३१ । ७१) । (२) द्वारकाके समीपवर्ती लतावेष्ट पर्वतके चारों ओर सुशोभित होनेवाले तीन वनोंमेंसे एक (सभा० ३८ । दाक्षिणात्य पाठ, पृष्ठ ८१३) ।

तालाकट–एक दक्षिण भारतीय जनपद, जिसे सहदेवने जीता था (सभा० ३१ । ६५) ।

तित्तिर–(१) एक प्रकारका पक्षी; जो मरे हुए त्रिशिराके

भयानक मुखसे उत्पन्न हुए थे (उद्योग० ९ । ४१) । (२) एक भारतीय जनपद (भीष्म० ५० । ५१) ।

तित्तिरि-(१) कश्यप और कद्रूसे उत्पन्न एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । १५) । (२) युधिष्ठिरकी सभामें विराजनेवाले एक ऋषि (सभा० ४ । १२) । (३) अश्वोंकी एक जाति, जो तीतरोंकी भाँति चितकबरी होती है (यह अश्व अर्जुनने दिग्विजयके समय गन्धर्व-नगरसे प्राप्त किया था ।) (सभा० २८ । ६) ।

तिमि-एक जलजन्तु, जो समुद्रमें ही होता है (सभा० ३८ । २९ के बाद दाक्षिणात्य पाठ) ।

तिमिङ्गिल-एक राजा, जिन्हें दक्षिण-दिग्विजयके समय सहदेवने अपने अधीन किया था (सभा० ३१ । ६९) ।

तिलभार-एक पूर्वोत्तरवर्ती भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५३) ।

तिलोत्तमा-एक अप्सरा, जो कश्यपकी 'प्राधा' नामवाली पत्नीसे उत्पन्न हुई थी (आदि० ६५ । ४९) । अर्जुनके जन्म-समयमें पदार्पण करके इसने वहाँ नृत्य किया था (आदि० १२२ । ६२) । ब्रह्माके आदेशसे विश्वकर्माद्वारा तीनों लोकोंके दर्शनीय पदार्थोंके सारतत्त्व तथा रत्नराशिसे इसका निर्माण (आदि० २१० । ११—१४) । इसका तिलोत्तमा नाम होनेका कारण (आदि० २१० । १८) । इसके रूपसे मोहित होकर भगवान् शिवका चतुर्मुख और इन्द्रका सहस्रनेत्र होना (आदि० २१० । २८) । इसको अपनी पत्नी बनानेके लिये ही सुन्द और उपसुन्दका परस्पर गदायुद्ध करके एक-दूसरेके हाथसे मारा जाना (आदि० २११ । १९) । इसको ब्रह्माद्वारा त्रिभुवनमें अव्याहत गतिका वरदान (आदि० २११ । २३) । इसके नामकी निरुक्ति (अनु० १४१ । १) ।

तीरग्रह-एक पूर्वोत्तरवर्ती भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ५२) ।

तीर्थकोटि-एक तीर्थ, जहाँ स्नान करनेवाले यात्रीको पुण्डरीक-यज्ञका फल मिलता है और वह विष्णुलोकको जाता है (वन० ८४ । १२१) ।

तीर्थनेमि-स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । ७) ।

तीर्थयात्रापर्व-वनपर्वका एक अवान्तर पर्व (अध्याय ८० से १५६ तक) ।

तुङ्गकारण्य-एक तीर्थ, जहाँ सारस्वत मुनिने दूसरे ऋषियोंको वेदाध्ययन कराया था (वन० ८५ । ४६) ।

तुङ्गवेणा-एक श्रेष्ठ नदी, जिसका जल भारतके लोग पीते हैं (भीष्म० ९ । २७) ।

तुण्ड-(१) एक राक्षस, जिसने वानर-सेनापति नलके साथ युद्ध किया था (वन० २८५ । ९) । (२) एक राजा, जिन्हें पाण्डवोंकी ओरसे रण-निमन्त्रण भेजा गया था (उद्योग० ४ । २१) ।

तुण्डिकेर-एक भारतीय जनपद (द्रोण० १७ । २०) ।

तुम्बुरु-(१) एक देवगन्धर्व, जो कश्यप और प्राधाके पुत्र थे (आदि० ६५ । ५१) । अर्जुनके जन्मोत्सवपर इनका संगीत हुआ था (आदि० १२२ । ५४) । ये इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । १४) । कुबेरकी सभाके भी प्रधान गन्धर्व हैं (सभा० १० । २६) । इन्होंने युधिष्ठिरको सौ घोड़े भेंट किये थे (सभा० ५२ । २४) । इन्द्रलोकमें अर्जुनके स्वागतके समय ये भी थे (वन० ४३ । १४) । पर्वसंधिके समय गन्धमादन पर्वतपर कुबेरकी सेवामें उपस्थित हुए तुम्बुरुके सामगानका स्वर स्पष्ट सुनायी पड़ता है (वन० १५९ । २९) । गोग्रहणके अवसरपर कौरवोंके साथ अर्जुनका युद्ध देखनेके लिये ये स्वयं भी आये थे (विराट० ५६ । १२) । युधिष्ठिरके अश्वमेधमें भी ये पधारे थे (आश्व० ८८ । ३९) । (२) एक प्राचीन ऋषि, जो शरशय्यापर पड़े हुए भीष्मजीको देखने गये थे (शान्ति० ४७ । ८) ।

तुर्वसु-ययातिके द्वारा देवयानीके गर्भसे उत्पन्न (आदि० ७५ । ३५; आदि० ८३ । ९) । ययातिकी तुर्वसुसे युवावस्थाकी याचना (आदि० ८४ । १०-११) । तुर्वसुका उन्हें अपनी युवावस्था देनेसे इनकार करना (आदि० ७५ । ४३; आदि० ८४ । १२) । ययातिका तुर्वसुको शाप—'तेरी संतति नष्ट हो जायगी; जिनके आचार और धर्म वर्णसंकरोंके समान हैं, जो प्रतिलोमसंकर जातियोंमें गिने जाते हैं तथा जो कच्चा मांस खानेवाले चाण्डाल आदिकी श्रेणीमें हैं, ऐसे लोगोंका तू राजा होगा, पशुवत् आचरण करनेवाले पापात्मा म्लेच्छोंमें तेरा वास होगा' (आदि० ८४ । १३-१५) ।

तुलाधार-एक काशीनिवासी धर्मात्मा वैश्य (शान्ति० २६१ । ४२-४३) । इनका अपने पास आये हुए जाजलि मुनिका सत्कार करके उनके आगमनका कारण स्वयं ही बताना (शान्ति० २६१ । ४६-५१) । जाजलिको धर्मका उपदेश देना (शान्ति० २६२ । ५—१५) । इनके द्वारा जाजलिको आत्मयज्ञविषयक धर्मका उपदेश (शान्ति० २६३ । ४—४३) । इन्हें जाजलिके साथ स्वर्गकी प्राप्ति (शान्ति० २६४ । २०-२१) ।

तुषार-(१) एक उदीच्य जनपद (कुछ लोगोंके मतमें आधुनिक तुखारिस्तान—आक्सस नदीके आस-पासका प्रदेश ही तुषार है) । यहाँके नरेश युधिष्ठिरके राजसूय

यज्ञमें बुलाये गये थे और आकर रसोई परोसनेका कार्य करते थे (वन० ५१ । २५-२६) । गन्धमादनसे द्वैतवनकी ओर लौटे हुए पाण्डव तुषार देशको पार करके राजा सुबाहुके नगरमें पहुँचे थे (वन० १७७ । १२) । (२) तुषार जनपदके निवासी, जो भीष्मनिर्मित क्रौञ्चव्यूहके दाहिने पक्षका आश्रय लेकर स्थित हुए थे (भीष्म० ७५ । २१) । तुषारवासी म्लेच्छ मान्धाताके राज्यमें निवास करते थे (शान्ति० ६५ । १३) ।

तुहर-स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७१) ।

तुहुण्ड-एक दानव, जो कश्यपके द्वारा दनुके गर्भसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६५ । २५) । यही भूतलपर सेनाबिन्दु नामक राजा हुआ था (आदि० ६७ । १९-२०) ।

तृणक-एक राजर्षि, जो यमसभामें उपस्थित हो वहाँ सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । १७) ।

तृणप-एक देवगन्धर्व, जो अर्जुनके जन्म-समयमें वहाँ पधारे थे (आदि० १२२ । ५६) ।

तृणबिन्दु-(१) काम्यकवनका एक सरोवर, जिसके पास पाण्डवलोग द्वैतवनसे गये थे (वन० २५८ । १३) । (२) काम्यकवनमें रहनेवाले एक ऋषि, जिनकी आज्ञासे पाण्डवोंने द्रौपदीको आश्रममें छोड़कर शिकारके लिये प्रस्थान किया था (वन० २६४ । ५) । ये शर-शय्यापर पड़े हुए भीष्मको देखनेके लिये कुरुक्षेत्रमें गये थे (शान्ति० ४७ । ९) ।

तृणसोमाङ्गिरा-दक्षिण दिशाका आश्रय लेकर रहनेवाले एक ऋषि (अनु० १५० । ३४) ।

तृतीया-एक नदी, जो वरुणसभामें उपस्थित रहकर वरुण-देवकी उपासना करती है (सभा० ९ । २१) ।

तेजस्वी-पाँच इन्द्रोंमेंसे एक नाम (आदि०१९६।२८-२९)।

तेजेयु-पूरुपुत्र रौद्राश्वके द्वारा मिश्रकेशी अप्सराके गर्भसे उत्पन्न (आदि० ९४ । ११) ।

तैजस-कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक वरुण देवतासम्बन्धी तीर्थ, जहाँ स्कन्दका देवसेनापतिके पदपर अभिषेक हुआ था (वन० ८३ । १६४) ।

तैत्तिरि-राजा उपरिचर वसुके यज्ञमें सम्मिलित हुए सोलह सदस्योंमेंसे एक (शान्ति० ३३६ । ९) ।

तोमर-एक पूर्वोत्तरवर्ती भारतीय जनपद (भीष्म० ९ । ६९) ।

तोरणस्फाटिक-धृतराष्ट्रके बनवाये हुए सभाभवनका नाम (द्यूतक्रीडाके समय धृतराष्ट्रकी आज्ञासे इस सभाका निर्माण हुआ था । इसमें सुवर्ण तथा वैदूर्यसे जटित एक हजार खम्भे और सौ दरवाजे थे । इसकी लंबाई तथा चौड़ाई दो-दो मीलकी थी ।) (सभा० ५६ । १८) ।

त्रसदस्यु-एक राजर्षि, जो यमसभामें रहकर सूर्यपुत्र यमकी उपासना करते हैं (सभा० ८ । ९) । ये भूपालोंमें श्रेष्ठ, इक्ष्वाकुवंशीय और महामनस्वी थे, उनके पिताका नाम पुरुकुत्स था, इनके यहाँ अगस्त्य मुनि, श्रुतर्वा और ब्रध्नश्वका आगमन और इनका राज्यकी सीमापर जाकर उन सबका विधिवत् आदर-सत्कार करना और उनके पधारनेका कारण पूछना (वन० ९८ । १२-१४) । इनका अगस्त्यजीके धन माँगनेपर उनके सामने अपने आय-व्ययका लेखा रखना (वन०९८।१६)। ये प्रातःसायं स्मरण करनेयोग्य नरेशोंमेंसे एक हैं (अनु० १६५ । ५५) ।

त्रिककुद्धाम-भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । २०) ।

त्रिकूट-लङ्काके पासका एक पर्वत (वन० २७७ । ५४) ।

त्रिगङ्ग-एक तीर्थ, जहाँ देवताओं और पितरोंका तर्पण करनेसे मनुष्य पुण्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है (वन० ८४ । २९) ।

त्रिगर्त-(१) एक जनपद (भीष्म० ५१ । ७) । वहाँके निवासी और राजा । एकचक्रानगरीकी ओर जाते हुए पाण्डवलोग इस देशसे होकर निकले थे (आदि० १५५ । २) । अर्जुनने उत्तर-दिग्विजयके समय इस देशको जीता था । यहाँके नरेश कुन्तीनन्दन अर्जुनकी शरणमें आये थे (सभा० २७ । १८) । नकुलने भी अपनी दिग्विजययात्रामें इस देशको जीता था (सभा० ३२ । ७) । ये लोग युधिष्ठिरके लिये भेंट लाये थे (सभा० ५२ । १४) । एक त्रिगर्तदेशीय वीरने राजा युधिष्ठिरके रथके घोड़ोंको मार डाला, फिर युधिष्ठिर-द्वारा वह स्वयं भी मारा गया (वन० २७१ । १२-१४) । हाथोसहित त्रिगर्तराज सुरथ नकुलद्वारा मारा गया (वन० २७१ । १८-२२) । अर्जुनने त्रिगर्तोंका संहार किया (वन० २७१ । २८) । त्रिगर्त-देशीय योद्धाओं तथा त्रिगर्तराज सुशर्माद्वारा विराटके राज्यपर आक्रमण और उनकी गौओंका अपहरण (विराट० ३० अध्याय) । त्रिगर्तोंके साथ मत्स्यदेशीय वीरोंका युद्ध (विराट० ३२ अध्याय) । त्रिगर्तराज सुशर्माका विराटको पकड़कर ले जाना, भीमद्वारा सुशर्माका निग्रह और युधिष्ठिरका अनुग्रह करके उसे छोड़ देना (विराट० ३३ अध्याय) । पाँच त्रिगर्तोंके साथ युद्ध करनेका काम पाँचों द्रौपदी-पुत्रोंको सौंपा गया (उद्योग० १६४ ।

८)। त्रिगर्तराज पाँच भाई थे और पाँचों उदार रथी थे, इनमें प्रधान सत्यरथ था (उद्योग० १६६ । ९–११)। ये भीष्मनिर्मित गरुड़व्यूहमें मस्तकस्थानपर खड़े किये गये थे (भीष्म० ५६ अध्याय)। अर्जुन और अभिमन्युपर त्रिगर्तोंने धावा किया था (भीष्म० ६१ अध्याय)। नकुलके साथ इनका युद्ध (भीष्म० ७२ अध्याय)। अर्जुनने इनपर वायव्यास्त्र छोड़ा था (भीष्म० १०२ अध्याय)। पहले कर्णने इनको परास्त किया था (द्रोण० ४ अध्याय; कर्ण० ८ अध्याय)। श्रीकृष्णने भी इनपर विजय पायी थी (द्रोण० ११ अध्याय)। सत्यरथ आदि पाँचों भाइयोंने यह प्रतिज्ञा की थी कि 'या तो अर्जुनको मारेंगे या मर जायँगे' इसीलिये ये संशप्तक कहलाये (द्रोण० १७ अध्याय; द्रोण० १९ अध्याय)। परशुरामजीने भी कभी त्रिगर्तोंका संहार किया था (द्रोण० ७० अध्याय)। सात्यकिके साथ त्रिगर्तोंका युद्ध (द्रोण० १४१ अध्याय)। युधिष्ठिरके द्वारा त्रिगर्तोंका वध (द्रोण० १५७ अध्याय)। त्रिगर्तोंने अर्जुन और श्रीकृष्णपर धावा किया (शल्य० २७ अध्याय)। अश्वमेधयज्ञके अश्वकी रक्षाके लिये गये हुए अर्जुनद्वारा इन सबकी पराजय (आश्व० ७४ अध्याय)। (२) त्रिगर्त-नामधारी एक राजा, जो यमकी सभामें विराजते हैं (सभा० ८ । २०)।

त्रिजटा–एक राक्षसी, जो अशोकवाटिकामें सीताजीको आश्वासन दिया करती थी । इसने अविन्ध्यका संदेश और अपना स्वप्न सीताजीको सुनाया था (वन० २८० । ५४–७२)। श्रीरामका त्रिजटाको धन आदि देकर संतुष्ट करना (वन० २९१ । ४१)।

त्रित–धर्मपरायण प्रजापति गौतमके तीन पुत्रोंमेंसे एक, उनके दूसरे दो भाई एकत और द्वित थे। तीनों ही मुनि और ब्रह्मवादी थे। इन सबने तपस्याद्वारा ब्रह्मलोकपर विजय पायी थी (शल्य० ३६ । ७–९)। त्रित मुनिके कूपमें गिरने, वहाँ यज्ञ करने और अपने भाइयोंको शाप देनेकी कथा (शल्य० ३६ अध्याय)। ये उपरिचरवसुके यज्ञमें सदस्य थे (शान्ति० ३३६ । ६)। भीष्मजीके महाप्रयाणके समय उन्हें देखने आये हुए महर्षियोंमें ये भी थे (अनु० २६ । ६)। वरुणके सात ऋत्विजोंमेंसे एक ये भी हैं। ये पश्चिमदिशामें निवास करनेवाले ऋषि हैं (अनु० १५० । ३६-३७)।

त्रिदिवा–(१) एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवर्षकी प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । १७)। (२) एक प्रमुख नदी, जिसका जल भारतवर्षकी प्रजा पीती है (भीष्म० ९ । १८)।

त्रिपाद–एक राक्षस, जिसका स्कन्दद्वारा वध हुआ (शल्य० ४६ । ७५)।

त्रिपुर–मयासुरद्वारा निर्मित असुरोंके तीन पुर या नगर, जो सोने, चाँदी और लोहेके बने हुए थे; इनके स्वामी क्रमशः कमलाक्ष, ताराक्ष और विद्युन्माली थे । भगवान् शंकरने इन तीनों पुरों और वहाँ रहनेवाले असुरोंका नाश किया था (कर्ण० ३३ अध्यायसे ३४ अध्यायतक)।

त्रिपुरा–एक भारतीय जनपद, जिसे कर्णने जीता था (वन० २५४ अध्याय)। कोसलनरेश बृहद्बल त्रिपुराके सैनिकोंके साथ थे (भीष्म० ८७ । ९)।

त्रिपुरी–एक दक्षिण भारतीय जनपद, जिसके राजाको सहदेवने दिग्विजयके समय जीता था (सभा० ३१ । ६०)।

त्रिराव–गरुड़के प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । ११)।

त्रिवर्चा (त्रिवर्चक)–अङ्गिराके पुत्र एक ऋषि, जिन्होंने अन्य चार ऋषियोंके साथ तप करके पाञ्चजन्य नामक अग्निस्वरूप पुत्रको जन्म दिया था (वन० २२० । १–५)।

त्रिविष्टप–कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक तीर्थ, जहाँ पापनाशिनी वैतरणीमें स्नान करके भगवान् शिवकी पूजा करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो परम गतिको प्राप्त होता है (वन० ८३ । ८४-८५)।

त्रिशङ्कु–एक राजा, जिन्हें गुरुके शापसे हीनावस्थामें पड़े होनेपर भी महातपस्वी विश्वामित्रने स्वर्गलोकमें पहुँचाया था (आदि० ७१ । ३४ और उसके बाद दो श्लोक दा० पाठ)। ये इक्ष्वाकु-कुलमें उत्पन्न हुए थे, अयोध्याके राजा थे और विश्वामित्रसे मेल-जोल रखते थे। इनकी पत्नी केकय-राजकुमारी सत्यवती थी, इन्हींके पुत्र सत्यप्रतिज्ञ हरिश्चन्द्र थे (सभा० १२ । १० के बाद दा० पाठ)।

त्रिशिरा–ये त्वष्टाके पुत्र थे। इनका दूसरा नाम विश्वरूप था (उद्योग० ९ । ३)। इनका अप्सराओंके लुभानेपर भी शान्त रहना (उद्योग० ९ । १५-१६)। इन्द्रके वज्र-प्रहारसे इनकी मृत्यु (उद्योग० ९ । २४)।

त्रिशूलखात–एक तीर्थ, जहाँ स्नान करके देवता और पितरोंकी पूजा करनेसे मनुष्य देह-त्यागके पश्चात् गणपतिपद प्राप्त कर लेता है (वन० ८४ । ११-१२)।

त्रिषवण–एक दिव्य महर्षि, जिन्होंने शान्तिदूत बनकर हस्तिनापुर जाते हुए श्रीकृष्णसे मार्गमें भेंट की थी (उद्योग० ८३ । ६४ के बाद दा० पाठ)।

त्रिस्थान–एक तीर्थ, जहाँ एक मासतक निराहार रहकर स्नान करनेसे देवताओंका दर्शन होता है (अनु० २५ । १५)।

त्रिस्रोतसी-एक नदी, जो वरुण-सभामें उपस्थित रहकर वरुणदेवकी उपासना करती है (सभा० ९ । २३)।

त्रुटि-स्कन्दकी अनुचरी मातृका (शल्य० ४६ । १७)।

त्रेता-कृतयुग या सत्ययुगके बाद द्वितीय युग । हनुमान्जी द्वारा इसके धर्मका वर्णन-त्रेतामें यज्ञकर्मका आरम्भ होता है, धर्मके एक पादका ह्रास हो जाता है और भगवान् विष्णुका वर्ण लाल हो जाता है (वन० १४९ । २३-२६)। मार्कण्डेयजीद्वारा त्रेताका वर्णन। त्रेतायुग तीन हजार दिव्य वर्षोंका है, इसकी संध्या और संध्यांशके भी उतने ही सौ दिव्य वर्ष होते हैं। इस प्रकार यह युग छत्तीस सौ दिव्य वर्षोंका होता है (वन० १८८ । २३)।

त्रैवलि-एक ऋषि, जो युधिष्ठिरकी सभामें विराजमान होते थे (सभा० ४ । १३)।

त्र्यक्ष-एक जनपद, जहाँके राजा युधिष्ठिरके पास भेंट लेकर आये थे । द्वारपर रोक दिये जानेके कारण खड़े थे (सभा० ५१ । १७)।

त्र्यम्बक-ग्यारह रुद्रोंमेंसे एक (शान्ति० २०८ । १९)।

त्वष्टा-बारह आदित्योंमेंसे एक । कश्यपके द्वारा अदितिके गर्भसे उत्पन्न (आदि० ६५ । १६)। खाण्डववनके दाहके समय इन्द्रकी ओरसे युद्धके लिये इनका आगमन और अस्त्रके रूपमें पर्वतको उठाना (आदि० २२६ । ३४)। ये इन्द्रकी सभामें विराजमान होते हैं (सभा० ७ । १४)। इनकी पुत्री कशेरुका नरकासुरद्वारा अपहरण (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ८०४-८०५)। प्रजापति त्वष्टा (विश्वकर्मा) के द्वारा वज्रका निर्माण (वन० १०० । २४)। नल नामक वानर इनका पुत्र था (वन० २८३ । ४१)। इन्द्रद्वारा अपने पुत्र त्रिशिराके मारे जानेसे इनका इन्द्रपर कुपित होना और वृत्रासुरको प्रकट करना (उद्योग० ९ । ४८)। त्वष्टाने अपनी तपस्यासे संतुष्ट हुए शिवजीकी कृपासे वृत्रासुर नामक पुत्र उत्पन्न किया (द्रोण० ९४ । ५४)। इनके द्वारा स्कन्दको चक्र और अनुचक्र नामक दो पार्षद-प्रदान (शल्य० ४५ । ४०)।

त्वष्टाधर-शुक्राचार्यके रौद्रकर्म करने-करानेवाले दो पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६५ । ३७)।

(द)

दंश-अलर्क नामक कीड़ेकी योनिमें पड़ा हुआ एक राक्षस, जो परशुरामजीकी दृष्टि पड़ते ही कीट-योनिसे मुक्त हो गया था । परशुरामजीके पूछनेपर उसका अपनी दुर्गतिका कारण बताना (शान्ति० ३ । १४-१५; १९-२३)।

दक्ष-(१) ब्रह्माजीके दाहिने अँगूठेसे उत्पन्न एक महर्षि, जो महातपस्वी एवं प्रजापति थे । इनकी पत्नी ब्रह्माजीके बाँयें अँगूठेसे उत्पन्न हुई थी । उनके गर्भसे दक्षने पचास कन्याएँ उत्पन्न की थीं (आदि० ६६ । १०-११)। ये ही कल्पान्तरमें दस प्रचेताओंद्वारा मारिषाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे; अतः प्राचेतस दक्ष कहलाते हैं । इनसे समस्त प्रजाएँ उत्पन्न हुई हैं, इसीसे ये सम्पूर्ण लोकके पितामह हैं (आदि० ७५ । ५)। इनके समान ही गुणशीलवाले इनके एक हजार पुत्र उत्पन्न हुए । उन्हें नारदजीने मोक्षशास्त्र एवं सांख्यज्ञानका उपदेश दे दिया; जिससे वे विरक्त होकर घरसे निकल गये। तब इन्होंने पुत्रिकाधर्मके अनुसार दौहित्रोंको अपना पुत्र माननेका संकल्प लेकर पचास कन्याएँ उत्पन्न कीं (आदि० ७५ । ६-८)। इन्होंने इनमेंसे दस कन्याएँ धर्मको, तेरह कश्यपको और कालका संचालन करनेमें नियुक्त नक्षत्रस्वरूपा सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाको ब्याह दीं (आदि० ७५ । ८)। ये अर्जुनके जन्मकालमें कुन्तीदेवीके स्थानपर गये थे (आदि० १२२। ५२)। ये भगवान् ब्रह्माकी सभामें रहकर उनकी उपासना करते हैं (सभा० ११ । १८)। इन्होंने सरस्वतीके तटपर यज्ञ किया और उस स्थानके लिये एक वर दिया कि यहाँ मरनेवालेको स्वर्ग प्राप्त होगा । वही विनशन तीर्थ है (वन० १३० । २)। ये ब्रह्माजीके मानसपुत्रोंमें सातवें हैं और मेरुपर्वतपर रहते हैं (वन० १६३ । १४)। इन्होंने सत्ताईस कन्याएँ सोमको ब्याह दी थीं, इनके पति चन्द्रमा केवल 'रोहिणी' को ही प्यार करते थे; अतः अन्य पत्नियोंने पिता दक्षके पास जाकर इस बातकी शिकायत की, तब दक्षने चन्द्रमासे कहा-'सोम ! तुम अपनी सभी पत्नियोंके प्रति समानतापूर्ण बर्ताव करो; जिससे तुम्हें महान् पाप न लगे ।' इसके बाद इन्होंने सब कन्याओंको समझाकर चन्द्रमाके यहाँ भेजा; परंतु सोमने दक्षकी बात नहीं मानी । अपनी पुत्रियोंके मुखसे फिर सोमकी शिकायत सुनकर इन्होंने उन्हें शाप देनेकी धमकी दी । जब चन्द्रमाने फिर उनकी बातकी अवहेलना कर दी, तब इन्होंने रोषपूर्वक राजयक्ष्माकी सृष्टि की और वह सोमके शरीरमें प्रविष्ट हो गया (शल्य० ३५ । ४५-६२)। देवताओंके अनुरोध करनेपर इन्होंने बताया, सोम अपनी पत्नियोंके प्रति समानतापूर्ण बर्ताव करें और सरस्वती-समुद्र-संगममें स्नान करके महादेवजीकी आराधना करें, तब इस रोगसे मुक्त हो जायँगे। प्रतिमास पंद्रह दिनोंतक ये प्रतिदिन क्षीण होंगे और आधे मासतक निरन्तर बढ़ते रहेंगे (शल्य० ३५ । ७३—७७)। गङ्गाद्वारमें इनके आवाहन करनेपर

सरस्वती वहाँ आयी और 'सुरेणु' नामसे विख्यात हुई (शल्य० ३८ । २८-२९)। बाणशय्यापर पड़े हुए भीष्मको देखनेके लिये ये भी गये थे (शान्ति० ४७ । १०)। इनकी आठ कन्याएँ ब्रह्मर्षियोंको ब्याही गयी थीं, जिनसे अनेक प्रकारके जीव-जन्तु तथा देवता-मनुष्य आदि उत्पन्न हुए (शान्ति० १६६ । १७)। इनका एक नाम 'क' भी है (शान्ति० २०८ । ७)। शिवजीद्वारा इनके यज्ञका विध्वंस (शान्ति० २८३ । ३२—३७)। यज्ञके समय दधीचिके साथ इनका संवाद (शान्ति० २८४ । २०—२२)। यज्ञविध्वंसके बाद इनका शिवजीकी शरणमें जाना (शान्ति० २८४ । ५७)। शिवजीसे क्षमा-प्रार्थना करना (शान्ति० २८४ । ६१—६४)। सहस्रनामद्वारा शिवजीका स्तवन करना (शान्ति० २८४ । ६९—१८०)। इनके द्वारा रुद्रको शाप (शान्ति० ३४२ । २५)। इनके द्वारा चन्द्रमाको शाप। इनकी साठ कन्याओंमें जो अन्तिम दस थीं, वे मनुको ब्याही गयी थीं (शान्ति० ३४२ । ५७)। (२) गरुड़की प्रमुख संतानोंमेंसे एक (उद्योग० १०१ । १२)। (३) एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३५)।

दक्षिण दिशा—इसका वर्णन (उद्योग० १०९ अध्याय)।

दक्षिण पाञ्चाल—यह दक्षिण पाञ्चाल देश गङ्गाके दक्षिण तटसे लेकर चम्बल नदीतक फैला हुआ था, जहाँके क्षत्रिय जरासंधके भयसे दक्षिण भाग गये थे (सभा० १४ । २७)। पाञ्चाल एक ही जनपद था, जो गङ्गाके दोनों तटोंपर फैला हुआ था। द्रोणाचार्यने अपने शिष्योंद्वारा द्रुपदपर आक्रमण करवाकर उसे अपने अधीन करके आधा द्रुपदको दे दिया और आधा अपने अधिकारमें रक्खा। जो भाग द्रोणके अधिकारमें था, वह 'उत्तरपाञ्चाल' और जिसके राजा द्रुपद थे, वह 'दक्षिणपाञ्चाल' के नामसे प्रसिद्ध हुआ (आदि० १३७ अध्याय)।

दक्षिणमल्ल—मल्लराष्ट्र (जिसकी राजधानी कुशीनगर या कुशीनारा थी) का दक्षिणी भाग; इसे भीमसेनने पूर्वदिग्विजयके समय जीता था (सभा० ३० । १२)।

दक्षिण सिन्धु—एक तीर्थ, जो दक्षिण दिशाका समुद्र-रूप ही है, इसमें जाकर स्नान करनेसे मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है और देवविमानपर बैठनेका सौभाग्य प्राप्त कर लेता है (वन० ८२ । ५३-५४)।

दक्षिणाग्नि—पाञ्चजन्यसे उत्पन्न एक घोर पावक (आचार्य नीलकण्ठने इसका नाम 'दक्षिणाग्नि' लिखा है।) (वन० २२० । ६)।

दक्षिणापथ—दक्षिण भारतका नामान्तर, जिसका परिचय नलने दमयन्तीको दिया था (वन० ६१ । २३)।

दण्ड—(१) एक क्षत्रिय राजा, जो 'क्रोधहन्ता' नामक असुरके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ४५)। यह अपने पिता विदण्डके साथ द्रौपदीके स्वयंवरमें आया था (आदि० १८५ । १२)। दिग्विजयके समय भीमसेनने उसे दण्डधारसहित परास्त किया था (सभा० ३० । १७)। यह मगधदेशके क्षत्रिय राजा दण्डधारका भाई था और अर्जुनद्वारा भाईके मारे जानेपर इसने श्रीकृष्ण तथा अर्जुनपर धावा किया था, इस युद्धमें अर्जुनने इसका मस्तक काट लिया था (कर्ण० १८ । १६—१९)। (२) एक सूर्यका अनुचर (वन० ३ । ६८)। (३) यमराजका दिव्यास्त्र, जिसका वेग कहीं भी कुण्ठित नहीं होता, इसे यमराजने अर्जुनको प्रदान किया था (वन० ४१ । २६)। (४) चम्पाके निकटका एक तीर्थ, जहाँ गङ्गामें स्नान करके मनुष्य सहस्र गोदानका फल पाता है (वन० ८५ । १५)। (५) एक चेदिदेशीय पाण्डवपक्षका योद्धा, जो कर्णद्वारा निहत हुआ था (कर्ण० ५६ । ४९)। (६) भगवान् विष्णुका एक नाम (अनु० १४९ । १०५)।

दण्डक—दक्षिण भारतका एक देश, जो दण्डकारण्यका भूभाग है। इसे सहदेवने दिग्विजयके समय जीता था (सभा० ३१ । ६६)। दण्डकका विशाल राज्य एक ब्राह्मणने नष्ट कर दिया था (अनु० १५३ । ११)।

दण्डकारण्य—एक तीर्थ और वन, जहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है (वन० ८५ । ४१)। यहीं गोदावरीके तटपर पञ्चवटीमें वनवासके समय श्रीरामजी रहे। यहीं शूर्पणखाको कुरूप किया गया और यहीं खर, दूषण, त्रिशिरा आदि चौदह हजार राक्षसोंका वध, मारीचका वध, सीताहरण, जटायुवध आदि घटनाएँ घटित हुईं (वन० २७७ अध्यायसे २७९ अध्यायतक)।

दण्डकेतु—पाण्डवपक्षका एक योद्धा, इसके रथके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ६८)।

दण्डगौरी—एक स्वर्गीय अप्सरा, जिसने इन्द्रसभामें अर्जुनके स्वागतार्थ नृत्य किया था (वन० ४३ । २९)।

दण्डधार—(१) मगधनिवासी एक क्षत्रिय राजा, जो 'क्रोधवर्धन' नामक दैत्यके अंशसे उत्पन्न हुआ था (आदि० ६७ । ४६)। भीमसेनने दिग्विजयके समय इसे इसके भाई दण्डसहित जीता था (सभा० ३० । १७)। यह कौरवपक्षका योद्धा था, हाथीपर चढ़कर लड़ता था और भगदत्तके समान पराक्रमी था। इसने जब पाण्डवसेनाका संहार आरम्भ किया, तब श्रीकृष्णकी प्रेरणासे अर्जुनने आकर इसके साथ युद्ध करके इसे मार

डाला (कर्ण० ८ । १-१३) । (२) धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंमेंसे एक (आदि० ६७ । १०३) । भीमसेनद्वारा इसका वध (कर्ण० ८४ । ५-६) । (३) एक राजा, जो पाण्डवोंका सहायक था । इसके नामके साथ मणिमान्‌का भी नाम आता है; अतः इन दोनोंमें कुछ लगाव रहा होगा--ऐसा अनुमान होता है । (सम्भव है, ये दोनों परस्पर पिता-पुत्र, भाई-भाई या मित्र रहे हों ।) द्रौपदीके स्वयंवरमें भी दोनोंके नामोंका एक साथ उल्लेख हुआ है (आदि० १८६ । ७) । पाण्डवोंकी ओरसे इनको और मणिमान्‌को भी रण-निमन्त्रण भेजा गया था (उद्योग० ४ । २०-२१) । ये दोनों द्रोणाचार्यके द्वारा मारे गये हैं; दोनोंके नामोंका उल्लेख मरणकालमें एक साथ हुआ है (कर्ण० ६ । १३-१४) । (४) एक पाञ्चालयोद्धा, जो पाण्डवपक्षका वीर था । इसके घोड़ोंका वर्णन (द्रोण० २३ । ५३) । यह युधिष्ठिरका चक्ररक्षक था और कर्णद्वारा मारा गया था (कर्ण० ४९ । २७) ।

दण्डनीति–ब्रह्माजीके द्वारा निर्मित नीतिशास्त्रमें वर्णित दण्डविधान-विषयक नीतिविद्या (शान्ति० ५९ । ७६–७९) । दण्डनीतिके गुणोंका वर्णन (शान्ति० ६९ । ७५–१०५) ।

दण्डबाहु–स्कन्दका एक सैनिक (शल्य० ४५ । ७३) ।

दण्डी–धृतराष्ट्रका एक पुत्र (आदि० ६७ । १०३) ।

दत्त (या दत्तक)–एक प्रकारका पुत्र, जिसे जन्मदाता माता-पिताने स्वयं समर्पित कर दिया हो । यह छः प्रकारके अबन्धु-दायादोंमेंसे एक है (आदि० ११९ । ३४) ।

दत्तात्मा–एक विश्वेदेव (अनु० ९१ । ३४) ।

दत्तात्रेय–भगवान् विष्णुके अवतार (अत्रिपत्नी अनसूयाके गर्भसे इनका प्राकट्य) । सहस्रबाहु अर्जुनद्वारा इनकी तीव्र आराधना और इनके द्वारा उसे चार दुर्लभ वरदानोंकी प्राप्ति (सभा० ३८ । २९ के बाद दा० पाठ, पृष्ठ ७९१) । इनके द्वारा साध्योंको उपदेश (उद्योग० ३६ । ४–२१) ।

दत्तामित्र–सौवीरदेशका राजा सुमित्र, जिसका अर्जुनने दमन किया था (आदि० १३८ । २३) ।

दधिमण्डोदक–एक समुद्र, जो घृतोद समुद्रके बाद आता है (भीष्म० १२ । २) ।

दधिमुख–(१) कश्यप और कद्रूसे उत्पन्न हुआ एक प्रमुख नाग (आदि० ३५ । ८) । (२) एक वृद्ध एवं पराक्रमी वानर, जो भयंकर वानरोंकी विशाल सेना साथ लेकर श्रीरामके पास आया था (वन० २८३ । ७) ।

दधिवाहन–एक प्राचीन नरेश, जिनका पौत्र महर्षि गौतम-द्वारा गङ्गा-तटपर परशुरामजीके क्षत्रिय-संहारसे बचाया और सुरक्षित रक्खा गया था (शान्ति० ४९ । ८०) ।

दधीच–(१) कुरुक्षेत्रके अन्तर्गत एक परम पुण्यमय पावन तीर्थ, जहाँ सरस्वतीपुत्र अङ्गिराका जन्म हुआ था । इसमें स्नान करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता और सरस्वती-लोककी प्राप्ति होती है (वन० ८३ । १८६–१८८) । (२) महर्षि भृगुके पुत्र, इनके द्वारा वज्रनिर्माणके लिये देवताओंको अस्थिदान (वन० १०० । २१) । सरस्वती नदीके द्वारा इन्हें सारस्वत नामक पुत्रकी प्राप्ति (शल्य० ५१ । १३-१४) । इनके द्वारा सरस्वतीको वरदान (शल्य० ५१ । १७–२४) । देवताओंके द्वारा अस्थिके लिये याचना करनेपर इनका प्राण त्याग करना (शल्य० ५१ । २९-३०) । इनकी अस्थियोंसे वज्र आदि अस्त्रोंका निर्माण (शल्य० ५१ । ३१-३२) । ब्रह्माजीके पुत्र महर्षि भृगुने तीव्र तपस्यासे भरे हुए लोकमङ्गलकारी विशालकाय एवं तेजस्वी दधीचको उत्पन्न किया था । ऐसा जान पड़ता था मानो सम्पूर्ण जगत्‌के सारतत्त्वसे उनका निर्माण हुआ हो । ये पर्वतके समान भारी और ऊँचे थे । इन्द्र इनके तेजसे सदा उद्विग्न रहते थे (शल्य० ५१ । ३२–३४) । दक्षयज्ञमें शिवजीका भाग न देखकर कुपित हो दक्ष आदिको इनका चेतावनी देना (शान्ति० २८४ । १२–२१) । देवताओंके कहनेसे प्राण त्याग करना (शान्ति० ३४२ । ४०) ।

दनायु–दक्षप्रजापतिकी पुत्री और महर्षि कश्यपकी पत्नी (आदि० ६५ । १२) । इसके चार पुत्र हुए—विक्षर, बल, वीर और महान् असुर वृत्र (आदि० ६५ ।३३) ।

दनु–दक्ष-प्रजापतिकी पुत्री, महर्षि कश्यपकी पत्नी तथा दानवोंकी माता (आदि० ६५ । १२) । दनुके चौंतीस पुत्र हुए, जिनमें सबसे बड़ा विप्रचित्ति था (आदि० ६५ । २१—३६) । ये ब्रह्माजीकी सभामें विराजमान होती हैं (सभा० ११ । ३९) ।

दन्तवक्त्र (या दन्तवक्र)–एक क्षत्रिय राजा, क्रोधवश-संज्ञक दैत्यके अंशसे उत्पन्न (आदि० ६७ । ६२) । यह करूष देशका अधिपति था (सभा० १४ । १२) । सहदेवने इसे दक्षिण-दिशाकी विजयके समय पराजित किया था (सभा० ३१ । ३) । इसे पाण्डवोंकी ओरसे रण-निमन्त्रण भेजा गया था (उद्योग० ४ । १६) ।

दम–(१) विदर्भनरेश भीमके पुत्र और दमयन्तीके भाई (वन० ५३ । ९) । (२) एक महर्षि, जो अन्य महर्षियोंके साथ भीष्मजीको देखनेके लिये आये और कथा-वार्ता सुनाकर अन्तर्धान हो गये (अनु० २६ । ४—११) ।